श्रीहरिरायविरचित

बडे शिक्षापत्र.

॥ श्रीकृष्णाय नमः । श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥
अथ श्रीहरिरायजीकृतानि शिक्षापत्राणि श्रीगोपेश्वरजीरचितया
व्रजभाषाटीकया समेतानि श्रीनृसिंहलालजी महाराजाज्ञानु-
सारेण संशोधितानि व्रजभाषाया मूलश्लोकटीकास्थ-
श्लोकानां शब्दार्थयुतानि प्रकाश्यंते ॥

मूलं–सदोद्विग्नमनाः कृष्णदर्शने क्लिष्टमानसः ।
लौकिकं वैदिकं चापि कार्यं कुर्वन्ननास्थया ॥१॥
निरुद्धवचनो वाक्यमावश्यकमुदाहरन् ।
मनसा भावयेन्नित्यं लीलाः सर्वाः क्रमागताः ॥२॥

शब्दार्थः–निरंतर (अहंताममतात्मक असदाग्रहतें) उद्वेगयुक्त नाम निर्वेदयुक्त हे मन जाको, ओर श्रीकृष्णके दर्शननिमित्त क्लिष्ट (आर्तियुक्त) हे मन जाको, ओर लौकिक तथा वैदिक कार्यहू फलाशा छोडिकें करिवेवारो, वचनकुं नियममें राखिवेवारो, आवश्यक (जरूर बोलवे विना कार्य चले नहि तितनो) वाक्यको उच्चार करिवेवारो वैष्णव मनसों क्रमप्राप्त सर्व लीलाकी भावना करे ॥ १–२ ॥

टीका–जो लौकिक वैदिक कार्यके आवेश करी मनकों उद्वेग करिकें तथा लौकिक वैदिक कार्यके क्लेशयुक्त श्रीकृष्णके दर्शनकों जइए सो प्रभु तो आनंदरूप हे सो जीवको मुख क्लेशरूप देखिकें

उदासीन होय जाय तातें लौकिक (संसारके) कार्य सिद्ध न होय अथवा विगरि जाय जासुं मनमें क्लेश नांही करियें । लौकिक वैदिकक्कों मनमें तुच्छ करिकें जानियें, ओर प्रभुकी सेवा संबंधि कार्य सिद्ध होय तब मनकों प्रसन्न राखियें । जो कदापि सेवा न बने तो मनमें क्लेश राखिये यह पुष्टिमार्गकी रीति हे । जेसें सेवा व्रजभक्त करते, श्रीठाकुरजी गोचारनकों वनमें पधारते, तब वियोगमें वेणुगीत, युगलगीत गावते पाछें जब श्रीठाकुरजी व्रजभक्तनकों सुखदानार्थ व्रजमें पधारते तब व्रजभक्त आनंदसो दर्शन करते, तेसेंही पुष्टिमार्गमें सेवासमय सेवा—दर्शन करियें ओर अनोसरमें श्रीठाकुरजीसंबंधी क्लेश (वियोगार्ति) करियें. श्रीकृष्णके मुखारविंदको ध्यान करियें । जब सेवाको समय होय तब आतुरतासों श्रीकृष्ण फलात्मक पुरुषोत्तमके दर्शन करियें । पाछें लौकिक कार्य, वैदिक कार्य गृहस्थाश्रमको धर्म हे तातें लौकिक अपकीर्तिके निवृत्त्यर्थ तथा वैदिक मर्यादाके लिये अवश्य करियें । परंतु लौकिकवैदिकमें मन आसक्त न राखियें । मन एक श्रीकृष्णहीमें राखियें । तातें मनमें क्लेश राखिकें दर्शन न करियें प्रसन्नतासों दर्शन करियें । सूतकमें मंदिरकी सेवा न होय सके तो भाव करि मानसी सेवा होय यह मर्यादा हे क्यों जो मंदिरमें छुइ जाय ॥ १ ॥ अपने वचनकों निरोध करनों, बोहोत बोलनों नांही आवश्यक कार्यार्थ होय सोइ बोलनों । मुख्य सिद्धांत तो यह हे जो भगवत्संबंध विना सर्वथाही न बोलनों परंतु लौकिक वैदिक कार्यार्थ गृहस्थाश्रममें बोले विना काम न चले तासों आवश्यक होय सोइ बोलनों सो काहेतें जो वाणीको निग्रह होय तो मुखरता दोष न होय ओर बोहोत बोले तो भगवद्भाव हृदयमें स्थिर न रहे वाणीद्वारा बाहिर निकसि जाय एसी भगवद्धर्मकी सूक्ष्म गति हे तातें सब वाणीके निरोधसों सिद्ध होय । मनको यह धर्म हे जो अनेक ठिकानें भटक-

तहे सो मनमें विचारिकें श्रीठाकुरजीकी अपार लीला अनेक प्रकारकी हे तामें क्रमसहित मन लगाय दीजियें, काहेतें जो मनको गमन पवनहूतें अधिक हे तातें मनको कोटि उपायसों रोकियें परंतु रोको मन रहत नांही तातें श्रीठाकुरजीकी लीलामें लगाइयें । जन्माष्टमी, अन्नकूट, होरी, हिंडोरा आदि वर्षदिनके उत्सव तिनकी अनेक लीला भावकरिकें पुष्टिमार्गकी रीतिसों मन लगायकें भावना करे । तथा नित्य-लीला प्रातःकालतें श्रीठाकुरजी श्रीनंदरायजीके घरमें जागतहे कुंजमें श्रीस्वामिनीजीके यहांहू जागतहे तथा खंडिता, मंगलाभोग. मंगला-आर्ति. सिंगार (शृंगार), ग्वाल, पालना (पर्यंक), राजभोग. उत्था-पन. भोग, संध्या, शयन पर्यंत ऋतु अनुसार तथा शयन पीछेहू शुद्ध मनकरिकें रासलीला, मानलीला, जलस्थलविहार इत्यादिक मनसों भावना करियें तथा श्रीआचार्यजीके कुल श्रीगुसाँईजीके स्वरूपको विचार श्रीठाकुरजीको प्राकट्य कोंन अर्थ ? लीला सामग्री वागा-वस्त्रको भाव कहा हे ? यह मनमें विचारि विचारि भावना करियें । क्रमसहित लीलाको विचार करियें ताकरि भगवदावेश होय । अष्ट प्रहर लीलाको स्मरण मनमें राखनों । भावनाके दोय प्रकार हे एक उत्तम ओर एक मध्यम । उत्तम प्रकार यह जो प्रथम स्नान करि शुद्ध होय, भावसहित गुरुके पास जाय. प्रथम गुरुकी सेवाकरिकें पाछें गुरुके संग मंदिरमें जाय तहां गुरु जो आज्ञा देय सो तथा विनति करि सेवा करियें, आपु चलिकें जाय सेवा करे तो प्रभुकों श्रम न होय, ओर आनंदात्मक प्रभु वेगिही प्रसन्न होय यह उत्तम प्रकार जाननों । ओर मध्यम यह जो अपने हृदयमें प्रभुकों पधरावे सो प्रभु तो दयालु हे परंतु प्रभुकों श्रम होय सो पुष्टिकी रीति नांही । या क्रमसों सेवा करे ॥ २ ॥

मूलं–सेवाऽपि कायिकी कार्या निरुद्धेनैव चेतसा ।
दैहिकं कर्म निखिलं प्रभुसेवोपयोगिनाम् ॥ ३ ॥
यथोपकरणादीनां रक्षा तद्वद्विधीयताम् ।
भार्यादिष्वनुरागोऽपि सेवाहेतुक एव हि ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–कायिकी सेवाहू निरोधयुक्त चित्तसोंही करनी । ओर प्रभुसेवामें उपयोगी जो पदार्थ हे ताकी जेसें रक्षा होय तेसें समग्र दैहिक कर्म करनें । ओर भार्या पुत्रादिकविषे जो स्नेह सोहू सेवानिमित्त राखनों जो सेवामें अनुकूल आवे ॥ ३–४ ॥ टीका–सेवा श्रीठाकुरजीको अपने देहसों करनी ओर काहुसों न करावनी । जो कदाचित् अपने शरीरसों सब सेवा न होय आवे, अपने श्रीठाकुरजीकों श्रम होत होय, तो सहायके लिये ओरसूंहु करावनी । पुष्टिमार्गीय वैष्णव होय तथा अपने कुटुंबमें समर्पनी मर्यादी होय तातें करावनी । अवैष्णवसों सेवा सर्वथा न करावनी । ओर जहांलों जितनी सेवा अपने देहसों बने तहांलों ओरसूं न करावनी । आलस्यकरिके लौकिकावेश न करनों । अपनी कायासों श्रीठाकुरजीकी सेवा करे तो शरीर इंद्रिय मन सब श्रीठाकुरजीके सन्मुख होय, भगवत्संबंधतें बहिर्मुख न होय । तातें अवश्य अपने शरीरसों नियमसहित भगवत्सेवा करनी । यह नियम राखनों जो इतनी सेवा करिकें लौकिक वैदिक कार्य खानपान करनों । जा भांति जेसी प्रीतिसों खानपानको नियम हे तेसी प्रीतिमा सेवा जो वैष्णवको मुख्य धर्म हे सो नियम करिकें करनी यह दासका धर्म हे, जो में सेवा विना केसें रहुं या प्रकार मनमें विचारिके ज्ञानकरि मनकुं समझावनो, ओर लौकिक वैदिक अनेक ठोर मन भटकत हे तहांते मनको निरोध करिकें सेवा करे । प्रथम तो मनको निरोध राखे, जो मन लौकिक वैदिकमें जाय तो भगवत्सेवामें उद्वेग

होय तब सेवामें श्रद्धा घटि जाय तातें मनको निरोध करनों । सेवा-संबंधि कार्य विना बोलनों नांही । लौकिक वानी कहे तो मुखरता दोप होय, सेवामें भगवद्भावरूपी रसको तिरोधान होय तातें मिथ्या वाणीको निरोध करे । तैसेंही मिथ्या क्रियाको निरोध करनों । भगवत्सेवाके समय लौकिक वैदिक कार्य कछू आय परे सो सर्वथा न करनों । जो सेवासंबंधि कार्य छोडिकें वैष्णव ओर कार्य करे तो वह कार्यहू सिद्ध न होय लौकिकावेश होय । या प्रकार मन वाणी क्रिया ये तीन्योंनकों लौकिक वैदिकतें निरोध करि भगवत्सेवा करे । ओर दैहिक लौकिक वैदिक कर्म वहोत हे सो यह संसारमें रहिके न करे तो संसारमें अपकीर्ति होय सेवामें प्रतिबंध होय तातें लौकिक वैदिक कार्यहू लोकनके दिखायवेके लिये करे श्रीठाकुरजीकी सेवासों पहों-चिकें अनोसरमें आसक्ति विना करे ॥ या प्रकार प्रभुके अंगीकार योग्य वस्त्र सामग्री करे ॥ ३ ॥ पाकादिक सामग्रीकी रक्षार्थ ओर श्रीठाकुरजीकी सेवार्थ सब कार्य करे । या प्रकार वैष्णव सेवा करे तो प्रभु अनुभव करावे । जो भार्या (स्त्री) भगवत्सेवामें सहाय होय तो सेवा भली भांतिसों होय । या भांति भगवत्सेवार्थ भार्या जो स्त्री ताहूमें अनुराग (स्नेह) राखनों । अपने विषयादिकके अर्थ अनुराग सर्वथा न करे । तामें दृष्टांत कहतहे । महादेवजीकी स्त्री सती[1] हती सो वानें महादेवजीको कह्यो न मान्यो ओर श्रीरामचंद्रजीकी परीक्षा लेयवेकूं श्रीजानकीजीको स्वरूप धर्यो सो वार्त्ता महादेवजीनें जानि सो महादेवजी तो भगवद्भक्त हे ताते वाही समय सतीको त्याग कीयो पाछें सती दक्ष प्रजापति (अपने पिता) के यज्ञमें अपनो देह भस्म करि हिमाचलके गृहमें प्रकट भई । तहां अनेक तपस्या कीनी तोहू महादेवजीको मन सतीपर प्रसन्न न भयो तब श्रीठाकुरजीनें

१ यह कथा स्कंदपुराण तथा रामायणमें प्रसिद्ध हे.

महादेवजीसों कह्यो जो तुम अब मेरो इतनो कह्यो करो पार्वतीको अंगीकार करो तब महादेवजी पार्वतीकों व्याहिकें अपने घर ले आये तब पार्वतीनें भगवल्लीला महादेवजीसों पूछी तब प्रसन्न भये। तातें वैष्णव होयकें लौकिक विषयके अर्थ स्त्रीपर प्रसन्न होय नहीं, भगवत्सेवार्थ अनुराग-करे। जा प्रकार भगवत्सेवा भली भांतिसों होय सोई करनों या भांति सेवा होय तो लौकिकहू करियें ॥ ४ ॥

मूलं-प्रातिकूल्ये यथा त्यागः प्रभ्वसंबंधिवस्तुनः।
धनेषु निस्पृहः सेवोपयोगित्वेन रक्षणम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-जेसें श्रीठाकुरजीके विनियोगमें नहीं आवे एसी वस्तुको त्याग करनों तेसें भार्यादिक जो सेवामें प्रतिकूल होय तो वाको त्याग करनों। धनमें इच्छा नहि राखनी परंतु (धन होय तो सेवा भली भांतिसों होय तासुं) सेवोपयोगिपनेतें धनको रक्षण करनों ॥ ५ ॥ टीका-जो स्त्री प्रतिकूल होय भगवत्सेवामे प्रतिबंध करे तो वह स्त्रीको त्याग करियें वामे अनुराग न करियें काहेतें जो प्रभुसंबंधी न होय ताको त्यागही उचित हे। जो प्रभुसंबंधी स्त्री न होय तो भगवद्भावमें वाको मन लगाइयें। पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यकुलद्वारा नामनिवेदन होय मर्यादी होय तो श्रीठाकुरजीको स्पर्श कराइयें। सेवक होय मर्यादी न होय तो उपरकी सेवा कराइयें। प्रतिबंध करे तो शीघ्रही वाको त्याग करियें। ओर धनमें आसक्ति न राखे निःस्पृह होयकें रहे धनकी रक्षा करे नांही यह उत्तमोत्तम कहे। ओर यह कलिकाल हे या कालमें जीवकों धीरज तत्काल छूटिजात हे, जो धनकी रक्षा न करे तो धन सब उठि जाय पाछे जीवको धीरज न रहे तब धनके लिये बोहोत दुःख पावे सो न करे। धनकी रक्षा अपने सुखके अर्थ न करे, यह जाने जो यह

वन प्रभुको है सो प्रभुकी सेवाके अर्थ रक्षा करे, जो हृदयमें पूर्ण वैराग्य होय तो धनकी रक्षा न करे जो वैराग्य दृढ न होय तो भगवत्सेवार्थ जानि रक्षा करे ओर भगवदुत्सवादिकमें यह धनको लगावे। जो भगवदर्थ धन न लगावे ओर लौकिकमें लगावे तथा धनमें मनको आसक्त करिकें भगदुत्सवमें गुरुके वहां वल्लभकुलमें वैष्णवनमें न लगावे तो आसुरावेश होय तातें मन करिकें आसक्ति रहित होयके धनकी रक्षा करि भगवत्सेवा गुरुसेवामें विनियोग करे। या भांति विवेकसों वैष्णव रहे तो भगवद्भाव हृदयमें बढे ॥ ५ ॥

मूलं–विवाहादिषु कार्येषु वध्वाः सेवार्थमानसः ।
भगवत्संगिसंगोऽपि स्वप्राणप्रेष्ठवार्तया ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–स्त्रीके विवाहादिक कार्यमें प्रभुकी सेवाके अर्थ चित्त रहे ओर अपने प्राणप्रिय जो ठाकुरजी तिनकी वार्ता [भगवत्कथा] के निमित्त भगवद्भक्तको संग करनों ॥ ६ ॥ टीका–उपर कहे जो धनकों लौकिकमें न खरचे सो विवाहादिक कार्यमें धन खरचे विना कैसें चले ? तहां कहतहे जो अपनो विवाह तथा पुत्रादिकको विवाह होय तो सेवाको विचार करिये जो भगवत्सेवामें मनुष्य होय तो सेवा भली भांतिसों होय यह विचारिकें जितनों द्रव्य विवाहादिक कार्यमें अवश्य लगावनों होय सो श्रीठाकुरजीकी आज्ञा लेयके वह द्रव्य खरचे या भांति प्रभुकी आज्ञा मांगिके दासभावसों लौकिक कार्य करे। ओर भगवदीयको संग करियें सो कछु लौकिक वैदिक की चाहना [स्वार्थ] के लिये न करियें केवल अपने प्राणप्रेष्ठ जो श्रीठाकुरजी तिनकी वार्त्ताकरणार्थ भगवदीयको संग अवश्य करनों निरपेक्षभावसों करनों अपनी बडाईके अर्थ भगवद्धर्म कछु न करनों दैन्ययुक्त होय अपनो धर्म जानि करनों ॥ ६ ॥

मूलं–वियोगानुभवं कुर्वन् सेवानवसरे पुनः ।
मूर्त्तौ भगवतो दृष्टिर्भाव्या तत्तस्य दर्शनम् ॥७॥

शब्दार्थः–सेवाके अनवसरमें (अनोंसरमें) वियोगानुभव करिकें निर्वाह करे (व्रजभक्त वेणुगीत युगलगीतसों विप्रयोगको अनुभव करतें तैसें करे) ओर श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें यह साक्षात् श्रीकृष्णचंद्र हे एसी भावना करे तब वाकुं साक्षात् श्रीपूर्णपुरुषोत्तमके दर्शन होय (जब ताँइ सानुभव न होय तब ताँइ जेसी साक्षात् श्रीकृष्णकी सन्निधिमें भाव ओर मर्यादा राखे तेसी भगवत्स्वरूपकी सन्निधिमेंहू राखे) ॥ ७ ॥ टीका–भगवत्सन्मुख सेवामें संयोगात्मक लीलारसको अनुभव करियें । सो सामग्री तथा वस्त्रादिक धरिये ताको भाव विचारियें जब सेवासों पोहोंचि अनोंसर करियें तब वियोगानुभव करियें । जेसें व्रजभक्त वेणुगीतयुगलगीतमें कियेहे वाहीभांति विचारियें जो अब प्रभु कोनसी कुंजमें पधारे होयँगे ? कहां लीला भक्तनके संग करत होयँगे ? ताको स्मरण करत विकल होय जो में वडो दुष्ट हों जो प्रभुको दर्शन नांही होतहे । तब यह श्लोक श्रीगुसाँईजीको हे ताको भाव विचारनो । श्लोकः–चित्तेन दुष्टो वचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः । ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः ॥ शब्दार्थः–॥ में चित्ततें दुष्ट वचनतें दुष्ट कायतें दुष्ट क्रियातें दुष्ट ज्ञानतें दुष्ट भजनतें दुष्ट एसें सब रीतसों दुष्ट हों एकहू शुद्ध नहीं हे तासुं मेरो अपराध कितने प्रकारको विचारनों । या भांति मनमें दीनता करि वियोगानुभव करियें । जब सेवाको समय होय तब वेगिही स्नान करि वेगि अपरसमें पुष्टिमार्गकी रीतिसों मंदिरमें जायकें ठाकुरजीके रसात्मक श्रीमुख श्रीअंगके आनंदमय दर्शन करि सकल विरहकों दूरि करियें भावसहित दर्शन करियें । जेसें

व्रजभक्त श्रीनंदरायजीके घर आयकें श्रीठाकुरजीको दर्शन करतहे ता भावको स्मरण करियें तो व्रजभक्तनकी कृपातें याहूको भावदान होय ७

मूलं–स्पर्शस्तत्रैव भावेन सर्वास्तत्रैव तत्क्रियाः ।
भावात्मनो ह्यनुभवः सर्वो भावेन नान्यथा॥८॥

शब्दार्थः–भगवत्स्वरूपमें भावहीतें स्पर्श करे तेसेंही सब देह-संबंधी क्रिया वाहीमें करे क्यों जो भावात्माको सर्व अनुभव भावतें होय अन्यथा न होय ॥ ८ ॥ टीका–ऊपर दर्शनको प्रकार कहे तामें नेत्रइंद्रियको सुख भयो । पाछें स्नान करी सेवामें सर्वेंद्रियको विनियोग होतहे । प्रथम मंगलाते पोहोचि पाछे श्रीठाकुरजीको स्नान करावे । अंगवस्त्र करि ऋतु अनुसार वागा वस्त्र धरावे । या भांति सेवामें भगवत्स्वरूपको स्पर्श भावसों करे । जो हृदय शुद्ध होय तो व्रजभक्तनकी भावना करे यह भाव विचारे जो अपने घरते व्रजभक्त वस्त्र आभूषण खिलोनां लेयकें श्रीनंदरायजीके घर प्रातः-काल आय सेवा करत हे स्नान करावत हे शृंगारादिक करत हे, जो शुद्ध हृदय न भयो होय तहां तांइ राजा जेसो भय मनमें राखे जो प्रभु ईश्वरके ईश्वर हे अपराध पडेगो तो दंड देयँगे या भांति भयसं-युक्त अंगस्पर्श करियें । जो शीतकाल होय तो अपनो हाथ सेकिकें श्रीअंग महा कोमल हे एसें विचारिकें स्पर्श करे तो भाव हृदयमें प्रकट होय । या भांति मंगलातें शयनपर्यंत शरीरकी सगरी क्रिया भाव-सहित करे । जितनी वस्तु सेवामें होय सो सबनको भावसहित स्वरू-पात्मक जानिकें सेवा करियें भाव विना अन्यथा न करियें । सर्वात्मभा-वसों श्रीठाकुरजीकी सेवा करे तो स्वरूपानंदको अनुभव होय ॥ ८ ॥

मूलं–हृदयस्यात्यशुद्धत्वान्न तत्रावेशसंभवः ।
स्वमूर्त्तावतिशुद्धायामाविश्यानुभवं हरिः ॥ ९ ॥

यावत्साधनसंपत्तिः कारयत्यखिलान्निजान् ।
शुद्धं विधाय हृदयं पश्चात्तत्राविशेत्स्वयम् ॥ १० ॥

शब्दार्थः—हृदयको अति अशुद्धपनोहे तासुं वामें प्रभुके आवेशको संभव नहींहे जितनी साधनसंपत्ति होय तितनो श्रीप्रभु अपनी मूर्ति अतिशुद्धहे वामें सगरे अपने भक्तनकूं अनुभव करावेंहें पाछें (भक्तको) हृदय शुद्ध करि वामें आप प्रवेश करेहें । यह दोय श्लोकमें " यावत्साधनसंपत्तिः कारयत्यखिलं निजान् " इतनो पाठभेद पुस्तकांतरमें हे । अत्र पाठान्तरानुसार शब्दार्थः—हृदयकों अति अशुद्धपनो हे तासुं वामें प्रभुके आवेशको संभव नहीं हे । जब ताँइ निजजनकों सगरी साधनसंपत्ति प्रभु सिद्ध करावें हें तब ताँइ अति शुद्ध अपनी मूर्तिमें प्रवेश करि अनुभव करावें हें ओर साधनसंपत्तिसों (भक्तनको) हृदय शुद्ध करि पीछे वामें आप (प्रभु) प्रवेश करतहे ॥ १० ॥ टीका—भगवत्सेवामें अपने हृदयकों इंद्रियकों अति शुद्ध राखे लौकिकावेश विषयकी भावना न करे । लौकिक देहसंबंधिके सुखदुःख मनमें न राखे । लौकिक वैदिक सुख दुःख हे सो यह देहसंबंधी हे ओर भगवत्सेवासंबंधी सुख दुःख हे सो आत्मसंबंधी जन्मजन्मको हे । ओर श्रीठाकुरजीको स्वरूप अति शुद्ध हे तातें लौकिकमायाके गुण प्रभुके विषे कछु न विचारे । प्रभुको श्रीअंग करपादमुखोदरादि सर्व आनंदरूप हे, ओर शुद्ध मन करि अनुभव करिव योग्य हे, काम क्रोध मद लोभ मत्सर ताकरिके रहित हे, ओर सब दुःखके हर्त्ता हे, परमानंदके दाता हे, एसें श्रीठाकुरजीकी अलौकिक गुणसंयुक्त मनमें भावना करि, सर्वठोरतें अपने मनकों खेंचिकें. एक श्रीठाकुरजीके चरणारविंदमें मन लगाय भगवत्सेवा भावसहित करे तो प्रभु अपनो अनुभव करावे ॥ १ ॥ यह संसारमें आसुरी पदार्थ ६

ओर दैवी पदार्थ हे तामें दैवीमें दोय प्रकार हे एक मर्यादा ओर एक पुष्टि, तिनमें आसुरी ओर दैवीके दोय भेद मिलि तीन्योंको भेद न्यारे न्यारे कहत हे सो भेद हृदयमें राखे तो अज्ञान करि दुःख सुख न पावे । भगवत्सेवामें साधनसंपत्तिरूप पुष्टिपदार्थ निरूपण करेहे । प्रथम अपनो देह जो भगवत्सेवामें लग्यो रहे तो दैवी जानियें । जो भगवत्सेवामें आलस्य होय कदाचित् कोई वैष्णवके संगतें सेवा करे ओर रोगादिक बाध करे तब जानियें जो आसुरी देह हे । ओर दैवी मन होय तो सेवा करतमें प्रभुके स्वरूपको अनुभव होय । ओर आसुरी मन होय तो सेवा करतमें अनेक लौकिकमें भटके ताकों स्वरूपानंदको अनुभव न होय । ओर देहसंबंधी स्त्रीपुत्रादिक कुटुंब भगवत्सेवामें सहाय होय तो दैवी जानियें । जो भगवत्सेवामें विरोध करे तो आसुरी जानियें । जो कर्ममार्गमें रुचि होय तो मर्यादा जानियें । यही प्रकार द्रव्य जो भगवत्सेवामें विनियोग होय तो दैवी जानियें । जो कर्ममार्ग दान होम श्राद्धादिकमें ऊठे सो मर्यादा जानियें । जो लोकिकमें जाय चोरी होय दंड होय सो आसुरी जानियें । तातें जो पदार्थ भगवत्सेवामें विनियोग होय तिन सबनकों शुद्ध जानियें. जो भगवत्सेवामें विनियोग न होय ताकों अशुद्ध जानियें । या भांति जो प्रभुकी सेवासंबंधी शुद्ध पदार्थ हे तिनकों हृदयमें धारण करे जो मेरे कामके येहीहे । तब स्वयं भगवान् शुद्ध-हृदयमें प्रवेश करि स्वरूपानंदको अनुभव करावें तातें सेवासंबंधी न होय एसे पदार्थको त्याग करियें । भगवत्संबंधी पदार्थ सामग्री वस्त्रा-दिकको भाव हृदयमें राखिकें भगवत्सेवा करियें ॥ १० ॥

मूलं–दत्त्वा दैन्येन संतुष्टो नित्यं देहमलौकिकम् ।
स्वयं प्रविश्य भावात्माऽनुभवं कारयेत्स्वकम् ११

शब्दार्थः—दैन्यतें प्रसन्न भये प्रभु नित्य अलौकिक (सेवोपयोगी) देह देयकें भावात्मक आप वामें प्रवेश करिकें आपको अनुभव करावें ॥ ११ ॥ टीका—उपर कहे ता प्रकार सेवा करे ओर दैन्य मनमें न होय तो श्रीठाकुरजी संतुष्ट न होय तातें दीनता करि सेवा करी श्रीठाकुरजीकों प्रसन्न करियें तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न होय । काहेतें जो भगवान् षड्गुणपूर्ण ईश्वरके ईश्वर हे । काहू वस्तुकी अपेक्षा नांही राखतहे । एक प्रीति दीनता ही प्रसन्न करिवेको उपाय हे । सो भगवदीय गायेंहे "प्रीतम प्रीतहीतें पाइयें। यद्यपि रूप गुण शील सुघरता इन बातन न रिझैयें । १ । सत्कुल जन्म कर्म शुभ लक्षण वेद पुराण पढैयें। गोविंदप्रभु बिनस्नेहसुं वालो रसना कहा नचैयें " । २ । तातें भक्त दीनता करि जो कछु प्रीतिसों समर्पे सो प्रभु अंगीकार करे । जेसें पद्मनाभदासनें छोला समर्पे सो प्रभु अंगीकार किये । जब अत्यंत दैन्य करि प्रभु संतुष्ट होय तब जीव पर कृपा करे, तब अलौकिक देह जो नित्य सेवायोग्यहे, ताकी सिद्धि करि आप हृदयमे पधारे । भावात्मक प्रभु तब अपने स्वरूपको अनुभव करावें । तब सगरो जगत् लीलामय दीसे काहू प्राणिमात्रमें ईर्ष्या न होय तब पुष्टि-मार्गीय फल सिद्ध होय ॥ ११ ॥

मूलं—एवंविधं फलं नित्यं चिंतयन् चेतसा सदा ।
कुर्यादत्यादरं कृष्णसेवायामेव सर्वथा ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—पूर्व कह्यो ता प्रमाण भगवत्सेवामें नित्य (अविनाशि) फलकों चित्तसों निरंतर विचार करत प्रभुसेवामेंही आग्रहपूर्वक अति आदर करे ॥ १२ ॥ टीका—एसे पुरुषोत्तम फलात्मक तिनको चिंतन चित्तमें सदा (सर्वकाल) कियो करे तो कबहू अन्यसंबंध न होय । जो नित्यस्मरण न करे तो अन्यसंबंध होय ताकरि आसुरी बुद्धि

होयजाय। तातें उपर कहे ताही प्रकार दैन्यसों क्लेश-आतुरता संयुक्त चिंतन करे। ओर अति आदरपूर्वक भगवत्सेवा करे। लौकिकमें दिखायवेके लिये प्रतिष्ठार्थ सेवा न करे। पुष्टिमार्गीय वैष्णवको मुख्य धर्म यहीहे। दास्यभावसों फल सर्वोपर जानि सेवा करे। अति आदरपूर्वक सदा सेवा करे, (यह न विचारे जो आजु नांही सेवा करी तो काल्ह करूंगो) परन्तु नित्य नियमपूर्वक अपने देहकों अनित्य जानि देह इंद्रियको सुख सब छोडिकें भगवत्सेवा करे यह सर्वोपर सिद्धांत हे॥ १२॥

मूलं-साक्षात्परोक्षरूपत्वात्सेवा पूर्वविलक्षणा।
यथा गायंत्य इत्यत्र भावः शबलितो मतः॥१३॥

शब्दार्थः-साक्षात् परोक्षरूप हे तातें सेवा पूर्वतें विलक्षण हे अथवा संयोग-विप्रयोगात्मक जो सेवा हे सो अपूर्व विलक्षण हे, जेसें व्रजभक्तनकों प्रथम स्वरूपानंदको अनुभव भयो, पाछें श्रीठाकुरजी अंतर्हित भये तब "गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम्" यह पंचाध्यायीके तीसमे अध्यायके श्लोक ४ में निरूपण किये जो सब मिलकें श्रीठाकुरजीकोही गुणगान करतभये ओर बावरेकी नांइ एक वनतें दूसरे वनमें ढूंढिवे लगे, फिर तदात्मक होय विनकी लीला करन लागे, वामें संयोग-विप्रयोगात्मक भाव निरूपण कियोहे तेसोही भाव राखे॥ १३॥ टीका-साक्षात् ओर परोक्ष दोउ समयके स्वरूपसंवलित होय सेवा करे। प्रथम सेवासमय साक्षात्स्वरूपकी सेवा करि संयोगरसको अनुभव करे। अनोसरमें कुंजकी लीला विचारि विचारि वियोगरसस्वरूपको अनुभव करे। जेसें व्रजभक्त रासपंचाध्यायीमें अपने घरतें श्रीठाकुरजीके पास आय स्वरूपानंदको अनुभव किये। पाछें श्रीठाकुरजी अंतर्धान होय विप्रयोगरसको अनुभव करायें।

काहेतें जो प्रथम श्रीठाकुरजी स्वरूपानंदको अनुभव न करावतें तो अंतर्धानमें विप्रयोग दुःख भक्तनकों वोहोत न होतो। जेसें लौकिकमें कोई धन पावे ओर फेरी धन नष्ट होय तो दुःख वोहोत मनमें आवे। परि जाके पास जन्मतेंही मूलमें धन न होय सो दुःख काहेकों पावे ? । ता भांति गोपीजन थोरो सो अनुभव संयोगरसको कियो । पाछें अंतर्धानमें विप्रयोगरसको अनुभव कियो । ता पाछें श्रीठाकुरजी प्रकट भये तब जलस्थलक्रीडा सिद्ध भई। तेसेंही पुष्टिमार्गमें सेवा हे। वैष्णव भगवत्सेवामें साक्षात स्वरूपानंदको अनुभव करे ता समय सेवासंबंधी संयोगके कीर्तन करे। ओर जब अनोसर होय तब परोक्ष दशा जानि विप्रयोगके कीर्तन (वेणुगीत, युगलगीत, गोपिकागीत) अति आतुरतासों (गान) करे। परोक्षकी सेवा होय सो सब सिद्ध करे। या भांति संयोग–विप्रयोग विचारि सेवा करे तो आगें भाव बढे। सो प्रकार आगें श्लोकमें कहतहे ॥ १३ ॥

मूलं--तदुत्तरं यथा भावः केवलो विरहात्मकः । फलं तथैव चात्रापि फलता केवलस्य हि ॥१४॥

शब्दार्थः–पूर्वश्लोकमें जो भाव निरूपण कियो सो भाव प्राप्त भये पछिं जेसो केवल विरहात्मक भाव होय तेसोही यह पुष्टिमार्गमेंहू फल होय काहेतें जो केवल विरहात्मक भाव फलरूप हे ॥ १४ ॥ टीका– उपर कहे ता प्रकार भगवत्सेवा गुणगान करे सो संयोग–विप्रयोग दोउ भाव वेष्टित होय करे, तो ताकरि उत्तरदल जो केवल विरहात्मक भाव ताको-दान प्रभु करे, सो फल शुद्ध पुष्टिमार्गमें सर्वोपर हे. या उपरांत ओर कोइ फल नांही। जहां उत्तरदल विरहात्मकभावका दान श्रीआचार्यजी दीये, तब सर्व फलकी सिद्धि होय चुकी ।

विप्रयोगमें सगरो पदार्थ प्रभुरूपही दीसे, तब भगवत्सेवामय संयोगहूमें विप्रयोग होयें। प्रभुके दर्शनमें पलक आडि परे तो विप्रयोग होय विकल होय, प्रेमलहरीमें यह जाने जो प्रभु मोकुं छोडि कहुं गये। यह साक्षात् विरह वनांतरकी लीला स्मरण करि विकल होय, जो अब प्रभु धूपमें नागे पायन गाय चरायवे कैसें जायँगे, कोमल चरन हे। कहू द्वारिकां न चले जाय! में प्रभु विना कैसें काल विताउँगी। या प्रकार कोटान कोटि विप्रयोगकी लहरी संयोगसमय मनमें रहे। लौकिक देहसंबंधी भोग सब छूटि जाय तब जानियें जो प्रेमलक्षणा भक्तीकी प्राप्ति भई। यह मुख्य रस हे॥ १४॥

मूलं–फलाशायां फलं कृष्णवदनं हृदि चिंत्यताम्॥ फलं कृष्णः सदानंदो भक्तभावात्मकत्वतः॥१५॥

शब्दार्थः–कदाचित् फलकी आशा होय तो श्रीठाकुरजीको मुखारविंद फलरूप हे एसो विचार हृदयमें करनों। काहेतें जो सदा आनंदरूप श्री कृष्ण भक्तनके भावात्मक हे तासु फलरूप हे॥ १५॥

टीका–उपर कहे जो सेवा गुणगान शुद्धभावसों करे सो करत करत केवल विप्रयोग सिद्ध होय सो विप्रयोग सर्वोपर हे। तहां कोई पूर्वपक्ष करे जो सदा विप्रयोग दुःसही रहे तो यामें फल कहा सिद्ध भयो? कछु फलकी आशा करे के न करे? तहां सिद्धान्त कहत हे जो वह विप्रयोगही परम फल हे, कोटान कोटि सुख या विप्रयोग समान नांहीहे। सो भाव व्रजभक्तही जानतहे, ब्रह्मादिक शिवादिकनकों अगम्य हे। ओर सेवा गुणगान करे तामें कछु लौकिक वैदिक फलकी आशा तथा अपने उद्धारकी आशा राखे ताकों पुष्टिमार्गीय मुख्य फल न होय। तातें फल यही मनमें चाहे जो श्रीकृष्णचं-

द्रके वदनकमलके दर्शन कब होय ! काहेतें जो श्रीठाकुरजीके मुखारविंदरूप श्री आचार्यजी हे तातें श्री आचार्यजीके दर्शनको अभिलाषा मनमें राखे। सो भगवत्सेवामें साक्षात् मुखारविंदको दर्शन वारंवार करे यही सर्वोपर फल हृदयमें जाने। तातें श्रीकृष्णके वदनचंद्रको चिंतन वियोगमें हू करे। अनोसरमें वियोगश्रम बहुत करे। तब केवल विप्रयोग भावात्मक फल सिद्ध होय। तब श्रीकृष्णको वदनचंद्र सबठोर दिखे। तातें विरह हे सो फलरूप हे ओर श्रीकृष्ण हे सो फलात्मक व्रजभक्तनके भावात्मक परम तत्त्व हे। एसें जानि सदा स्मरण करे ॥ १५ ॥

मूलं–न तत्र ज्ञानसंबंधो यतोऽत्रापि न वै चितिः। सच्चिदानंदरूपस्तु प्रसिद्धः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–तहां ज्ञानसंबंध नांही। क्यों जो वहां चिति जो चैतन्य नाम ज्ञानही नांही हे। ओर पूर्णपुरुषोत्तमही सच्चिदानंदस्वरूप श्रुतिस्मृत्यादिकमें प्रसिद्ध हे ॥ १६ ॥ टीका–एसे रसात्मक श्रीकृष्ण एक अनन्यभक्तनके अनुभवयोग्य हे। तहां कोई कहे जो पुराणशास्त्रमें ज्ञानमार्गहू बडो कह्योहे, ताकरि प्रभुकी प्राप्ति कही हे ओर तुम भक्तिकरि प्राप्ति कहो हे, ताको कहा कारन हे? तहां सिद्धान्त कहत हे जो शुद्धाद्वैतीय ज्ञानमार्गमें ज्ञानी तेजोमय स्वरूपकी भावना करतहे, तिन ज्ञानीकों स्वरूपानंदसों संबंध कोई कालमें नांही स्वरूपानंदके चिंतन योग्य ज्ञानी नांहीहे। ज्ञानीको संबंध तो अक्षरमेंहे। सब ठोर अग्निकी नांइ व्यापक ब्रह्म हे तिनहीमें लय होतहे। उनकों भक्तिरसकी प्राप्ति कबहू नांहीहे। तातें शुद्धाद्वैतीय ज्ञानीके आगेंहू या स्वरूपको भाव न कहेनो। श्रीकृष्ण हे सो सच्चिदानंदस्वरूप रसात्मक हे, जीवमें सत् ओर चित् दोय धर्म हे, आनंदको

तिरोधान हे ओर श्रीठाकुरजी परमानंदरूप हे। श्रीभगवत-गीतामें कहेहें जो श्रीकृष्ण पूर्णपुरुषोत्तम हे। सो वेदशास्त्रमें सब ठोर प्रसिद्ध हे तातें एक श्रीकृष्णहीकों सबतें पर पूर्णपुरुषोत्तम जाननों। ब्रह्मादिक शिवादिकनकों मर्यादा भगवद्भक्त जाननें। स्वतंत्र एक श्रीकृष्णहीकों जाननों ॥ १६ ॥

मूलं--पूर्वावस्थाफलं कृष्णः केवलश्चोत्तरो मतः।
तस्यैवाऽऽस्यं कृपापूर्णःप्रभुःश्रीवल्लभाभिधः॥१७॥

शब्दार्थः–पूर्वावस्था (संयोगात्मक पूर्वदल) के फलरूप श्रीकृष्ण हे ओर (विप्रयोगात्मक) उत्तरदल केवल फलरूप हे। [साधन ओर फल दोउ एक श्रीकृष्णही हे]। विनकेंही मुखारविंद कृपापूर्ण श्रीवल्लभप्रभु हे ॥ १७ ॥ टीका–अब कोई कहे जो तुम श्रीठाकुरजीकी सेवा करिकें कछु फलहूकी वासना मनमें नांही राखतहो सो काहेतें? वेदमें जितनी क्रिया कही ताको फलहू कहेहे जो कछु फल न होय तो क्रिया व्यर्थ कहियें यह वेदशास्त्रकी मर्यादा हे, यह संदेह होय तहां कहतहे जो जा जीवकों श्रीआचार्यजीद्वारा ब्रह्मसंबंध भयो ओर वह जीव (वेष्णव) पुष्टिमार्गकी रीतिसों भगवत्सेवा करन लाग्यो तब वह सेवा करतमें साधनहू श्रीकृष्ण ओर सेवा सिद्ध भये पाछें फलहू श्रीकृष्णही हे। तातें या पुष्टिमार्गमें साधनहीमें फलकी प्राप्ति भई ओर वेदमर्यादामें क्रिया साधनरूप न्यारी हे ओर फल न्यारो हे, फल भयो तब मर्यादाकी क्रिया नाश भई। ओर पुष्टिमार्गमें साधनहूमें श्रीकृष्णसेवा ओर फलहूमें श्रीकृष्णसेवा हे। सो श्रीकृष्ण कब प्राप्त होय? जब श्रीठाकुरजीके मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकी पूर्ण कृपा होय तब यह जीव, शरण आवे पुष्टिमार्गमें भगवत्सेवामें रुचि होय, श्रीआचार्यजीकी कृपा विना पुष्टिमार्गमें जीव कबहू शरण न आवे ओर पुष्टिमार्गमें प्रवेश कबहू न होय यह

सिद्धांत निश्चय जाननों । सो श्रीआचार्यजीकी कृपा कोंन प्रकारसों होय सो आगे श्लोकमें कहतहे ॥ १७ ॥

मूलं-तदाश्रयः सदा कार्यो मनोवाक्कायवृत्तिभिः ।
स्वकीयता तदीयेषु तद्भिन्ने भिन्नता मता ॥१८॥

शब्दार्थः-मन वाणी ओर कायाकी वृत्तिकरिकें विनको आश्रय सदा कर्त्तव्य हे ओर जो तदीय [भगवदीय] हे वामे अपनेपणांको ममत्व तथा जो विनकी शरण नहीं आयेहे वामें भेदबुद्धि राखे ॥१८॥
टीका-अब श्रीआचार्यजी कृपा करे सो उपाय कहतहे जो मन वचन कर्म करिकें एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करे तब श्रीआचार्यजी अनन्यसेवकको भाव देखिकें प्रसन्न होय ओर श्रीआचार्यजीको आश्रय हृदयमें दृढ न होय तो कोटानकोटि साधन कीयो करे परि रंचकहू फलसिद्धि न होय, अन्यसंबंधतें नाश होय जाय । सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें एक श्लोक कहेहें " अन्य संबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते " (अन्यसंबंधको गंधहू कंधरा [गरदन] कूं ही बाध करेहे) अन्यसंबंध होय तो माथोही कटे । जैसें संभरवारे दामोदरदासकी वार्तामें प्रसिद्ध हे जो स्त्रीनें अन्याश्रय कीयो तो पुत्र म्लेच्छ भयो । अन्यसंबंध भक्तिमार्गमें महाबाधक हे । ओर जो श्रीआचार्यजीको दृढ आश्रय होय ओर साधन थोरो बनि आवे तोहू सकल कार्य सिद्ध होय । आश्रय दृढ यह वैष्णवको परम धर्म हे । श्रीआचार्यजीको दृढ आश्रय भयो कब जानियें जब श्रीआचार्यजीके तदीय अनन्यभक्त चोरासीवैष्णव अष्टसखा आदे जो जिनके हृदयमें श्रीआचार्यजीको आश्रय दृढ सिद्ध भयोहे जिनकूं श्रीआचार्यजी प्रसन्न होय अपनो अनुभव करावत हे, मन कर्म वचन करि एक श्रीआचार्यजीकोंही जानतहे ऐसे

भगवदीयको सत्संग करे । ओर एसे भगवदीयमें यह भाव राखे जो इनको श्रीआचार्यजी कृपा करिकें दान दीयेहें सो अहर्निश इनके हृदयमें श्रीआचार्यजी विराजतहे । तातें श्रीआचार्यजीमें ओर भगवदीयमें कछु भिन्नता नांहिहे । जेसें अग्निके पुंजमेंतें चिनगारी उडतहे सोहू अग्निरूप हे तेसें भगवदीयहू भगवद्रूप हे । तातें एसें भगवदीयमें ओर श्रीआचार्यजीमें भिन्नबुद्धि राखे तो उह जीवकों पुष्टिमार्गको फल कबहू न होय, श्रीआचार्यजी प्रसन्न न होय । जेसें रामानंदने अपनी स्त्रीसों कही जो ' वेगी गोबर सकेली नातर वैष्णव उठाय ले जायँगे ' यह सुनत ही श्रीआचार्यजी क्रोध करि त्याग कीयो कितनेक जन्मको अंतराय भयो । तातें भगवदीयमें ओर श्रीआचार्यजीमें भेदबुद्धि न राखे ॥ १८ ॥

मूलं–तदीयेषु च तद्बुद्ध्या भरः स्थाप्यो विशेषतः । यथा दूतीषु भवति विषयिणां मतिस्तथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थः–जेसो भाव श्रीआचार्यजीमें तासूं विशेष भाव भगवदीयमें राखे, जेसें कामीपुरुष हे तिनकी बुद्धि दूतीके विषे रहतहे तेसें भगवदीयमें बुद्धि राखे अर्थात् कामी पुरुष परस्त्रीतेंहू जा दूती द्वारा वह प्राप्त होय ताको सन्मान बोहोत करे तेसें भगवदीयको सन्मान विशेष आदरपूर्वक करे ॥ १९ ॥ टीका–तदीयमें लौकिक बुद्धि न राखे, यह जाने जो तदीय प्रसन्न होयँगे तब श्रीआचार्यजी प्रसन्न होय दान करेंगे । सो लौकिक दृष्टांतसों कहतहे–जेसें कामी पुरुष होय सो दूतीद्वारा परस्त्रीकों बुलावे सो काम तो परस्त्रिसों वाको सिद्ध होय परंतु बीचमें दूती प्रसन्न होयके करे तो काम सिद्ध होय नातर नांहि सिद्ध होय तातें जेसें दूती प्रसन्न रहे सोही कामी पुरुष करतहे । तातें जो दूती कार्यकों सिद्ध करतहे तापरहू अधिक स्नेह

होतहै तेसेंही जीव जब भगवानसों मिले तबही यह जीवको का-सिद्ध होय परंतु भगवानहू भगवदीयके संग विना न मिले. भगवदीय-द्वारा भगवान् प्रसन्न होतहैं तातें भगवदीयमें ओर भगवानमें समा-न बुद्धि स्थापन करे ॥ १९ ॥

मूलं—धनं गृहं यथा कृष्णे तथा भक्तिस्थितेऽपि च।
विनियोक्तव्यमेवं हि प्रभोर्भावो भविष्यति ॥२०॥

शब्दार्थः—धनगृहादिक जेसें श्रीठाकुरजीमें विनियोग करे तेसेंही भक्तमेंहू विनियोग करे काहेतें जो एसें प्रभुकी प्रसन्नता होय ॥ २० ॥ टीका—भगवदीयमें भाव भयो कब जानियें? जेसें धनगृहादिक श्रीकृष्णकों समर्पतहैं भावसहित भगवत्सेवा करतहै तेसेंही भावसहित भगवदीयकी सेवा करियें धनगृहादिक मन वचन कर्मसों स्नेहसंयुत भगवदीयमें विनियोग करियें तो भगवान् प्रसन्न होय ॥ २० ॥

मूलं—तदीयाश्चेत्स्वतस्तुष्टास्तुष्टः कृष्णो न संशयः।
तदीयास्तु निजाचार्यचरणैकपरायणाः ॥ २१ ॥
अनन्यभजनास्तुष्टाः कामलोभविवर्जिताः।
निरपेक्षा विरक्ताश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ २२ ॥
निर्मत्सराः कृष्णसेवाकथादिविहितादराः।
एवंविधास्तदीयाश्चेत्संगादपि विशेषतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—भगवदीय आपतें प्रसन्न होय तब प्रभु प्रसन्न भये यामें संशय नांही। अब भगवदीयके लक्षण कहतहै—श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय जिनकूं दृढ होय ॥ २१ ॥ अनन्यभक्ति करवेवारे [अन्याश्रयरहित], संतोषवारे, काम लोभतें वर्जित, निरपेक्ष [जाकूं काहूकी अभिलाषा नांही], विरक्त [भगवच्चरणारविं-

विना ओर सर्वतें आसक्तिरहित], सर्व प्राणिमात्रके हितमें प्रीति वारे ॥ २२ ॥ ईर्ष्यारहित, प्रभुकी सेवाकथादिकमें आदर करिवेवारे एसें भगवदीय मिले तो विनके संगतेहू विशेष फल हे ॥ २३ ॥ टीका–अब उपर कहे भावपूर्वक धन गृह श्रीकृष्णकों समर्पे तेसेंही भावसहित भगवदीयकूं समर्पे । तहां कोई कहे जो भगवानकी सेवा तो आवश्यक हे सो करि चाहियें ओर भगवदीयकी सेवा कीयेतें कहा होत हे ? तहां सिद्धान्त कहत हे जो भगवदीयकों सेवा करि प्रसन्न करियें तव भगवदीय संतुष्ट होय जव भगवदीय संतुष्ट न होय तव भगवानहू संतुष्ट न होय । एसें जानि भगवदीयको सर्वप्रकार संतुष्ट करनें ताकरिकें निश्चय भगवान् संतुष्ट होयँगे । तहां कोई कहे जो वैष्णव जानिके आपतें वने सो सेवा करियें ओर वैष्णव कठिन आज्ञा करे सो आपतें न वने तव वैष्णव संतुष्ट न होय तो कहा करे ? या भांति कोई कहे तहां सिद्धांत कहत हे–जेसें राजाके वालककी सेवा करियें सो वह वालककूं ज्ञान न होय वह अनेक वार्त्ता कहे सो आपतें न वने तातें वह वालक प्रसन्न न होय परि राजा तो अपने मनमें जाने हे जो याने मेरे वालककी सेवा बोहोत करी हे याहीसों वनी तितनी करी हे यह जानिकें राजा तो प्रसन्नही होय । एसें जानिकें अपन शुद्धभावसें वने तितनी वैष्णवकी सेवा करियें तोहू वैष्णव प्रसन्न न होय तो कछु चिंता नांही भगवान् प्रसन्नही होयँगे । अब वैष्णव कितने प्रकारके हे सो कहतहे जो एसे वैष्णव होय तिनकी सेवा करे (१) एक श्रीआचार्यजीके चरणारविंदकी भक्तिमें परायण होय, अहर्निश यह लोक परलोकमें श्री आचार्यजीके शरणकी कामना होय, एसे भगवदीयकी सेवा करे सत्संग करे तो जीवहूकी अनन्यता श्रीआचार्यजीमें होय ॥ २१ ॥ (२) श्रीठाकुरजीकी सेवाही करि संतुष्ट रहे ओर

देवतांतरको भजन स्वप्नहूमें नांही जानतहे, तब श्रीठाकुरजी कृपा करें प्रसन्न होय। (३) काहू वस्तुकी कामना नांहीहे तीन्योलोकपर्यंत ब्रह्मानंद मोक्षपर्यंत तुच्छ जानें। (४) लौकिक काम क्रोध मद मत्सरता विषयवासनाकी गंध जामें न होय ओर लोभ न होय, जो सगरो धर्म द्रव्यके लिये वेंचे काहेतें जो यह कलियुगमें द्रव्यकरि सकल लौकिक कार्य सिद्ध होतहे सो द्रव्यमें जाकों रंचकहू लोभ न होय सो भगवदीय जानियें। (५) निरपेक्षभावसों भगवत्सेवा करे. कछु लौकिक वैदिक कामना मनमें न राखे, काहू राजा द्रव्यवारेकी अपेक्षा मनमें न राखे (६) मनकरि विरक्त रहे. स्त्रीपुत्र कुटुंब गृह देहसंबंधि सगरे जगतमें दृढ वैराग्य जानें। काहूसों अपने स्वार्थके लिये कछु याचना करे नांही, यह जाने जो श्रीकृष्णही सर्व कार्य सिद्ध करेंगे मेरो धर्म तो भगवत्सेवाही करिवेको हे। (७) सर्वभूतप्राणिमात्रमें हित राखे, काहूको बूरो सर्वथा न विचारे, मन वचन कर्म करि सबको हितही करे। [एसे भगवदीयको संग अवश्यही कर्तव्य हे तिनकी सेवा स्नेहपूर्वक करे]॥ २२ ॥ (८) मत्सर (जो ओरको उत्कर्ष देखि न शके सो) न करे, अपनेतें ओर वैष्णव थोरो भगवद्धर्म करत होय तोहू वाकी वडाई करे, धन्यवाद दे योग्यता न जाने जो में बोहोत धर्म करतहों, यह जानें जो मेरेमें तो भगवद्धर्म रंचहू नांहीहे या भांति दीनता राखे। (९) श्रीकृष्णकी सेवा आदरपूर्वक करे, श्रीकृष्णकी कथाहू आदरपूर्वक सुने काहेतें जो भगवत्सेवा कीयेतें सर्व इंद्रिय भगवत्परायण होय ओर श्रीकृष्णकी कथा सुनेतें भगवत्सेवामें रुचि उपजे (तातें भगवत्कथाहू अति आदरपूर्वक सुननी भगवत्सेवाहू करनी) या भांति उपर कहि आये एसे नवगुणसूं परिपूर्ण भगवदीय होय तिनको संग अवश्य नियमपूर्वक करे या भांति शुद्ध मनसों उत्तम भगवदीयको संग करे, उनकी सेवा करे, भगवदीय कहे तापें मनमें विश्वास राखिकें

स्नेहपूर्वक सब करे या प्रकार वैष्णव रहे तो श्रीआचार्यजी प्रसन्न होय आनंद दान करे ॥ २३ ॥

मूलं–सर्वथा शुद्धभावानां स्वीकृतानां कृपालुना। सर्वं श्रीवल्लभाचार्यप्रसादेन भविष्यति ॥ २४ ॥

शब्दार्थः–दयालु श्रीठाकुरजी, श्रीमदाचार्यजी ओर भगवदीयनें अपने कीयेहे एसें शुद्ध भाववारेनको श्रीमदाचार्यजीके प्रसादतें सर्व कार्यहू सिद्ध होयँगे ॥ २४ ॥ टीका–उपर जितनो प्रकार कहे सो सब शुद्ध भावसों करे, श्रीकृष्णकी कथाको श्रवणहू शुद्ध भावसों करे, भगवत्सेवाहू शुद्ध भावसों करे, गुरुसेवाहू शुद्ध भावसों करे, वैष्णवकी सेवाहू शुद्ध भावसों करे, सगरी भगवल्लीलामें शुद्ध भाव राखे, सर्व भगवत्सामग्रीमें शुद्ध भाव राखे, तब भगवदीय प्रसन्न होय कृपा करे तो प्रभु हू कृपा करे। तहां कोई कहे जो इतने धर्म महाकठिन हे, यह कलियुगमें जीवसों केसें बनि आवे, जीवमें तो एक हू धर्म महाकठिनतासों सिद्ध होत हे। या भांति संदेह करे तहां सिद्धांत कहतहे जो श्रीवल्लभाचार्यजी यह कलियुगके जीवनपें कृपा करिवेके लिये प्रकटे हे ओर यह पुष्टिमार्ग सर्वोपर प्रकट कीयोहे, सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें धर्म एक क्षणमें आवेंगे। जीवकों तो सबही कठिन हे क्यों जो जीव स्वभाव-करि दुष्ट हे ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कृपा करे तिनकों सब सुगम हे। तातें मनमें एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय दृढ राखे। सर्व कार्य आश्रयहीतें निश्चय सिद्ध होयगो, निश्चय पुष्टिमार्गमें फल हे सो श्रीमहाप्रभुजी दान करेंगे ॥ २४ ॥

या प्रकार प्रथम शिक्षापत्रमें अंगीकृत जीवनकी कर्त्तव्यता निरूपण करी, एसे प्रथम शिक्षापत्रको भाव यथाबुद्धि कहे।

इति श्रीहरिरायजीकृतं प्रथमशिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं संपूर्णम् ॥ १ ॥

बडे शिक्षापत्र २.

अब द्वितीय शिक्षापत्रमें श्रीहरिरायजी निरोधकी सिद्धिको प्रकार निरूपण करतहे–उपर कहे ता रीतिसों प्रथम शिक्षापत्रको भाव हृदयमें धारण करे तो वा जीवके उपर श्रीआचार्यजी महाप्रभु निश्चय कृपा करे। पुष्टिमार्गमें रसरूप फलात्मक श्रीकृष्ण हे वाकों दान करे सो यह दूसरे शिक्षापत्रमें कहतहें तब श्रीकृष्णको स्वरूप हृदयारूढ होय जेसे स्वरूपको अनुभव होय–

मूलं–यशोदोत्संगललितः कचग्रथितवेणिकः।
मुक्ताफललसद्भालचलत्कुटिलकुंतलः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–अठारे श्लोक पर्यंत स्वरूपकोही वर्णन हे । श्रीयशोदाजीके उत्संग (गोद) में शोभित हे, केश वेणीरूप गूंथे हे, मुक्ताफल सों सुशोभित भाल हे, चलायमान कुटिल (वक्र) केश हे ॥ १ ॥

टीका–श्रीयशोदोत्संगललित यह केवल भावात्मक स्वरूप हे। वसुदेव-

जीके वहां जो मथुरामें प्रकटेहे सो केवल रसात्मक नांहीहे सो अनेक कार्यार्थ भूमिभारहरणार्थ मोक्षदानार्थ प्रकटेहे। ओर श्रीयशोदाजीके वहां जो स्वरूप प्रकटेहे सो केवल व्रजभक्तनकों आनंददानार्थ हे सो श्रीयशोदोत्संगलालित जो रसात्मक सोही यह श्रीआचार्यजीके पुष्टिमार्गमें सेवनीय हे। ताहूमें दोय प्रकार हे कल्पकल्पमें द्वापरयुग आवनेहे तब श्रीनंदयशोदा प्रकटतहे तब श्रीठाकुरजीहू प्रकट होतहे सो यशोदोत्संगलालित पुष्टिमार्गमें सेव्य नांहीहे। कल्पकल्पमें कबहू अंशावतार होतहे ओर सारस्वत कल्पमें जो स्वयं प्रभु (आप) पधारेहें सो वेदकी ऋचाकों वरदान दीयेहें सो सारस्वत कल्पके यशोदोत्संगलालित यह पुष्टिमार्गमें सेव्य हे सो श्रीगुसाँईजीके वचन हे "जानीत परमं तत्त्वं यशोदोत्संगलालितम्। तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः" (श्रीयशोदोत्संगलालित (श्रीकृष्ण) कूं परमतत्त्व जाननें.) श्री यशोदोत्संगलालित विना ओरकूं जाने ताकों आसुर जानियें। सर्वलीला सर्व वस्तुके कारणरूप यशोदोत्संगलालित हे तिनकों श्रीयशोदाजी अति स्नेहसों उत्संगमें लीयेहे लालन पालन करतहे परम आनंदमें मग्न हे, श्रीगुसाँईजी "मंगलमिह श्रीनंदयशोदानामसुकीर्त्तनमेतद्रुचिरोत्संगसुलालितपालितरूपम्" एसें मंगलमंगलग्रंथमें कहेहें ता रीतिसों यशोदाजी सो मंगलरूपकों पायकें गोदमें ले आपहू मंगलरूप भई एसे स्वरूपको ध्यान करतहे। श्रीयशोदाजी उत्संगमें पुत्रकों लेयकें सुंदर घुघरवारे वारहे तिनकों सवारिकें वेणी गूहतहे। अथवा श्रीयशोदाजी अपनी गोदमें प्रभुकों लेयकें अनेक मेवा मिठाई आरोगावतहे, अनेक खिलोंनानसों खिलावतहे, कुमारिका जो घरमें भक्त हे सो वेणी गूहतहे अथवा श्रुतिरूपा श्रीचंद्रावलीजी पधारि बालभावसों गूहतहे, अथवा मुख्य स्वामिनीजी श्रीवृषभानुजा पधा-

रिकें वालभावसों गूहतहे, अथवा श्रीठाकुरजीके वालभावको हठ हे तासूं श्रीयशोदाजी वृषभानुकुमारिकाकों अपने पास बेठाय दोउ स्वरूपकी वेणी गूहतहे। या भांति अनेक भाव हे (सो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें अनुभव होय)। या भांति वेणी सवारिकें सुंदर भालपर मोतीकी लर शोभा देतहे सो मानो नीलकमलके उपर बराबरी जलकी बूंद आय रही हे, तथा श्याम चंद्रमाके उपर तारागणकी पंक्ति आय रही हे, शीतल मंद सुगंध वायुतें कुंतल जो अलक चलायमान हे सो परम अद्भुत शोभा देतहें, मानो मुखकमलके मकरंदवश होय अलि जो भ्रमरके छोटे पुत्रकी पंक्तिकी पंक्ति आय पान करतहे, तथा मुखचंद्रमापर अलक सो सर्पके बच्चा आयेहे, या भांति शिखातें नखपर्यंत सिंगारको भावसहित हृदयमें विचारे ॥ १ ॥

मूलं-मुक्ताफलावलीभालप्रांतकर्णविभूषितः ।
कस्तूरिकातिलकयुग्भालभूषातिसुंदरः ॥ २ ॥

शब्दार्थः—मोतिनकी मालासों भाल मध्यतें कर्णताँइ सुशोभित हे कस्तूरीके तिलकयुक्त भालके भूषणकी शोभा सो अति सुंदर हे ॥ २ ॥

टीका—मुक्ताफलकी लर भालसें दोउ कर्णताँई वंदी धरेहें सो मानों श्याम मेघमें दोउ वककी पंक्ति परम शोभा देतहें, सुंदर कस्तूरीको तिलक भालपर विराजितहे, शृंगाररसात्मक श्रीठाकुरजीके भालपर स्वतःसिद्ध सर्वकालमें कस्तूरीको तिलक हे तातें श्रीचंद्रावलीजी आप अपने भावसंबंधी श्रीठाकुरजीकों कीयोहे कस्तूरीको तिलक ओर मुख्य श्रीस्वामिनीजी अपने भावरूप सुवर्णको भूषण भालपर धरायेहे। या भांति सगरे आभूषण भावात्मक हे ॥ २ ॥

मूलं—काश्मीररागविलसत्कपोलद्वयचित्रितः ।
स्फुरच्छ्रुतियुगप्राप्तकुंडलद्युतिमंडितः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—केसरके रंगसों दोउ कपोल चित्रित हे ओर चलकित जो (दोउ कर्णमें) कुंडल हे ताकी कांतिसों मंडित हे ॥ ३ ॥ टीका—काश्मीर जो केसर कुमकुमादि—अंगरागसों कपोल चित्रित हे सो दोउ कपोलमें कमलपत्र परम शोभायमान हे, यह कमलपत्र श्रीस्वामिनीजीके मनोरथको हे काहेतें जो कमलपत्र जब ब्याह होतहे तबही धरतहे। सो श्रीस्वामिनीजी अपनो मनोरथ करतहे अपने श्रीअंगके वर्णरूप केसरसों कमलपत्र दोउ कपोलमें सवारि यह जताये जो हमहीतें ब्याह होयगो। अथवा श्रीयशोदाजी श्रीठाकुरजीको श्रीस्वामिनीजीकी गोदमें पधराय आपु गृहकार्य करतहे तब श्रीस्वामिनीजी एकांत ठोरमें पधरायके श्रीठाकुरजीसों प्रार्थना करतहे जो हमारो चिरकालको विरह तुम दूरी करो तब श्रीठाकुरजी किशोर वयको अंगीकार करि श्रीस्वामिनीजीके सगरे मनोरथ पूर्ण करतहे तब श्रीस्वामिनीजी दोउ कपोलपर कमलपत्र अपने हस्तसों सवारिकें ब्याहको मनोरथ पूर्ण करतहे जो नित्य याही भांति हमकों सुख दीयो करो 'दिनदूल्हे मेरो कुंवर कन्हैया' या पदके अनुसार अनेक लीला गोप्य करि पाछें श्रीठाकुरजीकों गोदमें लेय श्रीस्वामिनीजी श्रीयशोदाजी पास आयकें कहतहे जो यह तुम्हारो पुत्र अतिचंचल केसेंहू रहत नांही सो क्योंहू क्योंहू राखेहें एक ठोर तो याहीको मन लागत नांही तातें खिलाय ल्यायेहें। तब श्रीयशोदाजी श्रीस्वामिनीजी उपर प्रसन्न होय श्रीठाकुरजीको अपने उत्संगमें लेत हे, विधनांसों अंजल पसारी यह प्रार्थना करत हे जो वृषभानुकुमारीतें मेरे पुत्रको ब्याह होउ यही में मांगतीहों। पाछें मेवामिठाईसों श्रीस्वामिनीजीकी गोद भरी देतहे। याभांति श्रीठाकुरजीके कपोल चित्रित हे ओर दोउ श्रुति जो कर्ण तामें कुंडल शोभायमान हे सो कुंडल अति चंचल हे सो कबहू मकराकृति कुंडल धरतहे, कबहू मयूराकृति कुंडल धरतहे, तामें मकरा-

कृतिमें स्वकीय भक्तके मनोरथ ओर मयूराकृतिमें परकीय सामे भक्त ठाडेहे तिनकी कांति गंडस्थलपर झलकतहे सो कोटिकंदर्पनकी छबीको हरतहे, नीलमणिकी कांति लज्जावतहे ॥ ३ ॥

मूलं–चिबुकांतलसद्वज्रभूषः सांजनलोचनः ।
नयनप्रांतविलसन्मषीबिंदुसुशोभनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–चिबुकके मध्यमें शोभित हीराको भूषण हे अंजनयुक्त नेत्र हे ओर नेत्रप्रांतके पास शोभित मषीके बिंदुतें सुशोभित हे ॥४॥
टीका–सुंदर चिबुकपर हीराको भूषण सोहतसे सो परम उज्वल श्रीचंद्रावलीजीको भाव हे ताकों मधुराष्टककी टीकामें विस्तारसों वर्णन हे जो श्रीस्वामिनीजी अधरामृतको पान करत रसके आधिक्यतें मुखकमलतें अधररस स्रवतहे सो चिबुकपर आवतहे सो श्रीचंद्रावलीजी आस्वादन करतहे, या भावतें चिबुकभूषण विराजतहे । नयनकमलमें अंजन शृंगाररससोंही होतहे सो नयनके कटाक्ष दशदिशाके भक्तनके उपर परतहे ताकरि व्रजभक्त मोहित होयके अपनो गृहकार्य भूलीजातहे । काहेतें जो नेत्र अति कुटिल हे अति चपल हे अति अरुण घूर्णायमान हे, अनेकभावसों भरेहें, सो श्रीगुसाँईजी ललितत्रिभंगग्रंथमें वर्णन कीयेहे दशदिशाके भक्तनकों नेत्रही द्वारा रसपान करावतहे । ओर श्रीयशोदाजी मषीबिंदुका भ्रुवपर दीयेहे जो मेरे पुत्रकों काहूकी दृष्टि न लगे ता मषीबिंदुका परम सोहतहे, सबके मनकों हरतहे ॥ ४ ॥

मूलं–लालामिषाधररसस्रावणज्ञानबोधकः ।
बाल्यभावातिसुलभरसबोधनतत्परः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–लारके मिषतें अधररसको जो श्रवण करनों ताकरि ज्ञान करिवेवारे ओर बाल्यभावतें अति सुलभरसकों जतायवेमें तत्पर हे॥५॥

टीका–आरक्त अधरतें रस स्रवतहे सो श्रीयशोदाजी यह जानतहे जो बालकके लार स्रवतहे सो श्रीयशोदाजी मुखचुंबन करतहे तब बाललीलाके अधररसको आस्वाद होतहे। काहेतें जो पुष्टिलीलामें अधररसपान विना अंगीकार न होय ओर श्रीठाकुरजी तो नित्य लीलामें सबकों अंगीकार करावनके लिये पधारेहें तब श्रीयशोदाजीकों वृद्धगोपीजनकों तथा श्रीनंदरायजीकों अधरामृत केसें प्राप्त होय ? तातें बालभावतें लार झरतहे। सखानकों ग्वालमंडलीमें जुंठो खवावतहे, व्रजभक्तनकों क्षण क्षणमें अधरामृतकरि जीवन हे। वेणु द्वारा अधररसतें पशुपक्षी सबनकी शुद्धि ठिकाने रहतहे अन्यसंबंध नांही होतहे। बाल्यभावमें श्रीस्वामिनीजीको अधरामृत पान बोहोत सुलभ हे, काहेतें जो श्रीयशोदाजीसों कहिके श्रीठाकुरजीकों पधरायके लेजातहे जो तुह्मारे पुत्रकों खिलाय लावें तब सब कोई यह जानत हे जो बालककों खिलावन लेजातहे काहूकों विषम बुद्धि नांही होतहे। एकांतमें लेजाय गुप्तरसकी रीतसों प्रार्थना करतहे सो श्रीठाकुरजी तो सदा रसदानमें तत्पर हे यातें सकल भक्तनके मनोरथ सिद्ध करतहे ॥५॥

मूलं–मुखांबुजनिजांगुष्ठप्रवेशनपरायणः।
भक्तिप्रविष्टस्य गतिक्रियाशक्तिविबोधकः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–अपने मुखारविंदमें अपने अंगुष्ठ प्रवेश करतहे। भक्तिमें प्रविष्ट एसे जीवकी गति ओर क्रियाशक्तिकों जतावतहे ॥ ६ ॥ टीका-श्रीठाकुरजी सुंदर पालनेमें पोढेहे अपने अंगुष्ठकों वारंवार मुखमें प्रवेश करतहे चरणकमलके अंगुष्ठ दोउ श्रीहस्तसों पकरिकें अपने मुखमें प्रवेश करतहे ताकरि यह जतावतहे जो चरणारविंदमें कोटानकोटि भक्तनके मन लागे रहेहे तिन भक्तनके मनमें यह ताप अनेक कालसों रहतहे जो हमकों अधरामृतको पान कबहू न भयो वह रस

कौन भांतिकोहे सो भक्तनकी आर्ति प्रभु सही नांही सकत तात
बालभावसों कोई जाने नांही याभांति चरणारविंदके भक्तनकों अध-
रामृत रसको पान करावतहे, अथवा प्रभु यह विचार करतहे जो मेर
चरणारविंदमें एसो कहा रस हे जो सगरे भक्त चरणारविंदकों पूजतह
ध्यान धरतहें सो रस में हू तो देखों सो बालभावसों आपहू चरणारविंद-
के रसको आस्वादन करतहे। ओर व्रजभक्तन चारों ओर वेष्टित होय
रहेहें तिनकों प्रभु नेत्रनके कटाक्षसों आगतस्वागत करतहे ओर रस-
संकेत जतावतहे। अथवा कबहू श्रीहस्तको अंगुष्ठ मुखमें मेलतह
ताकरि अंतर्गृहगता देह छोडि श्रीठाकुरजीके पास आई हे तिनक
आप श्रीहस्तसों पकरि अपने श्रीमुखारविंदमें धारण करतहे सो कबहू
एकांतमें उन भक्तनकों बाहिर निकासि रमण करि पाछे फेरि मुखार-
विंदमें धरि लेतहे। लोगनके दिखायवेमें बालक अंगुष्ठ चूसतहे।
श्रीस्वामिनीजी आदिकों अनेक रमण बंधादिक क्रियाको बोधन
करतहे। या भांति श्रीठाकुरजी जाको जेसो अधिकार हे ताकूं तेसोहि
रसपान करावतहे ॥ ६ ॥

मूलं–ग्रीवालग्नलसन्मुक्ताफलमालाविभूषणः।
तदुत्तरलसत्स्वर्णमणिमालातिमोहनः ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–कंठमें लग्न शोभित मोतिनकी माला करिकें भूषित ह
ओर ताकी उपर सुवर्णके मणिकाकी माला हे तातें अति मोह उपजा-
वत हे ॥ ७ ॥ टीका–ग्रीवासों लगी मोतिनकी माला (कंठश्री)
परम शोभा देतहे। ताहीके पास सुवर्णके मणिका ओर मणिमाला
ग्रंथन करी श्रीकंठमें धारण कीयेहे ताकरि अपने भक्तनकों यह
जताये जो में तुमकों अहर्निश कंठमें राखतहों। मुक्ताकी माला
सुवर्ण तथा मणिमय अनेक भक्तनके भावात्मक हे तातें प्रभु प्रेमत
धारण कीयेहे ॥ ७ ॥

मूलं—उरःस्थलल्लसत्स्वच्छवक्रवैयाघ्रभूषणः।
मुक्ताफलस्वर्णमालायुततुंदिलितोदरः॥ ८॥

शब्दार्थः—हृदयमें शोभायमान स्वच्छ ओर वांके नाहारके नखके भूषणवारे ओर मुक्ताफलमाला ओर सुवर्णमालासहित दोंदयुक्त उदरवारे हे॥ ८॥ टीका—उरःस्थलके उपर केहरिको नख (वघनखा) परम शोभा देतहे सो श्रीयशोदाजी तो अपने पुत्रकी रक्षार्थ धरायेहे ओर व्रजभक्तनकों अनेक लीला सूचन करावतहे। नखदान रासादि लीला विहारमें होतहे सो वघनखा टेडोहे ताको अभिप्राय यह जो कितनेक भक्तनको हृदय टेडोहे तिनकों अपने वस करनोहे, सो वघनखा टेडो अपने हृदयमें धरि यह जताये जो मेंहू त्रिभंगी टेडो हूं। या भांति भक्तनके मन सुधेकरि अपने हृदयमें भक्तनकों राखेंहें। तथा अनेक भक्तनके घर श्रीठाकुरजी पधारत हे तब वहां द्वार उपर रखवारी चाहियें तब नखते लीलासंबंधी आधिदैविक नृसिंहजी प्रकट करी द्वार उपर रखवारी राखि भक्तनके संग निर्भयतासों लीलाविहार करतहे। तातें पोरीपर सिंह हे सो पुष्टिलीला संबंधी हे ताहीतें श्रीठाकुरजी नखभूषण हृदयमें धारण कीयेहें। या भांति सगरे आभूषण व्रजभक्तनके लीलासंबंधी अनुकूल हें तातें श्रीठाकुरजी प्रेमसों पास राखतहे। जो व्रजभक्तनकी लीलासों प्रतिकूल होय ताको तत्काल श्रीठाकुरजी त्याग करतहे। तातें पुष्टिमार्गमें अंगीकार व्रजभक्तनकी कृपातें होय ओर उपाय कोउ नांही, या भावसों वाघनख प्रभु धरेहे ता नखभूषणके पास मुक्ताफल ओर सुवर्णके मणिकायुक्त गुंथी एसी सुंदरमाला उपर विराजमान हे सो सुवर्णमणिका श्रीस्वामिनीजीको भाव तथा मुक्ताफल श्रीचंद्रावलीजीके भावसों श्रीठाकुरजी अपने हृदयमें धारण कीयेहें॥ ८॥

मूलं–बाहुमध्यलसद्रत्नजटितांगदसुंदरः ।
पटगुच्छलसत्स्वल्पकरकंकणभूषणः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–दोउ भुजाके मध्य रत्नजडित बाजुबंधसूं सुंदर हे पटगुच्छ (रेशमी फोंदना) सहित शोभायमान छोटे श्रीहस्तके विषे कंकणको आभरण हे ॥ ९ ॥ टीका–सुंदर बाहुमें बाजुबंध रत्नजटित हे सो नवरत्नयुक्त जडाव दोउ भुजामें शोभा देतहे सो वामभुजामें श्रीस्वामिनीजीको भावात्मक तथा दक्षिणभुजामें श्रीचंद्रावलीजीको भावात्मक हे। ओर पाटके गुच्छामें परोये एसे छोटे हलुके दोउ करमें कंकण परम शोभा देतहे ॥ ९ ॥

मूलं–दशांगुलिलसद्रत्नजटितोत्तममुद्रिकः ।
किंकिणीपटगुच्छातिविराजितकटिस्थलः॥ १०॥

शब्दार्थः–दश अंगुलियनमें विराजित रत्नजटित उत्तम मुद्रिका धरी हे ओर किंकिणी (क्षुद्रघंटिका) युक्त पाटगुच्छतें कटिस्थल अति शोभायमान हे॥ १०॥ टीका–दोउ श्रीहस्तकी दश अंगुरीमें रत्नजटित जडाव परम उत्तम मुद्रिका शोभित हे । सो दशमुद्रिकाको अभिप्राय यह हे जो दशप्रकारके भक्तनके भावात्मक हे । जा रसके जो भक्त हें तिनको ताही अंगुलीसों नखदानकरि परम सुख देतहे । ओर कटिस्थल विषे पाटके गुच्छामें परोई ऐसी जो किंकिणी (रासादि अनेक लीलामें सुंदर मधुर शब्द करिवेवारी) कटिमें बांधी हे सो भक्तनको किंकिणीके नादतें अनेक लीलाको स्मरण होतहे ॥ १० ॥

मूलं–सनूपुरपदन्यासध्वनिमोहितगोपिकः ।
दिगंबरो नखविधुज्योत्स्नाजितनिशापतिः॥ ११॥

शब्दार्थः–नूपुरयुक्त चरणारविंद धरे ताके शब्दसों व्रजभक्तकुं मोह करतहें ओर आप वस्त्ररहित (बालभावसों) हें, दशनखरू

चंद्रमाकी किरणतें चंद्रमाको जय करिवेवारेहे ॥ ११ ॥ टीका—चरणकमलमें नूपुर परम सुंदर धारण कीये हे सो नूपुरकी ध्वनि सुनिके अनेक गोपीजन मोहकों पावतहें ओर बाललीलाको स्वरूप दिगंबर निरावरण सवांगको दर्शन करावत हे सो श्रीनवनीतप्रियजी—श्रीबालकृष्णजीके स्वरूपमें प्रगट दर्शन होतहे, दश नखचंद्र चरणारविंदमें धारण कीयेहें ता नखचंद्रके आगें चंद्रमा लज्जित होतहे चंद्रमाकों जिते एसे नखचंद्र भक्तनके हृदयको अज्ञानरूप अंधकार दूरि करतहे यह श्रीठाकुरजीके नखचंद्र एक एक नख कोटानकोटि अंधकारको नाश कर्ताहे सो दश नखचंद्र जिन भक्तनके हृदयमें रहतहे तिनके हृदयमें प्रकाश होय तामें कहा कहेनो ? नखचंद्रनें अपने ज्योतिके प्रकाशकरि चंद्रमा, सूर्य, दर्पण, मणि—आदि सवके प्रकाशकों जितेहे ओर दश नखचंद्र हे तामें वामचरणारविंदके नख पुष्टिभक्तनके हृदयको तिमिर दूरि करतहे ओर दक्षिणचरणके नख मर्यादाभक्तनके तिमिरकों दूरि करतहे। या भांति शिखातें नखपर्यंत स्वरूप वर्णन कीयेहे॥११॥

मूलं—स्वरूपप्रतिबिंबैकदृष्टिहास्यमुखांबुजः ।
पंकांगरागरुचिरः सदा मुग्धशिरोमणिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—स्वरूपके प्रतिबिंबमेंही दृष्टि लगी रहीहे ताकरिकें हास्ययुक्त मुखारविंद होय रह्यो हे ओर श्रीअंगमे कीचके लेप (अंगराग) करिकें शोभित हे। (प्रतिबिंबमें हास्य तथा श्रीअंगमें कीचको लेप करिवेकी मतलव यह हे जो) मुग्धशिरोमणि हे [अर्थात् मुग्ध वालकको नाट्य हे]॥१२॥ टीका—उपर कहे एसे सुंदर वालस्वरूपकी लीला श्रीठाकुरजी करतहे अपनो प्रतिबिंब कबहु मणिजटित आंगनमें देखि पकरनकों दोरतहे प्रतिबिंब श्रीहस्तमें नहीं आवतहे तब मुखारविंदमें हास्य आवतहे कबहु मणिजटित खंभमें

अपनो प्रतिबिंब देखि वारंवार किलकिकें हसतहे व्रजकी रज सर्वांगमें लागी रहीहे सो परम शोभा देतहे मुग्ध—लौकिकबालककी नांई अनेक लीला करत हे परंतु मुग्धशिरोमणि हे मानो कछुही नांई जानत हे भांति व्रजभक्तनकों सुख देतहे ॥ १२ ॥

मूलं—लीलान्यज्ञानरहितः सर्वलीलाविचक्षणः ।
कंदर्पकोटिलावण्यो मानिनीमानदर्पहा ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—लीलाकरिकें अन्यज्ञानरहित दीसतहे ओर आप तो सब लीलामें विचक्षण हे, कोटि कंदर्प (कामदेव) तें अधिक लावण्य (श्रीअंगकी शोभा) हे ओर मानवतीके मानको गर्व हरिवेवारे हे ॥ १३ ॥ टीका—सर्व लोगनकों यह दीसत जो केवल बालक हे कछु ओर लीलाकों नांही जानत, परम मुग्ध हे, मातृचरण (श्रीयशोदाजी) श्रीनंदरायजी रोहिणीजी आदि वृद्ध गोपगोपी सब कोउ केवल बालकहो जानतहे ओर अंतरंग व्रजभक्त यह जानत हे जो सर्वलीलामें परम चतुर हे मातृचरणके आगें मुग्धता जतावत हे तो कहा भयो ? यह भाव व्रजभक्त जानतहे । ओर कोटिकोटि कंदर्प जिनकी शोभा देखि लज्जा पावतहे एसो लावण्ययुक्त जिनको श्रीअंग परम शोभायमान हे । मानिनी जो श्रीस्वामिनीजी ताके मानकों हरतहे यह विलक्षण रीति हे जो एककालावच्छिन्न सगरी लीलाको अनुभव करावतहे । सो श्रीगुसांईजी पलनामें कहेहे जो ' मानिनीमानहरणम् ' श्रीयशोदाजीके आगें पलनामें झूलतहे ताही समय मानिनी (श्रीस्वामिनीजी) को मान हरतहे एसे विरुद्धधर्माश्रय अलौकिक बालक हे ॥ १३ ॥

मूलं—स्वगोपिकागूढचौरः कृतसंकेतगोपनः ।
परमानंदसंदोहः सदा दुःखविवर्जितः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः–अपनी गोपिकानके भावकों गूढ राखिवेवारेहे तथा चोरिवेवारेहे ओर कीये संकेतकूं गुप्त राखेहे, उत्तम आनंदके समूहरूप हे, सदा दुःखरहित हे ॥ १४ ॥ टीका–अपनी गोपिका (श्रीस्वामिनीजी को गूढभाव हे तिनके घर चोरि करी संकेत करतहे पाछें ओर गोपीजनके आगें स्वामिनीजीको संकेत दुरावत हे जो यह न जाने तो आछो । अथवा समस्त गोपीजनके घर श्रीठाकुरजी गूढभावसों छिपि कें पधारतहे दूध दही माखन सगरी सामग्री अरोगतहे पाछें वह गोपी आवतहे तब उनसों एकांतमें संकेत करतहे पाछें कोउ गोप आवतहे अथवा मातृचरण श्रीयशोदाजी आवतहे तिनके आगें वह संकेतको गोपन करतहे तथा समस्त भक्तनके संग संकेत करतहे सो एकएक भक्तनके आगें संकेत गोप्य राखतहे, वह जानतहे जो हमही-कों श्रीठाकुरजी मिलेहे ओरकों नांही, या भांति रमण करत हे। अथवा समस्त भक्तनके मध्यमें श्रीस्वामिनीजी वेठेहे तव श्रीठाकुरजी सेनमें श्रीस्वामिनीजीकों गूढभावसों ओर कोउ न जाने या भांति जतावतहे जो फलाने ठोर आवो तहां संकेत हे तव श्रीस्वामिनीजी कछु मिसतें श्रीठाकुरजीके पास पधारतहे पाछें अनेक भांति लीला करी सब सखीनके आगें रसलीला गोप्य करतहे। परम आनंद-रूप हे तातें समस्त भक्तनकों परमानंदको दान करतहे ओर सर्वकाल विषे दुःख करिकें रहित हे ॥ १४ ॥

मूलं–असमक्षो दुःखितानां प्रपंचसुखिनामपि ।
दयानिधिर्मुग्धभावः स्वीयवाक्यैककारकः॥ १५॥

शब्दार्थः–दुःखयुक्तकों ओर प्रपंचतें सुखीनकोंहू समक्ष नही हे ओर दयानिधि हे मुग्धभाव दिखावेंहे तथा अपने भक्तनके वाक्यकों मुख्य करिवेवारेहे ॥ १५ ॥ टीका–लौकिक प्रपंचके अनेक प्रकारके

काम क्रोध मोह मद मात्सर्यादि मायासंबंधी दुःख हे तिन सबनके खननहारे हे । जो अविद्यारूप पूतना हती ताकों श्रीठाकुरजी मारिकें समस्त भक्तनकी अविद्या दूरि कीनी काहेतें जो भक्तनको सामर्थ्य अविद्या दूरि करनको नांही हतो सो श्रीठाकुरजी अपने भक्तनके अर्थ व्रजमें अवतार धरेहे तातें सबनकी अविद्या दूरि करि अनेक लीलारसको अनुभव कराये परम सुख दीये दुःखको नाश कीये काहेतें जो दयानिधि हे भक्त दुःख पावे सो नांही सही सकत हे लोगनमें देखत मुग्धभावको अंगीकार कीयेहें मानों कछु जानतहि नांही काहेतें जो भक्तनकों ईश्वरभाव प्रकट होय तो वात्सल्यभाव छूटि जाय ईश्वरतासों करे तो यह जाने जो सगरे जगतके पोषणकर्त्ता हे इनकों में भोग कहां धरूं? आभूषण वस्त्र खिलोनां कहां देऊं? सगरो श्रीठाकुरजीकोही हे या भांति स्नेह छूटे तो तो पुष्टिभक्तिकी प्राप्ति न होय तातें श्रीठाकुरजी मुग्ध लौकिक बालककी नांई लीला करतहे, भूखे होत हे तब रुदन करिकें हट करिके मातासों भोजन मांगत हे तातें भक्तन पर कृपा करिवेके लिये मुग्धभावकों श्रीठाकुरजीने धारण कीयेहे मुग्धभावमें थोरीसी वस्तुसों संतुष्ट होतहे जो ईश्वरतासहित प्रभु मागे तो भक्तनसों दीयो न जाय जेसें राजा बलिसों तीन पेंड धरती मांगी सो राजा बलितें दीनी न गई । तातें मुग्धभाव होय व्रजभक्तनकों सुख देतहे ओर अपने व्रजभक्त जो अंगीकृत हे तिनके वाक्यके पूर्णकर्त्ता हे सो श्रीभागवतमें कहेहें, जो कोउ व्रजभक्त कहत हे जो पीढा उठाय ल्यावो, कोउ कहतहे उन्मान (पालीप्रभृति) ल्यावो, कोउ कहतहे पादुका ल्यावो, तुमकों माखन देऊंगी, कोउ कहतहे नांचो, तब श्रीठाकुरजी सबको कह्यो करत हे जो प्रकार व्रजभक्त सुख पावतहे सोही श्रीठाकुरजी करतहे ॥ १५ ॥

मूलं–प्रपंचनाशनस्वीयनिरोधकृतितत्परः।
बालभावग्रहपरः क्षणक्षणविलक्षणः ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–अपने भक्तनकों प्रपंचनाशपूर्वक निरोध करिवेमें तत्पर हे ओर बालभावकों ग्रहण करतहे तथा क्षणक्षणमें विलक्षण हे ॥१६॥
टीका–श्रीठाकुरजी अपने निजभक्तनके लौकिकगृहाद्यासक्त मन हे तहांतें छोडाय आपमें लगावतहे तातें व्रजभक्तनके घर श्रीठाकुरजी चोरी करनकूं पधारतहे, व्रजभक्तनके दूध दही मांखनकी चोरी करि उनके मनमें श्रीठाकुरजी अपनो ध्यान करायो जो अब चोरी करनकों प्रभु आवत होयंगे ओर वेणुनाद करि सर्व भक्तनको मन हरि लीनो ताकरि पति पुत्र गृहादि देहसंबंधी सबनकों भूलीजातहे ओर अविद्यारूप पूतनाकों मारिके समस्त भक्तनकी अविद्या दूरि कीनी हे, अपने भक्तनके निरोध करिवेमें तत्पर हे, इंद्रयज्ञ व्रजवासी करत हते सो इंद्रको यज्ञ छुडायो गिरिराजकी पूजा कराय आपु सगरी सामग्री अंगीकार कीनी संयोगात्मक सगरी लीला करि बाहिरकी सगरी इंद्रियनको निरोध कीयो ओर वनांतर-देशांतर-लीला करि मन इंद्रियनको निरोध कीयो। जेसें रासपंचाध्यायीमें प्रथम मुरली बजाय घरतें व्रजभक्तनकों बुलाय रमण करि सर्वांगविहार करि बाहिरकी सगरी इंद्रिय शुद्ध करि पाछें अंतर्धान होयकें अंतःकरणमें रमण करि वाकूं शुद्ध करि प्रभु हृदयमें विराजे। या प्रकार संयोग विप्रयोग भक्तनकों देय निरोध सिद्ध कीयो ओर बालभावको मिस करि व्रजभक्तनके घर पधारतहे ताको कारण यह हे जो व्रजभक्तनके गोपादिक मर्यादाप्रवाही हे तिनकों रहस्यलीलाको ज्ञान न होय, बालक देखिके काहूकी विषम बुद्धि

न होय, या भांति व्रजभक्तनके पास श्रीठाकुरजी आयकें अनेकलीला क्षणक्षणमें करतहे । जा भक्तनको जेसो मनोरथ हे ताकों ताही भांति अनेक चेष्टा करि लीला करि सकल मनोरथ पुर्ण करि फेरि बालभावको अंगीकार करि घर पधारतहे ॥ १६ ॥

मूलं–क्षणं क्रुद्धः क्षणं हृष्टः स्वल्पवस्तुषु तोषितः ॥
स्वकीयहृदयाभिज्ञस्तदन्यज्ञानवर्जितः ॥ १७ ॥

शब्दार्थः–क्षणमें क्रोधयुक्त ओर क्षणमें हर्षयुक्त होयजात हे अपने भक्त थोरी वस्तु देय तामें संतुष्ट होत हे अपने भक्तके हृदयके मनोरथकूं जानिवेवारेहे ता सिवाय ओर कछु नांही जानतहे ॥ १७ ॥ टीका–बाललीला करि एकक्षणमें क्रोधित होतहे तनक श्रीयशोदाजी गृहके कार्यमें लागी तो दहींको माट फोरिडारे, मांखन बंदरनकूं लुटायदे भूमिपर लोटे, कोटिकोटि उपायसों श्रीयशोदाजी मनावे सो माने नांही, कबहू चंद्रमा देखी अड करे, कबहू तनक भोजन–मांखनकी ढील होय तो सही न सके, क्रोधवंत होयजाय, कबहू हसिदेय, स्वल्पवस्तु करि संतुष्ट होयजातहे, श्रीनंदरायजी खिलोनां तथा फूल तथा फलादि ल्यावतहे सो देखि वेहोतहीं प्रसन्न होय जातहे, व्रजभक्तन नूतन सामग्री, नवनीत, थोरीसीहू कछु नई वस्तु ल्याय श्रीठाकुरजीकों देतहे ताकरि श्रीठाकुरजी अत्यंत संतुष्ट होतहे, अपने स्वकीय व्रजभक्तनके हृदयमें जेसो मनोरथ होय ताही कार्यमें श्रीठाकुरजी तत्पर हे ओर वार जानतं नांही, अपने निजभक्तनके हृदयके अभिप्राय विना कछु ज्ञानहू मनमें राखत नांही । काहेतें जो व्रजमें श्रीयशोदाजीके घर प्रभु पधारेहें सो केवल व्रजभक्तनके सुखदानार्थ पधारेहें तातें पुष्टिमार्गमें प्रभु भक्ताधीन हे अन्य ज्ञानकरि रहित हे ॥ १७ ॥

मूलं—गूढलीलापरो भक्तगूढभावरसात्मकः ।
सेवनीयः सावधानैर्विपरीतगतिक्रियः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—गूढलीला करिवेवारे ओर भक्तनके गूढ भावके रसात्मक तथा विपरीत गति ओर क्रिया वारे श्रीठाकुरजी सावधानतासों सेवा करिवेयोग्य हे । (यह अठारे श्लोककरिकें जो स्वरूपगुणवर्णन कीये एसे श्रीठाकुरजी वोहोत सावधान होयकें सेवनयोग्य हे) ॥ १८ ॥
टीका—भक्तनके संग गूढलीलामें परायण हे, गूढ लीला सो रासलीला तामें अनेक प्रकारके रास दो दो गोपी बिच बिच माधो तथा सोरह गोपिनके मध्यमें अष्ट कृष्ण होतहे तथा भक्त भक्त प्रति भगवान् या भांति अनेक रासलीला मानलीला अनेक भांतिके विहार अनेक भांतिकी जलक्रीडा अनेक भांतिके श्रीवृंदावनमें निकुंज कीयेहे ओर व्रजभक्तनके घर बालस्वरूपतें किशोर होय अनेक लीला करतहे तथा खिरकमें गाय दुहावनमें अनेक लीला करतहे सो लीलासमुद्रको पार नांही तातें गूढलीलापरायण हे, गूढलीला हे जिनके भावकी काहूकों खबरि नांही रसात्मक श्रीठाकुरजी रसात्मक व्रजभक्त सो रसमयी अनेक भांतिकी लीला करतहे । एसे रसात्मक श्रीयशोदोत्संगलालित हे सो श्रीहरिरायजी श्रीगोपेश्वरजीकों पत्रमें लिखेहे जो एसे प्रभुकी सेवा अत्यंत सावधानतासों कर्त्तव्य हे काहेतें जो प्रभुकी विपरीत गति हे विपरीत क्रिया हे एकक्षणमें प्रसन्न होय एकक्षणमें क्रोध करे तातें लौकिकमें मन न राखियें प्रभुमें मन राखियें जो माति कहू अप्रसन्न होय या भांति भयसंयुक्त सेवा करियें। १८।

मूलं—श्रीमदाचार्यकृपया तिष्ठति स्वगृहे हरिः ।
एवंविधः सदा हस्ते योगिनः पारदो यथा ॥१९॥

शब्दार्थः—श्रीमदाचार्यजीकी कृपातें एसे (पूर्वोक्तगुणविशिष्ट) हरि अपने गृहमें विराजतहे सो जेसें योगिजनके हस्तमें पारद सावधानतासों रहे तो कल्पतरु समान फल देय ओर सावधान न होय तो हस्तसों निकसिजाय ओर फलहू नांही देय तेसें अपने हस्तमे सदाही श्रीकृष्ण विराजतहे तिनकी सावधानतासों सेवा करनी ॥१९॥ टीका—एसें व्रजभक्तके भावात्मक स्वरूप अपने घरमें विराजत हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें विराजत हे अपने प्रेम (स्नेह-भक्ति) को ओर कछु साधनको बल मति जानियो। एसे रसात्मक भावात्मक प्रभुकी सेवा अपन कहा करिवे योग्य हे ? परंतु श्रीआचार्यजीकी कानितें प्रभु घरमें विराजेहे या प्रकारको भाव अपने मनमें सदा जाननों। प्रभु केसे हे जो योगिजनके ध्यानमें नांही आवत अनेक जन्ममें अनेक साधन करतहें तिनकों सपनेहूमें दर्शन दुर्लभ हे सो प्रभु श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें साक्षात् अपने घरमें विराजतहे यह अपने मनमें सदा विचार करि सावधानतासों सेवा करियें, मति कहूं अपराध परे, अपराध परे तो प्रभु अप्रसन्न होय जाय ॥ १९ ॥

मूलं—चिंतनीयोऽनवसरे सेवायाः सर्वथा धिया।
यतो निरोधसंसिद्धिःसेवाया हार्दया भवेत्॥२०॥

शब्दार्थः—सेवाके अनोंसरमें बुद्धितें सर्वथा चिंतन करिवेयोग्य हे जातें निरोधसिद्धि मानसी सेवातें होय ॥ २० ॥ टीका—एसे यशोदोत्संगलालित भावात्मककी सेवा मन लगाय करनी उचित हे पाछें अनोंसर होय तब उपर कहि आये ता भांति हृदयमें चिंतन करनों सदा अति स्नेहसों सर्वथा धर्म जानि सेवा करनी ताही भांति अनोंसरमें सर्वथा चिंतन करनों तब निरोध सिद्ध होयगो। जेसें व्रजभक्तनकों निरोध सिद्ध भयो संयोग विप्रयोगर-

सको अनुभव भयो तेसेंही सेवासमय संयोगकी भावना अनोंसरमें विप्रयोगकी भावना करे यह हार्दसहित सेवा करे तब निरोध होय। यह वीश श्लोकको शिक्षापत्र हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु वीश श्लोकको निरोधलक्षण ग्रंथ कीयोहे ता भावके अनुसार श्रीहरिरायजी यह शिक्षापत्रमें निरोध पुष्टिमार्गीयजीवनकों जाभांति सिद्ध होय सो प्रकार कहेहे जेसें निरोधलीला श्रीभागवतदशमस्कंध सर्वोपर हे तेसेंही यह सर्वोपर निरोधप्रकार कहे हे ॥ २० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वितीयं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं संपूर्णम् ॥ २ ॥

शिक्षापत्र ३.

अब तृतीय शिक्षापत्रमें भगवद्भावके साधकबाधकको निरूपण करेहे। उपर कहिआये ता रीतिसों सेवाहू करे तथा अनोंसरमे चिंतनहू करे परंतु दुःसंग मिले तब एक क्षणमें सगरे धर्मको नाश होय जाय जन्मजन्मको भाव दुःसंगतें जात रहे तातें या कालमें दुःसंगतें बचनो सो निरूपण करतहे ॥

**मूलं—निधिः प्राप्तः सुसंरक्ष्यो दुःसंगादितः सदा ।
त्यक्त्वाऽपि लोकसंकोचं यथा वह्निर्जलादिभिः॥१॥**

शब्दार्थः—जो भगवद्भावरूप निधि प्राप्त भयो हे सो लोकके संकोचकोहू त्याग करके निरंतर दुःसंगतें आछी भांतिसों जलसों वह्निकी नांई रक्षा करिवेयोग्यहे ॥ १ ॥ टीका—जो निधि प्राप्त भयोहे ताकी रक्षा

कर्तव्य हे जेसें काहू कृपणकों धन मिल्यो सो वह द्रव्यकी रक्षा जतनसों न करे तो द्रव्य चोर लेजाय तेसेंही यह भगवद्भावरूप निधिकी प्राप्ति श्रीआचार्यजीकी कृपातें भईहे ता निधिकी दुःसंगतें रक्षा अवश्य कर्तव्य हे । तामें दुःसंग अनेक प्रकारको हे । लौकिक विषयादि तथा अन्यमार्गीयको संग तथा देहसंबंधी कुटुंब लौकिक वैदिक कार्य इन सबनतें मन निकासि प्रभुमें राखनो । तहां कोउ कहे जो गृहस्थाश्रममें रहेनो तब लौकिक वैदिक कार्य कीये विना केसें बने ? तहां कहतहे जो भगवत्सेवा पुष्टिमार्गीय धर्म तो अपने मनतें स्नेहपूर्वक करे ओर लौकिक वैदिक लोगनके दिखायवेके लिये (इच्छारहित होयके) करे सेवासमय सेवा छोडि न करे सेवामें लौकिक संकोच न करे जेसें दामोदरदास संभरवारे श्रीद्वारिकानाथजीकी सेवा करते सो जल अपने हाथसों भरिलावते तहां दामोदरदासके ससुरने कहि जो तुम जल भरतहो सो हमकों वोहोत लज्जा आवत हे तातें जल लोंडी पास भरावो तब दामोदरदासने कही अब एसेही करेंगे पाछें अपनी स्त्रीसों कहे चलो जल भरि ल्यावे तब स्त्री तो भगवदीय हती तासों तत्काल कलसा ले दोउ जने चले सो जल भरिकें ससुरके हाट आगें होयकें निकसे तब ससुर आय दामोदरदासके पायन पड्यो ओर कह्यो जो में चूक्यो जो तुमकों कह्यो अब तुमही जल भरो स्त्रीजनसों जल मति भरावो तब दामोदरदासनें कह्यो कालितें न भरावेंगे । या भांति भगवत्सेवामें लोकसंकोच सर्व नांही कर्तव्य हे, छोटि बडी सब सेवा भावपूर्वक प्रेमसों करनी । या भांति दुःसंगको जाननों । भगवद्भाव हे सो तो अग्निरूप हे ओर दुःसंग हे सो जलवत् भावको नाशकर्त्ता हे ॥ १ ॥

मूलं–वह्निवद्भगवद्भावः सत्संगव्यवधानतः ।
नाशयेत् संसृतिं यद्वत्पात्रव्यवहितं जलम् ॥२॥

शब्दार्थः–अग्निरूप भगवद्भाव सत्संगके व्यवधानतें संसृति जो अहंताममतात्मक संसाररूप दुःसंग ताकों पात्रके व्यवधानयुक्त जलकी नांई नाश करत हे [मतलब यह हे जो पात्रमें जल होय ताको नाश जेसें अग्नि करेहे तेसें सत्संगके व्यवधानमें रह्यो जो संसार ताको नाश भगवद्भाव करे हे] ॥ २ ॥ टीका–भगवद्भाव अग्निरूप हे ओर सत्संग काष्टरूप हे जेसें अग्निमें काष्ट परे तो ओरहू अग्नि वढे तेजःपुंज होय तेसेंही भगवद्भाव सत्संगपायकें बढे दृढ होय । ओर भगवद्भाव अग्नि हे सो दुःसंगरूपी जलतें नष्ट होय जेसें थोडोसो अग्नि होय तामें जल डारेतें वा अग्निको नाश होय तेसेंही भगवद्भावको नाश दुःसंगतें होय । तहां कोई कहे जो लौकिकमें रहे विना तो चले नांही तब कहा करनों ? तहां कहतहे जो दुःसंगरूपी जलकों सत्संगरूपी पात्रमें राखे तब वह दुःसंग भगवद्भावको नाश करि शके नांही । जेसें अग्निकों जलको साक्षात्संबंध होय तो अग्निको नाश होय ओर एक पात्रमें जलकरिकें अग्नि उपर धरे तो जलको नाश होय अग्निको नाश न होय एसें भगवद्भावरूपी अग्निको सत्संगरूपी काष्टतें वढाये जाय ताकरि दुःसंगरूपी जलकों पात्रमें धरि (अपने हृदयमें अष्ट प्रहर विचार करि) जराय देय तबही बचे । आगें बडेबडे भगवदीय दुःसंगतें गिरेहें तातें दुःसंगतें सदाही डरपत रहेनो ॥ २ ॥

मूलं–जलवल्लौकिकं प्रोक्तं साक्षात्तन्मेलनेन तु ।
मूलतो नाशयेद्भावं यथा वैश्वानरं जलम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–लौकिक जलवत् कह्योहे ताको साक्षात् भावसों संबंध भयेसूं जेसें जल [साक्षात् संबंधतें] अग्निको नाश करे तेसें मूलतें भगवद्भावको नाश करे ॥ ३ ॥ टीका–यह संसारमें लौकिक दुःसंग हे सो जलवत् हे सो जलकूं पात्र विना साक्षाद्भगवद्भावरूप अग्निमें नांही

डारनो जेसें साक्षात् जल डारें तो वैश्वानर जो अग्नि ताको मूलतें नाश होय। जेसें जडभरत सगरो लौकिक छोडिकें भगवद्भजनकरिवेकूं वनमें गये तहां हरनी जल पीवनकों आई सो सिंहनादतें कूद परि ताके गर्भमेंतें बचा जलमें गियों सो भरतकों दया आई यहही दुःसंग भयो भगवद्भाव भगवद्भजन छूटि गयो तवही हरनीके संगतें तीनजन्मको अंतराय भयो एसो दुःसंग बाधक हे। तथा श्रीनंदरायजी अपने पुत्रकी सेवा करतहते सो अंबिकापूजनकों गये सो श्रीठाकुरजी सही न सके तहां सुदर्शनसर्प आयकें श्रीनंदरायजीकों ग्रसीलीये तब श्रीठाकुरजीने छुडाये। तातें अन्य संबंध तथा दुःसंग सिद्ध भक्तनकों विशेष बाधक हे सो साधन दशावारे भक्तनकों लगे तामें कहा कहेनो ?। तातें दुःसंगकों यह जाने जो हमारे सर्व भावको नाशही करेगो या प्रकार दुःसंगतें भावकी रक्षा करे ॥ ३ ॥

मूलं–अतः सदैव भेत्तव्यं लौकिकासक्तितो जनैः।
सत्संगमग्रतः कृत्वा नाशनीया न चान्यथा॥४॥

शब्दार्थः–(उपर कहे ता रीतिसों भगवद्भावकी रक्षा करनी क्यों जो दुःसंग बाधक हे) तासों लौकिक आसक्तितें सदाही भगवदीय जनकों डरपत रहनों। पेहेलें सत्संग करिके लौकिकासक्ति नाशकरिवे योग्य हे सत्संग न करे तो पाछें लौकिकसक्तिको नाश होयसकत नांही ॥४॥ टीका–लौकिकासक्तिरूप दुःसंगतें सदा डरपत रहेनों यह न जाने जो जब दुःसंग लौकिकासक्ति होयगी तब में सत्संग करि लेउंगो, जाही समय दुःसंग मिल्यो ताही समय तत्काल लौकिकासक्ति होय भगवद्भावको नाश होयगो तातें दुःसंग मिले तापेहेलेंहीतें सत्संग कीयो भरे तब दुःसंग बाधा न करे, ताको दृष्टांत कहतहे जो जीवको पीछें काल फिरतहे जो पेहेलेतें स्मरण भजन करिराखे तो पीछे अंतका-

लसमय काल बाधा न करे। जो जाने अब तो लौकिक करिलेउं पीछे भगवत्स्मरण करूंगो ताकूं काल आवे तो एक क्षणमें खायजाय तब वा समय कछुहू भगवद्धर्म न वने तातें पहेलेतें सत्संगहू करे ओर भगवत्सेवा स्मरणहू करे सो जब लौकिक दुःसंग आवे तब सत्संगके प्रतापतें बचीजाय सत्संग विना दुःसंगतें वचिवेको ओर उपाय नांही हे यह निश्चय जाननो ॥ ४ ॥

मूलं—सतां परोक्षे सत्संगजातभावो विभाव्यताम्।
तद्विरुद्धवचो नैव माननीयं सतां क्वचित् ॥५॥

शब्दार्थः—सत्संगमें जो भाव उत्पन्न भयो वाकी भावना सत्पुरुषके परोक्षमें करनी ओर सत्पुरुषके वचनतें जो विरुद्ध वचन होय सो काहू समय नांही माननों ॥ ५ ॥ टीका—अब उपर कहे जो सत्संग करिकें दुःसंग बाधा न करेगो तहां कोई कहे जो सत्संग तो दोय घडी चार घडी वनेगो पाछें सेवास्मरण लौकिक वैदिक कार्यहू सब कर्यो चहियें तब दुःसंगतें कोन प्रकार बचेगो ? या भांति कोई कहे तहां कहतहे जो नित्य नियम करि जेसें भगवत्सेवा स्मरण करे तेसेंही सत्संग एक घडी दोय घडी वने तितनोंही करे पाछें सत्संगके परोक्षमें जो जो वार्त्ता सत्संगमें भयी होय ताको स्मरण करि अपने धर्मको देखें जो श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजी तो या भांति कहे हे ओर में कहा करतहुं, जो विरुद्ध होय ताके त्यागमें मन करे जा प्रकार कहे हे सो करनको मन करे। या भांति मनकों जो कोई भगवद्धर्ममें लगाय-राखेगो सो दुःसंगतें बचेगो.जो वार्त्ता भगवदीयके मुखसों सुनी हे तामें दृढ विश्वास करि उह वार्त्ताकी भावना मनमें करियें तब मन ठिकाने आवे। जेसें गाय वनमेंतें चरि आवत हे पाछें घर आयकें फेरि बेठिकें चर्वण करि स्वाद लेत हे तेसें वैष्णवको संग होय ता समय

भगवद्धर्मको श्रवण करे पाछें सत्संगके परोक्षमें अपने हृदयमें मनन करिकें भावनासों रसको आस्वादन करे । सत्संगतें विरुद्ध वचन जितनें हें तिनकों विचारि धर्म अधर्मको विचार मनमें राखे । और सत्संगतें विरुद्ध वचन न कहे, जामें सत्संग छूटिजाय एसो कबहू न करे ॥ ५ ॥

मूलं–भरतस्यापि दुःसंगे जाता हरिणजातिता ।
केवलं कलिदोषाभिभूता अपि जनाः स्वतः ॥६॥
तत्संगनिरतैर्नैव भवितव्यं विशेषतः ।
अथवा सर्वतो मौनं तदभावे विधीयताम् ॥७॥

शब्दार्थः–जडभरतकोंहू दुःसंगमें हरिणजातिपनों भयो और सगरे जन आपतेंहू केवल कलिदोषके जीतेभयेहे ॥६॥ तासों विनके संगमें विशेष करिकें प्रीतियुक्त नहीं रहेनो अथवा तेसें न वने तो मौन राखनों ॥ ७ ॥ टीका–दुःसंगको मनमें भय राखे अपनो काल जाने काहेतें जो दुःसंगदोप होय तो हरि जो भगवान् सो दूरि जात रहतहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु संन्यासनिर्णय ग्रंथमें कहे हे "विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः" (जहां दुःसंगदोप करि देह विषयाक्रांत भयो ता देहमें भगवदावेश निश्चय न होय) तातें दुःसंगदोष महा बाधक हे और यह जगतमें भूतप्राणिमात्र हे सो सहजहीमें दोष करि भरे हे काहेतें जो यह कलिकाल महाकठिन हे अपने मनहूको विश्वास न करे जो में बोहोत समुझतहूं मेरे दृढ ज्ञान वैराग्य हे मेरो मन तो मेरे वश्य हे यह न जाने, जा समय दुःसंग मिल्यो ता समय ज्ञान, वैराग्य, विवेक, धैर्य सब एक क्षणमें जात रहेगो । तातें अपने मनकों, इंद्रियकों, देहकों, कलिके दोष-

रूपही जाने ओर यह जाने जो सत्संगके प्रतापतें में बचतहूं जा समय दुःसंग मिलेगो ताही समय में गिरूंगो, एसो ज्ञान मनमें राखे जो यह कलियुगने सगरे प्राणीमात्रकी बुद्धि हरिलीनीहे कलिको दोष सबनकों लग्योहे, एसो जो दुःसंगदोष सर्व धर्मको नाशक हे तिनतें न्यारो यह जीव रहे तवही भगवद्भाव विशेष होय, ओर उपाय कोई नांही हे। तहां कोई कहे जो दुःसंग प्रबल होय अपने वश न होय अपने घरके पडोसमें होय तथा कहूं जीविका होय तहां दुःसंग होय अथवा अपने कुटुंबमें होय अपनेतें यह दुःसंग निवारण न होय ओर जीवकों घरमें रहे विना तो वने नांही तहां दुःसंग प्रबल होय तो कहा करे ? तहां श्रीहरिरायजी कहतहे जो मुख्य तो यहही हे जो अपने समुझायेतें अपने उपायतें दुःसंग छुटत होय तो छोडाईयें अथवा आप छोडिकें ओर ठोर निर्वाह करियें अपने काहू भांति दुःसंग न छूटे तो तहां मौन होय रहियें बोलियें नांही, जहां अपनो कह्यो न होय तहां अपने मनको भाव भगवद्धर्म वार्त्ता कवहू न कहियें उनतें मन न्यारो राखियें काहेतें जो जाकों भगवद्धर्म सुनिवेकी श्रद्धा न होय तिनके आगें भगवद्धर्म सर्वथा न कहियें काहेतें जो भगवानमें तथा भगवद्धर्ममें भेद नांहीहे एकही पदार्थ हे तातें भगवानको अतिक्रम होतहे यह विचारि जहां दुःसंग प्रबल होय तहां वाद न करियें मौन रहियें मनमें हरिशरणकी भावना करियें। श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें कहेहे " दुःख-हानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे । भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तै-श्चातिक्रमे कृते । अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः " (दुःखकी हानिमें तथा पापमें, भयमें, कामादिककी अप्राप्तिमें, भक्तके द्रोहमें, भक्तिके अभावमें, भक्तनके अतिक्रम कीयो होय तामें, अश-

क्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरिशरण हे) या भांति हरिशरणकी भावना मनमें करिकें चुप्प होयरहियें ॥ ६–७ ॥

मूलं–यो वदत्यन्यथावाक्यमाचार्यवचनाज्जनः ।
संसृतिप्रेरको वाऽपि तत्संगो दुष्टसंगमः ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–जो जन श्रीआचार्यजीके वचनमें अन्यथा वाक्य कहे अथवा अहंताममतात्मक संसारमें आसक्ति करिवेकी प्रेरणा करे तिनको संग सो दुष्टसंग जाननो ॥ ८ ॥ टीका–अब कोई कहे जो दुःसंग अथवा भगवद्धर्ममें विरोध किनकों कहिये ? तहां कहतहे जो श्रीवल्लभाचार्यजीके वचनतें सिद्धांततें अन्यथा वचन कहे ताके वचन अन्यथा (झुंठो) जाने, श्रीआचार्यजीतें विरुद्ध धर्ममें बोध करिकें चलाव अन्यमार्गकी रीति कहे तिनकों दुष्ट करिकें मनमें जाने जो याके वचन मानेतें मेरे सर्वधर्मको नाश होयजायगो तातें अन्यमार्गीयके पास न बेठियें अन्य संबंध होयजाय, अन्यमार्गके धर्म सुनियें नांही अन्यमार्गीय क्रिया कछु न करियें, सो गोविंददुबेकी वार्तामें प्रसिद्ध हे, जो एकसमे गोविंददुबे मीरांबाईके घर गये तहां मीरांबाईने आदरसन्मान करि गोविंददुबेकों राखे सो मिरांबाई भगवद्भक्त हती परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभुके पुष्टिमार्गमें नांही हती मर्यादामार्गमें हती सो यह गोविंददुबेकी बात श्रीगुसाँईजीने जानि जो गोविंददुबे मीरांबाईके घर हे तब श्रीगुसाँइजी एक श्लोक लिखे " भगवत्पदपद्मपरागजुषो नहि युक्ततरं मरणेऽपितराम्। इतराश्रयणं गजराजधृतो नहिं रासभमप्युररीकुरुते " (प्रभुके चरणारविंदकी रजको सेवन करिवेवारेकूं मरणतें अधिक कष्ट प्राप्त होय तथापि ओरको आश्रय करनों योग्य नहींहे) अयि गोविंददुबे ! (जेसें हस्तिने धारण कीयो एसो पुरुष गर्दभको स्वीकार नांही करतहे) यह लिखिकें एक व्रजवासीको दीये जो गोविंददुबेकों दीजो । सो व्रजवासीने गोविंददुबेकों जाय

दीयो तब गोविंददुबे वांचतही उठि आये तातें यह पुष्टिमार्ग हे सो एसो हे । श्रीगुसाँईजी गोविंददुबेसो कहि जो हाथीकी असवारी करी अब गधाकी असवारीको मन भयो हे ? तासूं पुष्टिमार्गमें अनन्यभाव राखियें । पुष्टिमार्गतें अन्यधर्ममें चलावे ताको दुष्टसंग जाननों तत्काल ताको त्याग करनों ॥ ८ ॥

मूलं–यश्च कृष्णे रतिं नित्यं बोधयत्यप्रयोजनाम् ।
निरक्षेपः सात्त्विकश्च तत्संगः साधुसंगमः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–जो सदा श्रीकृष्णमें कारणरहित प्रीतिको बोध करे ओर निरक्षेप तथा सात्त्विक होय तिनको संग सो साधुपुरुषको संग जाननों ॥ ९ ॥ टीका–उपर कहे जो अन्यमार्गीयको संग न करे तहां कोई कहे जो किनको संग करे ? तहां कहतहे जो एक श्रीकृष्णफलात्मक भावात्मक व्रजपति हे तिनमें नित्य नूतन प्रीति होय ओर अवतारादिकमें न होय एसो अनन्यभाव जाको होय ओर एक श्रीकृष्णके चरणारविंदकी भक्ति बढिबेकोही बोध करे ओर हृदयमें यहही वासना रहे जो श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रीति होय ओर दुसरो प्रयोजन मनमें न होय निरपेक्ष होय काहूकी अपेक्षा न राखे यह मनमें जाने जो एक श्रीकृष्णही कर्त्ता हे ओर कोउ नांही काहूको भगवद्धर्म दिखाय अपनी प्रतिष्ठार्थ अथवा लाभार्थ भगवद्धर्म करत न होय ओर सात्त्विक होय, छल, कपट, काम, क्रोध, मद, मत्सर, हृदयमें न होय एसो धर्म जहां देखे ता भगवदीयको संग करे ॥ ९ ॥

मूलं–एवं निश्चित्य सर्वेषु स्वीयेष्वन्येषु वा पुनः ।
महत्कुलप्रसूतेषु कर्त्तव्यः संगनिर्णयः ॥ १० ॥

शब्दार्थः–एसें अपने (भगवदीय जन) ओर अन्य [लौकिक] इन सबनमें संगको निश्चय करिकें फिर उत्तम कुलमें जिनको

जन्म हे तिनके विषयमें संगनिर्णय करनो ॥१०॥ टीका–सर्व ओरतें निश्चिंत होय लौकिक वैदिक ओर देहसंबंधी अनेक उपाधि गृहकार्यतें मनकरि निश्चिंत होय । भगवत्परायण एतन्मार्गीय पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों अपनो जाने जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुके शरण ये हू आये हें हमहू श्रीआचार्यजीके शरण हें यह वैष्णव हमारे संबंधी हे एसो स्नेह वैष्णवपर होय तिनको सत्संग कर्त्तव्य हे । अन्यमार्गीय जो जीव हे तिनसों जाकों प्रयोजन न होय । महत्कुलमें जन्म होय सो साक्षात् श्रीवल्लभकुलमें यह सगरो धर्म हे, एक श्रीकृष्णहीकी सेवा एक श्रीकृष्णहीको आश्रय इनहीमें हे तासों विनको सत्संग मन वचन क्रिया करिकें कर्त्तव्य हे । अथवा श्रीआचार्यजीके अंगीकृत पुष्टिमार्गीय नाम, निवेदन, मर्यादा, सेवा, श्रीकृष्णमें रति जाके होय एसे भगवदीयको निश्चयही सत्संग कर्त्तव्य हे । या भांति सत्संगको निर्णय कर्त्तव्य हे ॥ १० ॥

मूलं–श्रीमदाचार्यचरणे मतिः स्थाप्या सदा स्वतः ।
तत एव स्वकीयानां सिद्धिः कार्यस्य सर्वथा॥११॥

शब्दार्थः–सदा श्रीआचार्यजीके चरणारविंदमें आपतें मति स्थिर करनी तासोंही भगवदीयनके कार्यकी निश्चय सिद्धि होय ॥ ११ ॥ टीका–श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें जाकी मति दृढ एकरस स्वस्थ होय मन वचन करिकें एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें जिनकी बुद्धि होय तिनको संग करनो । श्रीसर्वोत्तमजीकी टीका श्रीगोकुलनाथजी विरचित हे तामें लिखे हे जो पद्मनाभदास सरिखे भगवदीय विरल हे एसे भगवदीयके हृदयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु नित्य विराजमान हे तिनके संगतें सकल कार्य सिद्ध होय, भींज्यो कपरा हे ताकों सूखे कपराको संबंध होय तो वह भींजे, तेसेंही भगवदीयके संगतें

भगवदीय होय एसें स्वकीय भगवदीय मिलनें बहुत दुर्लभ हे । ओर जहांतांई एसे स्वकीय भगवदीयको संग न होय तहांतांई कार्यहू सिद्ध न होय तातें भगवत्सेवास्मरण करियें, एसे भगवदीयके मिलवेको मनमें ताप राखियें तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कृपा करिकें मिलावे तब श्रद्धापूर्वक दीन होय उनको संग मन लगायकें करियें । जब वे भगवदीय प्रसन्न होय कृपा करी पुष्टिमार्गको प्रकार लीलाभाव बतावे तब कार्य निश्चय सिद्ध होय । ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप नवरत्नग्रंथमें निरूपण कीयेहे "निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः" (निश्चय तादृशीय जनके संग मिलिकें निवेदनको स्मरण करनों) निवेदनको स्मरण तादृशीय वैष्णवसों मिलिकें करे तो हृदयमें मार्गस्फूर्ति होय तातें सत्संग अवश्य कर्त्तव्य हे ॥ ११ ॥

मूलं–अवैष्णवत्वं मंतव्यं तद्विरुद्धजनेष्वपि ॥
जीवेषु दोषवत्स्वेवं तथा तत्साम्यवस्तुषु ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–पुष्टिमार्गतें विरुद्ध जो जन हे तिनमें तथा भगवदीयमें दोषबुद्धिवारे जो जीव हे तिनमेंहू एसें अवैष्णवत्व माननों ॥ १२ ॥ टीका–वैष्णव ओर अवैष्णव केसें जानियें सो लक्षण कहतहे । जो श्रीआचार्यजीनें पुष्टिमार्ग प्रकट कीयो हे ओर श्रीगुसाँईजीनें प्रकाश कीयो हे सो नामावलीमें नाम कहेहें " पुष्टिप्रवर्त्तकाय नमः " यह श्रीआचार्यजीको नाम, "पुष्टिमार्गप्रकाशकाय नमः" यह श्रीगुसाँईजीको नाम हे । तासूं जो कोई पुष्टिमार्गकी रीतिसों विरुद्ध आचरण करे ताकों अवैष्णव जानियें, जो कोई पुष्टिमार्गकी रीति प्रमाण चलतहे तिनकों वैष्णव जानियें, काहेतें जो शुद्ध जीव होयगो तासों शुद्ध क्रिया बनेगी । सो जीव जगतमें तीन प्रकारके हे सो पुष्टिप्रवाहमर्यादाग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें–" इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः । वचसा वेदमार्गं

हि पुष्टिं कायेन निश्चयः” (प्रभु इच्छामात्रतें मनतें प्रवाहकूं तथा वचनतें निश्चय वेदमार्गकों ओर कायातें निश्चय पुष्टिकों उत्पन्न करत-भये) श्रीठाकुरजी इच्छाकरिकें मनतें सृष्टि प्रकट करी हे सो प्रवाही सृष्टि हे वाको मन कबहू भगवद्धर्ममें नांही लगे सदा दुष्टाचरणही करे ओर वचनकरिकें श्रीठाकुरजीने सृष्टि प्रकट करी हे सो मर्यादासृष्टि वैदिक कर्ममें लागी रहेहे ओर श्रीठाकुरजीने अपनी कायातें सृष्टि प्रकट करी हे सो पुष्टिजीव हे उनसों भगवत्सेवाही बने या रीतिसों तीन प्रकारके जीव हे तातें जीव दोषकरिकें भयो हे सो प्रवाही हे तासोंही दुष्टाचरण करतहे ताकों अवैष्णव निश्चय जाननों ॥ १२ ॥

मूलं-श्रीकृष्णः श्रीमदाचार्यस्तथा श्रीविठ्ठलेश्वरः ॥
तथा लीलास्थसामग्रीनैतत्साम्यं कदाचन ॥१३॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्ण, श्रीमदाचार्यजी, श्रीगुसाँईजी, ओर सब लीलासामग्री इन सबनके बराबर लौकिकमें काहू दिन ओर कछु नही हे ।१३।

टीका–अब श्रीहरिरायजी पुष्टिमार्गीय जीवनकों शिक्षा करतहे जो यह भाव मनमें अहर्निश अवश्य राखियो अलौकिक पदार्थमें लौकिक बुद्धि आवे तो वाको सर्वस्व नाश होय सो कहतहे—एक श्रीकृष्ण, श्रीआचार्यजी ओर श्रीविठ्ठलनाथजी तथा लीलासामग्रीमें व्रजभक्त आदि श्रीआचार्यजीके पुष्टिमार्गमें सेवा सामग्री सब अलौकिक जाननी, श्रीकृष्ण साक्षात् फलात्मक रसात्मक श्रीयशोदोत्संगलालित सर्वांगसुंदर व्रजभक्तनके सर्वस्व जीवनधन सोही श्रीकृष्ण अपने दैवी जीवनके उद्धारार्थ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीरूप ओर अलौकिक अग्निरूप प्रकटे सो अलौकिक मार्ग प्रकट कीये सोही श्रीआचार्यजी अपनो दूसरोही रूप श्रीगुसाँईजीको धारण करी यह पुष्टिमार्गको प्रकाश कीये । जेसें श्रीकृष्णावतारमें सगरी लीला-

सामग्री (श्रीकृष्ण), श्रीनंदरायजी, श्रीयशोदाजी, आदि सब अलौकिक बाललीलारसमें मग्न हे, सखा ग्वाल येहू अलौकिक सख्यभावमें मग्न हें, गोपीजनमें अनेक भाव हे, श्रुतिरूपा, कुमारिका, मुख्य श्रीस्वामिनीजी वृषभानुजा, ओर श्रीयमुनाजी इनके अनेक यूथ अनेक सखी यह सब. अलौकिक श्रीगिरिराज, वृक्षादिक, पशु, पक्षी, व्रजभूमि, गुल्म, लता, औषधि, निकुंज. आदि सब लीलासामग्री आभूषण वस्त्रादिसामग्री सब अलौकिक हे तेसेंही यह श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजीके पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार, वर्षदिनके उत्सव, नित्यसेवाको प्रकार, सामग्री. आभूषण. वस्त्र, सिंहासन, खंडपाट, पिछवाई, निजमंदिर. मणिकोठा, तिवारी, डोलतिवारी, रसोईघर, पानघर, फूलघर, शाकघर, भंडार, चोक, सेवक, कीर्त्तनीया, परिचारक, आदि सब सेवासंबंधी पदार्थ अलौकिक जानियें, इनकों भावात्मक जानियें, इनमें लौकिक बुद्धि करे तो महा अपराध होय। या भावसों पुष्टिमार्गीय वैष्णव सेवा करे। यह भाव मनमें गुप्त राखे सो आगेंके श्लोकमें कहतहे ॥ १३ ॥

मूलं–यदस्माभिः पुरा प्रोक्तं तच्चित्ते स्थाप्यतां सदा ॥
न कुत्रापि च वक्तव्यं सांप्रतं विमुखा जनाः ॥१४॥

शब्दार्थः–जो हमने आगें कह्योहे सो सदा चित्तमें स्थापन करियो जो मार्गके वक्ता हे तिनतें कहनो ओर काहूके आगें मति कहियो काहेतें जो आजकाल सगरे जन वहिर्मुख होय गयेहें ॥ १४ ॥

टीका–अब कोई पूर्वपक्ष करे जो सेवासामग्री तुम सब अलौकिक बताये सो तुम अपनी युक्तिसों कहतहो के कहू ग्रंथमें हे ? के काहूसों सुनी हे ? या भांति कोई कहे तहां श्रीहरिरायजी अपने छोटे भाई तथा अंगीकृत सेवकनसों कहतहे जो यह हम बडेनसों सुनी हे श्रीगोकुलनाथजी श्रीकल्याणरायजी आदि सर्व भावरसके अनुभवकर्त्ताके

श्रीमुखसों सुनी हे। अथवा श्रीसुबोधिनीजीमें श्रीमहाप्रभुजी सब भाव कहेहे तथा ग्रंथमें श्रीगुसाँईजी सगरी लीलासामग्री अलौकिक वर्णन कीयेहे सो हम तुमसों अति स्नेहकरिकें कहतहे जो यह वार्त्ता अपने चित्तमें सदा स्थापन करियो, कबहू कोई काल भूलीकें लौकिक मति जानियो ओर यह भाव काहूके आगें मति कहियो, तुह्मारो अंगीकृत जाको हृदय शुद्ध होय हृदयमें दृढ श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजीके चरणकमलको विश्वास होय तिनसों मिलिकें अलौकिक पदार्थको विचार कर्त्तव्य हे ओर विमुख जन जाकी लौकिक बुद्धि हे तिन प्रति कबहू अलौकिक पदार्थको भाव न कहियें। तहां कोई कहे जो समुझे नांही ताके आगें कहियें तो यहहू जाने ओर तुम कहतहो न कहियें ताको कारण कहा ? तहां कहतहे ॥ १४ ॥

मूलं—सांमुख्यबोधनं नैव जायते बाह्यधर्मतः ॥
एकोपि दोषः सुदृढः सर्वं नाशयति ध्रुवम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—बाह्यधर्मतें सन्मुखमें बोधन होय नांही काहेतें जो एकहू अत्यंत दृढ दोष निश्चय सर्वको नाश करे ॥ १५ ॥ टीका—ओरके आगें अलौकिक प्रकार हे सो न कहेनो, या पुष्टिमार्गमें भगवदीय विना अन्य हे तिनसों कहियें तो अपनो धर्म जाय, ओरके आगें कछु कहनेको प्रकार आय बने तो ज्ञान वैराग्यको प्रकार कही दीजियें, अलौकिक भावको प्रकार न कहियें। काहेतें जो अपने हृदयको धर्म बाहिर प्रकाश करे तो धर्मरस बाहिर जातरहे हृदयतें प्रभु जातरहे। तातें मुख्यधर्मको बाहिर प्रकाश सर्वथा न करनो, काहेतें जो एक दोष यह जीवमें एसो दृढ हे जो अलौकिकमें लौकिक बुद्धि हे सो यह सर्वधर्मको निश्चयही नाश करतहे, सो अलौकिक पदार्थमें लौकिक बुद्धि सबकी हे कोटानकोटिमें कोई एककी अलौकिक बुद्धि

होयगी सो सगरी वस्तु लीलामय देखेगो तिनसों लौकिक क्रिया कबहू न बनेगी। तातें यह एक महादोष जगतमें मिलिरह्योहे जो लौकिक बुद्धि अलौकिकमें हे, तिनके सर्वधर्मको नाश हे कछु अनुभव नांहीहे। या प्रकार पुष्टिमार्गमें रहे तिनको श्रीआचार्यजीकी कृपातें भाव उत्पन्न होय स्वरूपानंदको अनुभव होय ॥ १५ ॥

मूलं–अस्माभिरेवं लिखितं निरपेक्षैः स्वभावतः ॥
स्नेहेन सर्वथा चित्ते धीयतां यदि रोचते ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–हमने निरपेक्ष होय स्वभावतें ऐसें लिख्योहे सो रुचे तो निश्चय स्नेहकरिकें चित्तमें धारण करोगे ॥ १६ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी अपने भाई श्रीगोपेश्वरजी प्रति तृतीय शिक्षापत्र संपूर्ण करत हे तामें कहतहे जो यह शिक्षापत्र हम तुमकों लिखेहे सो तुम यह मति जानियो जो भाईके संबंधकरिके लिखे हे अथवा कछु लौकिक स्वार्थको भाव यह मनमें हे, तुमकों प्रसन्न करिवेके अर्थहू नांही हे निरपेक्षभावसों लिखेहे, श्रीमहाप्रभुजीकी निधि घरमें विराजतहे तिनकी सेवासामग्रीमें अलौकिक भाव होय तो आनंदको अनुभव होय यातें लिखेहे तातें जो तुह्मारे चित्तमें रुचे तो यह उपर जितनो प्रकार कह्यो हे सो चित्तमें निश्चय धारण करिवेयोग्य पदार्थ हे काहूके आगें प्रकाश करिवेयोग्य नांहीहे। यह मार्ग श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको हे सो भावात्मक गोप्य हे तातें स्नेहकरि अपने चित्तमें सर्वभावको धारण करोगे ॥ १६ ॥

इति श्री हरिरायजीकृतं तृतीयं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३ ॥

शिक्षापत्र ४.

अब चतुर्थ शिक्षापत्रमें भावना निरूपण करतहे। उपर कहे जो सत्संगकरि दुःसंगको त्याग करे ताके हृदयमें भगवान् पधारे सो भगवान् श्रीकृष्ण विरुद्धधर्माश्रय हे तिनके स्वरूपको ज्ञान होय सो स्वरूप अब आगें सिद्धांतपूर्वक निरूपण करतहे–

मूलं–प्रभोर्धर्माः श्रुतौ प्रोक्तास्तथा भागवतेऽपि च ॥
अप्राकृताः स्वरूपैकनिष्ठा भिन्ना न रूपतः॥१॥

शब्दार्थः–प्रभुके धर्म अप्राकृत (मायासंबंधरहित) ओर एक स्वरूपमेंही स्थित स्वरूपतें भिन्न नांही एसे श्रुतिमें तथा श्रीभागवतमेंहू निरूपण कीयेहें ॥ १ ॥ टीका–प्रभु श्रीकृष्ण हे तिनके धर्म श्रुतिमें विस्तारकरिकें कहेहें ओर श्रीभागवतमेंहू प्रभुके सब धर्म कहे हें सो श्रुतिके तथा श्रीभागवत दोउके वचन प्रमाण जाननें, जिनके हृदयमें श्रुतिके वचन ओर श्रीभागवतके वचन प्रमाण नांही हे सो जीवकों आसुरी जाननें, जिनके हृदयमें श्रुतिके वचन ओर श्रीभागवतके वचन प्रमाण हे तिनकों शुद्ध दैवी जीव जाननें। सो श्रुतिहू भगवानके स्वरूपकों अप्राकृत कहतहे ओर श्रीभागवतहू श्रीठाकोरजीके स्वरूपकों अप्राकृत कहतहे सो प्राकृत ओर अप्राकृतमें यह तारतम्य हे जो अप्राकृत हे सो सदा एकरस केवल आनंदमय हे तहां लौकिक मायाके गुणको प्रवेश नांहीहे ओर प्राकृत हे सो मायाजन्य हे, मायाकृत गुण, काम, क्रोध, मद, मत्सर, सुख, दुःख सब लगे,हे सो काल पायके प्रकट होय तथा काल पायके नष्ट होय जाय यह प्राकृत जाननों। तातें प्रभुको स्वरूप अप्राकृत जानें। अप्राकृत प्रभुको स्वरूप जान्यो कब

जानियें जब प्रभुके स्वरूपमें ओर नाममें दृढ निष्ठा होय, श्रीठाकुरजीके स्वरूपकी सेवा कीये विना रह्यो न जाय ओर श्रीठाकुरजीके नाम श्रीठाकुरजीकी लीलासंबंधी कीर्त्तन विना न रह्यो जाय तब जानियें जो श्रीठाकुरजीके नामरूपमें निष्ठा भई। श्रीठाकुरजीसंबंधी धर्ममें सगरी इंद्रिय मन देह लग्यो रहे तब जानियें जो या वैष्णवपर प्रभु कृपा कीये ॥ १ ॥

मूलं–कर्तृत्वसर्वरूपत्वसर्वाधारत्वमुख्यकाः ॥
व्यापकत्वविरुद्धात्मधर्माद्याःश्रुतिरूपिताः ॥ २ ॥

शब्दार्थः–कर्त्तापनो, सर्वरूपपनो तथा सर्वाधारपनो यह मुख्य धर्म ओर व्यापकत्व तथा विरुद्धधर्माश्रयत्व आदि सर्व धर्म श्रुतिमें निरूपण कीयेहें ॥ २ ॥ टीका–श्रुति ओर श्रीभागवत प्रभुकों अप्राकृत क्रियारूप कहतहे जो रूप श्रीठाकुरजी चाहे सोही रूपकों अपने भक्तनके सुखदानार्थ धरि लेई सो श्रीभागवतमें प्रसिद्ध वर्णन हे–जब हिरण्यकशिपुनें प्रह्लादजीकों बहूत दुःख दीये तब प्रभु श्रीनृसिंहरूप धरिकें हिरण्यकशिपुकों मारे प्रह्लादकी रक्षा करी लीनी तथा श्रीयशोदाजीकों मुख्य बालभाव हे तिनके बालक होय पलनामें झूलत हे ओर व्रजभक्तनकों पतिभाव हे तातें उनकों रतिदान मानमोचनहू करत हे एककालावच्छिन्न सर्व लीला करत हे काहेतें जो सर्वके आधाररूप मुख्य श्रीकृष्ण हे, कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं सर्वसामर्थ्ययुक्त हे, सगरे व्यापक हे, सब ठोर श्रीकृष्णकीही सत्ता हे ओर सबतें न्यारे हे येही विरुद्धधर्माश्रय जो सबमें हे ओर सबतें न्यारे हे। याभांति वेद, पुराण, श्रीभागवत भगवानकों अलौकिक रूप निरूपण करतहे ॥ २ ॥

मूलं–ऐश्वर्याद्या अंतरंगधर्मा भागवते तथा ॥
तेऽपि स्वरूपभेदेन मर्यादापुष्टिभेदतः ॥ ३ ॥

सर्वेऽपि च विभिद्यंत इति श्रीमत्प्रभोर्वचः ॥
अतोऽत्र पुष्टिमार्गीयमंतरंगं विशेषतः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–तेसें ऐश्वर्यादिक अंतरंगधर्म श्रीभागवतमेंहू निरूपण कीये हे सोहू मर्यादा ओर पुष्टि दोय भेदसों स्वरूपके भेद करके सर्व धर्महू भेद पावेहें एसे आपके वचन हे तासों यहां विशेषसों अंतरंग पुष्टिमार्गीय धर्म हे ॥ ३ ॥ ४ ॥ टीका–श्रुति ओर श्रीभागवत दोय भावको स्वरूप कहतहे एक भाव तो ऐश्वर्यको हे प्रभुकों व्यापक सर्वके आधाररूप कहतहे सो मर्यादाभक्त ऐश्वर्य जानि भजन करतहे, श्रुति नेतिनेति कहतहे, ब्रह्मा, शिव, शेषादिक ऐश्वर्यभावसों भजन करतहे सो मर्यादाभक्त हे, ओर प्रभुके अंतरंग भक्त हे सो स्नेहभावसों भजन करतहे। नंद, यशोदा, व्रजभक्तादि पुष्टभक्त हे सो श्रीठाकुरजी एकहीहे परि भक्तनके भावकरि न्यारेन्यारेहू दीसतहे सो श्रीभागवतमें कहेहे जो–जब अक्रूरजी श्रीठाकुरजीको मधुपुरीमें पधरायके लेगये तहां जाको जेसो भाव हतो तेसोही दर्शन भयो, कंसको वैरभाव हतो तातें कालरूप देखे, जोगीजन परमतत्त्व देखे, मथुरास्थस्त्रीजन भक्त परमकोमल सुकुमार देखे, जहां जेसो भक्तनको भाव तहां श्रीठाकुरजी ताही भावसों विराजतहे, मर्यादाभक्त ऐश्वर्यभावकरि आराधना करत हे, यह जानतहे जो प्रभुकों भूक प्यास नांही, कोटि ब्रह्मांडके कर्त्ता हे, पालन करे, संहार करे, तिनकों हम कहा देयँगे? प्रभु हमारी रक्षा करतहे यह भाव हे तिनसों कछु प्रभु मांगत नांही, ओर पुष्टिभक्त नंद, यशोदा, व्रजभक्तादिककों स्नेहभाव हे जो एक क्षणमें भूखे होयँगे, शीत, उष्ण, लागत हे एसो भाव हे तहां श्रीठाकुरजी मांगिकें अंगीकार करत हे सो श्रीभागवतमें प्रसिद्धही निरूपण हे । ऐश्वर्यभावमें मर्यादारीति हे ओर स्नेहभावमें पुष्टिरीति हे ॥

याभांति स्वरूपभेदतें न्यारे न्यारे रसको अनुभव हे सो दोउ मार्ग प्रसिद्ध हे ॥ ३ ॥ सर्वमें व्यापी भगवान् हे सो शास्त्र, पुराण, श्रीभागवत कहतहे ओर श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु सर्वव्यापक प्रभुकों कहेहे परंतु अंतरंग पुष्टिमार्गीय भक्तनको भाव सर्वोपर हे सो काहेतें जो ज्ञानी हे तथा मर्यादामार्गीय भक्त हे सो भगवानको सर्वव्यापक जानिकें भजन करतहे तिनकों स्वरूपानंदको अनुभव नांही केवल मोक्षके अधिकारी हे, ओर पुष्टिमार्गीय भक्त हे सो सर्वोपर हे श्रीठाकुरजीके अंतरंग सदा सेवा, शृंगार, भोग आदि करिकें स्वरूपानंदको अनुभव करतहे तिनतें एकक्षण श्रीठाकुरजी न्यारे नांही रहतहे तातें यह पुष्टिभक्ति विशेषकरि सर्वोपर हे ॥ ४ ॥

मूलं–विरुद्धधर्माश्रयत्वं स्वसुखाय विचारयेत् ॥
प्रभुः कुमार एवास्ति व्रजे मातृपदांकगः ॥ ५ ॥
श्रीभागवतवाक्येन कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
व्याख्यातं च तथैवाऽस्मदाचार्यैर्विवृतावपि ॥६॥

शब्दार्थः–अपने सुखके अर्थ प्रभुकों विरुद्धधर्माश्रयत्व विचारे, दोय भैया व्रजमें कुमार अवस्थाकूं राखतभये एसें वाक्यतें व्रजमें 'मातृपदांकगः' (श्रीयशोदात्संगलालित) प्रभु कुमारही हे, श्रीमदाचार्यजीनें श्रीसुबोधिनीजीमेंहू एसोही व्याख्यान कीयो हे ॥ ५ ॥ ६ ॥ टीका–प्रभुको स्वरूप विरुद्धधर्माश्रयी हे यह विचार भक्तजनकों अवश्य हृदयमें करनो । वैष्णवको मुख्य धर्म यही हे जो प्रभुकों विरुद्धधर्माश्रयी जाने काहेतें जो जहांतांई भक्तनकों विरुद्धधर्माश्रयको ज्ञान न होय तहांतांई प्रभुकी लीलामें असंभावना विपरीतभावना होय सो भक्तिबीजको नाश करे, तांको प्रकार कहत हे जो प्रभुकी लीलामें संदेह आवे जो दामोदरलीलामें प्रभुकी कटि छोटिसी ओर दोय अंगुरीको

बीच अंतर तामें श्रीयशोदाजी दाम जोरत जाय तोहू दोय अंगुरी घटे सो केसें ? यह दोषबुद्धि सो असंभावना ओर माखनके लिये प्रभु क्यों रुदन कीये? तथा मानादिक लीलामें प्रभु एसो दैन्य क्यों करत हे ? या भांति दोषबुद्धि आवे सो विपरीतभावना, यह दोष कब जाय जब श्रीठाकुरजीकों विरुद्धधर्माश्रयी जानें, यह मुख्य विचार वैष्णवकों कर्त्तव्य हे । प्रभु कुमार पांच बरसके परमसुंदर श्रीयशोदाजीके अंकमें विराजित हे ओर भक्तनकों सर्वलीलाको अनुभव करावतहे, प्रभुकी सगरी लीला नित्य हे, आनंदरूप हे, जेसें प्रभु आनंदरूप नित्य हे तेसें ही प्रभुकी लीला हे सो आगें वर्णन करत हे ॥ ५ ॥ श्रीमद्भागवतमें नित्यलीला कहेहें जो कुमारलीला व्रजमें राखिकें पौगंड किशोर वयकी लीला कीये 'कौमारं जहतुर्व्रजे' (व्रजमें कुमार अवस्थाकूं राखत भये) तासूं मनुष्यको बालपनो गये पीछे फेरी बालपनों या जन्ममें एकदिनहू न आवे ओर श्रीठाकुरजीकी सगरी लीला नित्यहे बाल अवस्थामें किशोरलीला करतहे किशोर अवस्थामें बाललीला करतहे, यह विरुद्धधर्माश्रयी प्रभुकों जाननें । ताहीतें श्रीभागवतमें श्रीशुकदेवजी कहेहे कुमारलीला राखि दुसरी लीला कीयें या श्लोकके व्याख्यान श्रीआचार्यजी महाप्रभु निबंध श्रीसुबोधिनीजी सप्तार्थ विवेचन करी कीये हे जो नित्यलीला ठोर ठोर संपादन कीये ताही भांति श्रीआचार्यजी महाप्रभु पुष्टिमार्गमें सेवा प्रकट कीये जामें वर्षके वर्ष जन्माष्टमी, दान, रास, होरी, फूलमंडली, हिंडोरा सब नित्यलीलाको अनुभव साक्षात् होत हे । या भा-

---

१ श्रीभागवतके अर्थकी सात रीतसों एकता करी हे । तामें श्रीसुबोधिनीजीमें वाक्यार्थ, पदार्थ, अक्षरार्थ ये तीन अर्थ तथा निबंधमें " शास्त्रार्थ, स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ ओर अध्यायार्थ मिल चार अर्थ एसे सात रीतसों एकता करी हे । पदेऽक्षरे । एकार्थे सप्तधा जानन्नविरोधेन मुच्यते. "

वर्ते वैष्णव नित्यलीलाको भेद (अभिप्राय) जानि स्मरण भजन करे॥ ६॥

मूलं–व्रज एव कुमारश्च कुमारीभावविद्धरिः ।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥७॥
एतद्वाक्यं मिश्ररूपं कुमारः केवलो हरि ।
सामग्र्यपि तथैवास्ति यतो गोप्यः कुमारिकाः८

शब्दार्थः–कुमारिकाके भाव जानिवेवारे हरि व्रजमेंही कुमार हे ओर (श्रीभागवतके तृतीयस्कंधके द्वितीयाध्यायके छवीसमें श्लोकमें लिखे हे जो) ग्यारे वर्ष गूढप्रतापवारे श्रीवलदेवजीसहित तहां (व्रजमें) वसे ॥ ७ ॥ यह वाक्य मिश्ररूप हे, स्मृतिमें व्यापकरूप तथा ऐश्वर्य-ज्ञानादिधर्मसहित रूपको निरूपण हे, दशमस्कंधमें 'कौमारं जहतुर्व्रजे' यह वाक्यमें कुमार अवस्था व्रजमें राखी एसें निरूपण हे ओर तृतीय स्कंधमें 'एकादशसमास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्' यह वाक्यमें ग्यारे वर्ष व्रजमें वसे एसें मिश्र व्यापक कौमार तथा पौगंड किशोर अवस्थारूप प्रतिपादक वाक्य हे, परंतु वस्तुतः केवल कुमारही हरि हे काहेतें जो व्रजभक्त (ऋषिरूपा) कुमारिका हे ओर सामग्रीहू तेसीही हे ॥ ८ ॥ टीका–व्रजमें प्रभु कुमार हे यातें जो कुमारी जो सोरह हजार अग्निकुमारिका पांच पांच वर्षकी हे उनके भावनीय भावनामें पांचवर्षके प्रभु हे काहेतें जो रसशास्त्रमें यह कहेहे जो जेसो भाव स्त्रीको होय तेसोही पति होय तब रसविशेष होय तातें कुमारिकाकों प्रभु कुमाररूपसों भावकी वृद्धि करतहे । ओर ग्यारह वर्षकी लीला व्रजमें सदा हे तामें वाललीलातें पौगंड किशोर सबही करतहे । कुमारिकाने गूढ भावसों कात्यायनी देवीको अर्चन कीयो (गूढभावतें छिपायें यातें जो हमारे भावकों श्रीनंदरायजी

१ "कुमारी चाभवद्धरिः" एसो पाठ कोउ पुस्तकमें हे सो सर्व भगवद्रूप हे या भावसों हे ताको अर्थ कुमारीरूप तथा कुमाररूप हरि भयेहं एसो हे.

श्रीयशोदाजी आदि व्रजमें कोउ न जाने काहेतें जो गूढभाव प्रकट भयेतें रस जातरहतहे तातें सबसों छिपाय कात्यायनीको अर्चन कुमारिकानें कीयो) ताकरिकें श्रीठाकुरजीकों अपने वश्य कीये। कुमारिकाको गूढभाव प्रभु जानिकें चीरहरणकरि सर्वांगदर्शन करी अलौकिक देह संपादन कीये पाछें वस्त्रहू अलौकिक करीकें दीये वरदान दीये जो शरदृऋतुमें रासकरि तुह्मारो मनोरथ पूर्ण करेंगे सो रासमें कुमारतें ग्यारहवर्षके किशोरवय धरिकें कुमारीनको जेसो जेसो मनोरथ हतो सो सब संपूर्ण कीयो याभांति गूढभावसों कात्यायनीको अर्चन करी कुमारिकानें प्रभु वश्य कीये ॥ ७ ॥ याभांति दोय वाक्य हे दोय प्रकारको भाव हे श्रुतिवाक्यतें ऐश्वर्यभाव तथा श्रीभागवतके वाक्यतें कुमारभाव सो मिश्रित दोय रूप प्रभुके हे सो केवल कुमाररूप हरि कुमारिकाके भावकरिकें हे। यद्यपि प्रभुकी स्थिति सगरे हे प्रभुके व्यापक धर्म ऐश्वर्य ज्ञानादिक विचारिकें मर्यादामार्गोक्त प्रभु सगरे हे परंतु गोपकुमारिकाके पासही रसरूप प्रभु हे, कुमारिकाके भाव विना रसरूप प्रभु तहां नांहिहे काहेतें जो भावात्मक रसरूप प्रभु पात्र विना ओरठोर रहे नांही तातें भावरूप पात्र कुमारिका हे तातें कुमारिकाके पास भावात्मक प्रभु हे ॥८॥

मूलं—एवं सतीदृशे रूपे रासलीलादिरूपणम् ॥
विरुद्धधर्माश्रयत्वबोधायैव हि युज्यते ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—जब एसें मिश्ररूप हे (व्यापक, कुमार, पौगंड, किशोर एसें निरूपण कीयेहें) तब एसें रूपमें रासलीलादिक निरूपण हे सो विरुद्धधर्माश्रयत्वबोधके लिये ही घटेहें ॥ ९ ॥ टीका—जो रसात्मक प्रभु कुमारिकाकेही पास हे सो रासलीलामें वर्णन हे जो वेणु बजाय सगरे व्रजभक्तनकों बुलायके पाछे श्रीठाकुरजी सगरे व्रजभक्तनसों रम-

ण कीयो तब सबनकों सौभाग्यमद भयो, एक गुणातीत अग्निकुमारिकाकों मद न भयो तब श्रीठाकुरजी यह कुमारिकाकों लेयकें पधारे पाछें उनहूकूं सौभाग्यमद भयो तब तहांते अंतर्ध्यान होय यह गुणातीत भक्तके हृदयमें पधारे। जो प्रभु हृदयमें न होय तो एक क्षणमें दशमी अवस्था (मरण) भक्तनकी होयजाय सो जब गुणातीत कुमारिकानें बाहिर प्रकट प्रभुकों न देखे ताही समय मूर्च्छा खायके गिरी सो प्रभुनें दोयभुजासों उठायी हे तब वह भक्त बोली "हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वाऽसि क्वाऽसि महाभुज !। दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥(हा नाथ ! हा रमण ! हा प्रिय ! कहांहो कहांहो ? हा बडेभुजवारे ! आपकी दासी ओर दीन मोको हे सखे ! सन्निधान बताओ !)तुम पास हो सो काहेतें जो महाभुजातें उठायकें रक्षा कीनी हे तो दर्शन देउ, पाछें सगरे भक्त फेरि पुलिनमें आयकें गुणगान कीये पाछे निःसाधन होय रुदन कीयो तब उनहीके भीतरमेंतें बाहिर प्रकटे तातें कुमारिकाके पासही प्रभु हे ओर ऐश्वर्यधर्मकरिकें सब ठोर व्यापक हे। या भांति विरुद्धधर्माश्रयको बोध कीयो सो वैष्णवकों अवश्य जान्यो चाहियें ॥ ९ ॥

मूलं–इदं हि पुष्टिमार्गीयं तदेव ज्ञायते बुधैः ।
गीतगोविंदाद्यपद्येऽप्येतदेव निरूप्यते ॥ १० ॥

शब्दार्थः–यह पुष्टिमार्गीय तत्त्व हे सो एसें ही बुध (पंडित) जानेहे काहेतें जो गीतगोविंदकाव्यके प्रथमश्लोकमेंहू श्रीनंदरायजीके वचन कुमार–अवस्थासूचक लिखेहे तथा श्रीस्वामिनीजीके संग क्रीडाहू लिखी हे सो एसेंही निरूपण कीयेहे ॥ १० ॥ टीका–तहां कोई कहे जो कुमारिकाकेही पास प्रभु क्यों वसतहे ? तहां कहतहे जो कुमारिका पुष्टिमार्गीय हे यह बुद्धिकरिकें जाननों, कुमारिकाके धर्म

जेसो धर्म जब आवे तब जानियें जो पुष्टिमार्गीय धर्म आयो एसो धर्म दुर्लभ हे तातें अहर्निश कुमारिकाके भावकी भावना मनमें करनी दासत्व कीयेतें कुमारिकाकी कृपातें भाव जब हृदयारूढ होय तब प्रभुको अनुभव होय यह बुद्धिमें निश्चय करी कुमारिकाके भावकी भावना करियें सो श्रीआचार्यजीके पुष्टिमार्गमें उनहीके भावकी सेवा हे यह जानि मार्गकी रीतिसों सेवा करियें । श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजीके चरणकमलको आश्रय लेकें उनके भावरूपही पिता-पुत्रको जानियें । गीतगोविंदमें मानादिक विहार जयदेवने निरूपण कीये सो कुमारिकाके भावकी सब लीला जाननी । या प्रकार प्रभु कुमारिकानके परवश हे, रसके अनेक ग्रंथ हे सो गीतगोविंद आदिमें सब आये सो कुमारिकाकी लीला या प्रकार मनमें जानि भावना करनी ॥ १० ॥

मूलं–अन्यथा नंदवचनं तादृशे युज्यते कथम् ॥
अतस्तु पुष्टिमार्गीयविरुद्धगुणसंश्रयः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–एसें न होय तो श्रीनंदरायको वचन प्रभुके विरुद्धधर्माश्रयत्व स्वीकार्यें विना घटे केसें ? तासों पुष्टिमार्गीय प्रभु विरुद्धधर्माश्रयी हे ॥ ११ ॥ टीका–श्रीनंदरायजीके वचन सत्य जाननें । काहेतें जो गोडदेशतें सोरह हजार कुमारिका

---

१ मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे ! गृहं प्रापय । इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥

("राधे ! आकाश मेघनतें व्याप्त हे, तमालवृक्षनतें वनकी पृथ्वी श्याम हे, रात्रिमें यह डरपे हे तासूं तुम या (श्रीकृष्ण) कूं घर पहोंचाव." एसे श्री नंदरायजीके वचनतें चले श्रीराधिकाजी तथा श्रीकृष्णकी श्रीयमुनाकिनारेके मार्गके निकुंजके विषे गुप्त विहारें जय पावत हे.)

श्रीनंदरायजी कंसको देवेके लिये लाये सो वह कुमारिका पुष्टिमार्गीय हती तातें प्रभुकी सेवामें लागी तब श्रीनंदरायजी कंसको नांही दीये कुमारिकाकी बोहोत सराहना करी पुत्रके सेवार्थ घरमें राखि सो श्रीनंदरायजीके वचन बडेबडे तादृशीय सराहना करतहे तातें कुमारिकाको स्नेहभाव श्रीनंदरायजीसों अधिक हे। तातें श्रीठाकुरजी कुमारिकाके वश हे। एसो पुष्टिमार्ग सर्वोपरि हे जामें श्रीकृष्ण भावात्मक रीतिसों सदा विराजतहे। सो पुष्टिमार्गमें प्रभु विरुद्धधर्माश्रयस्वरूपसों विराजतहे। अब आगें श्लोकमें विरुद्धधर्माश्रयको भाव प्रकाश करी वर्णन करतहे ॥ ११ ॥

मूलं–रसमार्गीयधर्मास्तु ते बोद्धव्या विचक्षणैः ॥
बालो रसिकमूर्द्धन्यः स्ववशोऽन्यवशःसदा॥१२॥

शब्दार्थः–विचक्षण जो चतुर पुरुप हे तिनके रसमार्गके धर्म समजिवेयोग्य हे। श्रीठाकुरजी बालक हे तोहू रसिकके शिरोमणि हे अपने वश हे तोहू सदा भक्तनके वश हे ॥ १२ ॥ टीका–रसमार्गकी रीतिमें तथा मर्यादामें विरोध हे ओर पुष्टिमें विरोध नांही, पुष्टिमें विलक्षण रीति हे सो कहतहे-श्रीरामचंद्रजीके अवतारमें धर्मस्थापनकी रीति हे तातें एकपत्नीव्रत हे ओर श्रीकृष्णावतारमें समस्त व्रजभक्तगोपभार्यासों रमणहू धर्मका स्थापन हे, ओर ठोर लोकवेदमें जहां रसमार्ग तथा रसशास्त्रवर्णन हे तहां धर्ममार्गतें विरोध हे, काहेतें जो रसशास्त्रमें परकीयारमणमें अधिकरस वर्णन कीयो हे स्वकीयामें कछु न्यूनभाव हे सो जहां परकीयारमण भयो तहां धर्मस्थापन नांही ओर जहां धर्मस्थापनवर्णन शास्त्रमें हे तहां परस्त्रीको मनकरिकें रमण विचारे तोहू दोष हे यह मर्यादामार्गकी रीति हे ओर पुष्टिमार्गमें श्रीठाकुरजी विरा-

" लोकवत्तु लीला कैवल्यम् " यह व्याससूत्रमें लोकवत् जो लीला हे सो मोक्ष हे ऐसें स्पष्ट निरूपण हे।

जंतहे सो सगरे धर्मको स्थापन करतहे ओर समस्तव्रजभक्तनसों रस-शास्त्रोक्त रमणहू करतहे यह विलक्षणता हे । पुष्टिमार्गमें श्रीठाकुरजी बालक हे पलनां झूलत हे ओर परमरसिकनके मुकुटमणि ग्यारहवर्षके षोडशवर्षके एककालावच्छिन्न हे । अपने वश्य हे कोटानकोटि भांतिके कोई साधन करे ओर ब्रह्मादिक शिवादिक कोटानकोटिवरसतें साधन करतहे तिनको कबहू दर्शन होतहे. वेद नेति नेति कहतहे काहूके वश प्रभु नांही ओर सदा भक्तनके वश हे । श्रीयशोदाजी भक्तिकरिकें बांधेहे सदा व्रजभक्तनके आधीन हे भक्त कहतहे सोही करतहे अन्यथा जानत नांही यह विरुद्धधर्माश्रय जाननों ॥ १२ ॥

मूलं–अभीतः सर्वथा भीतः साक्षेपो निरपेक्षकः ।
चतुरोऽपि महामुग्धः सर्वज्ञोऽप्यज्ञ एव च ॥१३॥

शब्दार्थः–निश्चय भयरहित हे तोहू भययुक्त हे इच्छायुक्त तोहू निरपेक्ष (इच्छारहित) हे, चतुर हे तोहू महामुग्ध हे, सर्वज्ञ हे तोहू कछु नांही जानत हे ॥ १३ ॥ टीका–प्रभु केसेहे भय करिकें रहित हे काहेतें जो काल के काल हे रंचक भ्रुकुटिविलासतें कोटानकोटि ब्रह्मांड रचे ओर नाशहू करे सगरे देवता डरपत रहतहे, तिनकों भयको लेश नांही ओर भययुक्त हे सो श्रीठाकुरजी जब माटी खाई तब श्रीयशोदाजी लकुटी लेकें डरपावतहे जो माटी क्यों खाई? तब श्रीठाकुरजी डरकरि नेत्रमें जलभरिकें कहतहे जो मैया मेंनें माटी नांही खाई याभांति भक्तनसों डरपत हे जो अप्रसन्न होय कबहू मान मति करे एसे प्रभु हे । ओर प्रभुकों काहू वस्तूकी अपेक्षा नांही हे । अक्षरब्रह्मसारिखो घर हे लक्ष्मीजीसारिखी रानी हे कौस्तुभमणि आभूषण हे इत्यादि अलौकिक पदार्थ हे, एकक्षणमें सर्व सिद्ध करे एसी मायासारिखी दासी हे तिनकों कहा अपेक्षा हे? तासों निरपेक्ष हे ओर भक्तनकी

रंचकहू वस्तु होय ताकी लेवेकी अपेक्षा हे व्रजमें श्रीयशोदाजी तथा व्रजभक्तनसों नवनीत खिलोनां आदिके लिये आर करतहे। ओर प्रभु चतुरशिरोमणि हे कोटि ब्रह्मांडमें जो कोउ मर्यादा विना चले तिनकों दंड देतहे क्षणक्षणकी क्रिया ओर सबनके मनको भाव जानतहे ओर भक्तनके आगें महामुग्ध हे बालक हे भक्त देतहे सोई आरोगतहे आपु कछु जानत नांही ओर सर्वज्ञ हे सब ठोर व्यापक हे सगरी सत्ता प्रभुकी हे तिनतें तीनलोकमेंहू कछु दूरे नांही हे ओर भक्तनके आगें अज्ञ कछु जानत नांही खेलतमें हारजात हे चंद्रमाकों लेकें खेलनके लिये रुदन करतहे। एसे विरुद्धधर्माश्रयी प्रभु हे ॥ १३ ॥

मूलं–आत्मारामोऽपि गोपीनां सर्वदा रतिवर्द्धनः ॥
पूर्णकामोऽपि कामार्त्तो ह्यदीनो दीनभाषणः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः–आत्माराम रमण करिवेवारे हे तोहू गोपीजनको सर्वदा रतिके वर्द्धन करिवेवारेहे, पूर्णकाम हे तथापि कामकरिकें आर्त्त हे, दीन नही हे तोहू दीन जेसे भाषणवारे हे ॥ १४ ॥ टीका–प्रभु सदा आत्माराम हे अपने आत्मामें रमण हे बाहिर नांही ओर गोपीजनके संग नित्य रमण करी नित्य नूतनकामकी वृद्धि करत हे ओर प्रभु पूर्णकाम हे साक्षान्मन्मथके मन्मथ हे तिनकों काम कहा वस्तु हे? सर्व कामतें पूर्ण हे तोहू कामकरि अति आर्त्त हे तनक भूख प्यासमें मांगतहे गोपीजनके मानादिकभयतें कामविरहकरि व्याकुल होय सखीको वेष धरिकें आपु मनावत हे, दीनताकरि रहित हे ईश्वरके ईश्वर हे त्रिलोकी जिनकों नमन करत हे सो दीनता क्यों करे? तोहू भक्तनसों दैन्य करत हे जो में तुह्मारो हूं तुम विना में ओरकों नांही जानत या भांति अनेक प्रकारके दैन्यके वचन कहत हे। यह विरुद्धधर्माश्रयत्व जाननों ॥ १४ ॥

मूलं–स्वप्रकाशोऽप्यप्रकाशो बहिष्ठोऽन्तःस्थितःसदा ॥ अस्वतंत्रः स्वतंत्रोऽपि समर्थो न तथापि च ॥ १५ ॥

शब्दार्थः–अपनेही तेजतें प्रकाशयुक्त हे तोहू (भक्तनके आगें) प्रकाशरहित हे बाहिर बिराजे हे तोहू सदा (भक्तनके) अंतःकरणमें बिराजेहे, स्वतंत्र हे तोहू(भक्तनकी पास) परतंत्र हे सर्वसामर्थ्ययुक्त हे तोहू (भक्तनके आगें) असमर्थ हे ॥१५॥ टीका–प्रभु अपनो प्रकाश सगरी त्रिलोकीमें करेहे ओर जिनको तेज अभिमान भयो ताको तत्काल नाश करी अपनोही प्रकाश राखे हे ओर भक्तनके आगें अपनो प्रकाश जानतही नांही जो भक्त करे सोही होय, भक्त कहे सोही आप करे, बाहिर स्थित हे सदा सर्वदा व्रजभक्तनके संग अनेक लीला करतहे ओर सर्व प्राणीमात्रके अंतःकरणमें सदा स्थित हे, प्रभु सदा स्वतंत्र लीला करतहे अपनी इच्छातें एक क्षणमें ब्रह्मांड उत्पन्न करतहे तथा नाश करतहे ओर भक्तनके वश हे। व्रजभक्त कहतहे इहां बेठो तहांही बेठत हे भक्तनके आगें स्वातंत्र्यकी बात नांही करत हे भक्तनके मनोरथ अनुसार प्रभु कार्य करत हे, प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं सर्वसामर्थ्यवान् हे ओर भक्तनके आगें अपने सामर्थ्यकरि रहित हे व्रजभक्त गोदमें लेय मन आवे तहां जात हे अपनो मनोरथ पूर्ण करतहे तहां प्रभु सामर्थ्यरहित होय रहतहे या भांति प्रभुको स्वरूप विरुद्धधर्माश्रयी हे ॥ १५ ॥

मूलं–एवं हि पुष्टिमार्गीयं विरुद्धस्वगुणालयम् ॥ कृष्णं कृपालुं सततं शरणं भावयेद्धृदि ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–एसे विरुद्ध अपने गुणके घर कृपालु पुष्टिमार्गीय–श्रीकृष्णके शरणकी निरंतर हृदयमें भावना करे ॥ १६ ॥ टीका–या प्रकार विरुद्ध गुणके घर जो काहूतें जान्ये न जाय एसे रसात्मक भाव-

त्मक प्रभु पुष्टिमार्गमें विराजतहे सो उपर कहेहे एसे भक्तनपर परम-कृपाल श्रीकृष्ण फलात्मक हे तिनकी निरंतर शरण जेयें मन कर्म वचन करि सर्वभावसों शरण रहियें, अपने हृदयमें शरणकी भावना निरंतर राखियें तब श्रीकृष्ण तो परम कृपाल हे सो कृपा करेंगे। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्न ग्रंथमें कहेहे "तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम" (तासों सर्वात्मतें श्रीकृष्ण मेरो शरण हे) तथा विवेकधैर्याश्रयमें कहेहे "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" (अशक्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरिही शरण) इत्यादि ठोरठोर श्रीआचार्यजी कहेहे तातें शरणकी भावना हृदयमें कर्त्तव्य हे अष्टाक्षरको महामंत्र सर्वसिद्धि-कर्त्ता जानि अष्टप्रहर स्मरण करियें सो विज्ञप्तिमें श्रीगुसांईजी कहेहे "यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम। तत एवाऽस्ति नैश्चिन्त्यमैहिके पारलौकिके" (जो तातचरण—श्रीमदाचार्यजीनें 'श्रीकृष्णः शरणं मम' कह्यो हे तातेंही यह लोक तथा परलोकमें निश्चितता हे) तातें श्रीकृष्ण जो परमकृपाल हे तिनकी भावना अपने हृदयमें करी मन कर्म वचनकरि शरण जेयें यह निश्चय सिद्धांत हे ॥ १६ ॥

मूलं—असाधनः साधनवानसाधुः साधुरेव वा ॥
शरणादेव निखिलं फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१७॥

शब्दार्थः—साधनरहित अथवा साधन करिवेवारो असाधु अथवा साधु हू शरणगयेतें संशयरहित समग्र फलकों प्राप्त होय ॥ १७ ॥
टीका—कोई जीवमें एकहू साधन नांही हे ओर कोई जीव अनेक प्रकारके साधन करतहे, कोई जीव साधु हे परमसुशील हे काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सरतारहित हे, कोई असाधु हे, कामक्रोधादिक दोषसों भर्यो हे, ओर कोई जाति, देवता, मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चांडालपर्यंत, पशु, पक्षि, आदि अखिलमेंतें कोई जीव श्रीठाकुरजीके

शरण जात हे तिनकों निश्चय फलकी प्राप्ति होयगी यामें संदेह नांही। प्रभुकी शरण यह सर्वोपरि साधन हे, जाकों प्रभुको शरण भयो सो जीव सर्वधर्म करिचूक्यो ओर अनेक साधन करतहे परि प्रभुके शरण नांही आयो तहांताई फलकी प्राप्ति नांही हे। तातें प्रभुके शरणगयेतें सगरो फल सिद्ध होतहे यह निश्चय सिद्धांत भयो ॥ १७ ॥

मूलं—भक्तिमार्गे साधनं च फलं शरणमेव हि ॥
सर्वधर्मपरित्यागः स्वतंत्रं चेत्फलं हि तत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—भक्तिमार्गमें साधन ओर फल शरणही हे तातें सर्वधर्म-परित्याग (अनन्यभक्ति) होय तो यह स्वतंत्र फलरूप शरण होय हे ॥ १८ ॥ टीका—भक्तिमार्गमें साधनहू श्रीकृष्णशरण हे ओर फलहू श्रीकृष्णशरण हे, साधन फल न्यारो नांही, साधनहू फलरूपहे तातें शरणही मुख्यफल हे, सो भगवान् गीताजीमें कहेहे " सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज " (सर्व धर्मको त्याग करिकें एक शरण-रूप मोकूं प्राप्त हो) या श्लोक उपर श्रीगुसाँईजी न्यारी स्वतंत्र टीका कीयेहे तामें शरणकी भावना मुख्यकरि निरूपण कीयेहे एक श्रीकृष्णको आश्रय जा जीवमें भयो तहां सगरे धर्म सिद्ध भये, तामें सर्वतें मुख्य फलरूप श्रीकृष्णको आश्रय हे यह भाव जानि अवश्य शरण कर्त्तव्य हे ॥ १८ ॥

मूलं—परोक्षे शरणं तादृङ्महापुरुषयोगतः ॥
कृपा चेत्तादृशानां हि तदा तद्द्वारकं भवेत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—अनवतार दशामें तेसे महापुरुषके योगतें शरण होयहे ओर जब तादृशीयकी कृपा होय तब तादृशीयद्वारा होय॥ १९॥ टीका—श्रीकृष्णकी अवतारदशामें प्रसिद्ध शरण होय ओर श्रीकृष्णके परोक्षमें श्रीआचार्यजीद्वारा शरण सिद्ध होय। श्रीआचार्यजीके परोक्षमें श्रीआचार्यजीके ग्रंथवचनामृतद्वारा शरण सिद्ध होय श्रीकृष्णकी प्राकट्यदशामें

तो प्रसिद्ध शरण होय परोक्षदशामें महापुरुष भगवदीयसों मिलिकें शरणको विचार करे सो यह पुष्टिमार्गकी रीति हे। सेवासमय साक्षात् शरण ओर अनोसरमें भगवदीयसों मिलिकें शरणकी भावना करे काहेतें जो तादृशीय भगवदीयकी कृपातें ताही भगवदीयद्वारा शरण सिद्ध होय। तामें संयोग विप्रयोग दोय प्रकारको शरण सिद्ध होत हे। सेवामें तो संयोगशरण सिद्ध हे, चरणस्पर्श करतही हे तुलसी नित्य समर्पतही हे यह साक्षात् शरण भयो ओर अंतःकरणमें शरण भगवदीयद्वारा होय ॥ १९ ॥

मूलं–तेषामपि तु पारोक्ष्ये तदुक्तैर्वचनैः स्वतः ॥
तत्प्रकाशितमार्गैकस्थितौ भवति सर्वथा ॥ २० ॥

शब्दार्थः–ऊपरके श्लोकमें कहे एसे महापुरुषके हु परोक्षमें विननें कहे वचनामृत करिकें स्वतः (आपतें) विननें प्रकट कीये मार्गमेंही मुख्यास्थिति होय तब सर्वथा शरण सिद्ध होय ॥ २० ॥ टीका–ऊपर कहे जो संयोगमें साक्षात् शरण ओर परोक्षमें भगवदीयसों मिलिकें शरण सिद्ध होय सो इहां भगवदीय महापुरुषरूप श्रीआचार्यजी हे इनद्वारा शरण सिद्ध होय। श्रीआचार्यजीके परोक्षमें भगवदीयसों मिलिकें श्रीआचार्यजीके वचनामृतग्रंथद्वारा शरण सिद्ध होय। जो श्रीआचार्यजी पुष्टिमार्ग प्रकट कीये हे तिनमें स्थित होय तब सर्वथा शरण सिद्ध होय। काहेतें जो श्रीकृष्णके परोक्षमें श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजी श्रीवल्लभकुल तथा तिनके परोक्षमें (असन्निधानमें) उनके वचनकी भावना करे सगरे ग्रंथनको भाव कहे सुने उनके पुष्टिमार्गमें स्थित होयकें शरणकी भावना करे तो निश्चय शरण सिद्ध होय ॥ २० ॥

मूलं–संसारिणा सदा दुष्टसंगिनामन्नदोषतः ।
बहिर्मुखानां मत्तानां कुतो मार्गस्थितिर्भवेत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थः–सदा दुःसंग करिवेवारे, अन्नदोषतें बहिर्मुख, तथा उन्मत्त संसारीनकी पुष्टिमार्गमें स्थिति कहांसूं होय ?॥२१॥टीका–ऊपर कहे जो साक्षात् शरण ओर परोक्षदशामें श्रीआचार्यजीद्वारा शरण विनके परोक्षमें उनके ग्रंथवचनामृतद्वारा भगवदीयसों मिलिकें पुष्टिमार्गमें स्थित होयकें शरण विचारे परंतु दुःसंग होय तो सगरो कीयो एकक्षणमें जातरहे काहेतें जो संसारी जीव हे सो सदा दुष्ट हे तातें दुष्टके संगतें निश्चय दुष्टता होय तातें संसारासक्त जीव हे तिनको संग कबहू नांही कर्त्तव्य हे, सो संसारी बहिर्मुख केसें जानियें तहां कहतहे-लौकिकविषयादिकमें तन मन धन करि उन्मत्त रहे, अष्टप्रहर लौकिकावेश रहे, भगवद्धर्ममें मन नांही लागे, अभिमान अहंकार मनमें वोहोत रहे एसे संसारी जीवके हृदयमें यह पुष्टिमार्ग कबहू स्थित न होय, एसो बहिर्मुख होय ताको संग करे तो पुष्टिमार्गतें नष्ट होयजाय। तातें संसारी बहिर्मुखको संग छोडिकें भगवदीयको संग करी शरणभावकी भावना करे॥२१॥

मूलं–तदर्थं श्रीमदाचार्यचरणांबुरुहाश्रयः ।
सदा विधेयस्तेनैव सकलं सिद्धिमेष्यति ॥ २२ ॥

शब्दार्थः–ताके लिये श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय सदा कर्त्तव्य हे तासोंही सर्व सिद्धिकों प्राप्त होयंगे ॥ २२ ॥ टीका–जो कदाचित् वल्लभकुल तथा तादृशीय वैष्णवको संग न होय ओर कछु ग्रंथवार्तामें अभिनिवेश न होय तो कहा करे तहां कहतहे जो दुःसंग (बहिर्मुखको संग) छोडिकें अपनेतें जितनी सेवा बनि आवे सो करे ओर अपने हृदयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुको दृढ आश्रय राखे, श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलकी भावना अष्टप्रहर मन लगायकें करे

तो सकल मनोरथ निश्चय सिद्ध होय। काहेतें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु अलौकिक अग्निरूप हे सो जो वैष्णव श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके शरण आयकें विनके चरणकमलको सदा मन लगायकें आश्रय करतहे तिनके सकल कार्य सिद्ध होय यह निश्चय सिद्धांत हे ॥ २२ ॥

मूलं–तदाश्रयोऽपि मनसः संगाभावेन चेत्सताम्।
तोषाभावेन शिथिलो यदि दैवाद्भविष्यति॥२३॥
तदास्माकं गतिः का वेत्येवं चिंताऽस्ति मे हृदि।
लौकिकक्लेशसंबंधो हर्यंगीकृतलक्षणम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थः–सत्पुरुषके संगके अभावतें मन प्रसन्न नहि रेहेवेतें जो कबहू विनको आश्रय शिथिल होयगो तब हमारी कहा गति होयगी यह चिंता मेरे हृदयमें हे, लौकिक क्लेशको संबंधही हरिकी अंगीकृतिको लक्षण हे (लौकिकमें क्लेश होय तब वैराग्य होय जेसें अंग, चित्रकेतु, पिंगला, कदर्य, इनकों क्लेशतेंही लौकिकासक्ति छूटी हे) यह मनमें जाननों॥२३॥२४॥ टीका-सदा मनकरि श्रीआचार्यजीको आश्रय करे सत्संगको अभाव होय भगवदीयको संग न होय तोहू मनतें आश्रय न छोडे अपने मनकों सबठोरतें छोडिकें श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें लगाव निरंतर तोषाभावकरिकें आश्रय शिथिल न करे। काहेतें जो भगवदीयके संगतें आश्रय बेगि सिद्ध होतहे भगवदीयके संग विना आश्रय बेगि सिद्ध नांही होतहे भगवदीयको संग होयगो तबही में आश्रय करूंगो एसें विचारिकें आश्रयकों शिथिल न करे, भगवदीय कहा जानियें कब मिले तहांतांई आश्रय कीये विना दुर्बुद्धि होयजाय तातें मनमें आश्रय न छोडे। जो होनहारहे सो होयगी जेसो दैव रच्यो हे तेसो होयगो में कहा करूं? या भांति

शिथिलभाव मनमें न करे। जेसेंतेसें अपने मनकों खेंचिके श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें लगावे सो श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें वर्णन कीयेहें "अशूरेणापि कर्त्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात्" (अशूर जो शूरवीर नही हे तिनकूंहू अपने असामर्थ्यकी भावनातें धैर्य कर्त्तव्य हे) इंद्रिय देह तो लौकिक सुख चाहतहे भगवत्संबंधमें आदिकालतें शिथिलही हे तातें इंद्रिय देह तो भगवद्धर्मतें मनकों शिथिल कीयो चाहतहे तासों इंद्रिय देह तो असुर हे परि मनमें असुरत्वकी भावना न करे, यह जाने जो नेत्रको मुख्य धर्म यह हे जो प्रभुको दर्शन करनो, हाथको यह धर्म हे जो सेवा करनी, अरु श्रवनसों भगवत्कथा सुननी, मुखसों भगवन्नाम लेनो, देहमें आलस्य न राखनो, तत्काल उठनो, भगवद्धर्ममें यह जाननो जो आज बने सो करिलेऊं कालि कहा जानियें कहा होयगो। या भांति श्रीमहाप्रभुजीको आश्रय करे ॥२३॥ अब वैष्णवके लक्षण कहतहे जो एक अपने श्रीकृष्णकी गति जानि ओर अन्याश्रय न करे यह वैष्णवको मुख्य धर्म हे, सो कब जानियें जब लौकिक क्लेशको संबंध होय तब मनमें चिंताकरि पीडित न होय, काहेतें जो हरि अपने जनकों लौकिक क्लेश अनेक प्रकारको देतहे तोहू यह जीव अपनो धर्म न छोडे हरिकूंही शरण कर मनमें चिंता न राखे यह अंगीकृत वैष्णवके लक्षण हे। जेसें श्रीगुसाँईजीके सेवक विठ्ठलदास, नारायणदासकी पास चाकरीकों गये तब नारायणदासनें विठ्ठलदासकों परगनेपर पठाये तहां कछु पईसा टुटे तब नारायणदासनें विठ्ठलदासकों बंदीखानो दीयो नित्य मारते सो विठ्ठलदासकी पीठकी खाल उतरि गई एसो दुःख पायो परंतु यह नांही कही जो में वैष्णव हों, पाछें श्रीगुसाँईजी आप पधारे तब विठ्ठलदास दर्शनकों आये तब श्रीगुसाँईजी पूछे जो तेरी यह दशा क्यों हे? तब विठ्ठलदासनें कही जो देहको दंड हे सो भुगते छुटे तब श्रीगुसाँईजी नारायणदा-

ससों कही जो या भांति मारे सों तोकों जीवपर दयाहू नांही आई ? तातें वैष्णवकों, परीक्षाके लिये हरि क्लेश देतहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें आश्रयके लक्षण कहेहे जो इतने दुःखमें हरिशरण राखे " ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः । दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे । भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते । अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वार्थे शरणं हरिः "। (यह लोकमें, परलोकमें, निश्चय हरि शरण हे, दुःखकी हानिमें तथा पापमें, भयमें कामादिककी अपूर्ति (अप्राप्ति) में, भक्तके द्रोहमें, भक्तिके अभावमें, भक्त अपनो अतिक्रम करे तब, अशक्यमें, सुशक्यमें, सर्व अर्थमें हरि शरण हे) इत्यादि वचनको विचार कर्तव्य हे, जितनो लौकिक वैदिक देहसंबंधि दुःख होय तामें चिंतातुर न होय एक अपने प्रभुहीके शरण रहे यह अंगीकृत वैष्णवके लक्षण हे ॥ २४ ॥

मूलं–लोके स्वास्थ्यमिति श्रीमदाचार्यवचनामृतात् ।
तदीयैः स्वामिहार्दज्ञैस्तोषः कार्यस्तु तेन हि ॥२५॥

शब्दार्थः–श्रीआचार्यजीके वचनामृत नवरत्नग्रंथमें हे तामें आप आज्ञा करेहे (जो लोकमें तथा वेदमें हरि स्वस्थता नही करेंगे) तासों स्वामीके हृदयको अभिप्राय जानिवेवारे तदीयकों यह कारणतें संतोष करनों ॥ २५ ॥ टीका–श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्नग्रंथमें वचनामृत कहेहे " लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति " (हरि लोकमें तथा वेदमें स्थिरता न करेंगे) यह वचनतें अपने जननकी लौकिक वैदिकमें स्थिति भगवान् नांही करावतहे, प्रभु लौकिक छुडायकें अपनोही आश्रय सिद्ध करावतहे तब भगवदीय स्वामीके हृदयको अभिप्राय चिंतन करतहे जो लोक वेद कार्य प्रभुनें नांही सिद्ध कीयो सो प्रभु भली करी जो लौकिक वैदिकतें

छुडाये । जो लौकिक सिद्ध होतो तो लौकिक कार्यके आवेशमें प्रभुकों भूलिजातो जो वैदिक सिद्ध होतो तो में वैदिक कार्यके आवेशमें प्रभुकों भूलिजातो तातें प्रभुकरि सो बहुत भली करी या भांति स्वामीके हृदयके अभिप्रायकी मनमें भावना करी संतोषकरि मनकों प्रसन्न राखे ताकों तदीय कहियें ॥ २५ ॥

मूलं—अतो हि लौकिकः क्लेशो नांतरः क्रियतां क्वचित् ।
बाह्यतस्तु प्रकर्तव्यो ह्यौदासीन्यप्रसाधनात् ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—तासों अंतरमें लौकिक क्लेश काहू समय नांही करनो ओर औदासिन्यकी सिद्धिके लिये बाहिरतें तो कर्त्तव्य है॥२६॥ टीका—अब उपर कहे जो श्रीठाकुरजी लौकिक वैदिक कार्य न सिद्ध करे तब भगवदीय मनमें संतोष करिकें क्लेश न करे प्रसन्न रहे पाछें लौकिक वैदिक कार्य न करे तो गृहस्थाश्रम केसें चले ? या भांति कोई संदेह करे तहां कहतहे जो लौकिक वैदिक सिद्ध न होय तब भगवदीय यह जाने जो मुख्य धर्म तो भगवत्सेवा स्मरण भगवदाश्रयही हे ओर मेनें लौकिक वैदिक कार्यमें मन लगायो तातें प्रभु कार्य सिद्ध न कीयो सो भली भई अब लौकिकवैदिकमें मन नांही राखूंगो. बने सोई करूंगो एसें विचारे । ओर बाहिर लोगनकों दिखायवेके लिये कछु करे हृदयतें उदासीन रहे, भगवत्सेवासंबंधी कार्यमें मन राखे, लौकिक वैदिक कार्यतें अपने मनकों खेंची लेय या भांति लौकिकमें रहे अपनो धर्म काहूकों न जतावे लौकिक वैदिक क्रिया लोगनकों जतावे । या प्रकार भगवदाश्रय करे तो प्रभु प्रसन्न रहे ॥ २६ ॥

मूलं—दुःखं दुःसंगजं चान्यल्लौकिकाभिनिवेशजम् ।
सत्संगाभावजं चापि तथा मार्गास्थितेरपि ॥२७॥

तत्तु मत्प्रभुपादाब्जकृपया सर्वथा मम ।
तदीयानां च संगेन क्षणाद्दूरीभविष्यति ॥ २८ ॥

शब्दार्थः–एक दुसंगजन्य दुःख हे दूसरो लौकिकावेशजन्य दुःख हे, सत्संगके अभावजन्यहू दुःख हे तथा मार्गकी स्थितिकोहू दुःख हे (जो पुष्टिमार्गमें स्थिति केसे रहे यह दुःख हे) ॥ २७ ॥ यह मेरो दुःख तो मेरे प्रभु (श्रीआचार्यजी) के चरणारविंदकी कृपातें ओर तदीयके संगतें क्षणमें निश्चय दूर होयगो ॥ २८ ॥ टीका–लौकिकावेश करावे एसो जो दुःसंग तिनको संग दुःखरूप जानियें वाको कह्यो कवहू न करियें यह भक्तकी टेक हे । जेसें प्रह्लादजी भगवद्भक्त हे उनकों अपने प्रभुको स्मरण करिवेमें पिताही प्रतिबंधक भयो सो प्रह्लादजीकों बहुत समझाये तव प्रह्लादजी न मानें तव उन प्रह्लादजीकों बोहोत दुःख दीयो जो तू भगवानको स्मरण मति करे तव प्रह्लादजीने अपनो मरणसमान दुःख सह्यो परंतु भगवदाश्रय न छोड्यो तब प्रभु प्रसन्न होय प्रह्लादजीकी रक्षा करी ओर हिरण्यकशिपुकों मारे । तेसेंही वैष्णवको दुःसंग होय सो तो लौकिककार्यमें लगावें तातें इनको संग दुःखरूप जानि त्यागही करे ओर जो भगवद्धर्ममें लगावे ताहीको सत्संग करे, जो कदाचित् सत्संग न मिले तो अपने पुष्टिमार्गकी रीतिप्रमाण सेवा स्मरण न छोडे, दुःसंगको दुःखरूप जानि सबतें न्यारो बेठि श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजीको आश्रय मनमें दृढ राखि नित्य नियमसों सेवा स्मरण करे यह पुष्टिमार्गको सिद्धांत हे ॥ २७ ॥ पुष्टिमार्गीय जितनें जीव शरण आयेहे तिन सबनके प्रभु श्रीआचार्यजी महाप्रभु हे, एसें श्रीमहाप्रभुजीके पदकमलकी कृपातें सर्वथा तदीयको संग होय, भगवत्सेवा स्मरण सब बनि आवे, पुष्टिमार्गको सिद्धांत हृदयारूढ होय । तातें श्रीमहाप्रभुजीके

चरणकमलकी कृपातें तादृशीय भगवदीयको संग होय तिनके संगतें श्रीमहाप्रभुजी एकक्षणहू दूरी न रहे । सो चोराशी वैष्णवकी वार्त्तामें प्रसिद्ध हे । जब श्रीआचार्यजी काशीमें आसुरव्यामोहलीला दिखाई तब एक वैष्णव काशीतें भगवानदास पास आयकें सब समाचार कहे तब भगवानदासने कही जो तोकों भ्रम भयो होयगो श्रीमहाप्रभुजी एसी कबहू न करे तब यह वैष्णवनें कही जो में अपनी आंखनसों देखिये आवतहू तब भगवानदासनें मंदिरके किंवारि खोलि यह वैष्णवकों श्रीआचार्यजीके दर्शन कराये आप बेठे पोथी वांचतहे तब वह वैष्णवके मनको संदेह गयो । तातें तादृशीय वैष्णवतें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी क्षणएक न्यारे नांही रहतहे एसे वैष्णवको संग अवश्य करे तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु हृदयमें पधारे । भगवदीयको संग एसो हे ॥ २८ ॥

मूलं—ते दुर्लभा इति मनः खिन्नं भवति नित्यदा ।
यदा प्रभुः कृपापूर्णः कृपयिष्यति दैन्यतः ॥२९॥
तदाचार्यपदासक्ताँस्तानुपस्थापयिष्यति ।
अस्माकं तु गतिर्नान्या श्रीकृष्णः शरणं मम।३०।

शब्दार्थः—एसे भगवदीय दुर्लभ हे ताकरिकें निरंतर मन खेदयुक्त होयहे सो जब दैन्यकरिकें कृपापूर्ण प्रभु कृपा करेंगे ॥ २९ ॥ तब श्रीआचार्यजीके चरणारविंदमें आसक्तिवारे वह भगवदीयनकों मिलावेंगे परंतु हमारे तो ओर कछु गत्ति नांही हे एक “ श्रीकृष्णः शरणं मम ” यह साधन हे । (द्वितीय श्लोकके पूर्वार्धमें) “ तदाचार्यपदासक्तिस्तानुपस्थापयिष्यति ” एसें काहू पुस्तकमें पाठ हे ताके

[1] यह अर्थ मूलके अनुसार नांही हे परंतु बोहोत पुस्तकमें हे तासो लिख्यो हे.

अनुसार अर्थ—श्रीआचार्यजीके चरणारविंदमें आसक्ति होयगी वह आसक्ति एसे भगवदीयकों मिलाय देयगी ॥ ३० ॥ टीका—एसे भगवदीय मिलने अति दुर्लभ हे मेनें सब ठोर ढूंढे परि मोकों नांही मिले तातें मे मनमें दुःख पावत हों तोहू मनमें दैन्य नांही आवत, जो मनमें दैन्य आवे तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कृपा करे। मोकों भगवदीयको संग नांही ओर दीनताहू नांही यह दुःख हे काहेतें जो श्रीआचार्यजीकी पूर्ण कृपा होय तबही भगवदीयको संग होय ओर कृपणवत् अत्यंत दैन्य होय। जेसें भगवदीयके सत्संगतें प्रभु कृपा करी हृदयारूढ होय तेसेंही अत्यंत दैन्य सिद्ध भयेतें प्रभु प्रसन्न होय हृदयमें आवे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीसुबोधिनीजीमें कहेहे जो प्रभु प्रसन्न करिवेको एक दैन्यही परम साधन हे, सो त्रिविधनामावलीमें पंचाध्यायीके प्रसंगपर नाम कहे हैं "दीनकृपाप्रकटितरूपाय नमः" सो सगरे साधन व्रजभक्तननें कीये श्रीठाकुरजीकी लीला करी, गुणगान कीयो, पाछें निःसाधन होय रुदन कीयो, तब श्रीठाकुरजी प्रकट भये। तातें दैन्य वडो पदार्थ हे, जब श्रीआचार्यजीकी पूर्णकृपा होय तब दैन्य आवे ॥ ३१ ॥ अब जो प्रकार दीनतादि सर्व धर्म हृदयमें स्थापन होय सो उपाय छेल्ले श्लोकमें कहत हे। यह जीव जब श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें मन कर्म वचन करि आसक्त होय तब दीनतादि सगरे धर्म हृदयमें स्थापन होय यह सर्वोपर उपाय हे ओर कोई नांही, काहेतें जो जब जीव श्रीआचार्यजीके शरण आय मन कर्म वचन करिकें इनके पदकमलको आश्रय करे तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु तो कृपानिधि हे, दैवी जीवनपर कृपा करी उद्धारार्थ प्रकटे हे, सो भक्तनकी सर्व आर्त्तिकों दूरि करेंगे सो श्रीसर्वोत्तमग्रंथमें श्रीगुसाँईजीनें श्रीआचार्यजीके नाम कहेहें "कृपानिधये

नमः ” “स्मृतिमात्रार्त्तिनाशनाय नमः” श्रीआचार्यजी कृपाके निधि हे और उनको नाम स्मरणमात्रमेंही सर्व आर्त्तिकों हरे हें । तातें श्रीआ-चार्यजीकी कृपातें दैन्य आदि सगरे धर्म हृदयमें आवे, ओर मेरेमें तो एकहू साधन नांही हे, एक ‘ श्रीकृष्णः शरणं मम ’ यहही गति हे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहे “ यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम । तत एवाऽस्ति नैश्चिन्त्यमैहिके पारलौकिके ” (हमारे पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी “ श्रीकृष्णः शरणं मम ” यह बतायेहें ताकरिकें हमको यह लोकमें ओर परलोकमें निश्चितता हे सो श्रीहरिरायजी कहत हे जो श्रीआचार्यजी श्रीगुसाँईजीके अनुसार मेरेहू एक अष्टाक्षरमंत्र “ श्रीकृष्णः शरणं मम ” येही गति हे, अष्टप्रहर याभांति शरणकी भावना करतहों । तातें जो जीव पुष्टिमार्गीय हे, तिनहूके श्रीआचार्य-जीको आश्रय करी अष्टाक्षरमंत्र कह्यो करनो यह सिद्धांत हे ॥ ३० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुर्थशिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥४॥

शिक्षापत्र ५.

अब पंचम शिक्षापत्रमें विरहभावकरिकें भगवान् भावनीय हे ताको साधन दैन्य हे दैन्यको साधन तापभाव हे यह निरूपण हे । ऊपर कहे जो तन मन धन करि श्रीआचार्यजीके पदकमलको आश्रय करी अष्टाक्षरमंत्र एक गतिरूप करे ताकों श्रीआचार्यजी कृपा करिकें दैन्यादि सर्व धर्म हृदयमें सिद्ध करे सो पंचम शिक्षापत्रमें वर्णन करतहे ।

मूलं–सदा विरहभावेन भावात्मा भाव्यतां हरिः।
कृष्णे हृदयदेशस्थः स्वामिनीनां कृपानिधिः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–सदा विरहभावकरिकें भावात्मा हरि, श्रीस्वामिनीजीके हृदयमें विराजिवेवारे, कृपानिधि, श्रीकृष्ण भावनीय हे ॥ १ ॥ टीका–सदा विरहकी भावना भावात्मक हरिकी करे तहां यह संदेह होय जो व्रजमें श्रीकृष्ण प्रकटे हे तिनकों सब कोई जानतहे ओर तुम कहे भावात्मक श्रीकृष्णकी भावना करे सो भावात्मक श्रीकृष्ण न्यारे हें सो कहां रहतहे ? कोन प्रकारसों उनकी भावना करे ? या भांति संदेह करे तहां कहतहे जो–श्रीकृष्णके क्रियात्मक ओर भावात्मक दोय स्वरूप हे। मथुरातें वसुदेवजी लेय आये सो क्रियात्मक स्वरूप ओर श्रीयशोदाजीके घर प्रकटे सो भावात्मक स्वरूप. श्रीकृष्णकी दोय लीला हे बाललीला ओर किशोरलीला, बाललीला श्रीगोकुलमें ओर किशोरलीला श्रीवृंदावनमें हे तातें बाललीलाके भावतें सेवा करे तथा किशोरलीलाके भावतें स्मरण करे सो श्रीगुसाँईजी कहेहे " सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वरः। स्मर्त्तव्यो गोपिकावृंदैः क्रीडन् वृंदावने स्थितः " (सदा सर्वात्मभावसों श्रीगोकुलके ईश्वर भगवान् सेव्य हे ओर वृंदावनमें स्थित व्रजभक्तनके जुथ साथ क्रीडा करिवेवारे भगवान् स्मरण करिवेयोग्य हे) इत्यादि वचनके अनुसार बाललीला श्रीनवनीतप्रियजीके स्वरूपमें तथा रासादिलीला श्रीगोवर्धननाथजीके स्वरूपमें हे सो विप्रयोगात्मक स्वरूप श्रीस्वामिनीजीके हृदयमें रहत हे, सो जब श्रीस्वामिनीजीके भावकी भावना करे जो श्रीस्वामिनीजी प्रभुकों कोन भांति लडावत हे ? कोन भांति गुणगान करत हे ? प्रभुके संग कोन भांति लीला करतहे ? यह भाव विचारे तो श्रीस्वामिनीजी कृपानिधि प्रसन्न होय भावको दान करे तब भावात्मक

प्रभुको अनुभव होय, प्रभुके अनुभवको ओर उपाय नांही काहेतें जो श्रीकृष्णके हृदयमें श्रीस्वामिनीजीही स्थित हे ओर कछु (श्रीस्वामिनीजी विना) श्रीकृष्ण जानतही नांही तातें श्रीस्वामिनीजीको आश्रय करी भावात्मक हरि (श्रीस्वामिनीजी जिनको विरह करतहे तिन) की भावना करे तब श्रीस्वामिनीजी कृपा करी प्रसन्न होय तब प्रभु अपनो अनुभव जतावे ॥ १ ॥

मूलं–अस्माकमतिभाग्येन तदास्यं वह्निरुद्गतः ।
अतः शीतलभावोऽस्मिन् मार्गे नैवोपयुज्यते ॥ २ ॥

शब्दार्थः–पुष्टिमार्गीय जीवके अति भाग्यतें भावनात्मक प्रभुके मुखारविंदरूप अग्नि (श्रीआचार्यजी) प्रकट भयेहे तासों यह मार्गमें शीतलभाव उपयोगमें नांही आवे हे [विरहात्मक तापसों प्रभु अनुग्रह करे] ॥ २ ॥ टीका–यह विप्रयोग भावाग्नि मेरे भाग्यमें तो नांही हे काहेतें जो यह भावात्मक अग्नि तो दास्य धर्म होय तिनके हृदयमें होय सो दास्य धर्महू अति कठिन-महा दुर्लभ हे ओर दैन्य अति दुर्लभ हे सो कहतहे जो स्वामीको सुख चाहे अपनो न चाहे सो दास, जेसें पद्मनाभदासजीकी वार्तामें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भोजनकों पधारे ताही समय जा व्यापारीको द्रव्य मार्गमें लुटायो हतो सो रोवत आयो तब पद्मनाभदासनें करज काढीके वा व्यापारीको द्रव्य दीयो परि बोलन नांही दीयो श्रीआचार्यजीको श्रम नांही करिवे दीयो एसो दास्य धर्म कठिन हे, ओर दैन्यको प्रकार रासपंचाध्यायीमें प्रसिद्ध कह्यो हे जो अंतर्धानसमय व्रजभक्तननें श्रीकृष्णलीलाहू कीये गुणगानहू कीयो ता पाछे निःसाधन दीनताकी योग्यता भई । सो मेरेमें दासधर्म[1]हू नांही

---

१ दास्य धर्मको अर्थ विस्तारसों लिख्यो हे सो मूल श्लोकके अनुसार नांही हे परंतु वोहोत पुस्तकमें हे तासों लिख्यो हे.

हे ओर निःसाधन दीनताहू नांही हे तातें भावामि अतिदुर्लभ हे । यह श्रीआचार्यजीको पुष्टिमार्ग हे तामें तो यह रीति हे जो शीतलभाव कबहू न करनो जेसें कुंभनदासनें एकदर्शनके विरहमें गायो हे " केते दिन वीत गये विनु देखे " या भांति आतुरता होय तब पुष्टिमार्गके भावको अनुभव होय ॥ २ ॥

मूलं–तापभावः परं दैन्यं प्रकाशयति सर्वथा ।
दैन्येन दयया दीनवंधुः प्रादुर्भवत्यसौ ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–तापभाव हे सो उत्तम दैन्यको प्रकाश निश्चय करेहे ओर दैन्यसों दीनवंधु भगवान् दया करिकें प्रकट होयहे ॥ ३ ॥ टीका-अव जा प्रकार दैन्य होय सो उपाय कहतहें. पेहेलें तो हृदयमें ताप होय जो सगरो जन्म वीत्यो, पुष्टिमार्गमें साक्षात् पुरुषोत्तम विराजतहे तिनको अनुभव कछु न भयो, मेरेमें कछु धर्म नांही हे, या भांति प्रभुविषयक ताप हृदयमें होय सो ताप सगरे दोषकों दूरी करतहे । अनेक जन्मके कायिक, वाचनिक, मानसिक, पाप हृदयमें भरे हे ओर काम, क्रोध, मद, मत्सर करि जीवको हृदय मलीन हे सो जब तापामि प्रगट होय तब सगरे दोषनको नाश होय ता पाछें दैन्य आवे तब देहकी ओर दशा होय जाय खान पान देहसंवंधी सुखदुःख सव छूटि जाय या भांति जब होय तव हृदयमें प्रभुकों प्रकाश होय, काहेतें जो दीनवंधु श्रीठाकुरजीको नाम हे सो जीवकों दैन्य होय तब प्रभुकों दया आवे सो श्रीभागवतमें निरूपण हे, जब द्रौपदीकों दैन्य भयो तब प्रभु लाज राखि, गजेंद्रकों दैन्य भयो तब प्रभु पधारे, रासपंचाध्यायीमें व्रजभक्तनकों जब दीनता भई "इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा । रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः" (यह रीतिसों गोपीजन गान करतहते ओर विचित्र विलाप करतहते सो कृष्णके दर्शनकी इच्छासुं हे राजन् ! सुस्वर रुदन करन लागे) यह भावकी सिद्धि भई ता पीछें " तासामाविर-

भूच्छौरि: स्मयमानमुखाम्बुजः । पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः" (विनके मध्यमें हास्ययुक्त मुखारविंदवारे, पीतांबर धरिवेवारे, मालायुक्त साक्षात् कामकेहू काम भगवान् प्रकट भये) या भांति प्रभु पधारे । तातें अहंकारतें प्रभु दूर रहे ओर दैन्यकरि प्रकटे हे तासों दैन्यवारेनके हृदयमें प्रभु प्रकट होय अपने आनंदको अनुभव सर्वथा करावे, प्रथम ताप होय ता पीछें दैन्य होय. यह दैन्य कोंन भांति होय सो उपाय आगेंके श्लोकमें कहतहे ॥ ३ ॥

मूलं–तद्दैन्यं स्यात् स्वामिनीनां तापभावविभावनात् ।
तद्भावनं भवेदेव तापात्मचरणाश्रयात् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–श्रीस्वामिनीजीके तापरूपी भावको अनुसंधान कीयेतें दैन्य होय ओर तापभावको भावन, विरहात्मक श्रीआचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयतें होय ॥ ४ ॥ टीका–दैन्यसिद्धि तो श्रीस्वामिनीजीके हाथ हे काहेतें जो विप्रयोगभावके देयवेवारी श्रीस्वामिनीजी हे तातें श्रीस्वामिनीजी जब कृपा करे तब तापभावकी भावना होय सो भावनाहू व्रजभक्तनकी रीतिसों करनी सेवासमय न करनी, सेवासों पोहोंचिकें अनोंसरमें करनी सो अपने मनकी कल्पनासों विप्रयोगकी भावना न करनी श्रीस्वामिनीजीके चरणकमलको आश्रयकरि जा प्रकार श्रीस्वामिनीजी विप्रयोगकी भावना करतहे, वेणुगीत, युगलगीत. आदिमें वर्णन हे ता भावकी भावना करे, श्रीआचार्यजीको स्वरूप तापात्मक जाने या भांति श्रीआचार्यजीके भावकी भावना करे, श्रीआचार्यजीके चरणको आश्रय करे तब भाव सिद्ध होय । आश्रय केसें सिद्ध होय सो आगेंके श्लोकमें निरूपण करतहे ॥ ४ ॥

मूलं–तदाश्रयस्य सिद्धिस्तु तद्वाक्यपरिनिष्ठया ।
तन्निष्ठा सततं तादृक्तदीयजनसेवया ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–तापात्मक श्रीआचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयकी सिद्धि तो, विनके वाक्य श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रंथनमें श्रद्धासूं होय ओर उनके वचनामृतमें निष्ठा तो, निरंतर तादृशीय जनकी सेवातें होय ॥५॥ टीका–श्रीआचार्यचरण हे सो श्रीस्वामिनीजीके भावरूप जानने, या भावसों श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करनो ताकरि भावरूप विप्रयोगको दान होयगो सो श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय कब होय ? जब श्रीआचार्यजीके वचनामृत श्रीसुबोधिनीजी आदि छोटे बडे ग्रंथके भावमें निष्ठा होय तब श्रीआचार्यजीके स्वरूपको ज्ञान होय ता पाछें श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें भाव होय तब चरणकमलको आश्रय होय सो श्रीआचार्यजीके वचनामृतग्रंथनमें निष्ठा कब होय जब पुष्टिमार्गीय भगवदीयकी सेवा करियें तब भगवदीय कृपाकरिकें जतावे तबही जान्यो जाय तातें भगवदीयकी सेवा मन, कर्म, वचनकरिकें अवश्य कर्तव्य हे तिनकी कृपातें सर्व सिद्ध होय ॥५॥

मूलं–तदीया दुर्लभाश्चेत्स्युः श्रीभागवतसेवनम् ।
अथवा दैन्यभावेन स्मर्त्तव्यः सततं हरिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–तदीय कदाचित् दुर्लभ होय तो श्रीभागवतको सेवन करे अथवा (श्रीभागवतको पाठ करिवेको ज्ञान न होय तो) दैन्यभावसों निरंतर हरिको स्मरण करे ॥ ६ ॥ टीका–श्रीआचार्यजीके वचनामृतमें निष्ठा भगवदीयकी सेवातें सिद्ध होयवेको ऊपर कह्यो सो पुष्टिमार्गीय भगवदीय अति दुर्लभ हे सो जहांतांई न मिले तहांतांई नित्य श्रीभागवत–श्रीसुबोधिनीजीके सेवन नियमपूर्वक करे, जब भगवदीय मिले तब सगरो भाव बतावे तहांतांई आपही श्रीभागवत वांचे. जो श्रीभागवत–श्रीसुबोधिनीजीमें अभ्यास न होय, ज्ञान न होय तो दैन्यकरिकें निरंतर हरि (सर्व दुःखके हरनहार) भगवानको स्मरण

करे, निरंतर दैन्य भावसों जीव हरिको स्मरण करे, जब श्रीठाकुरजी दुःख नांही सहिसकें ओर कृपाकरि पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग मिलावे तब तिनके संगतें सर्व कार्य सिद्ध होय ॥ ६ ॥

मूलं–अष्टाक्षरमहामंत्रो वक्तव्य इति निश्चयः ।
सर्वदा सर्वभावेन तेन सर्वं भविष्यति ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–अष्टाक्षर महामंत्र सर्वदा सर्वभावतें कह्यो करनो ताकरिकें सर्व सिद्ध होयगो ॥ ७ ॥ टीका–जीव तो स्वभावकरि दुष्ट हे जो कछु न बनि आवे तो अष्टाक्षरको महामंत्र जानि अष्टाक्षर " श्रीकृष्णः शरणं मम " यह कह्यो करे काहेतें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु वेद, पुराण, शास्त्र, श्रीभागवतमेंतें सार निश्चय करी अष्टाक्षरमंत्र प्रकट कीये हे सो अपने दैवी जीवनके अर्थ हे तातें सर्वकालमें अष्टाक्षरमंत्रको जपे कबहू भूले नांही सर्वभावकरि अष्टाक्षरको जप करे तिनको सर्वकार्य निश्चय सिद्ध होय ॥ ७ ॥

मूलं–अस्माकं न्यूनतैवाऽऽसीन्मिलनं यदभून्नहि ।
एतावती हरिः कृष्णः पूरयिष्यति तामपि ॥८॥

शब्दार्थः–अपनकों इतनी न्यूनता हे जो प्रभु ओर भगवदीयको मिलाप नांही भयो सो हरि श्रीकृष्ण वह न्यूनताकोंहू पूर्ण करेंगे ॥८॥ टीका–उपर कहे ता भावात्मक विप्रयोगात्मक प्रभु एसे दुर्लभ हे । तातें जीव अपनकों न्यून (तुच्छ) माने या भांति प्रभुके मिलवेको मन करे तब श्रीकृष्ण सर्वदुःखके हर्त्ता हरि हे सो सगरे मनोरथ पूर्ण करेंगे सो जीव तो स्वभावकरि दुष्ट हे परंतु अपनमें कोउ अज्ञानकरिकें उत्तमता मानतहे ताहीतें प्रभु अपनो अनुभव नांही जतावतहे. श्रीभागवतमें पिंगला सारिखी जाकी महादुष्ट क्रिया हती वानें अपनकों तुच्छ मानिके वचन कह्यो- " संसारकूपे पतितं

विपयैर्मुपितेक्षणम् । ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोन्यस्त्रातुमिहेश्वरः" (संसाररूपी कुवामें गिरचो, विषयकरिकें मुद गयेहे नेत्र जिनके, कालरूपी सर्पने ग्रसन कीयो एसो जो आत्मा तिनको यह संसारमें रक्षा करिवेको अन्य कोन समर्थ हे ?) या भांति अपनो दोष स्फुर्यो तब न्यूनभाव होय प्रभुकी प्रार्थना करी तब प्रभु कृपाही कीये । तेसेंही पुरूरवाकी कथा श्रीभागवतमें कही हे- " पुंश्चल्यापहृतं चित्तं कोऽन्यो मोचयितुं क्षमः । आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोक्षजम् " (व्यभिचारिणी स्त्रीनें हरिलीये एसे चित्तकों सर्व जीवनके आत्मामें रमण करिवेवारे ईश्वर –अधोक्षज (इंद्रियजन्य ज्ञान जिनकुं नहि पहोंच सके एसे) भगवान् विना अन्य कोन छुडायवेमें समर्थ हे ?) एसे जब अपनो दोप पुरूरवाकों स्फुर्यो तब प्रभु कृपा करी, सो यह मार्ग तो दैन्यहीको हे । या मार्गमें जहांताई दैन्य न आवे तहांताई फलसिद्धि नांहीहे ओर अपनकों उत्तम जाने तहांताई दैन्य न आवे तातें अपनकों न्यून (तुच्छ) जानिकें प्रभुके मिलवेको यत्न करे तो प्रभु दुःखको नाशही करे, हरी सर्वदुःखके हर्त्ता श्रीकृष्ण सगरे मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥ ८ ॥

मूलं–भवद्भिर्नैव कर्त्तव्यः क्षोभो मनसि सर्वथा ।
अस्मिन् मार्गे यथैवार्त्तिस्तथैव फलसन्निधिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–तुह्मारे मनमें सर्वथा क्षोभ कर्त्तव्य नांहीहे काहेतें जो या मार्गमें जेसें आर्त्ति होय तेसेंही फल नजीक होय ॥ ९ ॥ टीका–अपनकों न्यून (तुच्छ) माने ओर क्षोभसहित मनमें सर्वथा भावना करे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहे "त्वद्दर्शनविहीनस्य त्वदीयस्य तु जीवितम् । व्यर्थमेव यथा नाथ ! दुर्भगाया नवं वयः " (हे नाथ ! आपके दर्शनकरिकें हीन जो त्वदीय (आपके शरण आये जीव) को

जीवित दुर्भाग्य स्त्रीके यौवन बरांबर व्यर्थ हे) श्रीगुसाँईजी कहतहे जो हे नाथ ! पुष्टिमार्गीय वैष्णव तुह्मारे कहावे सो तुह्मारे दर्शन विना जो कोय तदीय होय जीवत हे सो व्यर्थ जीवत हे वे बडे अभागी हे या भांति अपनकों महाअभागी सर्व साधनकरि हीन महादुष्ट जानि मनमें आर्ति करे जो, हा नाथ ! अब मेरी कोन दशा होयगी ? श्रीमहाप्रभुजीद्वारा तुह्मारे शरण में आयो हूं, मोमें एकहू धर्म नांही, या भांति नित्य दैन्य करे सर्वथा वारंवार विरहकरि उच्छ्वास लेय काहेतें जो यह श्रीआचार्य-जीके पुष्टिमार्गमें जाके हृदयमें जितनी आर्ति तितनीही फलसिद्धि हे, जाकों विरह नांही ताकों फलसिद्धिकी ढील हे जाकों थोरो विरह ताकों थोरी फलसिद्धि हे, जेसें रासलीलामें जेसो जाको भाव तेसो ताकों रसदान दीयो, वृक्षादिक,पशु, पक्षि, व्रजभक्त आदिनको अपने भावानु-सार अनुभव भयो तेसेंही पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों जेसी आर्ति तेसोही फलरूप श्रीकृष्ण रसको संबंध करावे ॥ ९ ॥

मूलं–यथाकथंचित् कर्त्तव्यो व्यवहारो हि लौकिकः ॥
अपकीर्तिभयात्तेन बुद्धिशैथिल्यसंभवात् ॥ १० ॥

शब्दार्थः–अपकीर्तिके भयसों थोडोबोहोत लौकिक व्यवहार करनो काहेतें जो अपकीर्ति करके बुद्धिमें शिथिलता होयवेको संभव हे ॥ १० ॥

टीका–विप्रयोग आर्तिको स्मरण तब होय जब लौकिक वैदिक कार्य छूटे सो संसारमें रहिके सब कर्यो चाहिये काहेतें जो लौकिक वैदिक कार्य छोडे तो लोकमें अपकीर्ति होय लोक बुरो कहे तब अपने मनमें क्षोभकरि क्रोध होय तो अपने मार्गमेंतें बुद्धि शिथिल होय जाय तातें लोगनकी अपकीर्तिके भयतें कछु थोरोसो लौकिक वैदिक कार्य करे जामें अपनो धर्म गुप्त राखे मन व्यवहारादिकनमें न लगावे दोय चारि घरी व्यवहार करे यह सिद्धांत भयो ॥ १० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ५ ॥

शिक्षापत्र ६.

अब छठे शिक्षापत्रमें भक्तनके अनिष्टकी निवृत्ति ओर इष्टकी प्राप्ति भगवानही करतहे यह निरूपण हे. अब उपर कहे ता भाव मनमें राखे विप्रयोगही मुख्य हे, आर्ति जेसी होय तेसोही फलको अनुभव होय तामें लौकिक क्लेश बाधक हे, लौकिक दुःखमें या भांति ज्ञान राखे तो दुःख न होय भगवद्धर्म रहे सो अब कहत हे.

मूलं—*गृहभंगसमाचाराः श्रुताः श्रुतिविषायिताः ।
तदर्थं लिख्यते किंचित्समाधानाय चेतसः ॥ १ ॥

* प्रथम उपोद्धातमें लिखिहे जो श्रीगोपेश्वरजीके बहुजी पधारिवायवेके होय माम पेहेलें वा होनहार बालकूं जानिके श्रीहरिरायजीनें पत्र ४१ पठाये फेरि कितनेक दिन बीते ता पाछें श्रीगोपेश्वरजीके बहुजीनें लीला करी. ओर छठे पत्रमें यह समाचार केसें हे ? एसी शंका होय ताको समाधान यह हे जो श्रीहरिरायजीनें बहुजी लीला-पधारे पेहेलें वा बालकूं जानिकें पत्र पठावने शरु कीये. पांच पत्र पठाये ता पाछें श्रीबहूजीमहाराजनें लीला करी सो समाचार सुनिकें श्रीहरिरायजीनें यह पत्र लिख्यो तब तो श्रीगोपेश्वरजी पत्र बांचते नांही गवाखमें धरि राखते. सो छठो पत्र गृहभंग भये ता पाछें आयो सोहू गवाखामें धरि राख्यो, एसें तीन दिनताई शोकमें मग्न रहे ता पाछें हरिजीवनदासकी विनतिसों पत्र बांचे पाछे भोजन करी दुसरे दिनतें टीका करिवेको प्रारंभ कीयो (अर्थात् दश शिक्षापत्र आये तब प्रारंभ कीयो) सो नित्य एकपत्रकी टीका करते एसें करत करत नव पत्रकी टीका करी तब नवम पत्रमें प्रेम, आसक्ति. ओर व्यसनके स्वरूपको निरूपण बांचिके गृहभंगको क्लेश निवृत्त भयो तब श्रीहरिरायजीको २० मो पत्र आयवेवारो हतो तामें जो हकीकत लिखी हे (ताको टीप्पण हे सो देखनों) सो यथार्थ हे, एसें श्रीकन्हैयालालजीमहाराज कोटावारे तथा श्रीविठ्ठलरायजीमहाराज अमरेलीवारे प्रभृति बालकनकों बिनति करी खुलासा लीयेतें अनुमान होय हे ।

शब्दार्थः—कर्णमें विषरूप गृहभंगके समाचार सुने तासूं चित्तके समाधानके अर्थ कछु लिखत हें ॥ १ ॥ टीका—तुह्मारे गृहभंगके समाचार हमने सुने सो सुनतही एसो दुःख भयो मानों हमारे श्रवनमें विष पर्यो सो दुःख हम कहा लिखें ? परंतु तुह्मारे मनमें दुःख हे तदर्थ हम कछु शास्त्रोक्त समाधानपत्र लिखतहें जो या समय हम तुह्मारी पास होते तो आछो परंतु भगवदिच्छातें दूर हों तासों लिखतहों जो एसे दुःखमें जब अपने पुष्टिमार्गीय धर्मको स्मरण होय तब जानियें जो श्रीआचार्यजीकी पूर्ण कृपा हे तातें हम लिखतहें जो भगवदिच्छाको ग्रहण करनो, मूलधर्म यह हे जो हृदयमेंते प्रभुको स्मरण प्रभुको आवेश जा प्रकार बाहिर न जाय सो कर्त्तव्य हे, सो पत्र बांचिकें चित्तको समाधान करियो । या पत्रमें लौकिक कार्य तथा भगवद्धर्म सब वर्णित हे । जा रीतसों पुष्टिमार्गीय रहे भगवदिच्छा विचारे सो सब वर्णन हे तातें अपनो चित्त लगाय पत्र बांचि समाधान करियो ॥ १ ॥

मूलं—सदा यशोदातनुजो द्विभुजः सुद्विजद्वयः ।
सरोजास्यस्रवल्लालः स्मर्यतामार्यवंशजः ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सदा श्रीयशोदाजीके पुत्र, द्विभुज, सुंदर दोय दांतवारे, कमलसारिखे मुखारविंदतें लार जिनके स्रवत हे एसे आर्यवंशमें प्रकट भये श्रीकृष्णको स्मरण करो ॥२ ॥ टीका—संसारके दुःखकरि मन दुःख पावे तो श्रीयशोदाजीके पुत्र, द्विभुज (दोय भुजावारे), दोय दंतवारे, ओर मुखारविंदतें लार स्रवत हे एसे श्रीकृष्णको स्मरण

---

१ " श्रीहरिरायजीके छोटे भाई श्रीगोपेश्वरजीके बहुजीनें लीला करी सो बहुजी सेवामें बहोतही श्रीगोपेश्वरजीकों अनुकूल हते. सो ऊपर वर्णन करेहें. ताही अर्थ श्रीगोपेश्वरजीकों शिक्षापत्र लिखें हें. सो अब श्रीगोपेश्वरजीके मनको समाधान होय ता भांति लिखत हे " या प्रकार प्रथमावृत्तिमें छप्यो हे सो असंगत जानि नीचे लिख्यो हे ।

कर्त्तव्य हे, ओर श्रीकृष्ण बडे हे जिनको आर्यवंश जो सबतें उंचो यदुवंश तथा चंद्रवंशहू सबतें श्रेष्ठ हे तथा वल्लभकुल सबतें श्रेष्ठ हे. पृथ्वीपर तीन कुल श्रेष्ठ प्रसिद्ध हे, ओर अवतार अनेक हे तामें तीन श्रेष्ठ हे, त्रेतामें दशरथजीके घर श्रीरामचंद्रजी तिनको रघुकुल, द्वापरमें श्रीकृष्णको यदुकुल ओर कलियुगमें श्रीआचार्यजीको वल्लभकुल ये सबमें श्रेष्ठ केवल भक्तोद्धारार्थही हे तामें हमारे आचार्यजीके वंशमें श्रीकृष्ण बालभावसों सेवनीय हे तातें मनमें कछु लौकिक क्लेश होय तो श्रीठाकुरजी अप्रसन्न होय जाय तो अपनो धर्म जात रहे तातें श्रीकृष्ण प्रसन्न रहे सोई करे ॥ २ ॥

मूलं–सर्वेश्वरश्च सर्वज्ञः कृष्णः सकरुणः सदा ।
असमर्थो ज्ञानशून्यो जीव इत्येव निश्चयः ॥३॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्ण सर्वके ईश्वर, सर्वज्ञ ओर सदा दयासहित हे तथा जीव असमर्थ, ज्ञानशून्य हे एसोही निश्चय हे ॥३॥ टीका–अब भगवानको ओर जीवको स्वरूप कहत हे–श्रीकृष्ण सर्वोपर ईश्वरके ईश्वर हे. ईश्वर वातें कहे जो मन आवे सोई करे. ब्रह्मादिक, शिवादिक, इंद्रादिक कोउ श्रीकृष्णकी आज्ञा टारिवेकों समर्थ नांही हे, अजामिलसारिखेकों एक पुत्रके भावसों नारायणनामतें निर्भय करी दीयो एसे सर्वकरणसमर्थ हे, तातें सर्वेश्वर श्रीकृष्ण हे ओर त्रिलोकीमें सर्वके हृदयकी जानत हे तथा कोटनकोटि ब्रह्मांडमें सब ठोर एक श्रीकृष्णही सर्वकर्त्ता हे सो सर्व जानतहे इनतें कछु छिप्यो नांहीहे ओर करुणावान हे । एसे ईश्वर हे सो काहूके दुःख सुख केसे नांही जानत होयंगे ? परम करुणाके निधि हे अपने भक्तनको रंचकहू दुःख नांही सही सकत एसे धर्म श्रीकृष्णहीमें हे । ओर जीव असमर्थ हे यह जीवको कीयो कछुहू नांही होत हे यह अपनी कृति मानत हे सो सगरो अज्ञान जाननो.

अपने प्रभुकों भूल्यो हे मायाकरिकें मोहित हे, हृदयमें ज्ञानशून्य हे तातें अपनो सामर्थ्य जानतहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु बालबोधमें कहेहे जो जीव स्वभावकरिकें दुष्ट हे यह निश्चय हे, प्रभु गुणनिधि हे जीव दोषनिधि हे तातें प्रभुकी इच्छाकों जीव केसें जाने ? ॥ ३ ॥

मूलं–तस्येच्छा त्रिविधा प्रोक्ता मूलवेदस्वभेदतः ।
मूलेच्छया गृहीतानां नान्यथा कुरुते फलम् ॥४॥

शब्दार्थः–सो प्रभुकी मूल, वेद ओर स्व यह भेदसों तीन प्रकारकी इच्छा हे तामें मूलेच्छाकरिकें जिनको ग्रहण कीयो हे तिनकों अन्यथा फल नांही करतहे ॥ ४ ॥ टीका–प्रवाही सृष्टिकों लौकिक क्रिया, पुष्टिसृष्टिकों भगवत्सेवा ओर मर्यादासृष्टिकों कर्ममार्गमें प्रवृत्ति या भांति प्रभुकी इच्छा तीन प्रकारकी हे तातें यह श्रीआचार्यजी महाप्रभुसंबंधी सृष्टि पुष्टिसृष्टि हे तिनकों तो निश्चय भगवानकी मूलेच्छा हे सोई ग्रहण कर्त्तव्य हे जो सर्वकार्य एक प्रभुहीको कीयो होयहे एसो ज्ञान मनमें दृढ राखनो चाहियें। ओर कर्ममार्गीय हे सो या भांति कहतहे जो जेसो कर्म करे तेसोही फल पावे एक कर्महीतें फल कहतहे, प्रवाही मायाकरि जानत हे जो मायाही सगरो कार्य करत हे या भांति प्रभुको कोउ जानत नांही तातें पुष्टिमार्गीयको मूल एक प्रभुकीही इच्छा जानि सर्वकर्त्ता प्रभु हे या भांति जान्यो चाहिये. अन्यथा- ओर रीतिसूं फलको न जाननों । जो कर्मकरि फल होयगो अथवा कोई

१ 'तस्येच्छा त्रिविधा लोकमूलवेदस्वरूपतः' एसो काहू पुस्तकमें पाठ हे [प्रभुकी मूल, वेद ओर स्वरूपतें तीन प्रकारकी लोकमें इच्छा हे] तामें मूलेच्छाकरिकें जो गृहीत हे तिनकों ओर फल नहीं करे. सो आगेके श्लोकमें लिखे हें. २ अन्यथा फल नाम जिनकों जितनो कर्म करायवेकी ओर जितनो सुखदुःखादिक भोगवायवेकी प्रभुकी इच्छा होय तेसोही होय तासों अन्यथा नांही होय. ३ अन्यथाफलकी वात मूलके अनुसार नांहीहे.

साधनकरि फलकी सिद्धि होयगी एसे सर्वथा ओर भांति फलको चिंतन न करनो। अब तीनप्रकारकी सृष्टि तीनप्रकारकी भगवदिच्छा मानतहे सो आगें श्लोकमें कहतहे ॥ ४ ॥

मूलं–प्रवाह एव नियतस्तेषु कृष्णविचारितः।
मर्यादया गृहीतांस्तु प्रवर्त्तयति कर्मणि ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–जो मूलेच्छाके जीव हे तामें तो प्रवाहही श्रीकृष्णनें विचारित हे ओर मर्यादाकरिकें जिनको ग्रहण कीयो हे तिनकों तो कर्ममें प्रवृत्ति करावेहें ॥५॥ टीका–प्रवाहिसृष्टि लौकिक इच्छा मानत हे, श्रीकृष्णनें उनकों लौकिकही विचारि राख्यो हे काहेतें जो प्रवाहिसृष्टिके जीव न्यारे हें ओर क्रियाहू न्यारी हे सो पुष्टिप्रवाहमर्यादाग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें "जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः"॥ (जीव. देह, कृतिको भिन्नत्व हे ओर याकी श्रुतिमें नित्यता हे) यह वाक्यतें प्रवाही सदा भ्रममेंही हे, भक्तिमार्गमें कबहू आवे नांही ओर मर्यादाको ग्रहण करतहे सो जीव कर्ममार्गमें प्रवृत्त हे काहेतें जो वचनकरि प्रकटे हे सो 'वचसा वेदमार्गं हि' (वचन करिके वेदमार्गको उत्पन्न कीये) यह वाक्यमें निरूपण हे सो वेदमें श्राद्ध, होम, यम, नियम, व्रत, तप, दान, इत्यादि साधनसोंही फल बतायेहें, मर्यादा-

१ पुष्टि, प्रवाह ओर मर्यादाके जीव, देह, कर्मादिकनको भेद–

मार्गः	उनके देह.	उनके कर्म.
पुष्टिः	दैव.	भगवत्सेवा–स्मरणादि.
प्रवाहः	आसुर.	लौकिककार्यनिर्वाहमात्र.
मर्यादा	दैव.	वैदिककर्म–अग्निहोत्रादि.

मार्गीय आछो कर्म करिकें स्वर्गलोकमें जातहे तहां सुख भोगकरिकें जब पुण्यहीन होतहे तब फेरि यह संसारमें गिरतहे. उनकों प्रभुकी प्राप्ति नांहीहे सो वह जानत नांही, केवल यह कर्ममार्गीय स्वर्गहीकों फल जानतहे या भांति मर्यादासृष्टि वेद इच्छा मानतहे, एसें प्रवाही ओर मर्यादासृष्टिकों प्रकार कह्यो अब पुष्टिसृष्टिकों कहा कर्त्तव्य हे सो आगें श्लोकमें कहतहे ॥ ५ ॥

मूलं–स्वरूपेण वृतानां तु स्वतः सर्वं करोति हि ।
तच्चिंतयैव हि व्याप्तः कृपालुः सर्वतो विभुः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–अपने स्वरूपतें वृत जो जीव हे तिनकी चिंताकरिकें आप व्याप्त हें ओर कृपालु सर्व करिवेमें प्रभु समर्थ हे ॥ ६ ॥ टीका–पुष्टिसृष्टि केवल भगवत्स्वरूपको आश्रय करे काहेतें जो भगवत्सेवार्थ पुष्टिसृष्टि करी हे " भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् "। (भगवद्रूपकी सेवाके अर्थ पुष्टिजीवकी सृष्टि करी हे जो यह प्रयोजन नांही हतो तो पुष्टिसृष्टिकोंही नांही करते) यह वाक्यतें पुष्टिसृष्टि अपने मनमें विचारे जो प्रभु अपनें स्वरूपबलतें स्वतः आपही करेंगे यह जानि चिंता नांही कर्त्तव्य हे काहेतें जो प्रभु तो सगरे व्यापक हे सर्व ठोर प्रभुही हे तहां चिंता काहेकों करनी श्रीकृष्णहीको कीयो सब ठोर होतहे ओर श्रीकृष्ण कृपालु हे अपने भक्तजन पर सदा कृपाही करत आयेहे ओर कृपा करेंगे, या भांति प्रभुको चिंतन करनो ओर श्रीकृष्ण विभु हे सर्वसामर्थ्ययुक्त हे काहूको दीयो ऐश्वर्य नांहीहे, ब्रह्मादि, शिवादि, इंद्रादि देवता हे तिनको भगवाननें ऐश्वर्य दीयो हे तातें देवता फल दीयो चाहे तो प्रभुकी आज्ञा लेके देतहे स्वतः सामर्थ्य देवतामें नांहीहे तेसें श्रीकृष्ण नांहीहे आपुही सर्वसामर्थ्ययुक्त हे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहे " कर्त्तुं पुनरकर्त्तुं च ह्यन्यथाकर्त्तुमीश्वरे।

सामर्थ्यं यन्मया दृष्टं त्वय्येवाऽतो न संशयः" (करिवेको, न करिवेको ओर अन्यथाकरिवेको जो ईश्वरमें सामर्थ्य सो आप (श्रीठाकुरजी) मेंही मेंने देख्यो हे तासों संशय नांहीहे) यह वाक्यतें कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ प्रभु हे तातें लौकिक वैदिकमें कछुहू अपनको चिंता नांही कर्त्तव्य हे प्रभु आपुहीतें सर्व करेंगे प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे ॥ ६ ॥

मूलं—निवर्त्तयत्यनिष्टेभ्यः स्वकीयान् करुणानिधिः ।
यदि जीवाः स्वभावेन निवर्त्तेरन्न ते स्वतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—जो जीव आपतें स्वभावकरिकें (अनिष्टको) निवृत्त न करे तो दयानिधि भगवान् स्वकीयकों अनिष्टतें निवृत्त करतहें । अथवा तो जीव अपनें स्वभावतें प्रभुतें निवृत्त न होय तो यह स्वकीय जीवनकों करुणाके भंडाररूप भगवान् अनिष्टके निवृत्त करतहे ॥ ७ ॥ टीका—श्रीकृष्ण अनिष्टके निवृत्तिकर्ता हे सो अपने स्वकीयको अनिष्ट निश्चय दूरी करेंगे काहेतें जो करुणानिधि हे. तहां कोई पूर्वपक्ष करे जो भगवान् तो समदर्शी हे सर्व प्राणिमात्रपर एकसी दृष्टि हे विश्वंभर सबनके भरणपोषणकर्त्ता हे सो तुम कहतहो जो अपने स्वकीय भक्तनपर करुणा करेंगे ओरनपर न करेंगे सो केसें ? एसो कोई संदेह करे तहां कहतहे जो सगरे जगतकों आनंददाता प्रभु हे तोहू भक्तनकों अधिक आनंद देतहे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " सर्वानंदमयस्यापि कृपानंदः सुदुर्लभः " (सर्व आनंदमयकेहू कृपानंद अत्यंत दुर्लभ हे) यह वाक्यतें सर्वकों आनंददाता हे परंतु कृपानंद दुर्लभ हे सो

१ सुदामाकों वैभव देयवेकी इच्छा भई, दुर्वासाको चक्रदुःखनिवृत्ति करिवेकी इच्छा न भई ओर अजामिलकों (कृतितें अन्यथा) उद्धारिवेकी इच्छा भई सो प्रभुनें कीयो एसो सामर्थ्य ईश्वरमें हे ॥

श्रीभागवतनवमस्कंधमें दुर्वासा प्रति भगवान् कहेहें " अहं भक्त-पराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज ! । साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः " (में भक्तनके पराधीन हूं साधुभक्तजननें मेरो हृदय ग्रस्त कीयो हे ओर भक्तजन मोंकू प्रिय हे) यह वाक्यतें भगवान् भक्तनके वश्य हे जगतके वश्य नांहीहे, भक्तनके अर्थ अवतार प्रभु लेतहें तातें अपने स्वकीयनको अनिष्ट वे योंही दूरी करेंगे एसे करुणानिधि हे परंतु जीवको स्वभाव हे जो रंचकदुःखमें धीरज नांही रहत चिंतातुर होतहे सो यह स्वभाव निवृत्त करिवेमें प्रभुही समर्थ हे ओर दूसरो कोउ नांही हे ॥ ७ ॥

मूलं–अनिष्टमेव सर्वज्ञो वलाद्दूरीकरोति हि ।
इष्टानिष्टविवेको हि जीवबुद्ध्या न जायते ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–यह इष्ट हे यह अनिष्ट हे एसो विवेक जीवबुद्धितें नांही होयहे तासों (जीवकी इच्छा नांही होय तोहू) सर्वज्ञ प्रभु अपने प्रमेयबलतें अनिष्टकों दूरी करतहें ॥ ८ ॥ टीका–भक्तनके अनिष्टकों प्रभु जानतहें. काहेतें जो सर्वज्ञ हे अनिष्ट दूरी करिवेमें बलवान् हे सो आपही अनिष्ट दूरी करेंगे. जेसें प्रह्लादजीकों हिरण्यकशिपुनें बोहोत दुःख दीयो सो श्रीनृसिंहजी नांही जानत हते ? सर्व जानत हते परंतु भक्तनकी परीक्षा लेवेकों प्रभु प्रथम नांही प्रकटे, जब प्रह्लादजीकों बोहोत दुःख हिरण्यकशिपुनें दीयो ओर प्रह्लाद-जीकों भगवदाश्रय छूट्यो नांही तब प्रभु प्रकट होय अनिष्ट दूरी कीये हिरण्यकशिपुकों मारे, तातें दुःखक्लेशमें भक्तनकों भगवदाश्रय न छोड्यो चाहियें ओर प्रभु तो कृपाही करेंगे सगरो दुःख दूरी करेंगे परंतु जीवबुद्धितें इष्ट अनिष्टको विवेक जान्यो नांही जातहे जो में भग-वद्भक्त होयकें अन्याश्रय करतहों लौकिक वैदिक चिंता करतहों

भगवान् तो जो करतहे सो भलीही करत हे, मेरो भोग तो बोहोत हे सो प्रभु थोरोहीमें निवृत्त करेंगे, मोपर प्रभु अनुग्रह कीयो जो यह दंड भयो या भांति धीरज जीवबुद्धितें नांही रहतहे तातें दुःख पावतहें॥८॥

मूलं—अविद्यया गृहीतानामणूनां भ्रमसंभवात् ।
अत एव हि संसारं मन्यते सुखरूपिणम् ॥९॥
बाला इव करप्राप्तं सर्पमक्रीडनोचितम् ।
पितेव सहजस्निग्धस्तान्निवर्त्तयते बलात् ॥१०॥

शब्दार्थः—अविद्याकरिकें गृहीत ओर (स्वरूपतें) अणु एसे जीवकों भ्रमको संभव हे तासोंही बालक क्रीडामें नांही योग्य एसे सर्प हाथमें प्राप्त भयो ताकों जेसें सुखरूप मानत हे तेसेंही जीव संसारकों सुखरूप मानत हे तासों सहज स्नेहवारे पिताकी नांई तिनकों बलात् निवृत्त करत हे ॥ ९ ॥ १० ॥ टीका—जीव प्रभुके स्वरूप जानिवेमें नांही समर्थ हे, काहेतें जो अविद्याकरिकें ग्रसित हे तातें मनको भ्रम दूरी नांही होतहे. यद्यपि भ्रम छोटो हे अविद्यारूप भ्रम (में ओर मेरो इतनोही) हे ता भ्रमकों जीव टारी नांही सकतहे. यद्यपि सर्व जानतहे जो क्षणभंगुर शरीर हे काल काहूकों छोडे नांही यह ज्ञानहू मनमें आवतहे तथापि जीवकी अहंता ममता नांही छूटतहे, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, लौकिक दुःखमय याहीतें चिंताग्रसित हे तातें देहसंबंधी संसारको सुख सोही सुखरूप मानि रह्यो हे, तोहू प्रभु संसारतें छुडावेहींगे सो कोन प्रकार सो आगे श्लोकमें कहतहे ॥९॥ यद्यपि जीव संसारकों सुखरूप मानि रह्यो हे तहां प्रभु अपने भक्तनकों या भांति छुडावत हे, जो द्रव्यमें मन होय तो द्रव्यको नाश करे, जो स्त्रीपुत्रादिकनमें मन होय तो तिनको नाश करे या भांति भक्तनको मन जहां लौकिकमें लगे सो प्रभु दूरी करत हे तब यह जीव स्वभावतें अनेक भांतिके दुःख

पावतहे परंतु प्रभु वाकूं लौकिक अर्थ देत नांही सो लौकिक दृष्टांतसूं कहतहे. जेसें अज्ञानी वालक होय सो खेलिवेके लिये सर्पकों पकरिवेकों दोरतहे यह नांही जानत जो यह काल हे काटेगो सो वालक तो अज्ञानी हे परंतु मातापिताको पुत्रमें सहजही स्नेह हे तासों सर्पकों पकरन नांही देतहें वह कालरूप सर्पतें निवृत्तही करतहे तेसेंही यह जीव संसारकों सुखरूप मानि रह्यो हे परंतु प्रभुको स्नेह भक्तपर हे. कृपाकरि संसारतें छुडावनो हे. तातें संसारसुखमें लागन नांही देतहे ॥ १० ॥

मूलं–यथा रुदंति ते बाला भ्रांताः संसारिणस्तथा । अत एव हि सर्वज्ञः कृष्णः संसारमोचकः ॥११॥

शब्दार्थः–जेसें वह वालक [सर्प नांही लेवे दीये सो] रुदन करतहे तेसें संसारी भ्रांतियुक्त होयकें (लौकिक वस्तु गयेतें) खेदयुक्त होय हे परंतु श्रीकृष्ण तो सर्वज्ञ हे तासोंही अहंताममतात्मक संसारतें छुडायवेवारे हे (सो ताके लिये लौकिक वस्तुकी प्राप्ति नांही होनदेत हे किंतु होय तासोंही छुडावत हे) ॥ ११ ॥ टीका–पिता स्नेहकरि सर्पतें निवृत्त करत हे तब वह वालक अज्ञानकरि रुदन करत हे जो मेरो खिलोना लेन नांही देत हे, तेसें ही यह संसारी जीवपर प्रभु परम कृपा करी संसारमें मन हे ताही वस्तुकों हरिलेत हे तब यह जीव मनमें अहंताममताकरि दुःख पावत हे, अज्ञानकरिकें प्रभुको गुण नांही मानत जो प्रभु कृपा करी संसारतें छुडायो. ओर प्रभु तो सर्वज्ञ हे सो श्रीकृष्ण अपने भक्तनकों पुत्रवत् जानि संसारमोचन करत हे, जेसें पुराणांतरमें कथा हे जो नारदजीको मन व्याह करिवेको भयो सो एक राजाकी वेटीको स्वयंवर हतो तहां सगरे देशदेशके राजा आये सो नारदजीके मनमें यह भयो जो में वरूं तब नारदजीनें विचार्यो

जो राजाकी बेटी जापर प्रसन्न होय माला पहरावे तासों व्याह होयगो सो या समय तो सुंदर रूप चहियें जो राजाकी बेटी रीझे. तातें सबतें सुंदर भगवान् हे उनको रूप ले आवुं, तब नारदजी भगवान् पास आये प्रभुनें बोहोत समाधान कीयो, पूछे जो नारदजी कछु आज्ञा करो, तब नारदजीनें कह्यो, में तुह्मारो हूं मेरो भलो होय सो करियें, अपनो रूप मोकों देहु तो राजाकी बेटी व्याहि लाउं. तब प्रभु मुसकायकें कह्यो जो तुह्मारो भलो होयगो सोई में करूंगो तुम जाओ मेनें मेरो रूप दीयो, तब नारदजी तो मायाके भ्रमतें प्रभुके व्यंग वचन समुझे नांही, जहां स्वयंवर हतो तहां आये सो श्रीठाकुरजीनें तो बोहोत बुरो मर्कटको टेडो मुख दीयो हे ओर नारदजी तो कामवश्यतें अज्ञानसों जानतहे जो में भगवान्को रूप पायो हों सो वारंवार जहां वह कन्या जाय तहां सन्मुख जाय बेठे, सगरे लोक हसे जो कहा टेडो मुख करी आयो हे सो नारदजीकों कामवश्यतें ज्ञान नांही, पाछें प्रभु राजाको रूप धरिकें पधारे तब कन्यानें माला पहराई सो प्रभु लेगये, तब नारदजी निरास भये, पाछें एकनें कही जो नारदजी अपनो मुख तो देखो सो नारदजी दर्पणमें देखे तो वांदरकोसो टेडो मुख हे तब भगवान्पर बोहोत क्रोध कीयो जो जगतमें मेरी हांसी करवाई, पाछें प्रभु समझाये तब नारदजीकों ज्ञान भयो, सो नारदजी प्रथम तपस्या करत हते तब कामदेव तपस्यामें भंग करिवेकों सहाय (वसंत. मलयानिल, अप्सरोगण. विगेरे) समेत गयो सो नारदजीकों मोह न भयो तब कामदेव हार मानिकें फिरगयो तासों नारदजीकों अभिमान भयो जो में कामकों जीत्यो सो अभिमान प्रभु या भांति दूरी कीयो । या प्रकार प्रभु अपने भक्तनकों संसारतें छुडावतहे ॥ ११ ॥

मूलं–इत्येव रूप्यते नाम तथाविधमतः प्रभोः ।
संसारवैरी धरणीं प्रति शेषो न्यरूपयत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—धरणीशेषके संवादमें पृथिवी प्रति शेषजीनें संसारवैरी एसो नाम कह्यो हे तासों तेसो ही प्रभुको नाम निरूपित होयहे। ओर 'तथाविधमतिः प्रभोः' एसो काहू पुस्तकमें पाठ हे तदनुसार अर्थमें तेसी प्रभुकी मतिहू भक्तनके संसारकूं छुडायवेकी हे ॥ १२ ॥ टीका—प्रभुको रूपहू संसारतें छुडावतहे ओर प्रभुको नामहू संसारते छुडावतहे. व्रजभक्त श्रीकृष्णको ललितत्रिभंगी स्वरूप देखिकें लोक, वेद, पति, पुत्र, घर सबमेंतें मन छोडिकें प्रभुकों भजे ओर नामकरिकें अजामिल आदि अनेक भक्तनके संसार छुटे, ओर विधि जो प्रभुकी सेवा करतहे तिनहूके सर्व संसार दूरी होतहे तथा प्रभु अनेकविध लीला करतहे ताको स्मरण जो कोई करे तिनहूके सकल संसारदुःख दूरी होय जाय, ओर श्रीकृष्णकी मतिमें यह रहतहे जो भक्तनको संसार जाय मेरे पास आवे तब भलो होय येही प्रभु विचारतहे तातें धरणीशेषसंवादमें धरणी (पृथिवी) प्रति शेषजी कहेहें जो " संसारवैरी " श्रीकृष्ण केसे हे जो संसारदुःखके वैरी हे जहां भक्तनकों संसार होय तहां आपु सब दूरी करे श्रीकृष्णको रूप, नाम, लीला, आपु मनकरि भक्तनकों संसारतें दूरी करी भलो होय सोई करतहे ॥ १२ ॥

मूलं—मन्यामहे वयं भ्रांताः कृष्णविस्मृतिकारणम् ।
संसारमुत्तमं कृष्णस्तं कथं स्थापयेद्धरिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—अपने भ्रांत होयकें श्रीकृष्णकी विस्मृतिके कारणरूप संसारकों उत्तम मानतहे सो हरि वहसंसारकों केसें स्थापन करे? ॥ १३ ॥ टीका—यह जीवके हृदयमें अनेक जन्मको भ्रम हे सो गद्यके श्लोकमें कहेहे जो अनादिकालको भ्रम यह जीवके हृदयमें छाय रह्यो हे तातें अविद्याकरिकें श्रीकृष्णकों भूलिगयो हे तासोंही यह संसारकों उत्तम जानि यामें मनकों लगायो हे, संसारमें देहसंबंधी सुखदुःखनकों

मुख्य मानत हे सो श्रीकृष्ण संसारकों केसें राखें काहेतें जो हरि दुःख हरिवेवारे हे, जहां सूर्य होय तहां अंधियारो कोन भांति रहे? तेसें हरि अविद्यारूप संसारतमके सूर्यरूप प्रभु भक्तनको संसार केसें राखे ? जीव तो संसारसंबंधी सुख विचारतहे जो अब यह कार्य करूं तामें मेरे देहसंबंधी कुटुंबहू सुख पावे ओर मेंहू सुख पाउं ओर प्रभु यह विचारतहे जो यामें याको मन हे सो हरिलेउ सो यामेंतें मन छुटिकें मेरो आश्रय करे या भांति श्रीकृष्ण भक्तनको संसार हरत हे ॥ १३ ॥

मूलं–एवं तदीयैर्मनसि निधेयः स्वप्रभोर्गुणः ।
स्वस्मिन्नपि विनिश्चेया प्रभोरंगीकृतिर्ध्रुवा ॥१४॥

शब्दार्थः–एसें तदीयजनकों अपने मनमें अपने स्वामी श्रीकृष्णको गुण राखनों काहेतें जो अपने हू प्रभुकी अंगीकृति निश्चल हे एसो निश्चय राखनो ॥ १४ ॥ टीका–या भांति पुष्टिमार्गीय भगवदीय अपने (सो उपरतें ओरनकों दिखायवेके लिये कहे जो प्रभु करतहे सो भली करतहे ओर भीतरतें मनकरि दुःख पावे एसें न करे) मनमें निश्चय यह धारण करे जो अपने अंगीकृत भक्तनके प्रभु रक्षकही हे. कहा भयो दुःख आयो तो? अपने स्वकीयनकों प्रभु दंड देतहे. जेसें स्त्री कछु मर्यादातें ओर भांति चले तो पति दंड देय रीतिसों चलावे तेसेंही प्रभु अपने भक्तनके दोषनकों दूर करिवेकों दंड देतहे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहे " दंडः स्वकीयतां मत्वेत्येवं चेदिष्टमेव नः। अस्मासु स्वीयतां मत्वा यत्र कुत्र यदा तदा " ॥(दंड देनो सो अपने मानिकें देनो एसें होय तो अपनकों इष्ट हे काहेतें जो हमारेमें जहां तहां जब तब अपने हे एसों मानिकें दंड द्योगे) यह वाक्यतें अपने स्वकीयकों प्रभु दंड दीये सोहू अनुग्रह जानि मनमें सुखी हे. तातें जहां जहां हमतें अपराध परे तहां तहां सुखेन

दंड देनो उचित है या बातमें हम मनमें सुखी हे या भांति भगवदीय अपने प्रभुको अनुग्रह जाने यह दुःखहू अनुग्रहरूप जानि प्रभुको गुण अपने हृदयमें धरे. काहेतें जो प्रभुपर दोष धरत हे सो बहिर्मुख हे उनको पुष्टिमार्गमें अंगीकार नांही हे तातें निश्चय मन वचन, कार्य करि यह जाने जो श्रीठाकुरजी अंगीकृत निजभक्तनके रक्षक हे ॥१४॥

मूलं–अतएवास्मदाचार्यैरुक्तं वरणलक्षणम् ।
"लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति ॥१५॥

शब्दार्थः–तासोंही अपने श्रीमदाचार्यजीनें लोकमें तथा वेदमें स्वास्थ्य हरि तो नांही करेंगे ऐसे वरणको लक्षण कह्यो हे ॥ १५ ॥

टीका–उपर कहे जो भक्तनके रक्षक प्रभु दुःख क्यों देत हे? जा भांति यह लोक परलोकमें भक्तजन सुख पावे तेसों क्यों नहीं करत? एसें कोई कहे तहां कहतहे जो यह जीव स्वभावकरि दुष्ट हे जो लौकिक कार्यमें सुख पावे तो तहां आसक्त होय जाय जो वेदिक कार्यमें सुख पावे तो तहां आसक्त होय जाय तो हृदयमेंतें प्रभुको आश्रय जातरहे. आश्रय गयेसूं भक्तको नाश होय, तातें श्रीठाकुरजी लौकिक वैदिक कार्य सिद्ध न करे तब दुःख पायकें उह कार्यमें मनहू न करे केवल प्रभुकोही आश्रय करे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी चारों वर्णके[1] लक्षण श्रीसुबोधिनीजी निबंधमें कहेहे जो कोई जीव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैस्य, शूद्र, स्त्री आदि प्रभुकी शरण आवे ताकों प्रभु लौकिक वैदिकतें छुडायकें अंगीकार करतहे ओर नवरत्नग्रंथमें कह्यो हे जो भक्तनकी लौकिक वैदिक स्थिति छुडायकें अपनोही करतहे, यह विचारिकें हरिको आश्रय करनो यह सिद्धांत सर्वोपरि हे ॥ १५ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं षष्ठं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ६ ॥

१ चारों वर्णको अर्थ मूलके अनुसार नांही हे.

शिक्षापत्र ७.

अब सप्तम शिक्षापत्रमें लौकिकासक्ति नांही कर्त्तव्य हे ओर सेवामें आसक्ति कर्त्तव्य हे सो निरूपण हे। अब छठे शिक्षापत्रमें कहे जो लौकिक वैदिक प्रभु सिद्ध न करे तो प्रभुके गुणही मनमें धरे जो प्रभु भली करत हे सो यह धीरज कब होय जब भगवदीयको संग करि भगवत्स्मरणभजन करे, सो प्रकार आगें शिक्षापत्रमें कहतहे॥

मूलं—सदा श्रीगोकुलाधीशः स्मर्त्तव्यः सर्वथा जनैः।
तदीयैर्मिलितैः सर्वदोषचिंताविवर्जितैः॥ १॥

शब्दार्थः—सर्व दोष ओर चिंतातें रहित जो तदीय जन तिनके संग मिलिकें सदा श्रीगोकुलके अधीश प्रभु निश्चय स्मरण करिवे- योग्य हे॥ १॥ टीका—पुष्टिमार्गीय भक्तजननकों सर्वथा यहही स्मरण क्यों कह्यो? जो गायनके कुलके रक्षक कही यह जताये जो निःसाधन गाय हें तिनके प्रभु रक्षक हे, तेंसेंही जीव जब निःसाधन होय श्रीगोकुलाधीशको स्मरण भजन करे तब प्रभु दयाल हे सो अनुग्रह करेहींगे सो निःसाधन भावसों भजन स्मरण जब बने तब तदीय जन मिलेतें हृदयमें अनेक प्रकारके दोष काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, लौकिक वैदिक चिंता सो सर्व दूरी होय, विना भगवदीयके संग कितनोहू भगवद्धर्म करे परंतु मनमेंतें दोष चिंता दूरी न जाय. जेसें रासपंचाध्यायीमें सब भक्तनकों मद भयो एक मुख्य भक्तकों मद न भयो तब श्रीठाकुरजी एकभक्तकों अपने संग लेकें पधारे तब सगरे भक्तनकों अपने मदकी खबर नांही परी ओर प्रभुपर दोषबुद्धि भई जो हमकों छोडि गये या भांति सगरे भक्त प्रभुकों खोजिवेको चले पाछें एक भक्तहूकों मद भयो तब प्रभु तहांतें अंतर्धान भये पाछें ढूंढत ढूंढत सब भक्त तहां आय पूछ्यो जो

तुमहूको श्रीठाकुरजी छोडि गये? तब उनकों अपने दोषको ज्ञान हतो सो कह्यो जो मेनें मद कीयो ताकरि प्रभु अंतर्धान भये यह सुनतहीं उनके संगतें सगरे भक्तनकों ज्ञान भयो अपनो दोष स्फुर्यो जो हमको मद भयो तातें प्रभु छोडि गये या भांति श्रीआचार्यजी श्रीसुबोधिनी-जीमें निरूपण कीयेहें तातें भगवदीयके संग विना दोष ओर चिंताको नाश न होय तातें भगवदीयसों मिलिकें प्रभुको स्मरण करे सो श्रीआ-चार्यजी नवरत्नग्रंथमें कहेंहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः" (निवेदन तो निश्चय तादृशीय जनसों मिलिकें स्मर्त्तव्य हे) ॥ १ ॥

मूलं—न लौकिके मतिः कार्या भगवद्भावबाधिका ।
लौकिकं वैदिकं चापि स्वयं साधयिता प्रभुः ॥२॥

शब्दार्थः—भगवद्भावकों मिट्यवेवारे लौकिक्में मति नांही करनी, ' न लौकिकी मतिः कार्या ' ऐसे पाठमें भगवद्भावको बाध करे एसी लौकिकी मति न करनी काहेतें जो (एसी टेकवारेकों) लौकिक ओर वैदिकहू प्रभु आप साधे हे ॥ २ ॥ टीका—अलौकिक पदार्थमें लौकिक बुद्धि न करनी काहेतें जो भगवद्भावमें लौकिक बुद्धि बाधक हे तातें प्रभुकी लीला, श्रीवल्लभकुल, भगवदीय, सेवासामग्री, व्रज, श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराज आदि वृक्ष, लता, भगवद्वार्ता, ग्रंथ, कीर्त्तन, श्रीभागवत इत्यादिकनमें लौकिक मति न करनी सगरी वस्तु प्रभु संबंधी जानि भावसंयुक्त सेवा स्मरण करे. लौकिक बुद्धि आवे तो अलौकिक भावमें बाधक होय तासूं लौकिक वैदिक कार्यकी चिंता मनमें न राखे भगवत्कार्य मन लगायकें करे लौकिक प्रभु आपही सर्व करी लेंगे, वल्लभकुल लौकिक वैदिक कार्यकरि अपने भगवदीय सेवकको जतावत हें जो तुम लोकवेदकी चिंता मति करो हम तुह्मारे अर्थ करत हें तुम सुखेन प्रभुकी सेवा स्मरण करो तातें प्रभु लौकिक वैदिक आपहीतें सिद्ध करेंगे ॥ २ ॥

मूलं–इदानीमीदृशः कालः प्रतिकूलः समागतः ।
यथाकथंचित् स्वमनः स्थापनीयं पदाब्जयोः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–अब एसो विपरीत काल आयोहे तासों जेसें तेसें अपनो मन (श्रीठाकुरजीके) चरणारविंदमें स्थापनों ॥ ३ ॥ टीका–अब कलिकाल महा कठिन हे या कालमें जो मिलतहे सो प्रतिकूल मिलतहे भगवदीयको संग दुर्लभ हे सो वेगि नांही मिलतहे ओर जो मिलतहे सो लोकिककी कामनावारे स्वार्थके लिये मिलतहे, उपरतें भलो सत्संग भली क्रिया दीसेहे ओर भीतर अनेक प्रकारकी लौकिक वासना भरी होय, तिनके संगतें फलसिद्धि न होय एसो संग यह कलिमें मिलतहे तातें जितनो बने तितनो अपने मनकों श्रीठाकुरजीके चरणारविंदमें लगावे प्रभुमें प्रीति बढिवेके लिये बहुत लोगनसों मिले परंतु तामें ओर भगवद्धर्म घटे सो न करे जितनो हे तितनेहीकी रक्षा करी प्रभुके चरणारविंदमें मनकों स्थापे ॥ ३ ॥

मूलं–सेवायां च मनः स्थाप्य तत्साधकतयैव हि ।
गार्हस्थ्यार्थं विवाहेऽपि प्रयत्नः क्रियतां द्रुतम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–सेवामें मन स्थापनों ओर भगवत्सेवाकी साधकतातें (भगवत्सेवा भलीभांतिसों करिवेमें सहायताके लिये) ही गृहस्थाश्रम करनो चाहिये ताके लिये विवाहमेंहू शीघ्र प्रयत्न करनो ॥ ४ ॥ टीका–श्रीठाकुरजीकी सेवा आदि भगवद्धममें मनकों स्थापन करे ओर भगवत्सेवार्थ सगरी वस्तुको संग्रह करे. जो वस्तु भगवत्सेवामें साधक होय ताकों राखे जो सेवामें काम न आवे अथवा बाधक होय ताको त्याग करे, यह गृहस्थाश्रमहू भगवत्सेवार्थही जाने ओर विवाहादिकको प्रयत्न भगवत्सेवार्थही करे सो काहेतें जो गृहस्थाश्रम विना भगवत्सेवा भलीभांतिसों न होय तातें सेवार्थही करे सो श्रीभागवत-

नवमस्कंधमें भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहे " मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम् " (मेरी सेवातें साक्षात् प्राप्त भयी सालोक्यादि चतुष्टय सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, इन चारो) मुक्तिनकों नांही इच्छतहे काहेतें जो मेरी सेवातें पूर्ण हे (सर्वार्थसिद्धि सेवाकोंही जानें हे) सो काल जिनको नाश करेहे एसे अन्य (राज्यादिक) कों तो कैसें इच्छे ?) यह वाक्यतें भक्त सेवामें प्रतीयमान चतुष्टय मुक्तिनकों नांही चाहतहे एसें सेवाकरिकें पूर्ण हे तिनकों काल बाधा करे ऐसी वस्तुकी चाहना कहांतें होय ? ॥ ४ ॥

मूलं–न भवेत् प्रायशो भोगे तदीयानां कचिन्मनः ।
तथापि चेद्भवेद्भोगो निवार्यः सर्वथैव हि ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–भगवदीयनकों प्रायशः भोगमें मन कबहू नांही होय तथापि कदाचित् भोगासक्त मन होय तो निश्चय ताको निवारण करनो ॥ ५ ॥ टीका–तदीय जन अपने भोगके लिये स्त्रीकों न जानें परंतु भगवत्सेवार्थ जानें तथा भगवद्भक्त पुत्र होयवेकी कामनासूं विषय करे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः " (भगवद्भक्त पुत्रमें प्रीति राखे) यह वाक्यतें कृष्णमें प्रीति होय एसो पुत्र होय यह विचारि विषय करे भगवत्सेवामें जो काम बाधक होय तो ताकी निवृत्तिके लिये विषय करे ॥ ५ ॥

मूलं–भावोऽत्र साधनं मार्गे प्रमेयो भगवान् हि सः ।
प्रमाणं कृष्णसेवादौ स एव च फलं पुनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–यह पुष्टिमार्गमें भाव साधन हे ओर प्रमेय भगवान् हे, आदिमें श्रीकृष्णकी सेवा साधनरूप हे ओर फेरि सोही श्रीकृष्ण

फल हे ॥ ६ ॥ टीका—यह पुष्टिमार्गमें सगरी सेवाकी रीति साधनरूपा दीसतहे परंतु सगरी भावरूप हे, साधनरूपा दीसतहे सो फलरूप हे याको कारण कहा ? एसें कोउ कहे तहां कहतहे जो फल तो प्रभु अपने प्रमेयबलतें हाथ राखे जब चाहेंगे तब देयंगेही, यह निश्चय नांही जो इतने दिनमें फल होय ओर जीवस्वभावकरि फलकी मनमें चाहना रहतहे तातें सेवा साधनरूपा दीसतहे. जो सेवाहीकों फलरूप जानतहे तिनकों फलरूपही हे तातें श्रीकृष्णकी सेवा प्रमाणरूप तथा फलरूप जानें. प्रमाणरूप जानि जे कोई सेवा करतहे तिनकों साधनरूप हे ओर प्रमेयरूप जानिके भगवत्सेवा करतहे तिनकों सेवा फलरूप हे जा भक्तके हृदयमें जेसो भाव हे तिनकों तेसी प्राप्ति हे ॥ ६ ॥

मूलं—तस्मात् स एव संरक्ष्यो निधिरूपस्तु सर्वथा।
एतद्विरुद्धं तत्सर्वं ज्ञात्वा ज्ञात्वा निवर्त्तयेत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—तासों यह भगवद्भावही निधिरूप हे सो निश्चय रक्षा करिवेयोग्य हे ओर तामें विरुद्ध होय सो सर्व जानि जानि छुडाय देनो ॥ ७ ॥ टीका—या भांति अपने भावकी ओर प्रभुके स्वरूपकी रक्षा सर्व ओरतें करे, उपर कही आये जो काल कठिन हे रंचक दुःसंग होय तो अपने प्रभुमेंतें वात्सल्य छुटि जाय तथा भगवत्सेवातें दूसरे साधनमें मन लागे तो सेवामें शिथिलता होय जाय तातें अपने भावकों निधिरूप जानि, अनेक दुःसंगतें भावकी रक्षा करी लेय, सो रक्षा करिवेको प्रकार कहतहे जो भगवत्सेवामें स्त्री प्रतिबंध करे तो वाहूको त्याग करियें स्त्रीको भाव न गिनियें. तेसेंही माता पिता पुत्र आदि जो प्रतिबंध करे तिनको त्याग करियें, या भांति देहसंबंधी तथा देशमें राजादिकको प्रतिबंध होय सो ज्ञानकरि विचारि छोडे, एकवार न छूटे तो क्रमसों सब छोडे अपनें भावकी रक्षा करीलेय ओर पुष्टिमार्गकी

सेवा सर्वोपरि जानि सेवाको भाव निधिरूप जानि गुप्त राखे या भांति रहे ताको श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें वेगि अनुभव होय. ॥ ७ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ७ ॥

शिक्षापत्र ८.

अब अष्टम शिक्षापत्रमें ऐहिक तथा पारलौकिकमें भगवान् ही चिंतन करिवेयोग्य हे परंतु अन्याश्रय तो नांही कर्त्तव्य हे सो निरूपण हे उपर कहे ता प्रकारकरि भगवत्सेवा भावसहित करे ओर मनमें दृढ विश्वास राखे तो सर्व सिद्ध होय सो आगें कहतहें

मूलं–ऐहिके पारलोके च सर्वसामर्थ्यसंयुतः ।
स एव गोकुलाधीशश्चिंतनीयस्तदा हृदि ॥ १ ॥

शब्दार्थः–यह लोक ओर परलोकमें सर्वसामर्थ्ययुक्त श्रीगोकुलाधीश हे सोही सदा हृदयमें चिंतनीय हे ॥ १ ॥ टीका–श्रीगोकुलाधीशको अपने हृदयमें सदा चिंतन करे ओर सेवा करे तामें चिंता बाधक हे. एक तो यह जो में तो भगवत्सेवा करतहों सो मेरे लौकिकको निर्वाह केसे होयगो ? ओर दूसरी यह जो मेरो अलौकिक केसें सुधरेगो ? यह दोय चिंताको त्याग करे, यह ज्ञान मनमें राखे जो प्रभु सर्वसिद्ध करिवेमें सामर्थ्ययुक्त हे प्रभु लौकिकहू सिद्ध करेंगे काहेतें जो श्रीगोकुलाधीश हे सो सर्वसामर्थ्यवान् हे यह विश्वास दृढ करी सदा नियमपूर्वक स्मरण करे. ॥ १ ॥

मूलं–विश्वासस्तत्र कर्तव्यो भद्रमेव विधास्यति ।
स्वदोषादेव तत्रापि दोषस्फूर्त्तिर्यतो भवेत् ॥२॥

शब्दार्थः–भगवानमें विश्वास करनो, भगवान् कल्याणही करेंगे. ओर वामें दोषकी स्फूर्ति होय सो अपने दोषतें होयहे ॥ २ ॥

टीका–दृढ विश्वास मनमें राखे यह मुख्य विश्वासभाव हे काहेतें जो विश्वास दृढ होय तो भगवद्धर्म थोरोहू बनि आवे तोहू वाको कल्याण होय ओर लोगनकों दिखायवेकों भगवद्धर्म बोहोत करे परि मनमें विश्वास न होय तो धर्ममें फलसिद्धि नांही होय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें कहेहें "ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः" (ब्रह्मास्त्र ओर चातककी भावना राखनी (जो अविश्वासतें ब्रह्मास्त्र निष्फल गयो ओर चातककों विश्वास हे तो मेघ जल देयहें) ओर ममतारहित होय जो प्राप्त तिनकों सेवन करे) यह वाक्यतें जब हनुमान् सीताजीकी सुधि लेनकों लंकामें गये हते तहां राक्षसनके बाग उजारि अनेक राक्षसनकों मारे तब रावणनें इंद्रजितकों पठायो सो इंद्रजितनें पहिलें तो बहोत उपाय कीये परंतु हनुमानजी पकरे नजाय तब पाछें ब्रह्मास्त्र चलायके प्रतीति कीनी तब हनुमानजी ब्रह्मास्त्रको माहात्म्य सत्यकरणार्थ वह ब्रह्मास्त्रमें बंधाये तब इंद्रजित् हनुमानकों लेकें रावणपास आयो तब रावणनें कही जो एसो बलवान् वानर हे जिननें कितनेक राक्षसनकों मारेहे वाकों यह सूत्रके तारमें केसें बांध्यो हे? याकों अब लोहकी जंजीरसांकलसों बांधो, तब ब्रह्मास्त्रके उपर लोहकी सांकलसों बांध्यो.या भांति रावणकों अविश्वास भयो तब ब्रह्मास्त्र आपुही छुटी गयो ओर हनुमानजीनें अपनो स्वरूप बढायो सो सगरी सांकल टूटिगई पाछें लंका सगरी जराई एसें अविश्वासतें ब्रह्मास्त्र नष्ट भयो, ओर चातक एक स्वांतिके बूंदको विश्वास राखतहे

ओर जलही पृथ्वी उपर नांही जानत ता विश्वासतें घन (मेघ) जड हे तोहू वाको मनोरथ पूर्ण करतहे. तातें वैष्णवकों मुख्य विश्वास चाहियें अविश्वास हे सो आसुरधर्म हे ओर विश्वास हे सो भगवद्धर्म हे तातें जाके हृदयमें दृढ विश्वास होय ताकों सर्व फलकी प्राप्ति होय. भक्त अपने दोषकों वारंवार विचारे आपनकों दोषरूप जाने दोषकी स्फूर्ति करी मनमें दोषकी भावना करे काहेतें जो अपनों दोष हे ताकों विचारे तो मनमें दीनता आवे जो में महादोषवत हों मोपर प्रभु केसें दया करेंगे! या भांति दोषकी स्फूर्ति होय तो प्रभुकी परम कृपा जानियें सो भगवदीय गायेंहे "माधो हों पतितनको राजा, हों पतितनको नायक, हों पतितनको ईश" या भांति अपनकों सबनतें दोषरूप जाने तब जानियें जो दोषकी स्फूर्ति भई तब दीनता होय ओर तब ही प्रभु कृपा करे ॥ २ ॥

मूलं–आर्तिः फलं साधनं च व्रजाधिपतिसंगमे ।
अतः सदा तदार्त्यैव स्थीयतां तत्कृपायुतैः ॥३॥

शब्दार्थः—व्रजके अधिपति श्रीकृष्णके समागममें आर्ति हे सो हि साधन ओर सो हि फल हे तासों प्रभुकी कृपायुक्त होय वैष्णवकूं रहेनो ॥ ३ ॥ टीका–प्रभुकों मिलवेकी आर्ति हे सो साधन हे वा आर्तिसमान कोउ साधन नांहिहे ओर फलहू आर्ति हे हृदयमें आर्ति होय तो भगवत्सेवा स्मरण सब होय ओर प्रभु कृपाकरि अनुभव करावे. ज्यों ज्यों आर्ति वढे त्यों त्यों अधिक अनुभव प्रभु करावे, तातें आर्ति हे सो व्रजाधिपतिके संगम करायवेमें कारण हे सदा विप्रयोग आर्ति करत करत आर्तिरूप होयजाय तब प्रभु कृपा करे जेसें अग्निके संबंधतें नवनीत द्रवीभूत होय तेसेंही विप्रयोग आर्ति जब होय तब प्रभुको हृदय द्रवीभूत होय सो

निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः " (आर्तियुक्त जनकों देखिकें प्रभु जब कृपायुक्त होय तब सदानंद भगवान् हृदयमेंसों बाहिर निकसेहे (यह वाक्यतें अति क्लेशसंयुक्त जीवकों देखे तब प्रभु कृपायुक्त होय हृदयमेंतें बाहिर पधारि दर्शन देय तातें आर्तिही पुष्टिमार्गमें साधन हे तथा आर्तिही फल हे जब विप्रयोगमें तद्रूप होय जाय तब प्रभु कृपा करें ॥ ३ ॥

मूलं–अन्याश्रयो महानेव बाधको भीयतां ततः।
तत्क्षणेनैव सच्चेतो विमुखं च विधास्यति ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–अन्याश्रय महानही बाधक हे तासों अन्याश्रयतें डरपनों काहेतें जो (जा क्षण अन्याश्रय भयो ता क्षणमेंही) सत्पुरुषके चित्तकों निश्चय बहिर्मुख करेगो ॥ ४ ॥ टीका–उपर कहे जो विप्रयोग आर्त्तिही साधन ओर फल दोउ हे तहां अन्याश्रय बाधक हे सगरी आर्तिकों दूरी करे सगरे धर्मको नाश करे तातें अन्याश्रयतें सदा डरपत रहनो सो हारितस्मृतिमें कहेहें " नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत्। नान्यत्प्रसादमश्नीयात् नान्यदायतनं व्रजेत् " (शब्दार्थः–अन्यदेवकों नमस्कार न करनो. अन्यदेवके दर्शन न करने, अन्यदेवको प्रसाद नांही खानो ओर अन्यदेवके मंदिरमें नांही जानो) इत्यादि स्मृतिके वचन विचारि अन्यदेवको देखनेहू नांही नमस्कारादिक न करे प्रसाद कछु न लेय ओर अन्यदेवको आश्रय करे ताकों बहिर्मुख जानियें. अपने भावकी रक्षार्थ अपने मनतें वाको वेगिही त्याग करे काहेतें जो विमुखके एक क्षणहू संबंधतें दुर्बुद्धि उपजतहे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " अहं कुरंगीदृग्भंगिसंगिनांगीकृतोऽस्मि यत्। अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते " (जासों मे मृगकी दृष्टिसी चप-

लदृष्टिवारें व्रजभक्तनके संगी जो श्रीकृष्ण तिनको अंगीकृत हों तासों अन्य संबंधकों गंधहू मेरी कंधराकोही बाध करेंहें) यह वाक्यतें भगवद्भक्तनकों अन्यसंबंध याभांति बाधक हे. तातें वहिर्मुख जीवको संग छोडि अपने भावकी रक्षा करे यह निश्चय सिद्धांत हे ॥ ४ ॥

मूलं–तदीयेषु सदा स्थेयं सद्भावेनैव सर्वथा । त एव भक्तिमार्गस्य सहायत्वे निरूपिताः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–सदा भगवदीयमें सत्यभावकरिकेंही निश्चय रहनो काहेतें जो भगवदीय हे सो भक्तिमार्गकी सहायतामें निरूपित हे ॥ ५ ॥
टीका–भगवदीयके संग रहे तो वहिर्मुखता न होय अन्याश्रयहू न होय प्रभुमें सुंदरभावहू बढे सर्वथा शुद्ध भावसों तदीयको संग करे यह संग प्रभुकूं मिलनके अर्थ करे ओर कछु लौकिक वैदिक चाहना न राखे, यह भक्तिमार्गमें सहायतें भक्ति बढे प्रभु कृपा करे तातें तदीयको संग करे सो श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनकको वाक्य हे " तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः " (भगवानके संगी भक्तके एक क्षण बरोबर स्वर्गकों के मोक्षकों नांही तुलना करतहे तो मरणधर्मवारे राज्यादिकके मनोरथकों तो केसें तुलना करे ?) भगवदीयको संग एक क्षण होय ता सुख समान स्वर्ग वा मोक्ष नांही हे एसो सत्संग हे ओर श्रीभागवत एकादशस्कंधमें श्रीभगवान् उद्धवजी प्रति कहेहे " न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना खगा मृगाः । गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ (हे उद्धव ! मोकूं योग वश नांही करतहे, नांही

सांख्य, नांही धर्म, नांही स्वाध्याय (वेदाभ्यास), नांही तप, नांही दान, नांही कूपारामादिक, नांही दक्षिणा, नांही व्रत, यज्ञ, छंद, तीर्थ, नियम, यम, यह काहू वश नांही करतहे जेसो सर्वसंगको मिटायवेवारो सत्संग मोकूं वश करे हे. सत्संगकरिकें निश्चय दैत्य, यातुधान. पक्षी, मृग, गंधर्व. अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, बोहोत वृत्रासुर प्रह्लाद आदि मेरे चरणारविंदकों प्राप्त भयेंहें) श्रीभगवान् उद्धवजी प्रति कहत हे जो, मोकूं सत्संग वश करतहे ओर नांही योग, सांख्य, धर्म, तप, त्याग, नियम, व्रत, यज्ञ, तीर्थ, इत्यादि मोकों वश नांही करतहे ओर सत्संगके प्रभावतें दैत्य, राक्षस, खग, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, मनुष्य, कोय होय सो तरत मेरेचरणारविंदको प्राप्त भयेंहें तातें शुद्धभावसों भगवदीयको संग करे तो पुष्टिमार्गमें भगवदीयके सहायतें भक्ति बढे सो चोराशी वैष्णवकी वार्त्तामें वर्णन हे जो गदाधरदासके आशीर्वादतें तथा संगतें माधोदासकों भक्ति भई ॥ ५ ॥

मूलं–अस्माकं तु तदीयानां प्रसंगोऽपि सुदुर्लभः ।
चेतोऽपि साधनाभावाद्विमुखं तिष्ठति स्वतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–आपनकों तो भगवदीयको प्रसंगहू अतिदुर्लभ हे ओर चित्तहू साधनके अभावसों स्वतः (आपतें) विमुख रहे हे ॥ ६ ॥
टीका–हमकों तो तदीय [भगवदीय] को संग तो महाही दुर्लभ हे एकक्षणहू भगवदीय नांही मिलत एक तो यह दुःख हे, ओर दुसरो चित्तकरि साधन, स्मरण, भावना कछु भगवद्धर्म नांही बनत हे तातें भगवदीयके संगको अभाव हे ओर अकेले चित्त भगवद्धर्ममें नांही लागत ताकरिकें बहिर्मुखता हृदयमें होत हे. प्रभु प्रसन्न करिवेके दोय यह उपाय हे एक तो भगवदीयके संगतें प्रभुमें मन लगे तथा संग न होय तो अष्टप्रहर चित्त भगवल्लीलामें लग्यो रहे तो प्रभु कृपा करे.

भगवदीयको अभाव होय ओर मनकरि साधनको अभाव होय तव बहिर्मुखता होय सो हमकों वनी हे अव हम कहा करें ? या भांति जीवनके अर्थ श्रीहरिरायजी दैन्य करतहे ॥ ६ ॥

मूलं–गतो हि भगवद्दासः स्वकार्याय विदेशके ।
व्रजपालोऽपि चलितस्तेन मे दुःखितं मनः ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–भगवानदास अपने कार्यके अर्थ विदेह गयो हे ओर व्रजपालनामको सेवकहू परदेश गयो तातें मेरो मन दुःखित हे ॥ ७ ॥ टीका–एक भगवदीय भगवानदास हमारे पास हतो सोहू अपनें कार्यार्थ विदेश गयो ओर व्रजपालहू परदेशकों गयो ताकरिकें मन दुःखी हे में उनके संगहू न गयो ओर उनकों अपने पास न राखि सक्यो तातें सत्संग विना मन बोहोत दुःख पावतहे ॥ ७ ॥

मूलं–मयि यद्यपि नास्त्येव किंचित्तत्कृपया पुनः ।
यदस्ति तदपि स्वीयसाधनाभावतो गतम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–यद्यपि मेरेमें कछु धर्म नांहीहे तोहू विनकी कृपातें जो कछु हे सोहू फेरि अपने साधनके अभावसों गयो हे ॥ [त्वत्कृपया एसो पाठ होय तो तुह्मारि कृपातें एसो अर्थ होयहे] ॥ ८ ॥ टीका–भगवदीय मेरे पासतें पधारे तासों जानतहों जो मेरेमें स्नेह होतो तो तुह्मारो संग ओर भगवत्सेवा घरहीमें सव हे सो काहेकों छुटते, परंतु मेरे हृदयमें स्नेह नांही हे तासों ऐसें वनी हे मोमें यद्यपि स्नेह नांही हे तोहु एक तुह्मारि कृपाको वल हे जो मोपें प्रसन्न हो मोतें लौकिक वैदिक कार्यहू नांही वनत तातें गृहस्थाश्रमके कामहूको नांहीहों ओर प्रभु प्रसन्न करिवेके पुष्टिमार्गीय सेवादि धर्म ताकोहू अभाव हे सोहू नांही वनत तातें अव में सव ओरतें निःसाधन हों ॥ ८ ॥

मूलं–एतादृशेऽर्थे संप्राप्ते स हरिः शरणं मम ।
ऐहिके परलोके च नैश्चिन्त्यं तत एव नः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–एसो अर्थ प्राप्त भयो तामें सो हरि मेरे आश्रयरूप हे तासोंही हमकों यह लोक तथा परलोकमें निश्चितता हे ॥९॥ टीका-एसो निःसाधन जो में सो मेरे हरिशरणही एक गति हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें जो मनमें येही आश्रय करे, " ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः " यह लौकिक वैदिक सिद्धि न होय आवे तोहु हरिशरण सर्वथा करे ताकरि सर्वसिद्धि होयंगे तातें हरिशरणकरि सर्व ओरतें निश्चित हों अव प्रभु अपनो करी लेहींगे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कृष्णाश्रयग्रंथमें कहेहें " शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् " (शरणमें रहे तिनको उद्धार करिवेवारे श्रीकृष्णकों में विज्ञप्ति करुंहूं) यह वाक्यतें जो शरणस्थ भक्त हे तिनको उद्धार प्रभु निश्चय करेंगे, साधन वने अथवा न बने, सो भगवान् भगवद्गीतामें कहेहे " सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " ॥ (सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरण हो तो में तोकों सर्वपापतें मुक्त करूंगो शोक मति करे) यह वाक्यतें हरिशरण कीयेहे तातें या लोकसंबंधी कार्य तथा परलोक दोउ ओरतें निश्चित हों ॥ ९ ॥

मूलं–कदाचिन्मिलनं चेत्स्यात् सद्भाग्येन भवादृशाम्।
तदा को वेद चित्तस्य परावृत्तिः पुनर्भवेत् ॥१०॥

शब्दार्थः– मेरे भाग्यतें कदाचित् आप सारिखेको मिलन होयगो तव फेरि चित्तकी परावृत्ति (जो पाछो फिरनों सो, अर्थात् जो चित्तमें धर्म हतो सो गयो एसें अष्टमश्लोकमें लिख्यो हे सो चित्तकी परावृत्ति) होय यह कोन जानतहे ? ॥ १० ॥ टीका–हम तो भगवदीयके

संग विना एसो दुःख पावतहे ओर जीवनकों तो कदाचित (कबहूक) भगवदीय मिलतहे तोहू उनके भाग्यमें भगवल्लीला, भगवत्सेवा, पुष्टिमार्गके रसको अनुभव नांही लिख्यो हे तातें सत्संगमें उन जीवनको मनही नांही लागतहे काहेतें जो अवही पुनरागमन (वहोत जन्म) संसारमें लेनो हे वोहोत अंतराय हे यह कहिकें श्रीहरिरायजी जतायो जो पहिलें तो भगवदीयको सत्संगही दुर्लभ हे तोहू कवहूक भाग्ययोगतें आय मिलतहे तव जीवको मन नांही लागतहे तातें जाको मन सत्संगमें न लगे ताकों यह जानियें जो अवही या जीवके भाग्यमें अनुभव नांही लिख्यो हे अवही यह जीव संसारमें वोहोत भमेगो इनकों अनेक जन्मको अंतराय जाननो ॥ १० ॥

मूलं–कियल्लेख्यं महाचिंतासमुद्रो हृदि वर्त्तते।
स्थितेऽपि शिरसि प्राणनाथे चित्तविभेदतः ॥११॥

शब्दार्थः–में कितनो लिखों ? जो मेरे मस्तक उपर प्राणनाथ (श्रीठाकुरजी) विराजतहे तो हू चित्तके विक्षेपतें हृदयमें महाचिंताको समुद्र रहतहे ॥ ११ ॥ टीका–जीवकों स्वभाव तथा जीवकी क्रिया देखिकें मेरे मनमें चिंता वोहोत होतहे सो में अपने मनकी चिंता कहांताई लिखों ? चिंताको समुद्र मेरे हृदयमें भर्यो हे (यह कही यह जताई जो अपार चिंता हृदयमें समुद्रवत् भरी हे) कागदमें कहांताई लिखों सो चिंता दूरी करिवेको मेरो सामर्थ्य नांही मेरे मनको सामर्थ्य होतो तो में उपाय करतो तातें एक मोकों भरोसो हे जो मेरे माथे प्राणनाथ प्रभु विराजतहे सो श्रीआचार्यजीकी कृपातें मेरे चित्तकों शांत करेंगे यह वल मोकों हे ॥ दूसरो अर्थ कहतहे ॥ चिंता-

१ पुनरागमनको अर्थ मूलके अनुसार नांही हे. २ चित्तकों शांत करिवेको मूलके अनुसार नांही हे.

करिके मेरे प्राण माथे आयरहेहे एसी चिंता हृदयमें समुद्रवत् हे तहां श्रीठाकुरजी मेरे प्राणके नाथ हे सो प्राणकी रक्षा करिवेके लिये मेरो दुःख [चिंताको समुद्र हृदयमें उमड्यो हे सो] प्रभुही शांत करेंगे. या भांति विप्रयोगको अनुभव करत करत अपने हृदयमें तन्मयता होय ओर केवल निःसाधनता होय तो प्रभुके स्वरूपको अनुभव होय ऐसें श्रीहरिरायजी आज्ञा करतहे. यह निरूपण करी केवल रसात्मक स्वरूपको अनुभव कोन प्रकारसों होय ? सो आगें शिक्षापत्रमें वर्णन करतहे॥ ११॥

इति श्रीहरिरायजीकृतम् अष्टमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ८ ॥

शिक्षापत्र ९.

अब नवम शिक्षापत्रमें प्रेम, आसक्ति ओर व्यसनको स्वरूप पृथक् निरूपण करतहे. उपरके पत्रमें दीनताकरि निःसाधन होय तो अनुभव होय एसें निरूपण कीयो सो अनुभव कोन प्रकार होय ? सो आगें कहतहें.

मूलं—कदा निजपतिः कृष्णः स्वबिंबं दर्शयिष्यति ।
बद्धबर्हशिखं नीलकुंतलावरणाननम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—मयूरपिच्छतें बांधे नीलकुंतलके आवरणयुक्त मुखवारे अपने पति श्रीकृष्ण अपने स्वरूपको दर्शन कब देयंगे ? ॥ १ ॥ टीका—श्रीकृष्ण हमारे पति तिनको दर्शन कब होयगो ? (श्रीहरिरायजीनें मेरे पति यातें कहे जो व्रजभक्तनके भावभावित हे, अपनो देहानुसंधान

भूलिगये हे, अत्यंत विरहतें वह भीतरको भाव वाहिर उमगिकें निकस्यो हे तातें अपने पति कहे तथा श्रीआचार्यजीद्वारा ब्रह्मसंबंध भयो हे, तुलसी चरणारविंदमें समर्पी हे एसें ब्रह्मसंबंधको स्मरण करी श्रीठाकुरजी हमारे पति हे एसें कह्यो) सो श्रीकृष्ण अपने स्वरूपको दर्शन कब देयंगे ? सो श्रीकृष्ण केसे हे, मोरके स्वच्छ पिच्छके गुच्छा करिकें मुकुट संवारि माथे धरेहे ताको अभिप्राय यह हे जो मुकुटको शृंगार हे सो श्रीस्वामिनीजीके रसदानार्थ हे तातें मुकुट धरेहें सो वेगिही दर्शन देयकें रसदान करेंगे, ओर नीलकुंतल (श्याम अलकावलि) मुखारविंदके उपर आयरही हे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ १ ॥

मूलं–भ्रूधनुःसंधितशरं कस्तूरीचित्रकांकितम् ।
इन्दीवरदलादैर्घ्यविशालनयनद्वयम् ॥ २ ॥

शब्दार्थः–भ्रकुटिरूप धनुषमें सांध्यो हे शर (वाण) जिननें ओर कस्तूरीके चित्रकरिकें चित्रित तथा कमलदलतें वडे विशाल दोय नेत्र हे जिनके (अठारे श्लोकताई स्वरूपवर्णन हे जो एसे अपने स्वरूपको दर्शन कब देयंगे ? यह पूर्वश्लोकमें संबंध हे) ॥ २ ॥ टीका–भ्रकुटि धनुषकी नांई तहां रसरूप कस्तूरीको तिलक तथा कपोलनमें कमलपत्र ओर धनुषवाण ले हमारे मनकों कब मारेंगे ? ओर कमलके पत्रवत् बडे अति विशाल दोउ नेत्रकरि दर्शन देय हमारे तापकों कब हरेंगे ? ॥ २ ॥

मूलं–मौक्तिकाभरणालंबिसुनासं सरसाधरम् ।
त्रिरेखकंठविलसत्कंठाभरणभूषितम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–मोतिनके आभरणकों आलंबी हे सुंदर नासिका जिनकी, सुधारससहित हे अधर जिनके, तीन रेखायुक्त कंठमें विशेष शोभित जो कंठाभरण ताकरिकें भूषित हे ॥ ३ ॥ टीका–मुक्तानके नकवेसरकरिकें युक्त एसी लंबी जो नासिका सो अत्यंत सुन्दर दीसत हे ता

नक्वेसरको मोती परम शोभा देतहे सो परम शोभायमान उज्वल अरुण अधरपर आयरह्यो हे सो मानों श्रीस्वामिनीजीको निर्विकार भाव अधरसुधाको पान करतहे, कंठमें तीन रेखा हे ताकरि सात्त्विक, राजस, तामस तीन प्रकारके भक्तनकी स्थिति हे अथवा त्रिलोकी मोहित होतहे. ओर श्रीकंठमें कंठाभरण (कंठसरी) आदि सोहतहे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन कब देयंगे ? ॥ ३ ॥

मूलं–प्रफुल्लगल्लयुगलं चिबुकाभरणान्वितम् ।
सुवर्णसूक्ष्ममणियुक्वनमालाविराजितम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–प्रफुल्लित हे दोय गल्ल जिनके, चिबुक भूषणकरिकें युक्त हे ओर सुवर्णके सूक्ष्ममणिकायुक्त वनमालाकरिकें विराजित हे ॥ ४ ॥ टीका–दोउ गल्लस्थल प्रफुल्लित हे सो युगलगीतमें वर्णन हे "बदरपांडुवदनो मृदुगंडः" (पक्के बेर जेसो श्वेत हे मुखारविंद जिनको ओर कोमल हें गंडस्थल जिनकें) जेसें पक्के बेरमें शुक चंचू मारे तेसें इहां श्रीस्वामिनीजीके दंतस्पर्श होय एसे कपोल हे ओर चिबुकभूषण हे सो श्रीस्वामिनीजी अधरसुधाको अनुभव करे तहां रसके आधिक्यतें अधरतें स्रवतहे सो श्रीचंद्रावलीजी अनुभव करतहे ताको भाव हे सो मधुराष्टककी टीकामें वर्णन हे एसो चिबुक विराजित हे. सोनेके छोटे मनिकाकी मालासों कंठ विराजित हे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ ४ ॥

मूलं–उरःस्थलल्लसत्स्वच्छवक्रवैयाघ्रपाहुजम् ।
रत्नव्यवहितस्थूलमुक्तामालांचितोदरम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–उरःस्थलमें शोभित हे स्वच्छ टेडे वाघनखा जिनकों ओर रत्नके व्यवधानयुक्त बडे मोतिनकी मालाकरिके पूजित हे उदर जिनको ॥ ५ ॥ टीका–उरःस्थलपर उज्वल वाघनखा वक्र लसतहे

सो प्रसिद्ध तो यह अर्थ जो श्रीयशोदाजी बालककी रक्षार्थ धरायेहे तथा श्रीस्वामिनीजीको नखक्षत उरपर भावसहित धरेहे, रत्नकरि ग्रंहित नवरत्नयुक्त बडी माला (जाकों वैजयंती माला कहतहे सो) समस्त भक्तनके भावसों विराजित्त हे ओर बडेबडे मोतिनकी माला उदरपर विराजित हे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ ५ ॥

मूलं–सुवर्णकृत्रिममणिस्थूलमालातिसुंदरम् ।
गुंजाफलमहन्मालालसदूरुयुगांतरम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–सुवर्णके कृत्रिम मणिकातें स्थूल एसी जो माला ताकरिकें सुंदर ओर गुंजाकी बडी मालाकरिकें शोभित हे दोऊ उरूको मध्यभाग जिनको ॥ ६ ॥ टीका–सोनेके कृत्रिम मणिकाकरि गूंथी परम सुंदरमाला पहिरेहे, गुंजामाला श्वेत सुंदर गूंथेहे तामें चतुर्थ स्वामिनीजीके यूथपतिके भावसों पहरी हे मोहनमाला सो उरु जो घुटुतांई पहिरेहे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ ६ ॥

मूलं–अनेकरत्नजटितकरकंकणभूषणम् ।
बाहुमध्यलसत्स्वर्णनिर्मितप्रथितांगदम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–अनेक रत्नकरिकें जटित श्रीहस्तमें कंकणको हे आभूषण जिनकें ओर बाहुके मध्यमें शोभित तथा सुवर्ण (रत्नादिक) करिकें बनाये विस्तारवारे हे बाजु जिनके ॥ ७ ॥ टीका–अनेक रत्नकरि जटित एसे कंकण दोउ हस्तमें पहिरेहे ओर दोउ भुजानमें अंगद (बाजु) सोनेके रत्नजटित विराजित हे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ ७ ॥

मूलं–अनेकपुष्पतुलसीवनमालातिलालितम् ।
विचित्रवर्णविलसत्कटिवासोविराजितम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—अनेक हे पुष्प ओर तुलसी जामें एसी वनमाला करिकें वोहोत शोभित हे, ओर विचित्र वर्णवारे शोभित जो कटिवस्त्र ताकरिकें विराजित हे ॥ ८ ॥ टीका—अनेक प्रकारके पुष्प तुलसीसहित ग्रथित एसी ललित वनमाला विराजित हे, सगरे व्रजभक्तनके भावसों पंचरंगकी अति विचित्र कटिवास (काछनी) धरेहे सो प्रभुसहित चतुर्थ यूथपतिके भावसों कटिपर विराजित हे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ ८ ॥

मूलं—कटिभावज्ञापिकातिकिंकिणीरवशोभितम् ।
पदद्वयगतस्वर्णमणिनूपुरमंडितम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—कटिके भावकों जतायवेवारे किंकिणीके शब्द करिकें शोभित हे. ओर दोय चरणारविंदमें धरे सुवर्णमें जटित मणियुक्त नूपुर करिकें मंडित हे ॥ ९ ॥ टीका—कटिमें किंकिणीके रव शोभित हे ता रवकरि व्रजभक्तनकों अनेक रमणादिक लीलाके भावको सूचन करावतहे. दोय चरणकमलकी चाल परम सुंदर हे तिनमें मणिजटित सुवर्णके नूपुर सोहत हे एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ ९ ॥

मूलं—नखचंद्रप्रकाशैकप्रकाशितजगत्त्रयम् ।
पीतांबरोत्तरीयेषच्चलदंचलसुंदरम् ॥ १० ॥

शब्दार्थः—नखरूप चंद्रके प्रकाशतें मुख्य प्रकाशित कीये हें तीन जगत् जिननें, ओर पीतांबरको जो उत्तरीय वस्त्र सो थोरोसो चलायमान अंचल ताकरिकें सुंदर हे ॥ १० ॥ टीका—नखचंद्रके प्रकाशकरि तीन्यो जगतको प्रकाश करतहे, आकाश, पाताल भूलोक यह तीन्यो लोकमें जो भक्त हे तिनके हृदयमें प्रकाश करत हे ओरके हृदयको नखचंद्र प्रकाश नांही करतहे सो भक्त केसें हे ? जाने एक श्रीठाकुरजीके चरणा-

रविंदको आश्रय कीयो हे तिनके हृदयमें नखचंद्र प्रकाश करत हे तथा यह ललितत्रिभंगि स्वरूप श्रीवृंदावनमें स्थित हे तिनको अनुभव एक व्रजभक्तनकों हे सो राजसी, तामसी, सात्त्विकी एसें त्रिगुण भक्त हे तिनके हृदयमें यह नखचंद्र प्रकाश करत हे ओर पीतांबर सो व्रजभक्त श्रीस्वामिनीजीके उत्तरीयभावसों धारण कीये हे सो उत्तरीयके दोउ अंचल मंद सुगंध वायुकरि चलायमान हे ॥ १० ॥

मूलं–प्रदर्शितशिरोभेदं चलन्मकरकुंडलम् ।
नृत्यंतं नयनानंदं नितांतरतिसंप्रदम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–[1]बतायो हे मस्तकको भेद जिननें, चलायमान मकराकृति हे कुंडल जिनके, जो नृत्य करतहे. नेत्रमें हे आनंद जिनकों, ओर निरंतर रतिकों देवेवारे ॥ ११ ॥ टीका–मस्तकके दोउ ओर सुंदर श्रवणमें मकराकृति कुंडल धारण कीये हे सो सांख्ययोगको स्वरूप हे एसे श्रीकृष्ण नृत्य करत हे ताकरि व्रजभक्तनके नयनकों परम आनंद देत हे भक्तनकों रतिरसको अनुभव करावत हे ॥ ११ ॥

मूलं–नितंबिनीवृंदवर्त्तिरसानुभवलोलुपम् ।
विहरंतं विशेषेण रासलीलापरायणम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–व्रजभक्तनके वृंदमध्य विराजित हे ताकरि इनके रसानुभव करिकें लुब्ध हे, विहार करतहे ओर विशेषकरि रासलीलामें परायण हे अथवा रासलीलाको उत्तम हे स्थान जिनको एसे हे ॥ १२ ॥ टीका–व्रजभक्तनके वृंदमें प्रभु विराजमान हे सो भक्तनकों रसानुभव करायवेमें परम चंचल हे सो यातें जो एककालावच्छिन्न समस्त व्रजभक्तनकों दान करतहे रासादिक लीला करिवेमें प्रभु परम चतुर हे ॥१२॥

---

१ नृत्यमें मस्तक चलायमान होय हे.

मूलं—त्रिभंगललितं वेणुकलितं भुजयोरपि ।
वृंदावनैकफलितं वलितं स्वजनैः सह ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—त्रिभंगस्वरूप हे तासों मनोहर हे, दोउ भुजमेंहू वेणु धारण कीये, वृंदावनके मुख्य फलरूप हे ओर स्वभक्तजनसहित मिलित हे ॥१३॥ टीका—या भांति त्रिभंग स्वरूपकरि दोउ भुजानसों वेणुनाद करतहे सो श्रीवृंदावनके फलात्मक स्वरूप श्रीवृंदावनमें सदा विराजमान हे अपने स्वजन (व्रजभक्तन) करिकें वेष्टित हे याभांति लीलासहित स्वरूपके प्रभु मोकों कब दर्शन देयंगे ? ॥ १३ ॥

मूलं—वादयंतं मुरलिकां मोहयंतं मनः सताम् ।
जगज्जडं प्रकुर्वंतं रोधयंतं च भक्षणम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—मुरलीको नाद करतहे, सत्पुरुषके मनकों मोह करतहे, जंगमकों जड करतहे ओर पशुआदिके भक्षणको रोध करतहे ॥ १४ ॥ टीका—सुंदर सप्तसुरनकी मुरलीका वजायकें समस्तभक्तनके मनकों मोह करतहे. श्रीवृंदावनमें स्थित पशु, पक्षि, वृक्षादिकनकों मोह उपजावतहे, जड हे तिनकों चेतन ओर चेतन हे तिनकों जड करतहे सो पशुपक्षि चैतन्ययुक्त हे सो जड होयकें स्थित हे एसें रहि वेणुनादामृतरसको पान करतहे ओर वृक्षपर्वतादि जड हे सो चैतन्ययुक्त होय मधुधारा वहतहे ॥ १४ ॥

मूलं—पशूनां पक्षिणां चैव मौनसंपादकं तथा ।
तरूणामंतरानंदमधुधारैकवार्षुकम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—जव वेणुनाद करतहे तव पशु पक्षिनकों मौन करिवेवार, ओर वृक्षनके मध्यमें आनंदकरिकें मधुधाराको वर्षण करायवेवारे ॥ १५ ॥ टीका—पशु पक्षि वेणुनाद सुनिकें चंचलता छोडि मौन होय

रसपान करतहे यह आधिदैविक श्रीवृंदावनके मुनि हे. पुष्टिलीला-संबंधि वृक्षादितें मधुकी धारा वरषत हे सो अंतःकरणमें भगवदीयनकों जब भगवत्स्वरूपको अनुभव होय तब आनंदतें देहमें पुलकावलि होय सो श्रीवृंदावनके वृक्ष हे सो परभगवदीय हे सो वेणुनादरस अमृतको हृदयमें अनुभव करी अंतःकरणमें आनंद पाय मधुधारा स्रवतहे ॥ १५ ॥

मूलं–हरंतं व्रजभूतापं पदस्थापनतस्तथा ।
यमुनातीरमात्रैकजलक्रीडाकृतिप्रियम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–चरणारविंदके स्थापनतें व्रजकी भूमिके तापकों हरिवेवारे तथा श्रीयमुनाजीके तटमात्रमें मुख्य जलक्रीडाकी कृति हे प्रिय जिनकों ॥ १६ ॥ टीका–याभांति रासादिक लीला व्रजभूमिमें करी व्रजभुमिके तापकों हरतहे तथा व्रजमें उत्पन्न भये सर्व प्राणिके तापकों हरतहे अथवा व्रजमें अपने चरणारविंद स्थापन करी सगरी गुल्मलता औषधि आदिके तापकों हरतहे अथवा व्रजमें सब ठोर चरणचिह्न स्थापन करी यह जतावत हे जो कोउ व्रजको आश्रय करेगो तिनकोहू ताप दूरी होयगो याभांति रासलीला अनेक भक्तनसों कीये तब श्रमजल भयो तब श्रीठाकुरजी जानें जो यह भक्तनसहित श्रमजल हे यह रस कहां देनो ? पाछें विचारे जो यह रसके पात्र श्रीयमुनाजी हे एसें जानि भक्तनसहित श्रीयमुनाजीमें पधारे सो अपनी प्रिया श्रीस्वामिनीजीसहित जलक्रीडा करत भये. याभांति श्रीयमुनाजीकों पात्र जानि रसदान कीयो, जलक्रीडा करी श्रमको निवारण कीयो एसे श्रीकृष्ण कब दर्शन देयंगे ? ॥ १६ ॥

मूलं–रसात्मकरसात्मस्वभक्तवृंदसमन्वितम् ।
निजानुभवसंवेद्यं प्रकटंतं क्षणे क्षणे ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—आप रसात्मक और रसात्मक अपने भक्तनके वृंद ताकरिकें युक्त हे, तथा अपने भक्तनके अनुभवार्थ सेवाज्ञानकों क्षण क्षणमें प्रकट करिवेवारे हे॥ १७॥टीका—रसात्मक श्रीकृष्ण हे तेसेंही श्रीकृष्णके आत्मारूप रसात्मक व्रजभक्तनकों अनुभव करावतहे. क्षणक्षणमें अधिक रसदान करतहे ताकरि भक्तनको भावहू क्षणक्षणमें अधिक प्रकट होतहे एसे रसदानकर्त्ता श्रीकृष्ण प्रभु कब दर्शन देयंगे ? ॥ १७ ॥

मूलं—विरहे युगपत्सर्वनिजलीलानुभावकम् ।
साकारानंदरूपेण व्रजभक्तहृदि स्थितम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—विरहमें एककालावच्छिन्न अपने भक्तनकों अपनी लीलाको अनुभव करायवेवारे, और साकार आनंदरूपकरिकें व्रजभक्तनके हृदयमें विराजमान हे ॥ १८ ॥ टीका—एसे भावात्मक रसात्मक श्रीकृष्ण सो केवल शुद्ध विरह करे तब अपनी निजलीलाको अनुभव करावें सो जीव सगरे दिनरात्रि केवल विप्रयोग आर्तिकरि शुद्धहृदय होय तबही निजलीलाको अनुभव होय सो निजभक्त श्रीस्वामिनीजी हे तिनकों विप्रयोग हे तिनहीकों यह लीलाको अनुभव हे एसे भावात्मक श्रीकृष्ण हे सो व्रजभक्तनके हृदयमें साकार आनंदरूप सर्वलीलासंयुक्त विराजत हे काहेतें जो रसको स्वभाव हे जो पात्र विना रहे नांही सो रसात्मक साकार आनंदरूप श्रीकृष्ण हे ता रसके पात्र व्रजभक्त हे तातें व्रजभक्तनके हृदयमें विरहरसात्मक प्रभु स्थिर रहतहे ॥ १८ ॥

मूलं—एवं दिदृक्षा सततं स्थापनीया निजे हृदि ।
सैवास्माकं प्रेमभावोऽन्यरागविनिवर्त्तकः ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—उपर अठारे श्लोकमें निरूपण कीये एसे स्वरूपके दर्शन करिवेकी इच्छा अपने हृदयमें स्थापन करनी यहही अन्यमें प्रीति मिटायवेवारो अपनो प्रेमभाव जाननो ॥ १९ ॥ टीका—एसे

श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छा जाके मनमें होय सो निरंतर अपने हृदयमें यह स्वरूपको ध्यान करी स्थित करे, तहां कोई कहे जो तुह्मारे हृदयमें तो एसे प्रभु स्थित हे ध्यान करी तुम हृदयमें स्थित कीये हे तहां कहत हे जो मेरे हृदयमें प्रेमको अभाव हे, मेरेमें प्रेम नांही हे ओर यह स्वरूप तो प्रेमकरि धारण करे तव होय ओर मोकों तो अन्यरागनिवृत्तिही दुर्लभ हे तातें में तो अन्यरागनिवृत्तिकरिकें रहित हों. तहां कोई कहे जो तुह्मारेमें प्रेम तो दीसत हे, स्वरूपको वर्णन कीयेहे. प्रभुमें आर्तिहू हे, प्रभुमें आसक्तिहू हे, पुष्टिमार्गकी सगरी रीति हे, ताप्रमाण चलत हो तुमकों कहा बाधक हे ? तहां कहत हे ॥ १९ ॥

मूलं–ततःस्यादार्त्तिरधिका गेहदैहिकबाधिका ।
आसक्तिःसैवमार्गेऽस्मिन् गृहस्थास्वास्थ्यकारिका २०

शब्दार्थः–प्रेमभाव भये पीछें गृहकार्य तथा देहकार्यकों वाधकरिवेवारी आसक्ति होय, यह पुष्टिमार्गमें गृहस्थको अस्वास्थ्य करिवेवारि सोही हे ॥ २० ॥ टीका–हमकों गृहदेहसंबंधी लौकिक आर्ति हे सो यह भगवद्भावमें बाधक हे, काहेतें जो देहसंबंधी घर तामें लौकिक वैदिक कार्य हे ताकी आर्त्ति मनमें रहत हे सो वाधक हे ओर यह पुष्टिमार्गमें आसक्ति हे सो परम धर्म हे सो जाकी आर्त्ति प्रभुपर हे सो गृहस्थ घरमें कैसें स्वस्थ रहे ? गृहमें स्वस्थ जाको मन हे सो यह पुष्टिमार्गमें कोन भांति स्वस्थ होयगो ? यह कहिकें यह जताये जो जाकी आसक्ति प्रभुमें हे तासों देहसंबंधी लौकिक–वैदिक–क्रिया भलिभांतिसों न बनेगी ॥ २० ॥

मूलं–परितापोदयस्तस्मात् सर्वविस्मृतिकारकः ॥
स एव व्यसनं यत्र प्रपंचस्फूर्त्तिनाशनम् ॥ २१ ॥

---

१ प्रेमको अभाव ओर अन्यरागकी निवृत्तिको अर्थ मूलके अनुसार नांही हे.

शब्दार्थः—यह आसक्तितें सर्व (प्रपंचकों) विस्मृति करिवेवारे परितापको उदय होय, जामें प्रपंचकी स्फूर्त्तिको नाश होय सोही व्यसन कहिये ॥ २१ ॥ टीका—उपर कहे ताभांति प्रभुमें आसक्ति होय तब प्रभु दयाकरि आर्त्तिदान करे तो विप्रयोग होय, सो विप्रयोग भयो कब जानियें? जब प्रभुसंबंध विना देहसंबंधी सर्वकार्यकी[१] विस्मृति होय तब विप्रयोग भयो जानियें. पाछें प्रभुमें व्यसन होय सो प्रभु विना रह्यो न जाय एक क्षण युगसमान जाय यह व्यसनको स्वरूप हे ता व्यसनकरिकें प्रपंचकी स्फूर्त्तिको नाश होय केवल प्रभुपर तन्मयता होय ॥ २१ ॥

मूलं—एवंविधस्तु त्रिविधो भावो निःसाधनो मतः ।
अतस्तु दुर्लभा लोके तत्प्राप्तिर्भजतां नृणाम् ॥२२॥

शब्दार्थः—एसें (प्रेम, आसक्ति, ओर व्यसन) तीन प्रकारको भाव निःसाधन कह्यो हे तासों भगवत्सेवा करिवेवारेनकों एसें भावकी प्राप्ति लोकमें दुर्लभ हे ॥ २२ ॥ टीका—याभांति मन वचन क्रिया करि तीनप्रकारको भाव सिद्ध होय तब निःसाधन होय जाय सो याभांति निःसाधन होनो या लोकमें दुर्लभ हे, निरंतर जो श्रीकृष्णकी सेवा कीयो करे तब निःसाधन होय ॥ २२ ॥

मूलं—चक्रे करुणया कृष्णो भावात्माऽऽस्यं तथाविधम् ।
मूर्तिमद्भावसंबंधात्तत्प्राप्तिरिति वेद यः ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—श्रीकृष्ण करुणाकरिके भावात्मक मुखारविंदरूप तेसें श्रीमदाचार्यजीकों प्रकट कीये अथवा ‘ भावात्माख्यं ’ एसें पाठ होय तो भावात्मा हे नाम जिनको एसें श्रीआचार्यजीकों प्रकट कीये,

---

१ मन वचन क्रियाको अर्थ मूलके अनुसार नांही हे, शब्दार्थ रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार हे.

मूर्तिमान् भाव जो श्रीआचार्यजी तिनके संबंधतें यह तीनभावकी प्राप्ति हे एसें जो जानत हे तिनकों ता भावकी प्राप्ति होय हे ॥ २३ ॥ टीका—यह भाव विधिपूर्वक कब सिद्ध होय ? जब श्रीकृष्ण भावात्मकके मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपा होय तब भाव सिद्ध होय. भाव सिद्ध भयो कब जानिये ? जब श्रीकृष्णस्वरूप मूर्तिमान् हे यह भाव सिद्ध रहे जो येही साक्षात् श्रीकृष्ण भावात्मक हमारे पति हे यह मन वचन क्रियाकरि भाव होय तब प्राप्त होय. यह भाव केसें होय सो आगें कहतहें ॥ २३ ॥

मूलं—प्रमेयबलतो नान्यत्साधनं तत्र भाव्यताम् ।
अतः सर्वैः प्रकर्त्तव्यो निजाचार्यपदाश्रयः ॥२४॥

शब्दार्थः—यह भावमें प्रमेयबल विना ओर साधन नांही हे एसे जाननों तासों सर्वकों अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय विशेषकरि कर्त्तव्य हे ॥ २४ ॥ टीका—श्रीकृष्णके स्वरूपमें एसो भाव जीवके साधनतें न होय, श्रीकृष्णही प्रमेयबलतें भावको दान करे तबही भाव होय तातें पुष्टिमार्गकी रीतिसों तन मन धनसों प्रीतिसहित सेवा करे अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलको आश्रय करे तो श्रीआचार्यजी प्रमेयबलतें भावदान करे तातें मार्गकी रीतिसों सेवा ओर श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलको आश्रय यह निश्चय मन लगायकें कर्त्तव्य हे यह सिद्धांत सर्वोपर हे ॥ २४ ॥

मूलं—तदभावे न वै भावि फलमेतन्न संशयः ।
अतएवास्मदीशैस्तु ग्रंथे श्रीवल्लभाष्टके ॥ २५ ॥
स्वामिन् ! श्रीवल्लभेत्येतत्पद्येऽखिलमुदीरितम् ।
तदाश्रयो न वचनैः किं तु तन्मार्गनिष्ठया ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—मार्गकी रीतिसों सेवा ओर आचार्यजीके चरणकमलको आश्रय यह दोऊको अभाव होय तो भावरूप फल नांही होय यामें संशय नांही, तासोंही अपने प्रभु श्रीगुसाँईजीनें तो श्रीवल्लभाष्टकर्में " स्वामिन् श्रीवल्लभाग्ने " यह श्लोकमें सर्व निरूपण कीयो हे सो विनको आश्रय केवल वचनकरिकें नांही होयहे किंतु विननें प्रकट कीये एसें पुष्टिमार्गमें निष्ठा होय तब आश्रय सिद्ध होय ॥२५॥२६॥

टीका—उपर कहे ताभांति श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय करी भगवत्सेवा करे तब श्रीआचार्यजी भावदान करे तब भावात्मक रसमें तद्रूप होय जाय तब यह पुष्टिमार्गीय फलकी निश्चय प्राप्ति होय संशय नांही सो हमारे श्रीगुसाँईजी वल्लभाष्टकमें कहेहें ॥ २५ ॥ " स्वामिन् श्रीवल्लभाग्ने क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षार्तितापो जनेषु । यत्प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्यं दृष्टेऽप्यस्मिन्मुखेंदौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत् " (हे स्वामिन् श्रीवल्लभरूप अग्नि ! क्षणहू आपके समीपमें (आपकी) कृपातें प्राणप्रिय श्रीव्रजाधीश्वर श्रीकृष्णके मुखारविंदके दर्शनकी इच्छाकी आर्ति भक्तजननमें प्रकट होयहे सो अत्यंत युक्त हे, परंतु जो पाछेंहू यह मुखारविंदरूप चंद्र दृष्ट भयेहू (यह आर्ति) अत्यंत उत्पन्न होयहे यह आश्चर्य हे) इत्यादि वचनकरि यह वचनके अनुसार आश्रय ओर यह पुष्टिमार्गमें निष्ठा होय तब सगरी लीलाको अनुभव होय सो आश्रय ओर मार्गमें निष्ठा कोन प्रकार होय सो आगे कहतहे ॥ २६ ॥

मूलं—मार्गनिष्ठा न स्वबाधः किं तु तादृग्गुरूदितैः ।
गुरूदितानि वाक्यानि न स्वतो ह्यनुवादतः॥२७॥

शब्दार्थः—मार्गमें निष्ठा अपने ज्ञानकरिकें न होय किंतु एसे गुरुके वचनामृतसों होय, ओर यह वचनामृत अपनी बुद्धिपरिकल्पित न होय परंतु पुष्टिमार्गके सिद्धांतके अनुवादरूप होय ॥ २७ ॥ टीका—पुष्टिमार्गमें निष्ठा गुरुके बोध कीये बिना न होय जब गुरू प्रसन्न होय कृपाकरिकें बोध करे तब मार्गमें निष्ठा होय ओर यह जीवकों गुरुके वचनमें दृढ विश्वास होय, विश्वासकरि गुरुके वचनकों वारंवार अर्थसहित भावना करे, अपने मनसों अर्थभावना न होय तो तादृशीय वैष्णवसों मिलिकें गुरुके वचनको अनुवाद करे वारंवार भावना करे ॥ २७ ॥

मूलं—अनुवादो न स्वबुद्ध्या किं तु मूलक्रमागतः ।
अथापि तत्र चापेक्ष्यो दृढः स्वाचार्यसंश्रयः ॥२८॥

शब्दार्थः—अनुवाद अपनी बुद्धितें न करनो किंतु मूलक्रमतें प्राप्त अर्थ करनो ता पीछेंहू यामें अपने श्रीआचार्यजीको दृढ आश्रय चाहियें. ॥२८॥ टीका—गुरुके वचनको अनुवाद अपनी बुद्धितें कल्पनाकरि न करे जो मूलक्रमतें श्रीआचार्यजी महाप्रभु सुबोधिनीजी निबंधादि ग्रंथ कीये हे ताको भाव विचारे तो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें श्रीसुबोधिनीजी आदिमें जान्यो जाय सो श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको दृढ आश्रय होय तब श्रीआचार्यजी कृपा करे तातें श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको दृढ आश्रय करी श्रीसुबोधिनीजी निबंधमें जा क्रमसों भाव हे ता क्रमसों अपने हृदयमें भावना करी सेवा करे ॥ २८ ॥

१ श्रीआचार्यजीके प्रकट कीये पुष्टिमार्गीय सिद्धांतके ग्रन्थ यहां "वचनामृत" शब्दसे लिये जायहे तासूं गुरुकी आज्ञाहू अपने मनमें आवें एसी न होय किन्तु श्रीआचार्यप्रकटित ग्रन्थानुसार होय. ग्रन्थको अर्थहू अपनी बुद्धिपरिकल्पित न करे किन्तु इनके ' टीकाकार श्रीपुरुषोत्तमजी प्रभृतिनें कीये अर्थके) अनुवादरूप करे ।

२ एतन्मार्गीय विद्वान् जो पारंपर्यतें गुरुके मुखतें वा ग्रन्थानुवादको आशय जानते आये होय सो हि अर्थ मान्य करनो एसो श्लोकको अभिप्राय हे ।

मूलं–एतादृशेन गुरुणाऽवगत्य निखिलं जनः ॥
आश्रित्य च निजाचार्यान् सदानंदं सदा भजेत्॥२९॥

शब्दार्थः–भक्तजन एसे गुरुतें सर्व जानिकें अपने श्रीआचार्यजीको आश्रय करिकें सदानंदरूप श्रीकृष्णको सदा भजन करे ॥ २९ ॥

टीका–याभांति कोई वैष्णव गुरुकी आज्ञाप्रमाण समग्र जानिकें चले तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपनो आश्रय निश्चयही देंही यामें संदेह नांही, "सदा आनंदरूप श्रीआचार्यजी हें" यह भावसों भजन करे ओर लौकिक वैदिकमें आनंद तुच्छ हे सदा नांही, लौकिकमें विषयादि सुख ताकरि नरकमें जाय ओर स्वर्गादि सुख सो पुण्य क्षीण भये संसारमें परे दुःखी होय ओर श्रीआचार्यजी सदा एकरस आनंदरूप हे सो श्रीगुसाँईजी सर्वोत्तमजीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके नाम कहेहें "आनंदाय नमः" "परमानंदाय नमः" इत्यादि वचनके भावसों जाननें ओर श्रीआचार्यजीकी नामावलीमें नाम हे "आनंदमूर्त्तये नमः" "यह श्री आचार्यजीको स्वरूप हे सो मूर्तिमान् आनंदमय हे सदा एकरस हे याभांति प्रेमसों भजन करे." तहां कोई कहे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुके यह पुष्टिमार्गमें सगरे जीव श्रीआचार्यजीको आश्रयकरि सेवा करतहें ओर तुम कहे भावसों भजन करे सो कहा ? तहां कहतहे ॥ २९ ॥

मूलं–भजनं भावरूपस्य भावेनैवोपपद्यते ।
चेतस्तत्प्रवणं सेवा ह्यत एव निरूपिता ॥ ३० ॥

शब्दार्थः–भावरूप श्रीकृष्णको भजन (सेवा) भावकरिकेंही प्राप्त होयहे तासोंही श्रीआचार्यजी महाप्रभुनें सिद्धांतमुक्तावलिमें प्रभुमें चित्त प्रवण (लीन) होय सो सेवा एसें निरूपण कीयेहे ॥ ३० ॥

१ मूलमें सदानंद शब्द हे ताको अर्थ श्रीकृष्णपर (रत्नभट्टजीकी) टीकाके अनुसार हे ओर यामें श्रीआचार्यजीपर लिख्यो हे तामें जितनो विशेष हे तहां " " एसे चिह्न कीये हे सो काहूनें भावसों लिख्यो हे एसो अनुमान होयहे.

टीका–भजन सेवा सो भावसों करे काहेतें जो भाव विना आगें मानसी फलरूप न होय तातें तनुजा–वित्तजा भावसों करे तब फलरूप मानसी सिद्ध होय. सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु सिद्धांतमुक्तावलिग्रंथमें कहेहें " कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता " (सदा श्रीकृष्णकी सेवा करनी सो मानसी उत्तम हे) सदा श्रीकृष्णकी सेवा करे तिनकों मानसी सेवा सिद्ध होय " चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा " (चित्त प्रभुमें एकाग्र होय सो सेवा. ताकी सिद्धिके लिये तनुजा तथा वित्तजा करनी) जेसें नदीको प्रवाह रात्रिदिवस एकरस चले ताभांति अष्टप्रहर चित्तमें मानसी (तिनकों साधिवेवारि तनुजा वित्तजा भावकरि करे तब) सिद्ध होय. तनुजा वित्तजाहू भावसहित मन लगायकें करे तबही बने तब सिद्ध होय, याभांति श्रीआचार्यजी निरूपण कीयेहे. मानसी सिद्ध भई होय तिनके लक्षण केसें जानियें ? तहां कहतहे ॥ ३० ॥

मूलं–तस्यां तु विस्मृतिर्भाव्या जगतः सर्वथा ध्रुवम् ॥ तदभावे मानसी तु सेवनान्नैव सिद्ध्यति ॥३१॥

शब्दार्थः–यह मानसी सेवामें तो सर्वथा जगतकी निश्चल विस्मृति होनी चाहियें, ताके अभावमें सेवनतें मानसी सिद्ध नांही होय ॥३१॥
टीका–तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायके करे तो सगरे जगत् देहसंबंधी पदार्थकी विस्मृति होय. मानसी सेवाको यह भाव हे जो सगरे जगतकों सर्वथा भुलावे यह निश्चय जाननों, अपनों देहानुसंधान खानपान निद्रादि सब भूलिजाय याभांति भावाविष्ट होय मनमें सेवाकरि स्वरूपानंदको अनुभव करे तब जानियें जो भावरूप मानसी सेवा सिद्ध भई, सो प्रथम तनुजा वित्तजा सेवाहू दुर्लभ हे तहां मानसी कहांतें सिद्ध होय ? तातें तामें बाधक हे सो कहतहें ॥ ३१ ॥

मूलं–तद्बाधकानींद्रियाणि विषया लौकिकी मतिः ॥
प्रतिबंधस्तथोद्वेगो भोगोऽप्यत्रैव लौकिकः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः–इंद्रिय, विषय, लौकिकबुद्धि, प्रतिबंध तथा उद्वेग और यहां लौकिक भोग यह सर्व मानसी सेवाके बाधक हे ॥ ३२ ॥ टीका–तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायकें करे तामें दशो इंद्रिय बाधक हे काहेतें जो इंद्रियके देवता हे तिनकों विषय प्रिय हे सो भगवत्सेवामें इंद्रिय बाध करतहे सो कोन भांति जो सेवा करिवेमें विषयादिक बुद्धि होय. लौकिक बुद्धि होय जो सेवा तो नित्य करतहों, घरको लौकिक कार्यहू करनो हे, भूखहू बोहोत हे या भांति लौकिक बुद्धि होय तब सेवामें मनकों उद्वेग होय सो जेसें बने तेसें वेगिकरि अनोसर करावे तब श्रीठाकुरजी तो मनकी लौकिक बुद्धि जाने सो सेवामें प्रतिबंध करे एसो लौकिक वैदिक कार्य तथा विषयादिकको कार्य मनमें प्रेरे जो सेवामें प्रतिबंध होय मनमें उद्वेगतें प्रतिबंध होय तब भगवत्सेवा तनुजा वित्तजा न बने, पाछें खानपानादि विषय-भोगमें मन चले, पाछें विषयादिक करे, पाछें केवल लौकिक होयजाय. सो सेवाफलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः " (उद्वेग, प्रतिबंध अथवा भोग बाधक होय) इत्यादि वचनसों जाननो जो इंद्रिय तथा मन विषयमें मग्न हे ताकरि प्रथम उद्वेग पाछें प्रतिबंध पाछें भोग पाछें केवल लौकिक होय जाय. तहां कोई कहे जो इंद्रियनकों विषयमें जोडे एसी बुद्धि सेवामें क्यों होतहे ? तहां कहतहे ॥ ३२ ॥

मूलं–दुष्टान्नभक्षणं चापि ह्यसमर्पितभक्षणम् ॥
असत्संगः सर्वथा हि भावबाधक इष्यते ॥ ३३ ॥

रत्नभट्टजीकी टीकामें यह सर्व मानसी सेवाके बाधक लिखे हे.

शब्दार्थः–दुष्टके अन्नको भक्षण अथवा दुष्ट [अपवित्र] अन्नको भक्षण ओर असमर्पितको भक्षण तथा असत्संग (दुःसंग) यह सर्वथा भावके बाधक हे ॥ २३ ॥ टीका–इंद्रियादि मनमें विषय यातें होतहे एक तो दुष्टप्राणीकी सत्ताके अन्नको भक्षण करे अथवा दुष्ट क्रियाकरि अन्न लावे भक्षण करे तथा असमर्पित खाय तथा असत् (बहिर्मुख) को संग करे यह तीन्यो सर्वथाही बाधक कहे हे सो न्यारे न्यारे कहतहे. दुष्ट अन्न बोहोत बाधक हे सो पद्मपुराणमें कहेहे " अवैष्णवानामन्नं च पतितानां तथैव च । अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत् । अनिवेद्य तु यो भुंक्ते हरये परमात्मने । पतंति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः " (अवैष्णवको अन्न तथा पतितको अन्न तथा जो अन्न प्रभुकों आर्पित नांही कीयो सो श्वमांस [कुत्ताके मांस] बरोबर होय ॥ जो हरि परमात्माकों अर्पण कीये विना आप खाय हे तिनके पितृपितामहादि बोहोत वर्षतांई नरकमें गिरेहे) यह वचनतें अवैष्णवको अन्न होय तथा पतित [चांडालादि तेली धोबी नीच] को अन्न तथा असमर्पित अन्न यह श्वमांस सदृश हे, एसो अन्न खायेतें इंद्रिय बुद्धि सर्व नष्ट होय जाय, असुरवत् होय तथा असमर्पित अन्नकों खाय तो पितृसहित नरकमें जाय तातें श्राद्धहू प्रसादि अन्नसों करे ओर कूर्मपुराणमें कहेहे " अनर्पयित्वा गोविंदे यो भुंक्ते धर्मवर्जितः । शुनो विष्ठासमं चान्नं नीरं तत्सुरया समम् ॥ (गोविंदकों अर्पण कीये विना धर्मरहित जो खायहे सो अन्न कुत्ताके विष्ठा बरोबर ओर जल सुरा [मदिरा] बरोबर हे) यह वचनतें गोविंद जो श्रीकृष्ण तिनकों अर्पे विना असमार्पित जो खातहे सो सकल धर्मकरि रहित हे उह अन्न श्वानकी विष्ठासमान हे उह खानहारो निश्चय असुर हे सो दुष्टसंगतें असमर्पित अन्न खाय तातें एक तो दुष्टको अन्न तथा असमर्पित तथा असत्संग यह तीन्यो बाधक हे. जो दुष्टसंग हे ताकरि अन्यसंबंध

होय तब देह इंद्रिय सब बहिर्मुख होय जाय विषयके ध्यानमें तत्पर होय तातें वैष्णव होय सो मनमें विचार राखे दुष्टको अन्न, असमर्पित अन्न तथा दुःसंग इनको संबंध कबहू न करे ॥ ३३ ॥

मूलं–तस्मात्त्यक्त्वा दुष्टसंगं कृत्वा स्वाचार्यसंश्रयम्।
तदीयजनसंसर्गे स्थित्वा मार्गे तथा गुरौ ॥ ३४ ॥
कृत्वा विषयवैराग्यं परितोषं विधाय च।
सदानंदं सदानंदं फलप्राप्त्यै सदा भजेत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः–तातें दुःखको त्याग करिकें अपनें श्रीआचार्यजी श्रीमहाप्रभुजीको आश्रय करिकें ओर तदीयजनके संबंधनिमित्त तथा गुरुनिमित्त मार्गमें स्थित होय विषयमें वैराग्यकरिकें ओर संतोषकरिकें निरंतर आनंद होय तेसें सदानंदरूप श्रीकृष्णको सदा भजन (सेवा) करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ टीका–दुष्टके संगको त्याग करे काहेतें जो दुष्टके संगतें बुद्धि बिगरे, असमर्पित खाय अन्याश्रयहू करे तातें दोषको मूल दुष्टसंग हे ताको त्याग करे, ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणारविंदको आश्रय करे ओर पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग करे ओर पुष्टिमार्गीयकी रीतिप्रमाण मार्गमें स्थित होय, गुरु कहे ताप्रमाण क्रिया सब करे यह पांचो प्रकार स्नेहयुक्त करे. दुःसंगको त्याग १. श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय २, भगवदीयको संग ३, पुष्टिमार्गमें स्थिति ४, गुरु कहे ताप्रकार सेवा ५, यह पांचो प्रकार भगवदीय वैष्णवकों कर्त्तव्य हे ॥ ३४ ॥ विषयमें वैराग्य होय तबही सर्वधर्म बनी आवे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी संन्यासनिर्णयमें कहे हें " विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः " (विषयाक्रांत देह (अर्थात् देहस्थइंद्रिय) हे तिन जीवनके हृदयमें सर्वथा हरिको आवेश नांही हे) यह वाक्यतें जा जीवके हृदयमें विषयको ज्ञान होय, देहमें विषयकी कामना होय

ताके हृदयमें हरि भगवानको आवेश सर्वथा न होय तातें विषयादि देहसंबंधी कार्यतें वैराग्य होय ओर मनमें संतोष होय यथालाभ संतुष्ट (जो भगवदिच्छातें आय प्राप्त होय ताहीमें संतोष) होय जब विषयादिकमें वैराग्य होय तबही संतोष होय ओर लौकिक वैदिक देहसंबंधी चिंता सब छोडि सदा आनंदमें रहे सो हृदयमें संतोष होय तब हृदयमें आनंद आवे चिंता न होय तब भगवद्धर्ममें मन लगे ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि " (निवेदित कीये हे आत्मा जिननें एसें जो वैष्णव हे तिनकूं कछुहू चिंता कर्त्तव्य नांहीहे) निवेदित भक्त हे सो चिंता न करे सदा आनंदमें रहे तब सदानंदरूप जो श्रीकृष्ण श्रीवृंदावनमें स्थित व्रजभक्तसंयुक्त फलरूप उपर कहे हे तिनकी सेवा सदा करे तब सर्वोपर फलप्राप्ति होय ॥ ३५ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं नवमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ९ ॥

शिक्षापत्र १०.

अब दशम शिक्षापत्रमें लौकिक क्लेशको संबंध होय तोहू प्रभुमें दोषारोप न करनो ओर प्रभुको आश्रय न छोडनो, चातकपक्षिवत् दृढ विश्वास राखिकें रहनो, भगवान् भक्तनको हितही करेंहे, यह निरूपण हे। उपर कहे हे जो विषयमें वैराग्यकरि यथालाभ संतोष राखि प्रसन्नतासों शुद्धहृदयतें भगवत्सेवा करे तो फलप्राप्ति होय, सो श्रीकृष्ण फलदान देवेको जब विचार करे तबही बने, श्रीकृष्णके मनको अभिप्राय जानि-

वेको जीवको सामर्थ्य नांहीहे प्रभु कोन भांति कहा फल देयंगे सो आगें शिक्षापत्रमें कहतहे.

**मूलं–को वेद कीदृशः कृष्णाभिप्रायः स्वजने मतः ॥
स्वानंदसिद्धये राति निजार्तिं दर्शनादिषु ॥ १ ॥**

शब्दार्थः–स्वजन जो तदीय हे ताके निमित्त श्रीकृष्णको कहा अभिप्राय हे सो कोन जाने ? परंतु प्रमेयबलतें एसो जान्यो जातहे जो अपने आनंदकी सिद्धिके लिये दर्शनादिकमें अपनी आर्तिको दान करतहे ॥ १ ॥ टीका–श्रीकृष्णको अभिप्राय जानिवेको वेदहूको सामर्थ्य नांहीहे तासों नेति नेति पुकारतहे, यद्यपि वेद भगवत्स्वरूप हे भगवानके श्वासतें प्रकटे हे तथापि श्रीकृष्णको अभिप्राय जानिवेमें समर्थ नांहीहे तो अपनी बुद्धितें में कहा जानूंगो ? तोहू श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें में कछु अपनी मति अनुसार कहतहों काहेतें जो वेद हे सो प्रभुके बंदीजन हे सदा गुण गावतहे बाहिर ईश्वरताको माहात्म्य कहतहे ओर में तो श्रीकृष्णको दास हूं तातें प्रभुकी कृपा मोपर हे श्रीकृष्ण आनंदरूप हे सो अपने आनंदको जब पुष्टिमार्गीय जीवकों अनुभव करायवेकी इच्छा करतहे जो फलाने भक्तकों आनंद सिद्ध करिवेको विचार हे तब वह भक्तकों श्रीकृष्णके दर्शन होतहे तातें यह जाननो जो श्रीकृष्ण अपने सेवककों आनंददानकों विचारे तब अपने दर्शनकी आर्ति सिद्ध करावे, उह सेवकके हृदयमें ताप होय जो में कब श्रीकृष्णको दर्शन करूंगो ? याहीमें स्मरण सेवा कीर्तन सब जाननो काहेतें जो इनसों प्रभुके दर्शन विना रह्यो न जाय तातें भगवद्धर्म करिवेमें प्रीति होय ॥ १ ॥

**मूलं–संसाररागाभावाय लौकिकार्तिं तथा पुनः ।
मदाभावाय च स्वार्तिं शरीरार्तिं प्रयच्छति ॥ २ ॥**

१ वेदको अर्थ मूलके अनुसार नांहीहे.

शब्दार्थः–संसारमें स्नेह हे ताकी निवृत्तिके अर्थ लौकिक आर्ति देतहे फेरि मदकी निवृत्तिके अर्थ ज्ञातिसंबंधि आर्ति अथवा धनकी आर्ति तथा शरीरकी आर्ति [रोगादि पीडा] देतहे ॥ २ ॥ टीका– यह संसार देहसंबंधी जितनो पदार्थ होय तिनमेंतें राग छूटे तब श्रीकृष्ण कृपा करे तातें लौकिककी आर्ति देतहे सो लौकिक छुडायवेके लिये देतहे ओर मदको अभाव होय (मैंही सर्वकर्त्ता हों एसो अभिमान छूटे) येहू श्रीकृष्णकी कृपातें होय ओर अपने शरीरकी आर्ति जो दुःखादिक तथा धनकी आर्ति सोही मदकी निवृत्तिके अर्थ हे तातें येहू श्रीकृष्णकी कृपातें जानियें ॥ २ ॥

मूलं–संगाभावाय बंध्वार्तिं देशार्तिं दैन्यसिद्धये ॥
मोहाभावाय भगवान् साधनार्त्तिं ददाति हि ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–जो बंधु बहिर्मुख [सगेसंबंधी] होय तिनको संग मिटायवेकों इनको नाश इनसों क्लेश इत्यादि आर्ति देतहे ओर दीनताकी सिद्धिके अर्थ देशकी आर्ति (विदेशगमन) देतहे तथा मोहकी निवृत्तिके अर्थ साधनकी आर्त्ति देतहे (जो हमारे फलाने साधनको यह फल भयो एसो मोह न उपजे) ॥ ३ ॥ टीका–संगको अभाव होय भगवदीयको संग न होय तो बंधु जो देहसंबंधी कुटुंब तिनसों क्लेश होय अथवा तिनको वियोग होय तो यह विचारे जो तिनतें कहा संबंध हे? मेरे आत्मसंबंधी तो भगवान् हे काम तो उनसोंही हे याभांति विचारि श्रीकृष्णकी कृपाही माने ओर देशार्त्ति जो अपने जहां रहत होय, कुटुंब घर मित्र जहां होय तादेशमें दुःख होय तोहू मनमें एसे जाने जो श्रीकृष्णकी कृपातें दैन्य सिद्ध होय ताके लिये यह क्लेश हे काहेतें जो प्रभु प्रसन्न करिवेकों दीनताही साधन हे सो श्रीगुसाँईजीनें विज्ञप्तिमें कह्यो हे “ आचार्यचरणैरुक्तं दैन्यं त्वत्तोषसाधनम् ” ॥ (श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीसुबोधिनीजी आदि

ग्रंथमें कहेहें जो आपकों प्रसन्न करिवेकों दैन्य साधन है) यह वचनतें दीनतारूप साधनतें प्रभु प्रसन्न होय सो दीनता श्रीकृष्णकी कृपातें सिद्ध होतहे ओर मोहको अभाव होय- श्रीकृष्ण विना ओर स्त्री, पुत्र, पति, मित्र, घर, द्रव्य, देह, यह लोक, परलोक, कहूं मोह न होय येहू श्रीकृष्णकी कृपातें होय ओर भगवानकूं मिलवेके पुष्टिमार्गकी रीतिके साधन (भगवत्सेवा, स्मरण, कीर्त्तन, जप, पाठ, भगवद्वार्त्तादिक) हे सोहू श्रीभगवान् कृपाकरिकें करावे तबहीं बनि आवे ॥ ३ ॥

मूलं–प्रारब्धभोजनार्थं वा परीक्षार्थं विलंबनात् ॥
निर्वाहार्थं तथा वेदसाध्यार्थार्तिं प्रयच्छति ॥४॥

एवमार्तिप्रदानेऽपि परमानंददायिनः ॥
समाश्रयो न मोक्तव्यो दृढः स्वाचार्यसंश्रयैः॥ ५॥

शब्दार्थः–प्रारब्धभोग करायवेके लिये अथवा परीक्षाके लिये भगवान् विलंब करें तातें निर्वाहके अर्थ, तेसेंही वेदसाध्य जो अर्थ (स्वर्गादिक) इनसंबंधी आर्ति (पीडा) देहें अर्थात् लोकवेदकी असिद्धि राखेहें ॥ ४ ॥ एसें आर्ति देतसतेहू अपने जो श्रीआचार्यजी तिनके सुंदर आश्रयवारे वैष्णवके आनंददाता (श्रीकृष्ण) को दृढ आश्रय सर्वथा न छोडनो ॥ ५ ॥ टीका–उपर कहे ता प्रकार लौकिक आर्ति कराय, भगवत्संबंधकी आर्ति जब श्रीकृष्ण कृपा करे तब होय, जहांताई उपर कही इतनी आर्तिमें दृढ आश्रय न रहे तहांताई परमानंदको दान न होय सो सगरे साधनमें जीवके हाथ एकहू नांहीहे श्रीकृष्णही सर्व सिद्ध करी पाछें पुष्टिमार्गके परम फलरूप परमानंदको दान करतहे यह आशय में अपनी युक्तिसों नांही कहतहों श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय दृढकरिकें कहतहों

जो सर्व श्रीकृष्णही करतहे सो श्रीआचार्यजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति " (प्रभु सर्वके ईश्वर ओर सर्वके आत्मा हे सो अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छासों करेंगे) तातें अपने तो मुख्य श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करी लौकिक आर्तिमेंहू मन (चलायमान हे ताकों उपर कहे ता प्रमाण समुझायकें) दृढ राखनो यह कर्त्तव्य हे ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलं-स्वतः कृष्णः सदानंदो निजानंदं प्रदास्यति ॥
तदाश्रयैव स्थातव्यं सर्वैश्चातकपक्षिवत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-आपतें श्रीकृष्ण सदा आनंदरूप हे सो अपने भक्तनकों अपनो आनंद विशेष करिकें देहींगे तातें चातकपक्षिकी नांई इनकी आशातें रहेनो ॥ ६ ॥ टीका-श्रीकृष्ण आपुही आनंदरूप हे परम दयाल हे सर्व प्राणिमात्रकों आनंद देतहे एसे श्रीकृष्ण अपने दासकों आनंद करे सो उचितही हे दासपर तो कृपाकरिकें ओर अधिक दान करेंगे यह निश्चय श्रीकृष्णको भरोसो हे. श्रीकृष्णके नामतें सगरे कार्य सिद्ध होय यह श्रीभागवतद्वादशस्कंधमें श्रीशुकदेवजी कहेहें " कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधः परं व्रजेत् " (हे परीक्षित् ! दोषके भंडाररूप कलियुगको एक वडो गुण हे जो श्रीकृष्णके कीर्तनसोंही मुक्तबंध होय परकों प्राप्त होय) यह वाक्यतें यद्यपि कलियुग दोषरूप हे तोहू श्रीकृष्णके नामतें संसार छुटि जाय भक्ति प्राप्त होय सो भगवदीय गायेहे । रागविहागरो । " करिके कृष्णनाम सहाय । अधमता उर आनि अपनी मरत हे अकुलाय ॥ १ ॥ अधम अमितें उधारे सो कहा तेरो भार । कोन उद्यम अपने निज करी सक्यो निस्तार ॥ २ ॥ नेक ऊधो करी भरोसो वसत जाके गाम । सो क्यों ममता छांडि देले जीवन जाको नाम

॥ ३ ॥ बरद विविध भुलायवो करी हरि न धरिहे लाज। तोपें गदाधर निगम आगम बकत कितने काज ॥ ४ ॥ " एसे प्रभुको नाम दयाल हे तहां प्रभु दया करी अपने भक्तनकों आनंद देहि तहां कहा कहेनो तहां दृष्टांत कहतहें जो चातकपक्षिवत् दास विश्वास करी रहे काहेतें जो चातकपक्षी जड (मेघ) को स्मरण करतहे सो मेघ वाको मनोरथ पूर्ण करतहे तो श्रीकृष्ण तो परम आनंदरूप हे. दया करी सब करेंगे ॥ ६ ॥

मूलं–लौकिकार्त्तेरगणनं परमानंदचिंतनात् ॥
यथा न गणयेद्रोगी तिक्तभेषजभक्षणम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–परमानंदके चिंतनतें लौकिक आर्त्तिकों नांही गिने, जेसें रोगी करूई औषधि खातहे सो रोगनिवृत्तिके अर्थ खातहे तेसें संसारकी निवृत्तिके अर्थ लौकिक आर्त्तिकों सहन करे ॥ ७ ॥ टीका–लौकिक देहसंबंधी संसारकी आर्त्तिकरि खेद पावे तहां प्रभुकों चिंता न होय प्रभुके अर्थ यह जीव जब आर्त्ति करे तब प्रभुकों चिंता होय तातें वैष्णवनकों लौकिक आर्त्ति नांही कर्तव्य हे प्रभुकी आर्त्ति (विप्रयोग) करे. परमानंदरूप भगवानके गुण विचारि विचारि अपने दोष विचारि विचारि चिंतन करे तब प्रभुके हृदयमें दया आवे सो निरोधलक्षणग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः " ॥ [आर्त्तियुक्त भक्तजनकों देखिकें प्रभु जब कृपायुक्त होय तब हृदयमें सर्व सदानंदरूप हे सो बाहिर निकसेहे] अपने जनको विप्रयोगक्लेश प्रभु जब देखत हे तब दर्शन देतहे सो श्रीभागवतरासपंचाध्यायीमें वर्णन हे जो व्रजभक्तकों मद भयो तब प्रभु अंत–

र्धान भये पाछें भक्तनकों विरहकरिकें अत्यंत क्लेश भयो तब श्रीठाकुरजी कृपा करिकें प्रकट भये तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें व्रजभक्तनके भावकरि मनसों क्लेश होय तब प्रभु कृपा करे तातें लौकिकार्त्ति छोडिकें प्रभुको विरहकरि परमानंदको चिंतन करे तो प्रभु कृपा करे. तहां दृष्टांत देतहें जो जाके रोग होय सो तिक्त औषधिकों खातहे यद्यपि औषध बहूत कस्ई हे सोही रोगी रोगनिवृत्त्यर्थ प्रीतिसों खातहे तेसेंही जाकों संसाररूप काम, क्रोध, मद, मत्सरादि सबनको रोगसदृश ज्ञान भयो हे सो रोगनिवृत्तकरणार्थ लौकिकार्तिकों सहन करी परमानंदके चिंतनरूप औषध खाय तब प्रभु कृपा करी सगरो दुःख निवृत्त करे तातें लौकिकार्ति छोडिकें प्रभुके विप्रयोगको चिंतन करे तब प्रभु प्रसन्न होय ॥ ७ ॥

मूलं–अहितं निजभक्तानां विदधाति हरिर्न हि ॥
समस्तानां सखा स्वीयभक्तानां न कथं भवेत् ॥८॥

शब्दार्थः–अपने भक्तनको अहित हरि सर्वथा नांही करतहे काहेतें जो समस्त जगतके सखा हे सो अपने भक्तनके सखा केसें नहोय ? ॥ ८ ॥ टीका–श्रीकृष्ण केसे हे जो अपने भक्तनको अहित [बूरो] कबहू न करे सदा हितही करेंगे सो महाभारतमें भीष्मभक्तके वचन सत्य कीये अपनो पण छोड्यो पाछें अंतसमय कृपाहू करी. जेसें श्रीनंदरायजी अंबिकापूजनको गये अन्याश्रय कीयो ताकरि सुदर्शनसर्पनें ग्रसि ही लीये पाछें प्रभुके निजभक्त भये तब प्रभु कृपा करी सुदर्शनसर्पतें छुडाये तेसेंही पुष्टिमार्गीयकों कछू दोषनिवृत्तिकरणार्थ प्रभु दुःख दे तो मनमें चिंता नांही कर्तव्य हे पाछें प्रभु हितही करेंगे काहेतें जो समस्तजीवनके पालनकर्त्ता भगवान् हे सो अपने भक्तनके उपर कृपा करे यामें कहा आश्चर्य हे ? निश्चय अपने भक्तके उपर कृपा करत

आयेहे सो अवहू करतहे ओर आगें करेंगे याभांति पुष्टिमार्गीय वैष्णव प्रभुके गुण विचारि स्मरण भजन करे यह सिद्धांत भयो ॥ ८ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं दशमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १० ॥

शिक्षापत्र ११.

अव ग्यारहमे शिक्षापत्रमें भक्तनके कर्तव्य (गुणगान, दुःखभावन, दैन्य ओर त्याग यह) चतुष्टयको निरूपण हे. उपर कहि आये जो प्रभु अपने भक्तनको वूरो कवहू न करेंगे हितही करेंगे परंतु भक्तिमार्गकी रीतिकों न छोडे सो आगें वर्णन करतहे जो याभांति भक्तनकों रहेनो।

मूलं–सर्वदा सर्वभावैकहेतुभूतेषु सर्वथा ॥
श्रीमदाचार्यपादेषु स्थाप्यतां तन्मयं मनः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–निरंतर सर्वभावके मुख्य हेतुभूत (कारणरूप) श्रीआचार्यजीके चरणारविंदमें मनकों तन्मय करी निश्चय स्थापन करनों ॥ १ ॥ टीका–अव भगवद्भक्तके लक्षण कहतहे, सर्वदा (सर्व कालमें) सर्व भावके हेतुभूत श्रीमदाचार्यजीके चरणकमलमें अपने मनकी स्थिति करनी एक इनहीको दृढ आश्रय करनो सो अपने मनसों तन्मय होय करनो मन वचन कर्म करि आचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलकोही आश्रय राखे ॥ १ ॥

मूलं-तत एव कृतार्थत्वं निश्चयः क्रियतां हृदि ॥
आसुरत्वं विनिश्चेयमन्यत्तत्साम्यवादिषु ॥२ ॥

शब्दार्थः—श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें मन स्थापन करनो तासोंही कृतार्थता हे एसो निश्चय हृदयमें करनो ओर इनतें अन्य तथा बरोबर कहिवेवारेके विषे आसुरपनेको निश्चय करनो ॥ २ ॥ टीका—उपर कहे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलमें मन राखे सो कृतार्थरूप हे यह सिद्धांतमें कोई वादीको विश्वास न होय वाद करे ताकों निश्चय आसुरही जाननों, काहेतें जो यह सिद्धांत वेद, शास्त्र, गीता, श्रीभागवतके प्रमाणतें सिद्ध हे तामें विश्वास न होय ताकों निश्चय आसुर जाननो ॥ २ ॥

मूलं—श्रीकृष्णः सर्वदा स्मर्यः सर्वलीलासमन्वितः ।
भक्तैकहृदयस्थायी सकलः पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—सर्वलीला [वेणुगीत युगलगीतादिक] युक्त भक्तनके हृदयमें स्थित अंशकलासहित श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम सर्वदा स्मरण करिवेयोग्य हे ॥ ३ ॥ टीका—श्रीकृष्ण फलात्मक, रसात्मक, भावात्मक, स्वरूपात्मक हे तिनको स्मरण सदा करनो, लीलासहित भक्तनसहित स्मरण करनो काहेतें जो रसात्मक श्रीकृष्ण व्रजभक्तनके संग अष्टप्रहर लीला करतहे एसे श्रीकृष्णको स्मरण करियें ताकरि हृदयमें सदा पुरुषोत्तम स्थित रहे यह रीति भक्तकी हे जाको ध्यान करे सो हृदयमें आवे लौकिकाविष्ट हृदयमें संसार भर्यो रहे ओर प्रभुको स्मरण करे तो प्रभु [सगरे यद्यपि हे तोहू] भक्तके हृदयमें लीलासहित स्थित होय ॥ ३ ॥

मूलं—गुणगानं तथा दुःखभावनं दैन्यमेव च ॥
तथा त्यागः सिद्धदशः कृत्यमेतच्चतुष्टयम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—गुणगान तथा दुःखकी भावना [विप्रयोगार्ति] ओर दैन्य तथा त्याग [लौकिक वैदिक आसक्ति छोडनी] यह चारो

सिद्ध दृष्टिवारेके कृत्य हे ॥ ४ ॥ टीका—श्रीठाकुरजीकी लीलाको गुणगान करे, विप्रयोगदुःखकी भावना करे, दैन्य करे, ताकरि सब लौकिक वैदिक त्याग करे, यह चारो कृत्य अवश्य करे काहेतें जो प्रथम गुणगान करे ताकरिकें जितने दोष होय तितने भस्म होय जाय शुद्ध हृदय होय जाय तब अपने दोष स्फूरे अपनकों तुच्छ जाने प्रभुकों सर्वोपरि जाने जो में तो कछु साधन कीयो नांही मेरो अंगीकार प्रभु केसें करेंगे ? याभांति विचारिवेतें निःसाधनताकी भावना मनमें होय तब दीनता होय तब प्रभु विना ओर कछु न सुहाय पाछें लौकिक वैदिक सब त्याग होय यह चतुष्टय प्रकार हे सो पुष्टिमार्गीय साधन ओर फलरूप जानि कर्त्तव्य हे ॥ ४ ॥

मूलं—गुणगानं भागवतात् सेवया दुःखभावनम् ।
तद्दैन्यभाववद्दैन्यं त्यागो विरहभावतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—श्रीमद्भागवतके [मननपूर्वक] पाठसों गुणगान करनो, सेवाकरि दुःखकी भावना करनी [जो प्रथम चोरसी दोसोबावनकी पास प्रभु मांगिमांगिकें अरोगते एसें मोकों कब होयगो यह दुःखकी भावना करनी जो दैन्य प्रभुकी कृपाको कारण हे सो दैन्यभावनतें दैन्य सिद्ध होय ओर विरहके भावसों [संन्यासनिर्णयमें कह्यो हे सो] त्याग सिद्ध होय ॥ ५ ॥ टीका—ऊपर श्लोकमें जो चतुष्टय कर्त्तव्य वताये सो कोन भांति सिद्ध होय सो कहतहे जो साधनरूप गुणगानसों सर्वदोष दूरी होय ओर फलरूपतें भगवानको दर्शन सिद्ध होयहे जेसें व्रजभक्त वेणुगीत युगलगीत गायकें निर्वाह करतहे तेसेंही वैष्णव सेवाके अनोसरमें गुणगान करे जो प्रभुकी सेवाको कब समय होय यह दुःखकी भावना होय यह गुणगानतें.

१ शब्दार्थमें जो दुःख लिख्यो हे सो रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार लिख्यो हे तेसेंही दैन्य ओर त्यागहू त्या टीकाके अनुसार लिख्यो हे. ।

सेवाको दुःख मनमें होय ताकरि निःसाधनता सिद्ध होय कितनीहू सेवा करे परंतु मनमें यहही दुःख रहे जो जन्म सगरो वृथाही गयो कछु भगवत्सेवा न बनी यह दैन्य सिद्ध होय याभांति दैन्यकी भावना करत करत सर्व देहसंबंधी पदार्थमें त्याग उत्पन्न होय तब शुद्ध विप्रयोगकी भावना होय यह सर्वोपरि मुख्य फल हे पाछें सर्व लीलाको अनुभव होय चतुष्टयप्रकार फल होय ॥ ५ ॥

मूलं–एतच्चतुष्टयं सिद्धं यदि नान्यदपेक्षितम् ।
सर्वस्य मूलं सत्संगस्तदभावे न सिद्ध्यति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–ऊपर श्लोकमें कहे यह चतुष्टय जब सिद्ध भये तब दूसरो कछु इच्छित नांहीहे ओर सबको मूल सत्संग हे ताको अभाव होय तो वह फल सिद्ध न होय ॥ ६ ॥ टीका–ऊपर कहे यह चतुष्टयप्रकार जाकों सिद्ध होय ताकों ओर साधनकी अपेक्षा कछु नांही तातें प्रथम गुणगान करे ओर भगवत्सेवा करी दुःखकी भावना करे दैन्ययुक्त होय सर्व त्याग करी विप्रयोगकी भावना करे यह फलरूप साधन सिद्ध भये पीछें दूसरे साधनकी अपेक्षा नांहीहे सो यह चतुष्टय फलरूप पदार्थ सत्संगतें सिद्ध होय तातें सर्वको मूल सत्संग हे सो भागवतमें प्रथमस्कंधमें शौनकको वाक्य हे " तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः " (भगवद्भक्तके संगके क्षणकी तुलना स्वर्ग ओर मोक्षहू नांही करेहे तहां मनुष्यके मनोरथरूप राज्यादिककी तुलना न होय यामें कहा कहनो ?) ओर एकादशस्कंधमें उद्धवजी प्रति भगवान् कहेहे " न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ! । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञाश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो

हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधानाः खगा मृगाः । गंधर्वा-प्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽत्यजाः । रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ !॥४॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः । वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः । व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे ॥ ६ ॥ ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः । अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥७॥ ” (मोकों योग वश नांही करेहे, न सांख्य, धर्म; न स्वाध्याय (वेदजप), तप, त्याग; न इष्ट (अग्निहोत्रादि), पूर्त (कूवा बगीचा); न दक्षिणा, ॥१॥ व्रत, यज्ञ, छंद (रहस्यमंत्र), तीर्थ नियम, यम, (ये कोउ वश नांही करेहे) सर्वसंगकों मिटायवेवारे जेसो सत्संग मोकों वश करेहे ॥ २ ॥ सत्संग करिकें दैत्य, राक्षस, खग (पक्षि), मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर, मनुष्यमें वैस्य, शूद्र, स्त्रियें, अंत्यज (नीच जातिवारे), रजोगुण तमोगुण प्रकृतिवारे यह यह युगमें, हे पापरहित ! ॥ ४ ॥ बोहोत मेरे चरणारविंदकों प्राप्त भये. वृत्रासुर, प्रह्लादादिक. वृषपर्वा, बलि. बाणासुर. मय दानव ओर विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनूमान्, जांबवान्, गजेंद्र, जटायु, तुलाधार, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजमें गोपीजन, यज्ञपत्नी, तथा ओर ॥६॥ ये नांही पठित हे वेद जिनने, नांही सेवित हे वृद्धादिक जिनने, ओर नांही व्रत के तप करिवेवारे एसेहू केवल सत्संगतें मोकों प्राप्त भये ॥७॥) इत्यादि वचनतें भगवान् कहेहे जो हे उद्धव! सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, व्रत, छंद, तीर्थ, नियम इत्यादि मोकों वश नांही करतहें, ओर सत्संगकरि जीव मोकों वश करीलेतहे एसो सत्संग हे। सत्संगके प्रतापतें दैत्य, राक्षस, खग, मृग, गंधर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, मनुष्य, सब कृतार्थ भये तातें सर्वसाधनको मूल सत्संग हे,

सत्संगतें तद्रूपभाव हृदयारूढ होय भावकी सिद्धि होय, तातें भगवदीयको सत्संग अवश्यही करनो यह सिद्धांत भयो ॥ ६ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतम् एकादशं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ११ ॥

शिक्षापत्र १२.

अब द्वादश शिक्षापत्रमें श्रीस्वामिनीजीके वाक्यनकी भावना अहर्निश करनी सो निरूपण करतहें—उपर कहे चतुष्टयप्रकार सिद्ध भये पीछें कोनभांति अनुभव होय सो आगें शिक्षापत्रमें कहतहें—

मूलं—भावनीयं सदा चित्ते स्वामिनीजल्पितं मुहुः ।
तापक्लेशैरयं मार्गः श्रीमदाचार्यरूपितः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—वारंवार चित्तमें श्रीस्वामिनीजीके वचन (विप्रयोगदशाके हा नाथ! हा प्रिय! हा रमण! कहां हो? हा महाभुज! आपकी दीन दासी में हूं इनको दर्शन देहो इत्यादि) भावनीय हे, काहेतें जो यह मार्ग विरहतापके क्लेशसहित श्रीमदाचार्यजीनें निरूपण कीयो हे ॥ १ ॥ टीका—श्रीकृष्णके विप्रयोगमें श्रीस्वामिनीजी कोन प्रकार वारंवार जल्पना करतहे या भांति पुष्टिमार्गीय भगवदीय चित्तमें भावना करे सो प्रेमामृतमें कहतहे "एकदा कृष्णविरहाद्ध्यायंती प्रियसंगमम् । मनोवाष्पनिरासाय जल्पतीदं मुहुर्मुहुः" ॥ (एक दिन श्रीकृष्णके विरहसों प्रियसंगमकों ध्यान करतें श्रीस्वामिनीजी हृदयके अश्रु निकासिवेकों वारंवार एसें शब्द करतहे) श्रीस्वामिनीजी श्रीकृष्णके मिलन अर्थ

विप्रयोगकरि वारंवार जल्पना करतहे यह भाव सर्वोपरि हे तेसेंही यह पुष्टिमार्ग तापक्लेशरूप हे काहेतें जो श्रीस्वामिनीजीके तापक्लेशभावात्मक श्रीमहाप्रभुजी हे तातें इनने प्रकट कीयो पुष्टिमार्गहू तापक्लेशरूप हे ताहीतें तापक्लेशकरिकें यह मार्गकी फलसिद्धि हे तातें विरहकरि श्रीस्वामिनीजी जा प्रकार भावसहित अनुभव करतहें सो भावकी भावना करनी. श्रीस्वामिनीजीकी भावनाको स्वरूप आगें कहतहे ॥ १ ॥

मूलं–दर्शनं देहि ❀ गोपीश! गोकुलानंददायक! ॥
गोविंद! गोपवनिताप्राणाधिप! कृपानिधे! ॥ २ ॥

शब्दार्थः–हे गोपीजनके ईश! हे गोकुल (धेनुकुल अथवा भक्तकुल) को आनंद देवेवारे! हे गोविंद! हे व्रजभक्तनके प्राणपति! हे कृपाके भंडार! दर्शन देहो ॥ २ ॥ टीका–श्रीस्वामिनीजी कहतहे जो हे गोपीजनके ईश! हमकों दर्शन देहो काहेतें जो तुम गोपिनके पति–ईश–राजा हो तातें राजा अपने प्रजाकों दुःख न देय सुखही देतहें यह मर्यादा हे, तेसेंही हे श्रीकृष्ण! हम तुह्मारी प्रजा हे तातें हमकों दर्शन देहो, ओर तुम गायनके कुलकों आनंददाता हो सो गायेंहू तुह्मारे दर्शन विना व्याकुल हे तातें गायनकों दर्शन द्यो, तथा वनमें गायनकों चराय आनंद दीये अब वेगि पधारि हमकों आनंद द्यो. काहेतें जो तुम गोविंद हो गायनके इंद्र हो, सो इंद्र अपने भोगमें आसक्त रहतहे तेसें तुम व्रजभक्तकों सुख देहो, काहेतें जो गोपवनिताके प्राणके अधिपति हो तुह्मारे दर्शनके मिलेतें गोपवनिता जीवतहे सो एसे श्रीकृष्ण कृपानिधि हमकों वेगिही दर्शन देहो. याभांति श्रीस्वामिनीजी लीलासहित प्रभुके नाम लेय विलाप करतहे ॥ २ ॥

❀ चार यूथ हे ओर हर एक यूथमें सोरह शृंगारात्मक सोरह श्रीस्वामिनीजी हे तिनके भावसूं चोसठ नाम श्रीठाकुरजीके या शिक्षापत्रके अंतपर्यंतमें आवे हे, तिनके अंक नामपें लिखे गये हे.

मूलं–गोपाल ! पालितव्रज ! निजव्रजसुखांबुधे ! ॥
परमानंद ! नंदादिरुचिरोत्संगलालित ! ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–हे गोपाल (गायनके पालन करिवेवारे) ! हे व्रजभक्तनके पालनहार ! हे अपने व्रज अथवा अपने भक्तनके समूहके सुखके समुद्र ! हे परम आनंदरूप ! हे श्रीनंदरायजी आदिके रुचिर गोदमें खेलिवेवारे ! (हमकों दर्शन देहो यह पूर्वश्लोकको संबंध पंद्रहमें श्लोक तांई चलेगो) ॥ ३ ॥ टीका–हे गोपाल ! तुम गायनके पालनकर्त्ता हो ओर यह व्रज तुह्मारो हे तिन सबनको पालन करी सगरे व्रजके सुखदाता हो तुम सुखके समुद्र हो यह व्रज तुह्मारो हे तामें व्रजभक्त पशु, पक्षि, गाय, गोपाल, जड, चेतन, सबकों सुखदाता हो एसे सुखके समुद्र!हमकों सुख देहो,तुम परमानंदरूप हो तुमकों नंदयशोदादि उत्संगमें लेके लालन पालन करतहे एसे श्रीकृष्ण ! हमकों दर्शन देहो ॥ ३ ॥

मूलं–सदानंद ! निजानंदसमुदायप्रदायक ! ॥
दामोदर ! दयार्द्रार्द्र ! दीनानाथ ! दयापर ! ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–हे सदा आनंदरूप ! हे निजभक्तनकों आनंदसमुदायके देयवेवारे ! हे दामोदर (भक्तवश्य) ! हे दयाकरिकें जो आर्द्र हे विनके उपर आर्द्र ! हे दीनताकों प्राप्त भक्तनके चारे ओरतें नाथ [रक्षक] ! हे दयापर ! ॥ ४ ॥ टीका–हे श्रीकृष्ण ! तुम तो सदा आनंदरूप हो, व्रजमें समुदित जीवनमात्रके आनंददाता हो, ओर श्रीयशोदाजीनें दाम उदरसो बांधे हे एसे भक्तनके वश्य हो, दयाकरि तुह्मारो हृदय आर्द्र (भीजी रह्यो) हे ओर दीननाथ हो जो अतिदीन भक्त होय [जिनके कोउ नांही] तिनके तुम हो ओर दयापर हो सर्वपर तुह्मारि दया हे सो हे श्रीकृष्ण ! दया करी हमकों दर्शन देहो ॥ ४ ॥

मूलं–पुरुषोत्तम ! सर्वांगरुचिर ! प्रेमपूरित ! ।
अनंगरूपपरम ! प्रिय ! गोपवधूपते ! ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–हे पुरुषोत्तम ! हे सर्व अंगमें सुंदर ! हे प्रेमकरिकें पूरित ! हे कामदेवके समस्तरूपतें उत्कृष्ट ! हे प्रिय ! अथवा हे गोपवधूके पति ! ॥ ५ ॥ टीका–हे पुरुषोत्तम ! सबतें पर एसे सर्वोपर तुह्मारे सर्व अंग रुचिर हे जा अंगको दर्शन होतहे तहां नेन लागि रहतहे सो भगवदीय गायेहे ॥ राग नट–"रूप देखि नेनां पलक लागे नहीं । श्रीगोवर्धनधर-के अंगअंगपर निरखि नेन मन रहत तहिं" याभांति सर्वांगरुचिर हो ओर प्रेमकरि पूरित हो सर्वांगमें प्रेमरस भरिरह्यो हे आधिदेविक अनंग-रूप परमसुंदर हो गोपीजनकों तुम परमप्रिय हो तुमको गोपीजन परमप्रिय हे गोपवधूके पति तुमही हो जेसें भूज्यो अन्न खेतमें डारे तो उपजे नांही तातें भूज्यो अन्न बीजके काम न आवे देखिवेको अन्न हे तेसेंही गोप हे तिनकी वधूनके पति तुमही हो एसे श्रीकृष्ण हमकों वेगि दर्शन देहो ॥ ५ ॥

मूलं–व्रजावलंबसुकटे ! लंबकेश ! कलानिधे ! ।
विरहार्तिहर ! स्वीयमनोहरणतत्पर ! ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–हे व्रजके आलंबन सुंदरकटिवारे ! हे लंबायमान केशवारे ! हे कलाके निधिरूप ! हे विरहकी आर्त्तिकों हरिवेवारे ! हे स्वीय (अपने भक्तनके) मनकों हरिवेमें तत्पर ! ॥ ६ ॥ टीका–व्रजके अवलंब तुमही हो सगरो व्रज तुह्मारे आश्रय होय एक तुमहीकों जानत हे ओर तुह्मारे केश वडे लंबे कुटिल (टेडे) हे सो मानो मधुपपंक्ति आय रही हे ओर कलानिधि हो सूर्यमें षोडश कला हे तिनको इतनो प्रताप हे तो तुम तो कलाके निधि हो सो तुह्मारे प्रतापगुण कहांतांई बरने यामें काहूको सामर्थ्य नांही अपने स्वीय [निज] भक्तनकी आर्त्तिके

हरणहारे ओर अपनो सुंदर मुख श्रीअंग दिखाय तथा अनेक लीला-करि समस्त व्रजभक्तनके मनकों हरणकरिवेमें परायण एसे हे श्रीकृष्ण! हमकों वेगि दर्शन देहो ॥ ६ ॥

मूलं–मनोविनोद! भावाब्धे! भाववत्हृदयस्थित!।
चंचलीकृतचित्त! स्वभावांदोलितरूपधृक्! ॥७॥

शब्दार्थः–हे मनके विनोदरूप! भावके समुद्र! ओर भाववारेके हृदयमें विराजिवेवारे! तथा भक्तनको चंचल कीयो हे चित्त जिननें ओर अपने भक्तनके भावकरिकें आंदोलित रूपकों धारण करिवेवारे! ॥७॥ टीका–व्रजभक्तनके मनको विनोद जो आनंद ताके दाता तुमही हो तुमहीकरि व्रजभक्त आनंद पावत हे ओर भावके समुद्र हो जा भावसों भजे सोही सिद्ध होय, कोउ आपके भावको पार न पावे, जगतमें सगरे भाव हे सो तुह्मारी कणिकारूप हे तुम भावके समुद्र हो ओर भावहीकरि भक्तनके हृदयमें स्थित हो जा भक्तके हृदयमें जो भाव तहां ताही रीतिसों बिराजत हो ओर अपने भक्तनको चित्त चलायमान करो हो आप ही चंचल हो भक्त कोउ गृहके कामकाज करत होय तहांतें चित्तकों चलायकें अपनमें लगावत हो भावकरि सर्वांग भरेहे, अपने भक्तनको जो जो भाव-रस हे सो तुह्मारे स्वरूपमें भरिरह्यो हे एसे श्रीकृष्ण मोकों दर्शन देहो ।७।

मूलं–महामुग्ध! सदादुग्धपानतत्परमानस!।
नवनीतालिप्तमुख! पयोबिंदुयुताधर! ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–हे महामुग्ध! हे सदा दुग्धपानमें तत्पर मनवारे! हे नव-नीतकरि चार्यो ओर लिप्त मुखवारे! हे दुग्धबिंदुकरिकें युक्त अधर-वारे! ॥ ८ ॥ टीका–अपने निजभक्तनमें महामुग्ध हो, आप कछु ज्ञान राखत नांही जो भक्त कहे सोई करो, सदा दुग्धपानमें तत्पर हो मनकरि क्षणक्षणमें श्रीयशोदाजीके स्तनके दुग्धपान करनमें तत्पर हो तथा

व्रजभक्त दूध सवारिकें देत हे ताके पानमें तत्पर हो, मनहू वाहीमें हे, मुखमें नवनीत लिपट रह्यो हे ताकरि परम अद्भुत शोभा देतहे दुधकी बूंद अधरमें लगी हे ताकरि अधर शोभायमान हे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो ॥ ८ ॥

मूलं-अलकावृतवदन ! मदनाधिकसुंदर ! ।
कपोलविलसद्राग ! कस्तूरीतिलकांचित ! ॥ ९ ॥

शब्दार्थः-हे अलककरिकें व्याप्त वदनवारे ! हे कामदेवतें अधिक सुंदर ! हे कपोलमें शोभित रंगवारे ! हे कस्तूरीके तिलककरिकें पूजित ! ॥ ९ ॥ टीका-सुंदर अलकनकरि आवृत एसे वदनकमल शोभायमान हे ओर सगरो श्रीअंग कामसों अधिक सुंदर हे ॥ कोटि काम वारने यह सुंदरतापर करियें ॥ दोउ कपोलनपर कमलपत्रमें लालकुंकुमादि रागसों सवारे हो ओर कस्तूरीको तिलक भालमें विराजमान हे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो ॥ ९ ॥

मूलं-सिंजन्नूपुरशोभाढ्य ! नखभूषणभूषित ! ।
सघोषसूक्ष्मसुकटिविलसत्क्षुद्रघंटिक ! ॥ १० ॥

शब्दार्थः-हे शब्दायमान नूपुरकी शोभाकरिकें युक्त ! हे नखके भूषणकरिकें शोभित ! हे शब्दसहित सूक्ष्मकटिमें शोभित क्षुद्रघंटिकावारे ॥ १० ॥ टीका-दोउ चरणकमलमें स्वर्णनूपुरसों शोभाकी आढ्यता जो एसी शोभा त्रिलोकीमें नांही. दशो नखनपर नखभूषणसहित नखावलि विराजित हे सो कोटिसूर्यचंद्रकी कांति लजावतहे ओर सूक्ष्म कटिपर क्षुद्रघंटिका विलास करत हे तासों वारंवार सुंदर शब्द होत हे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो ॥ १० ॥

मूलं–राजद्धृदयवैयाघ्रनखभूषणभूषित !।
कंजलोचनलोलाक्ष ! विशालाक्षविलक्षण ! ॥११॥

शब्दार्थः–हे शोभायमान वघनखाके भूषणसों भूषित ! हे कमलसारिखे चपलनेत्रवारे ! हे विशाल नेत्रकरिकें विलक्षण ! ॥११॥ टीका-हृदयके उपर बाघको नख सुवर्णमें जटित करी नखभूषण श्रीयशोदाजी पहिरायेहे जो मेरे पुत्रकों काहूकी दृष्टि न लगे सो वक्षःस्थलमें नखभूषण शोभत हे, नेन कमलसमान अतिलोल चंचल हे जेसें कमल शीतल हे तापहारक हे तेसेंही श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल सगरे भक्तनके हृदयके तापहारक हे ओर नेत्रनकरि अनेक भक्तनकों रसदान करत हे संकेत सूचनकरतहे ताकरि लोचन चंचल हे ओर नेत्र कमलवत् बडे विशाल हे घूर्णायमान आरक्त विलक्षण हे ताकी उपमा काहूसों कही न जाय अनिर्वचनीय हे एसे श्रीकृष्ण हमकों अब कृपा करी दर्शन देहो ।११।

मूलं–दीनैकशरण ! स्वीयसर्वसामर्थ्यसंयुत !।
व्रजराजसुत ! स्वीयजननीकंठभूषण ! ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–हे दीनके मुख्य आश्रयस्थान ! हे अपने सर्वसामर्थ्यकरिकें संयुक्त ! हे श्रीनंदरायजीके पुत्र ! हे अपनी माता श्रीयशोदाजीके कंठके आभूषणरूप ! [कंठकों ग्रहणकरिके टेरिवेवारे] ॥१२॥ टीका-दीन जो निजभक्त तिनके शरण्य हो अपने स्वीय भक्त दीन होय शरण रहेहे तिनकों सर्वभांति प्रभु रक्षा करतहे काहेतें जो श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्त हे सो श्रीभागवतनवमस्कंधमें भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहें "ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ?" [जो स्त्री, गृह, पुत्र, आप्त, प्राण, द्रव्य, यह-लोक, ओर परलोककों छोडिकें मोकों शरण आये तिनकों छोडिवेकों में केसें उत्साह करूं !] यह वाक्यते श्रीठाकुरजी कहे जो एसे भक्त

स्त्री, घर, पुत्र, वित्त, सर्व मोकों समर्पन करी एक मेरे शरण होय रहेहे तिनकों छोडिवेंकी केसें इच्छा करूं ? में उनकी अष्टप्रहरही रक्षा करतहों ! तातें दीन होय जो भक्त शरण हे तिनकी रक्षा प्रभु आपही करतहे श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्त हे व्रजराज जो श्रीनंदरायजी तिनके पुत्र अपनी स्वीय जननी श्रीयशोदाजीके कंठके भूषण हो एसे श्रीकृष्ण हमक्तों दर्शन देहो ॥ १२ ॥

मूलं–हा * कृष्ण ! हा सदानंद ! हा वृंदावनभूषण ! ।
हा नंदराजतनय ! हा यशोदांकखेलन ! ॥ १३ ॥

शब्दार्थः–हा फलात्मक ! हा सदा आनंदरूप ! हा वृंदावनके भूषण! हा श्रीनंदरायजीके पुत्र ! हा श्रीयशोदाजीके अंकमें खेलिवेवारे !॥ १३॥

टीका–हा कृष्ण ! श्रीकृष्णनाम फलात्मक हे सर्व वेदस्मृतिको सार सो व्रजभक्त श्रीकृष्ण यह नामको स्मरण जप करतहे ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीहू अष्टाक्षर–पंचाक्षरमें यहही सर्वोपरि श्रीकृष्णहीको शरण बतायो हे विरहकरि हा कृष्ण ! कहे. हा सदानंद ! तुम तो सदा आनंदरूप एकरस हो सो हमकों आनंद देहो. हा वृंदावनभूषण श्रीकृष्ण ! तुम तो श्रीवृंदावनतें एकक्षणहू बाहिर नांही जात काहेतें जो वाके भूषणरूप हो, हा श्रीनंदरायजीके पुत्र ! हा श्रीयशोदाजीके अंकमें खेलवेवारे एसे श्रीकृष्ण ! हमकों दर्शन देहो ॥ १३ ॥

मूलं–हा गोपिकेश ! हा नाथ ! हा गोकुलपुरंदर ! ।
हा हा व्रजजनार्तिघ्न ! हा हा निःसाधनाधिप ! ॥ १४ ॥

शब्दार्थः–हा गोपिकाके ईश ! हा नाथ ! हा गोकुलके इंद्र ! हा हा व्रजजनकी आर्तिकों हरिवेवारे ! हा हा निःसाधन जनकों अधिक रक्षा

---

* इतने श्लोकताईं शृंगारस्वरूप करिकें संयोगरसकी भावना करिकें अब खेदात्मक संबोधनतें विप्रयोगात्मक भाव निरूपण करतहे.

करिवेवारे ! ॥ १४ ॥ टीका–हा गोपीजनके ईश राजा ! हा नाथ ! तुम तो हमारे नाथ हो तातें हमारी रक्षा वेगिही करो जेसें पंचाध्यायीमें विरहकरि भक्त कहतहे " हा नाथ ! रमण ! पेष्ठ ! क्वासि ? क्वासि ? महा-भुज ! । दास्यास्ते कृपणाया मे सखे ! दर्शय सन्निधिम् " (हा नाथ ! हा रमण ! हा प्रिय ! हा महावाहो ! कहां हो ? कहां हो ? आपकी दीन दासी में हूं ताकों समीप दर्शन द्यो) तेसेंही इहां कहे जो हा नाथ ! हे गोकुलके पुरंदर ! जेसें इंद्र एकक्षणहू भोग नांही छोडत तेसें तुम गोकुलके इंद्र होय क्यों वेठि रहेहो हमकों आनंद देहो. व्रजजनके आर्तिके हरणहार ! तुम व्रजभक्तनके दुःख कबहू नांही सहेहो काहेतें जो इंद्रयज्ञ छोडि गिरि-राजको पूजनरूप यज्ञ कीये तब इंद्रनें सगरे व्रज बोरिवेकों मेघ पठाये सो गोवर्धन उठाय सगरे व्रजकी रक्षा कीनी अब विरहसमुद्रमें डूबतहे सो तुमही काढिवेमें समर्थ हो तातें वेगि यह आर्ति हरो ओर तुम केसे हो निःसाधन भक्तनके अधिपति हो सो हम विरहकरिकें व्याकुल हें देह, इंद्रिय, मन सगरो शिथिल होयरह्यो हे साधनकरि रहित हों सो हमकों दर्शन देकें आर्ति हरो ॥ १४ ॥

मूलं–हा हा नंदादिसर्वस्व ! हा हाऽनंगनवांकुर ! ।
हा निरालंबनालंब ! हाहांऽधलकुटिप्रिय ! ॥ १५ ॥

शब्दार्थः–हा हा श्रीनंदरायजी आदिनके सर्वस्व ! हा हा कामदेवके नवीन अंकुररूप ! हा आलंबन (आश्रय) रहितके आलंबनरूप ! हा हा अंधके लकुटियत् प्रिय ! ॥ १५ ॥ टीका–नंदादि गोप, गोपी, सखा, गाय, सर्वके एक तुमही सर्वस्व हो तुम विना सगरो पदार्थ तुच्छ हे एक तुमही सर्वके जीवनप्राण हो ओर तुम अनंग जो कामदेव ताको नवांकुर हो अनंगरूप वृक्षमें नूतन अंकुररूप आप प्रकटे हो साक्षात् मन्मथके मन्मथ हो कामदेवहू तुमको देखि मोहित भयो तो हम सगरी मोहित होय यामें कहा कहेनो ? जाको कछहू अवलंब नांही हे तिनके तुमही

अवलंब हो यह कहिकें यह जताये जो सर्वठोरतें आश्रय छोडि एक श्रीकृष्णको आश्रय करे तब प्रभु आश्रय देहीं तातें निरालंबके अवलंब श्रीकृष्ण हे, ओर जेसें अंधकों लकुटि प्रिय हे वाही अवलंब हे तेसें हमारे तुम प्रिय हो अवलंब हो तुह्मारेही अर्थ सगरी क्रिया करतहें याभांति समस्त श्रीस्वामिनीजी विप्रयोग करतहें ॥ १५ ॥

मूलं–एवंविधानि सततं जल्पितानि मुहुर्मुहुः।
अवगत्य च भावेन भावनीयान्यहर्निशम्॥१६॥

शब्दार्थः–एसे श्रीस्वामिनीजी निरंतर जल्पना करत हे सो वारंवार भावसों जानिकें अहर्निश तिनकी भावना करनी ॥ १६ ॥ टीका–या प्रकार निरंतर श्रीस्वामिनीजी वारंवार जल्पना करतहे तब श्रीठाकुरजी पधारिकें समस्त श्रीस्वामिनीजीकों दर्शन देकें उनके मनोरथ पूर्ण करतहे सो यामें ६४ नाम कहेहें ताको अभिप्राय यह हे जो प्रभु चारियूथके पति हे सो एक एक यूथके श्रीस्वामिनीजी षोडश षोडश नाम षोडश शृंगारात्मक रसको अनुभव लीलासहित करतहें तातें चोसठ नाम कहे. अब श्रीहरिरायजी कहत हे जो तुम याभांति श्रीस्वामिनीजीके विरहभावकी भावना अहर्निश करो तब श्रीस्वामिनीजीकी कृपातें हृदयमें भाव स्थित होयगो तब प्रभु अपनो अनुभव करावेंगे यह सिद्धांत सर्वोपरि हे ॥ १६ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वादशशिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्॥१२॥

शिक्षापत्र १३.

अब त्रयोदश शिक्षापत्रमें सर्वतें चित्तकों निवृत्त करी एक प्रभुचरित्रमें निरुद्ध करी पूर्वशिक्षापत्रमें कह्यो हे ता रीतिसों भावना करनी

यह निरूपण हे. उपर कही आये या प्रकार विप्रयोग करे तो श्रीस्वामिनीजीकी कृपातें भाव सिद्ध होय परंतु यह काल महाकठिन हे सत्संग नांही हे दुःसंग बोहोत हे सर्वकी बुद्धि भ्रष्ट हे इत्यादि विप्रयोगके बाधक दोषकों विचारि विचारि दीनता करे तो प्रभु प्रसन्न होय सो उपाय कहतहे---

मूलं—कालः करालः समुपागतोऽयं मतिं सतां द्रागहरत् समस्ताम्। श्रीवल्लभाचार्यसमाश्रितानां यः कालकालः शरणं स एव च॥ १॥

शब्दार्थः—यह काल महाकराल आयो हे सो समस्त सत्पुरुषनकी मतिकों शीघ्र हरण करे हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको आश्रय करिवेवारेनकों कालके कालरूप प्रभु ही शरण हे (तासों जो श्रीमदाचार्यजीके शरण आये तिनकों काल प्रतिबंध नांही करी सकतहे) ॥ १ ॥ टीका—यह काल महाकराल कठिन हे सो सत्पुरुषकी मतिकों हरि लेतहे तो ओर जीवकी कहा गति हे? तातें यह कलियुगने अपने बलतें सर्वजीवकी बुद्धि हरि लीनी हे तहां कोई कहे जो कोईकों छोड्यो हे? एसी शंकाके समाधानमें श्रीहरिरायजी कहतहे जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीको आश्रय तन मन धनकरि करतहे तिनकों काल नांही बाधक हे प्रत्युत उनको सहायक हे सो थोरे दिनमें फल सिद्ध होयवेकी रीति एकादशस्कंधमें कही हे “कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्। करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्” [शरीरतें, वाणीतें, मनतें, वा इंद्रियनतें, बुद्धितें, आत्मातें अथवा अपने स्वभावतें जो जो करेहे सो नारायणके लिये अर्पण करे] याभांति श्रीआचार्यजीद्वारा प्रभुकों समर्पके पाछें निश्चिंत होय, श्रीआचार्यजी महाप्रभुकों आश्रयकरिकें रहे तिनकों काल नांही बाधक हे सो

द्वादशस्कंधमें श्रीशुकदेवजी कहेहें–"कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधः परं व्रजेत्" (हे परीक्षित! दोषके निधिरूप कलियुगको एक वडो गुण हे जो श्रीकृष्णके कीर्त्तनतेंही बंधमुक्त होयकें परकों प्राप्त होय) यद्यपि हे राजन् ! कलियुग यह काल दोषको निधि हे परंतु एक यामें महागुण हे जो श्रीकृष्णके नामको कीर्त्तन करत हे सो सर्व दोषतें छूटिकें प्रभुकों पावत हे. तातें श्रीआचार्यजीप्रकटित भाव जा वैष्णवकों भयो तिनकों यह कलि परम सुंदर हे ॥ १ ॥

मूलं–न सेवा न कथा नैव भावनं नापि संश्रयः । नित्यमुद्विग्नमनसा कथं कालः प्रयास्यति ॥ २ ॥

शब्दार्थः–जिनकों सेवा नांही, कथा नांही, भावनहू नांही ओर सम्यक्प्रकारसों आश्रय नांहीहे एसेनकों नित्य उद्विग्न मनकरिकें काल केसें व्यतीत होयगो ? ॥ २ ॥ टीका–मुख्य पुष्टिमार्गकी रीति जो भगवत्सेवा सोहू नांही करत तथा श्रीआचार्यजीके ग्रंथादिककी कथा सुनतही भगवद्धर्म हृदयमें आवे सो कथाहू नांही सुनत, कोउ अकेलो होय द्रव्यादिक सहाय नांही होय अंग रोगि होय तासूं भगवत्सेवा न बने ओर कोउ भगवदीयके पास कथा सुने सो भगवदीय न मिले तो मनहीकरि प्रभुके नाम अष्टाक्षर शरणमंत्रकी भावना मनमें विचारे, यह न बने तो लौकिक वैदिक सुखदुःख सर्व छोडि एक श्रीआचार्यजीकेही चरणकमलको आश्रय राखे, याभांति कबहू भगवद्धर्ममें मन न लगावे ओर देहसंबंधी संसाराग्निमें (सुखदुःखकरिके) जरे अष्टप्रहर सुखदुःखमें हाय हाय करे तिनकों यह काल बाधही करे. तहां कोई कहे जो कलिके दोष वोहोत हे सो सेवा ओर कथातें कहा होय ? तहां कहतहे जो नवमस्कंधमें दुर्वासा प्रति भगवान् आपु कहेहें " मत्सेवया प्रतीतं च सालो-

क्यादिचतुष्टयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम् ” [मेरी सेवाकरिकें साक्षात् प्राप्त भई एसी सालोक्यादिक चतुर्विध मुक्तिकोंहू मेरे भक्त इच्छा नांही राखतहें काहेतें जो सेवातें पूर्ण हे सो कालादिकतें नष्ट होय एसें राज्यादिककी इच्छा तो केसें करे ?] यह वचनतें भगवान् कहतहे जो जीवकों मेरी सेवातें प्रतीत प्राप्त जो सालोक्य १, सामीप्य २, सायुज्य ३, सारूप्य ४, चारों मुक्ति सोहू नांही इच्छित हे एसे सेवाकरि पूर्ण हे तिनको काल कहा करी सके ? मेरेहू नांही चलतहे. ओर भगवानकी कथा केसी हे “ तस्माद्गोविंदमाहात्म्यमानंदरससुंदरम् । शृणुयात् कीर्त्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः ” ॥ (तासों आनंदरसकरिकें सुंदर गोविंदको माहात्म्य सुने ओर इनको कीर्त्तन करे सो कृतार्थ होय वामें संशय नांही) ओर द्वितीयस्कंधमें राजा परिक्षितको वाक्य हे “ प्रविष्टः कर्णरंध्रेन स्वानां भावसरोरुहम् । धुनोतु शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्” (कर्णरूपरंध्रतें अपने भक्तनके भावकलात्मक हृदय प्रति प्रविष्ट श्रीकृष्ण मलकों मिटायदेतहें शरद् ऋतु जेसें जलके मलकों मिटावे) यह वाक्यतें जो श्रीठाकुरजीकी कथारूप सुंदर अमृतकों नित्य कर्णद्वारा पान करतहे सो कृतार्थ हे तिनके कर्णरंध्रद्वारा श्रीठाकुरजीकी कथारूप अमृत हृदयमें जातहे तिनके सगरे दोष हृदयतें दूरी होत हे. कथा कहे, सुने, अनुवाद करे यह तीनों जीव कृतार्थ होय जेसें गंगाजल ल्यावे सो ल्यायवेवारो तथा आसपासके सगरे पवित्र होय तेसें कथा हे तातें भगवद्धर्ममें मन होय ताकों यह काल बाधक नांही हे ओर सबको बाधक हे ॥ २ ॥

मूलं–सत्संगो दुर्लभो दुष्टसंगः संचिंतनादृते ।
अनायासेन संसिद्धः का गतिर्मे भविष्यति ॥३॥

शब्दार्थः–सत्संग दुर्लभ हे ओर दुःसंग विनाविचारे श्रम विना आछी तरेहसों सिद्ध होयहे सो मेरी कहा गति होयगी ? ॥ ३ ॥ टीका–

सत्संग तो महादुर्लभ हे यह जीव तो स्वभावकरिकें दुष्ट हे तातें दुष्टसंग विनाचिंतितही आपतें विनाजतन दश दिशातें आवतहे सो जीवकों भगवद्धर्ममें लगन नाहीं देत हे, दुष्टसंगको गंधहू बाधक होत हे तो दशोदिशातें दुःसंग होय सो बाधक होय यामें कहा कहेनो ? सो श्री गुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " अहं कुरंगीदृग्भंगिसंगिनांगीकृतोऽस्मि यत्। अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते " (जासों में हरिणीके दृष्टिकीसी चपलदृष्टिवारे व्रजभक्तनके संगी श्रीकृष्णको अंगीकृत हों तासों अन्य संबंधको गंधहू मेरी कंधारकोंही दुःखदे हे) या भांति अन्य संबंधके गंधहूतें गरो कटे एसी श्रीप्रभुनकी आज्ञा हे ओर मेरे तो दशादिशातें दुष्टसंग विनाचिंतन आवत हे सो मेरी अब कहा गति होनहार हे सो मोकों जानि नाहीं परत हे ॥ ३ ॥

मूलं—संग्राहयितुमखिलं तैः क्रीडयितुमेव च।
शकलीकर्त्तुमधुना प्रभोर्बालचिकीर्षितम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—समग्र चराचर वस्तुको संग्रह करवेकों ओर इनके संग क्रीडा करिवेकोंही तथा अब सबनकों भिन्न करिवेकों प्रभुकी बालक्रीडा करिवेकी इच्छा हे (सो कोन जाने ?) ॥ ४ ॥ टीका—उपर कहेहे जो दुःसंगतें संसारी लोक अहंता ममता करि भरे हे तिनकों ग्रहण-करि पास राखि एसे खिलोनामें क्रीडतहूं संसारीतें अष्टप्रहर मिलाप हे सो मे कहा करूं ? जगतमें एसेंही मनुष्य मोकों मिलत हे सो हे प्रभु ! आधुनिक जीवकों तुमही नचावतहो काष्ठकी पुतरीवत् दोरी तुह्मारे हाथ हे सगरे यंत्र हे तुम यंत्री हो जाभांति बजावतहो तेसेंही बाजत हे ओर तुम तो बालककी नांई क्रीडा करतहो सहजमें हम तथा सगरो जगत् यह मायाकरि भ्रमत हे याभांति कही अब अपनी उपर कृपा करिवेको प्रार्थना दीनतासो करतहे ॥ ४ ॥

मूलं--हा नाथ! हा कृपानाथ! गोपीनाथ! दयानिधे!।
व्रजनाथ! रमानाथ! निजनाथ! जगत्पते! ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-हा नाथ! हा कृपानाथ! गोपीजनके नाथ! दयाके निधि! व्रजके नाथ! लक्ष्मीके नाथ! अपने भक्तनके नाथ! ओर जगतके पति! (हमारी उपर दया करो एसी प्रार्थना अष्टश्लोकमें हे तहांतांई समस्त संवोधनको संवंध हे) ॥ ५ ॥ टीका-हा नाथ! हमारे तुम नाथ हो स्वामी हो तातें तुम विना हम ओर कोनसों सुखदुःख कहें? अव यह संसारदुःख नांही सह्यो जातहे, तुम अपने जानि दया करो, हा कृपानाथ! तुम आगें आगेंतें अपने जीवनपर कृपा करत आयेहो सो अव हमपर कृपाही करो काहेतें जो तुम गोपीजनके नाथ हो गोपीजन निःसाधन हे तिनपर सदा कृपाकरि सगरे कार्य सिद्ध कीये तेसें हमहू निःसाधन हे हमपर कृपा करो ओर तुम व्रजके नाथ हो कंससंवंधी अनेक दैत्य आये तिन सवनकों मारे अग्नितें, जलतें, कालीयतें, विषतें, सर्वप्रकार अपने व्रजकी रक्षाही कीनी तेसें हमारी रक्षा करो, लक्ष्मीनाथ हो एसे प्रभु हमपर प्रसन्न हो, ओर अपने निजभक्तनके नाथ हो भक्त प्रसन्न रहे सुख पावे सोई करत हो सो श्रीभागवत नवम स्कंधमें दुर्वासा प्रति भगवान् कहेहें "अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज!। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः" (हे विप्र! परतंत्र होय तेसें में भक्तनके पराधीन हों ओर साधु मेरे भक्त हे तिननें मेरो हृदय ग्रहण करी लीनो हे तासों भक्तनही प्रिय हे जिनकों एसो में हूं) में भक्तनके पराधीन हों स्वतंत्र नांहीहों. हे विप्र! भक्तजन मोकों वोहोत प्रिय हे में भक्तनके हृदयमें सदा रहतहों या भांति तुम अपनें निजभक्तनके नाथ हो तातें दया करो ओर जगतके पति हो सगरे जगतमें तुमही करत हो सोई होत हे तातें तुम कृपा करोगे तव यह काल हमकों निश्चय दुःख नांही देयगो ॥ ५ ॥

मूलं–गोकुलाधीश ! गोपीश ! व्रजाधीश ! व्रजप्रिय ! ।
व्रजानंद ! निजानंद ! गोकुलानंद ! गोप्रिय ! ॥६॥

शब्दार्थः–हे गोकुलके अधीश ! हे गोपिकाके ईश ! हे व्रजके अधीश ! हे व्रज हे प्रिय जिनकों एसे ! हे व्रजके आनंदरूप ! अथवा व्रजमें हे आनंद जिनकों एसे ! हे अपने भक्तनके आनंदरूप ! हे गायनके कुलकों अथवा समस्त इंद्रियनकों आनंदरूप ! हे गायें हे प्रिय जिनकों एसे ! [दया करो] ॥ ६ ॥ टीका–हे श्रीकृष्ण ! तुम गोकुलाधीश गोकुलके राजा हो सगरे गोकुलवासी तुमहीकरि शोभित हे गायनके रक्षक तुमही हो गोपीजनके ईश तुमही हो ओर सगरे व्रजके राजा तुमही हो व्रज तुमकों प्रिय हे तुम व्रजकों प्रिय हो सो दशमस्कंधमें ब्रह्माजीनें कह्यो हे " अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् । यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् " (श्रीनंदरायजीके व्रजमें रहन-हारे सगरेनको अहो भाग्य देखो जिनके सदा आनंदरूप पूर्ण ब्रह्म मित्र हे) यह वचनतें व्रजके जन नंदयशोदा गोपगोपीके परम भाग्य हे जिनके मित्र श्रीकृष्ण परमानंदरूप हे सगरे व्रजके आनंददाता हे ओर निजभक्तनकोहु अपनो आनंददान करतहे. गायनके कुल तिनकों आनंददाता हे काहेतें जो गाय आपकों वोहोत प्रिय हे सो भगवदीय गायेहे " आगें गाय पाछें गाय इत गाय उत गाय गोविं-दाकों गायनमें रहिवोही भावेरी " एसी गाय प्रिय हे एसे श्रीकृष्ण हम उपर कृपा करे ॥ ६ ॥

मूलं–हा कृष्ण ! हा दयासिंधो ! हा राधावर ! सुंदर ! ।
दीनेषु सततं श्रीमन्निजाचार्याश्रितेषु च ॥ ७ ॥
दुष्टेषु दोषपुष्टेषु भाग्यभ्रष्टेषु मत्प्रभो ! ।
निःसाधनेषून्मतिषु दयां कुरु दयां कुरु ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—हा कृष्ण ! हा दयाके समुद्र ! हा श्रीस्वामिनीजीके वर ! हा सुंदर ! दीन ओर श्रीनिजाचार्यके चरणके आश्रित, ॥ ७ ॥ दुष्ट दोषतें पुष्ट भये, भाग्यहीन ओर साधनरहित तथा (आचार्यजीके आश्रयतें) उत्कृष्ट मतिवारे भक्तनकी उपर हे हमारे प्रभु ! दया करो दया करो!॥८॥ टीका—हा कृष्ण!तुम निःसाधन फलात्मक हो सो हमपर कृपा करो ओर तुम तो कृपा करोहींगे यह निश्चय हे परंतु हमकों धीरज नांही रहतहे तातें विज्ञप्ति करतहे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " अंबुदस्य स्वभावोऽयं समये वारि मुंचति । तथापि चातकः खिन्नो रटत्येव न संशयः " (मेघको यह स्वभाव हे जो समय भये जल छोडे तोहू खेदयुक्त चातक हे सो रटन कर्योही करतहे यामें संशय नांहींहे) मेघको स्वभाव हे स्वातिनक्षत्रमें वरसके समय आये जलदान करतहे परंतु चातक अपनी रटना वर्षदिनलों रटिवोई करे तेसेंही श्रीकृष्ण अपने भक्तनपर निश्चय कृपा करेंगे परंतु भक्तनकों आर्तिही कर्त्तव्य हे. हे दयासिंधो ! अब तुम वेगि ही दया करो, काहेतें जो तुम दया करो तो सगरो अनुकूल होय माया बाधक न होय ओर तुम जहांताई दयामें ढील करतहो तहांताई मायाकरि हम दुःख पावतहे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " नाथेऽनुकूलतां याते सर्वे यांत्यनुकूलताम् । तस्मिंस्तद्विपरीते तु सर्वमेव भवेत्तथा " (स्वामी अनुकूल होय तो सर्व अनुकूल होय ओर यह विपरीत होय तब तो सब तेसेंही विपरीत होय) हे नाथ ! तुह्मारे अनुकूलतें सर्व अनुकूल हे ओर तुह्मारे विपरीततें सर्व जगतमें विपरीत भयो हे तातें तुम वेगि दया करो. तुम श्रीस्वामिनीजीके वर हो, परमसुंदर हो ओर हम बोहोत दीन दुःखी हें तातें कृपा करो तो भली हे, मेरे दोष देखिकें कृपामें ढील करतहो परंतु निरंतर अपनें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कानिकरिकें कृपा करो. याभांति दीनता करत करत अपने दोषकी

स्फूर्ति होय प्रथम विरहकरि प्रभुके [लीलासंबंधी] नाम कहे ताकरि अति दीनता ओर अपने दोषकी स्फूर्ति होय ॥ ७ ॥ में बडो दुष्ट हों अपार अनेक भांतिके कायिक मानसिक वाचनिक एसी अपार दुष्टताकरि दुष्ट हों, भाग्यमें भगवद्धर्म नांही लिख्यो हे बुद्धि गई हे शून्य हों, हे मेरे प्रभु ! इतनो भरोसो हे जो तुम मेरे प्रभु हो में निःसाधन हों मोतें साधन एकहू नांही बनतहे एसो जो में तिनपर वेगिही दया करो मेरे दोष मति देखो. कोई कहे जो प्रभु हे दोष क्यों न देखे गुणदोष होय सो देखेचाहियें याभांति कहे तहां श्रीगुसाँईजीनें विज्ञप्तिमें कह्यो हे “ वलिष्ठा अपि मद्दोषास्त्वत्कृपाग्रेऽतिदुर्बलाः । तस्या ईश्वर धर्मत्वाद्दोषाणां जीवधर्मतः ॥ अपराधेऽपि गणना नैव कार्या व्रजाधिप ! । सहजैश्वर्यभावेन स्वस्य क्षुद्रतया च नः ” (मेरे दोष वलिष्ठ हे तोहू आपकी कृपाके पास अतिदुर्बल हे काहेतें जो कृपा हे सो ईश्वर को धर्म हे ओर दोषनकों जीवधर्मत्व हे. हमारी तुच्छतातें जो अपराध होय तामें आपके सहज ऐश्वर्यभावकरिकें हे व्रजके अधिप ! गणना नांही कर्त्तव्य हे) यद्यपि मेरे दोष बोहोत वलिष्ठ हे तोहू तुह्मारि कृपाके आगें दुर्बल हे तुह्मारि कृपा ईश्वरधर्मरूप हे ताकी पास दोष जीवधर्म हे सो कहांतांई रहेगो तातें कृपा करो ओर तुम व्रजके अधिपति हो निःसाधन फलात्मक हो तातें हमारे अपराध हे तिनकी गणना करनी तुह्मारे उचित नांहीहे काहेतें जो सहजीमें तुह्मारो एसो ऐश्वर्य हे जो यह दोष महाक्षुद्र हे सो कहाहे ? पुत्रके भावतें अजामिलनें नारायण नाम लीयो सो कालके बंधनतें छूट्यो तुम तो श्रीकृष्ण दयालु हो सो जीवके दोष देखतही नांही तातें हमपर कृपा करो ॥ ८ ॥

मूलं-निवर्त्य सर्वतश्चेतो निरुद्धय चरिते हरेः ।
हृदि कृत्य कृपावश्यं स्थीयतां सज्जनैः सह ॥९॥

शब्दार्थः—चित्तकों सर्व (लौकिक) तें निवृत्त करिकें चरित्रमें निरुद्ध करिकें (प्रभुकी) कृपाके वश्य जो निरोध हे ताकों हृदयमें स्थापित करिकें सज्जन (पुष्टिमार्गीय भक्त) के संग रहेनो ॥९॥ टीका—हे श्रीकृष्ण ! यह संसारमें देहसंबंधी अहंता ममता करि मेरो चित्त फसि रह्यो हे ताकों यह संसारतें निवृत्त करो सर्व ओरतें निरोध करी अपनेमें लगावो जेसें व्रजभक्तनको चित्त दही, दूध, मांखन इत्यादिकमें हतो ताकी चोरी करी अनेक लीला करी अपनेमें लगायो तेसेंही हमारे मनको निरोध करी अपनमें लगावो अपनें हृदयमें विचारो जो यह हमारे हे एसें जानि अवश्य कृपा कर्तव्य हे अपने सज्जनके हृदयमें सदा स्थित हो सो हम पर कृपा करो ॥ ९ ॥

मूलं—अदृष्टदुःखितमुखोऽननुभूतसुखेतरः ।
स्वदुःखितातिकरुणः स कृष्णः शरणं मम ॥१०॥

शब्दार्थः—(उपर श्लोकमें कहे ता प्रकार चित्तकों निरुद्ध करिकें भक्तनके संग रहिकें शरणकी भावना करनी सो दोय श्लोकतें निरूपण करतहें) जिननें दुःखयुक्त (भक्तनको) मुख नांही देख्यो हे, दुःखको अनुभव नांही कीयो हे एसे ओर अपने दुःखितनकी उपर अति दयायुक्त एसे श्रीकृष्ण मेरो शरण (आश्रयस्थान) हे ॥ १० ॥ टीका—हे श्रीकृष्ण ! तुम अपने भक्त जो दुःखक्लेशकरि पीडित होय सो नांही देखि सकतहो भक्त प्रसन्न रहे सो तुमकों भावत हे भक्त दुःखित होय म्लानमुख होय सो तुम नांही देखि सकतहो काहेतें जो सर्व प्राणिमात्रके तुम सुखदाता हो सो भक्तनको दुःख केसें देखोगे? यह विचारिकें हमकों वडी चिंता होयहे जो अव भक्तनको क्लेश सहन लागे, सो विज्ञप्तिमें श्रीगुसाँईजी कहतहे " जानामि मंदभाग्योऽहं यदर्थं गोकुलेश्वरः । भक्तक्लेशासहिष्णुत्वस्वभावं कुरुतेऽन्यथा " (में मंदभाग्य

१ यह अर्थ रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार लिख्यो हे.

वारो हूं एसें जानुहूं जाके लिये गोकुलके ईश्वर (श्रीकृष्ण) भक्तके क्लेशकों नांही सही सके एसे अपने स्वभावकों अन्यथा करतहे में यह जानतहों जो मेरे अब मंद भाग्य हे, हे गोकुलेश्वर! तुम भक्तक्लेश कबहू नांही सहत सो स्वभाव मेरे लिये फेरे अब सहतहो तो में कहा करूं? सर्व भूतप्राणिमात्रके तुमही सुखदाता हो ओर अपने निजभक्तको दुःखित देखिकें अत्यंत करुणाही करतहो एसे भक्तनके करुणासिंधु श्रीकृष्ण मेरे शरण हो एसे शरणकी भावनाही करतहो ओर कहा करिसकों ॥ १० ॥

मूलं–अमंदपरमानंदो निजानंदाश्रयस्थितः।
स्वरूपानंददाता च स कृष्णः शरणं मम ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–अधिक उत्तम आनंदरूप, ओर अपने आनंदके आश्रयरूप श्रीमदाचार्यजी अथवा व्रजभक्तादिक तिनमें स्थित, ओर (रसात्मक) स्वरूपके आनंद देयवेवारे सो श्रीकृष्ण मेरो शरण (आश्रयस्थान) हे ॥ ११ ॥ टीका–हे श्रीकृष्ण! तुम वोहोत आनंदकरि पूरित हो परमानंदरूपही हो तुम अपने निजभक्तनके आनंददाता हो जो कोउ तुह्मारे आश्रयकरिकें रहे हें तिनके आश्रयरूप आपही हो तिनकों स्वरूपानंदको दान करतहो. दशमस्कंधमें श्रीनंदरायजी उद्धवजी प्रति कहेहें 'मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः। वाचोऽभिध्यायिनीर्नाम्ना कायस्तत्प्रह्वणादिषु' (हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णके चरणारविंदको हे आश्रय जिनकों एसी होऊ ओर वाणी इनके नामकों उच्चार करिवेवारी तथा शरीर इनकों दंडवत्प्रणामादिकमें होऊ) मन, वचन, काय करि श्रीकृष्णके पदांबुजको जो आश्रय हे तिनकों ओर कार्य कछु नांही कर्त्तव्य हे सब सिद्ध भयो तातें जा भक्तनें तुह्मारो आश्रय कीयो हे तिनकें स्वरूपानंदके दाता हो एसे जो श्रीकृष्ण सो मेरे शरण (आश्रयस्थान)

होऊ सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम " [तासों निरंतर सर्वात्मकरिकें श्रीकृष्ण मेरे शरण हे] नित्य श्रीकृष्णकी शरणभावना कर्त्तव्य हे ओर भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण कहेहें " सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"(सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरण हो में तोकों सर्वपापनतें छुडाउँगो शोक मति कर) इत्यादि अनेक वचन हे तातें हे श्रीकृष्ण ! मोतें कछुहू धर्म नांही वनि आवत एक तुह्मारी शरणकी भावना कियेतें फलसिद्धि होय एसें जानि सोही करतहों ॥ ११ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रयोदशं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥१३॥

शिक्षापत्र १४.

अब चतुर्दश शिक्षापत्रमें प्रभुके चरणारविंदमें चित्तकों स्थापन करनो, अन्याश्रय ओर दुःसंग नांही करनो, निवेदनमंत्रको अनुसंधान करनो, ओर अपने आचार्यके चरणारविंदको दृढ आश्रय राखनो, येही वैष्णवको लक्षण हे यह निरूपण हे। उपर कहे जो शरणकी भावना कियेतें सर्व फलसिद्धि होय सो भावना सिद्ध होय एसो उपाय कहतहे।

मूलं—श्रीमत्प्रभुपदयुगले स्थाप्यं चेतश्चमत्कारि । तदनुग्रहणादेव हि भवति तदीयस्य सर्वतः सकलम् ॥१॥

शब्दार्थः—श्रीठाकुरजी तथा श्रीगुसाँईजीके चरणारविंदमें चमत्कारयुक्त चित्तकों स्थापन करनो काहेतें जो इनके अनुग्रहतेंही तदीय-

कों सर्वप्रकारकरिकें सर्व सिद्ध होय ॥ १ ॥ टीका–श्रीसहित एसे मेरे प्रभु जो श्रीगुसाँईजी तिनके दोउ चरणारविंदमें अपनो चित्त स्थापन करनो सो दोउ चरणकमल चित्तकों परम चमत्कारि भक्तिरसको अनुभव करावतहे तामें वामचरणके आश्रयतें पुष्टिरसको अनुभव होतहे ओर दक्षिणचरणके आश्रयतें मर्यादाभक्तिरसको अनुभव होतहे सो श्रीगुसाँईजी ललितत्रिभंग ग्रंथमें कहेहें "पुष्टिभक्तिं स्थिरीकृत्य मर्यादां च तदाश्रिताम्। कृत्वा वृंदावनक्षोणीमयथापूर्वसंस्थितः" (पुष्टिभक्तिकों स्थिर करिकें मर्यादाकों पुष्टिकी आश्रित करिकें श्रीवृंदावनभूमि प्रति पूर्व नहीं भये तेसें स्थित हे; इत्यादि वचनतें श्रीवृंदावनमें ललितत्रिभंगी होय प्रभु वेणुनाद करतहे तहां पुष्टिरूप वामचरणपें स्थिति हे ताके आश्रित मर्यादाभक्तिरूप दक्षिणचरण टेडो हे एसे प्रभुके दोउ चरणके आश्रय करी मन लगाईये ताकरि इनके अनुग्रहतें तदीयके सर्वकल्याण सब ठोर सिद्ध होतहे यह कहिकें यह जताये जो दोउ श्रीकृष्णके चरणकमलमें चित्त लगावे तिनको कल्याण होय सो नवमस्कंधमें भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहें " ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् । हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे" (जो स्त्री, घर, पुत्र, लौकिक, हितेषी, प्राण, धन, यह लोक ओर परलोककों छोडिके मोकों शरण आये तिनकों त्यागकरिवेमें में केसें उत्साह करूं ?) श्रीकृष्णकों घर, स्त्री, पुत्रप्राणादि सर्व समर्पण करी शरण रहे तिनकों प्रभु कबहू नांही छोडत सो श्रीकृष्णाश्रयमें श्रीआचार्यजी कहेहें " शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् " (शरण आये तिनको उद्धार करिवेवारे श्रीकृष्णकों में विनति करूंहूं) यह वाक्यतें शरणस्थ जीवको निश्चय उद्धारही हे ॥ १ ॥

मूलं–अन्याश्रयस्तदीयैकपदाश्रयविरोधकृत् ।
प्रभोरुदासीनतायाः कारणं त्यज्यतां द्रुतम् ॥ २॥

शब्दार्थः–तदीयके चरणकी आश्रयवारेनको विरोध करिवेवारो अन्याश्रय हे अथवा तदीयको स्थानक जो व्रज ताको आश्रय जो निवास ताको विरोध करिवेवारो हे ओर प्रभु (श्रीठाकुरजी तथा श्रीगुसाँईजी) की उदासीनताको कारण हे सो शीघ्र त्याग करनो ॥ ॥ २ ॥ टीका–उपर कहे जो श्रीकृष्णके चरणमें मन लगावे तो सर्व सिद्ध होय तहां अन्याश्रय महा बाधक हे सो एसो बाधक हे जो भगवदीयकों हू चरणकमलके आश्रयमें विरोधही करे तो ओर जीव कहा वस्तु ? तेसो तो गिरेहीं तासों अन्य देव मनुष्य राजा इनको आश्रय न करे तहां कहतहें " भगवत्पदपद्मपरागजुषो नहि युक्ततरं मरणेऽपितराम्। इतराश्रयणं गजराजधृतो न हि रासभमप्युररीकुरुते " (भगवानके चरणारविंदकी रजकों सेविवेवारेकों मरणतें अधिक दुःख-मेंहू ओरको आश्रय युक्त नहीं जो हाथी उपर बेठो होय सो रासभ (गधा) कों नांही कबुल करे) भगवानके चरणकमलकों छोडि अन्यदेवको आश्रय एसो हे जेसें हाथीकी अस्वारी छोडि गधापें चढे । हारितस्मृतिमें कहहे " नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत्। नान्यप्रसादमद्याच्च नान्यदायतनं व्रजेत् ॥ अनन्यशरणा ये तु तथैवानन्यसाधनाः । अनन्यभोगभोग्या ये ते तु सर्वेऽधिकारिणः" (अन्य देवकों नमस्कार नांही करे, अन्यदेवकों देखे नांही, अन्यप्रसादकों खाय नांही, अन्यदेवके मंदिरमें जाय नांही, अनन्य हे शरण जिनको तेसेंही अनन्य हे साधन जिनको, ओर ओरनके भोग्यको भोग नहि करिवेवारे जो हे सो सर्व अधिकारी हे) इत्यादि वचनतें ओर देवकों नमस्कार न करे. अन्य देवको प्रसाद न लेय, अनन्य प्रभुकी शरण रहे, एक श्रीकृष्णकी साधन सेवा स्मरण करे तब प्रभु प्रसन्न होय । अन्याश्रय करे ताके उपर प्रभु उदासीन होय जाय जो में कहा देवेमें समर्थ नांहीहूं

जो अन्याश्रय करतहे ? जेसें दामोदरदास संभलवारेकी स्त्रीनें रंचक अन्याश्रय कीयो तातें पुत्र म्लेच्छ भयो, वोहोत खेद पाये तातें वैष्णव भगवदीय अन्याश्रयकों निश्चयही शीघ्र त्याग करे ॥ २ ॥

मूलं—असत्संगस्य च त्यागो भावबाधकता यतः ।
यथा व्याघ्रो बाधकः स्याच्छरीरादेः शरीरिणः॥३॥

शब्दार्थः—असत्के संगको त्याग करनों काहेतें जो असत्संगतें भगवद्भावको नाश होय जेसें शरीरी जो जीव हे तिनके शरीरादिकको बाधक वाघ हे सो शरीरको नाश करतहे (तासों जीव वाघतें दूर रहतहे तेसेंही असत्संगको जानिकें तातें दूर रहेनो) ॥ ३ ॥ टीका—अन्याश्रय छोडे काहेतें जो भगवद्भावमें असत्संग बाधक हे ताको लौकिक दृष्टांत कहतहे जेसें वाघ (नाहर) के आगें मनुष्य जाय तो वाके शरीरको विघ्नही होय ताकरि देहको नाश होय तेसेंही असत्संग होय तो भगवद्भावको निश्चय नाश होय असत्संगतें जडभरतकों तीन जन्म लेने परे द्विविद वानरकों नरकासुरके संगतें श्रीबलदेवजीसों लरनो पर्यो तातें असत्संग महाबाधक जानि तत्काल छोडनो ॥ ३ ॥

मूलं—असत्संगस्तथा प्रोक्तः श्रीमदाचार्यपंडितैः ।
अध्यासः स्वशरीरादौ तदीयत्वप्रकारतः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—श्रीमदाचार्यजी जो महापंडित हे तिनने अपने शरीरादिकमें तदीयपनांके प्रकारसों जो अभ्यास ताकूं असत्संग कह्यो हे अथवा शरीरादिकमें [अहंताममतात्मक] अध्यासकूं असत्संग कह्यो हे ओर यह देह तदीय (भगवत्संबंधी) हे यह प्रकारतें जाने सो सत्संग हे ॥ ४ ॥ टीका—असत्संग महादुःखरूप हे सो हमारे श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी महापंडितनें वेद, शास्त्र, पुराण, श्रीभागवत, सर्वमथिक श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रंथ प्रकट कीये हें तामें अन्याश्रय ओर असत्संग

महाबाधक ठोरठोर निरूपण कीयो हे तातें भगवदीयके संग रहे उनके संगतें सगरो असत्संग छुटि जाय एसें अन्याश्रयतेंहू बचे ॥ ४ ॥

मूलं–विधाय सर्वथा भीतिं विधेयेतरयोगतः ।
सत्संगेन स्वमार्गैकनिष्ठत्वेन च सर्वथा ॥ ५ ॥
समर्पणानुसंधानं विधेयं मिलितैः सदा ।
इदमेवाऽस्मदाचार्यमार्गे साधनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–कर्त्तव्य ओर अकर्त्तव्यके योगसों सत्संगकरिके ओर सर्वथा पुष्टिमार्गमेंही एकनिष्ठपना करिकें असत्संग प्रति निश्चय भयकरिकें मिले एसें भगवदीयनके संग निवेदनमंत्रको अनुसंधान सदा करनों यहही अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके पुष्टिमार्गमें उत्तम साधन हे ॥ ५ ॥ ६ ॥ टीका–याभांति असत्संगसों महा भय राखे यह निश्चय सिद्धांत मनमें जानियें जो जीवकों यह योग्य हे, यह कर्त्तव्य हे, एसें जानि जितनो भगवद्धर्म बने तितनो करे परंतु असत्संग न करे, सत्संग करे, जो भगवदीयकी पुष्टिमार्गमें निष्ठा होय ताहीकों संग करे ओरको न करे काहेतें जो एतन्मार्गीय भगवदीयके संगतें अपने पुष्टिमार्गकी सगरी रीति जाने मार्गमें पूर्ण निष्ठा होय जब भाव बढे ओर सब सिद्ध होय ॥ ५ ॥ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीद्वारा श्रीठाकुरजीको सर्व समर्पण कीयो हे एसो भगवदीयसों मिलिकें सदा विचारे जो में कहा समर्पण कीयो ? अब में कहा क्रिया करतहों ? कितनी वस्तु प्रभुमें अंगीकार होत हे ? कोनसी इंद्रिय बहिर्मुख हे ? तथा कितने दिनतें प्रभुतें बिछुर्यो हों सो अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें कृपाकरिकें मिलाय दियो हे सो में कोन प्रकार सेवा स्मरण करुं ? इत्यादि भाव भगवदीयसों मिलिकें विचारे भगवदीयसों दैन्य राखे जो वे कृपा करिकें बतावे येही श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके यह

पुष्टिमार्गमें उत्तम साधन हे. भगवदीयके संग निवेदनको स्मरण करे ताहीतें नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " (निश्चय तादृश जनके संग निवेदनको स्मरण करे) भगवदीयको संग सर्वथा करनो तथा सर्वदा करनो उनसों नित्य निवेदनको प्रकार सुनिकें अपने मनमें भाव राखनो यह सत्संगही श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके मार्गमें उत्तमतें उत्तम साधन हे सोई करे यातें विरुद्ध साधन न करे ॥ ६ ॥

मूलं–स्वाचार्यचरणद्वन्द्वदृढाश्रयणमादृतैः ॥
विधेयं तेन सकलमस्मिन् मार्गे भविष्यति ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–अपने आचार्यजीके दोउ चरणको दृढ आश्रय आदरयुक्त होयकें करनो, ताकरिकें यह पुष्टिमार्गमें सर्व सिद्ध होयगो ॥ ७ ॥ टीका–अपने श्रीवल्लभाचार्यजीके दोउ चरणारविंदको दृढ आश्रय जो कोई पुष्टिमार्गीय जीव आदरपूर्वक करे तिनकों यह सर्वोपरि पुष्टिमार्गको सिद्धांत हृदयारूढ होय तातें दैवी जीवनकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलको दृढ आश्रय निश्चयही कर्त्तव्य हे ताहीकरिकें सकल कार्य सिद्ध होयगो ॥ ७ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुर्दशशिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १४ ॥

शिक्षापत्र १५.

अब पंचदश शिक्षापत्रमें भगवान्‌की लीलाके अनुसंधानपूर्वक भगवत्स्मरण करनो यह निरूपण हे. उपर कहे जो भगवदीय संग

करे अपने श्रीआचार्यजीके दोउ चरणारविंदको आश्रय करे तो यह पुष्टिमार्गको फल सिद्ध होय सो श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलको आश्रय कोनभांति होय सो यह शिक्षापत्रमें कहत हे–

मूलं–यदंगीकृतजीवानां न दुःखं लेशतोऽपि हि ।
सदानंदः सदानंदतत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥ १ ॥

शब्दार्थः–जिनको प्रभुने अंगीकृत कीये एसे जीवनकों रंचकहू दुःख नांहीहे सदानंद एसे प्रभुसो सदा आनंदरूप हे तिनकों स्मरण सदा करनो ॥ १ ॥ टीका–अपनो अंगीकृत जो जीव यह पुष्टिमार्गमें शरण आयो हे तिनकों रंचकहू दुःख होय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु नांही सही सकत अपने जीवनको सकल दुःख दूरी करी सदा आनंदको दान करत हे ॥ १ ॥

मूलं–यो निजानतिसंतप्तान्स्वकृते वीक्ष्य विस्मितः ।
प्रादुर्भवत्यचिरतस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥ २ ॥

शब्दार्थः–जो प्रभु अपने लिये अति (विप्रयोगाग्नितें) तप्त अपने भक्तनकों देखिकें विस्मित होय शीघ्र [आचार्यरूप] प्रकट होयहे तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ २ ॥ टीका–यह जीव जा दिनतें भगवानतें विछुर्‍यो ता दिनतें चौराशी लक्ष योनिमें भ्रमतहे जन्ममरणके अनेक प्रकार दुःख पावतहे संसाराग्निमें महासंतप्त हे यद्यपि दैवी जीव हे तोहू अपनो दासपनो ओर प्रभुको स्वरूप भूलि गयो ताकरि संसारमें महादुःखी हे याभांति अपनी कृतिकरिकें दुःखी होतहे सो श्रीठाकुरजी देखिकें विस्मित भये ओर मनमें खेद पाय कहे जो हमारे दैवी जीव योंहोत दुःखी हे तब करुणाकरि श्रीकृष्ण आपही श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी-

१ सदानंदा एसो पाठ हे ताके अनुसार अर्थ–सदा आनंदरूप होयकें सदा आनंदरूप इनकी स्तुति करनी.

स्वरूप अग्नितें प्रादुर्भूत होय अपने दैवी जीवनके अनेक चिरकालके सगरे दुःख दूरी कीने एसे श्रीआचार्यजी महाप्रभु भक्तवत्सल परमदयाल हे तिनको स्मरण सदाही कर्त्तव्य हे ॥ २ ॥

मूलं—यः स्वतः सेवकानां हि पराश्रयनिवारकः।
कृपासरित्पतिः कृष्णस्तत्स्मृतिःक्रियतांसदा ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—जो आपतें अपने सेवनकों अन्याश्रयनिवारण करिवेवारे श्रीकृष्ण दयाके सागर हे सदा तिनकी स्मृति करनी ॥ ३ ॥ टीका—जेसें श्रीकृष्ण सगरे व्रजभक्तनकों अन्याश्रय छुडाये गिरिराजद्वारा आपु अरोगे अंबिकापूजनमें श्रीनंदरायजीकों दंड देयकें छुडाये तेसें श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपने सेवकनकों पराश्रय [अन्य देवको भजन] छोडाय एक श्रीकृष्णहीको भजन बताये. सर्व ओरने निवृत्त करी एक श्रीकृष्णहीकी शरण कीये सो श्रीकृष्ण कृपाके समुद्र हे जाको अंगीकार करतहे ताकों फेरि कबहू छोडत नांही भक्तपर कृपाही करत हे सो नवमस्कंधमें दुर्वासा प्रति भगवान् कहेहें " अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज ! । साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः " (हे द्विज ! में परतंत्रकी नांई भक्तके पराधीन हों ओर साधुभक्तननें मेरो हृदय ग्रस्यो हे तासोंही भक्तजन मोकूं प्रिय हे) भगवान् कहेहे, हे द्विज दुर्वासा ! में तो भक्तके वश पराधीन हों स्वतंत्र नांही हों मोकों अपने हृदयमें धरि लीनो हे मोको भक्तजन बोहोत प्रिय हे एसे कृपालु श्रीकृष्ण हे तिनकी प्राप्ति अपने भक्तजीवनकों कराये एसे श्रीआचार्यजीके चरणकमलको स्मरण सेवकनकों अहर्निश कर्त्तव्य हे ॥ ३ ॥

मूलं-हृदयस्थः समस्तानां धुनोति विषयादरम् ।
दयादामोदरः श्रीमांस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥४॥

शब्दार्थः—समस्त भक्तनके हृदयमें रहे एसे दयाकरिकें दामोदर भये एसे श्रीमान् विषयमें (भक्तनको) आदर मिटावे एसे हे तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ ४ ॥ टीका—श्रीकृष्ण सर्व प्राणिमात्रके हृदयमें स्थित हें सो भक्तनके हृदयमें होय यामें कहा कहनो ? परंतु जीव (विषयादि, खान, पान, देहसंबंधी संसारसुखमें आदर करी मनको लगावे हे ताकरि) हृदयमें प्रभु हे तिनकों भूलि गयो हे अनेक विषयके लिये भ्रमत हे ओर प्रभु दामोदर हे श्रीयशोदाजी उपर दया करी आपु बंधाये एसे शोभायमान श्रीकृष्ण तथा श्रीआचार्यजी एकरूप जानि तिनके स्मरण वैष्णवकों सदा कर्त्तव्य हे ॥ ४ ॥

मूलं—यः प्राणप्रेष्ठगोपीनां संगं गोपयति स्वतः ।
निलायनादिलीलाभिस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥५॥

शब्दार्थः—जो प्रभु प्राणप्रिय गोपीजन गोपांतरस्थित होय तिनके संगमकों निलायनादि [छुपि छुपिकें खेलनरूप] क्रीडाकरिकें आपतें गोप्य करतहे तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ ५ ॥ टीका—स्वामिके संग गोपीजनकों रसात्मकताकों गोप्य करतहे जामें श्रीनंदरायजी, श्रीयशोदाजी, ओर अनेक गोप जाने नांहीं याभांति व्रजभक्तनकों रसदान करतहे सो गोपीजन श्रीठाकुरजीके प्राणप्रिय हे सो उद्धवजीसों भगवान् दशमस्कंधमें कहे हें " ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः । ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् " (यह गोपी मेरेमें हे मन जिनको मेरेमें हे प्राण जिनको अथवा में हूं प्राण जिनको, ओर मेरे अर्थ सर्व दैहिक धर्म जिननें त्याग कीये हे एसी हे तो जो मेरे अर्थ लोकधर्मको त्याग करिवेवारे हे तिनकों में पोषण करूंहूं) तन, मन, प्राण, देह प्रभु-अर्थ अर्पण कीयो हे ओर प्रभुके अर्थ लोक, वेद, धर्म त्याग कीयो हे तातें श्रीकृष्णकों प्राणसमान प्रिय हे. प्रभु केसे दयालु हे सो तृतीयस्कंधमें

उद्धवजी कहे हे "अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी । लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम" (अहो दुष्टपूतनानें मारिवेके लियेहू स्तनको विष जिनकों प्यायो सो पूतनाहू माताके योग्य गतिकों प्राप्त भई तासों अन्य एसो कोन दयालु होय जिनके शरण जईये) पूतना अपने स्तनमें कालकूट (विष) लगाय प्यावन लागी एसी राक्षसीकों श्रीकृष्ण माताकी गति दीनी तब जो भक्त दूध आदि नानाप्रकारकी सामग्री अरोगावतहे एसे व्रजभक्तनके वश्य भगवान् होय यामें कहा कहेनो ? एसे श्रीकृष्ण प्राणप्रेष्ठ गोपीकों सबतें छिपायकें रसदान करत हे नित्य रासादिलीला करतहे एसे रसात्मक श्रीकृष्णको स्मरण सदाही कर्त्तव्य हे ॥ ५ ॥

मूलं–य उद्धवेन भक्तेन स्वस्वरूपमबोधयत् ।
गोपिकानां हृदंतस्थस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–जो प्रभु अपने भक्त उद्धवकों स्वरूपको बोध करत भये ओर गोपिकाके हृदयकी भीतर रहेहे अथवा गोपिकाके हृदयमें रह्ये एसे स्वरूपको उद्धवजीद्वारा गोपीजनकों जिननें बोध कीयो तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ ६ ॥ टीका–श्रीकृष्ण उद्धवजीकों निजभक्त जाने तब विचारे जो उद्धवजीनें बोहोत सेवा करी अब व्रजलीलाके अनुभव होय तो आछो सो अनुभव तो श्रीस्वामिनीजीके हाथ हे, भावात्मक स्वरूप तो श्रीस्वामिनीजीके ओर व्रजभक्तनके हृदयमें स्थित हे तातें योगको मिषकरिकें उद्धवजीकों अपने निजस्वरूपके बोधार्थ भगवाननें व्रजमें पठाये तब गोपीजननें भगवानके सखा जानि अपनी सगरी लीला उद्धवजीको दिखाई तब उद्धवजीकों अनुभव भयो तब

१ यह श्लोक भाषाकी टीकावारे पुस्तकमें ७ मो लिख्यो हे परंतु रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार यहां लिख्यो हे तथा संगतिहू एसी दीखेहे.

अपने योगकों भूलिगये, वंदन करन लागे " नायं श्रियोऽग.उ ! नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः । रासोत्सवेऽस्य भुजदंडगृहीतकंठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ १ ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् । या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ २ ॥ वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ३ ॥ " (रासोत्सवमें भगवानके श्रीहस्तकरिकें ग्रहण कीयो एसो जो कंठ ताकरि प्राप्त भये हे सर्व मनोरथ जिनके एसे जो व्रजभक्त तिनकों जो प्रसाद भयो हे सो निरंतर प्रीतिवारी लक्ष्मीजीकों नांही भयो, कमलसरिखो हे गंध तथा कांति जिनकी एसी अप्सरानकों हूं नांही भयो तो दुसरेनकों कहांसो होय ? ॥ १ ॥ जो व्रजभक्त पति पुत्र संबंधि सगरो कुटुंब तथा वेदमर्यादा छोडिकें श्रुतिनतें विमृग्य (ढुंढिवे योग्य) श्रीकृष्णकी पदवीकों प्राप्त भये काहेतें आप श्रुतिरूपा हें तिनकी चरणरेणुको सेवन करतहे एसे जो वृंदावनके प्राणी होवेमें तो योग्यता नांहिहे तासों गुल्म लता औषधिनमें कछुहू में होउं अर्थात् सात्त्विक, राजस, तामस, जो स्थावर हे तिनमें कछुहू में होउँ ॥ २ ॥ जिनकी हरिकथाको स्वतंत्र निकस्यो एसो रटन तीन लोकको पवित्र करतहे एसे जो व्रजभक्त तिनके चरणकमलकी रजकों क्षण प्रति दंडवत् करतहूं ॥ ३ ॥) यह दशा उद्धवजीकी भई सो गोपीजनके चरणकमलकी रजकी आशाकरिकें गुल्म लता औषधीकी प्रार्थना करी सो भावात्मक भगवान् व्रजभक्तनके हृदयमें स्थित हे तो भावरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी हें तिनके चरणकमलको स्मरण सदा करे ॥ ६ ॥

मूलं—यः स्वमाहात्म्यबोधाय प्रादुर्भावितवान्स्वयम् ।
प्रभुः श्रीवल्लभाचार्यास्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–जो प्रभु (अपनें भक्तनकों) अपनो माहात्म्य जतावयेके लिये आप श्रीवल्लभाचार्यजीकों प्रकट करतभये तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ ७ ॥ टीका–श्रीकृष्ण उद्धवजीकों अपनें निजभक्त जानि (अपने स्वरूपकों आपु नांही जताये) गोपीजनके पास पटाये तहां यह जताये जो भगवान् कृपा करे ताहूतें अधिक भगवदीयद्वारा स्वरूपको वोध होय सो सर्वोपरि हे तेसेंही देवी जीव संसारमें प्रभुकों भूलि गये तव श्रीठाकुरजी अपने स्वरूपमाहात्म्यवोधार्थ श्रीआचार्यजीकों पठाये तव श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी पृथ्वी पर प्रादुर्भूत (प्रकट) भये भूमि उपर स्थित होय देवी जीवनकों स्वरूपानंदको अनुभव कराये एसे श्रीकृष्ण सर्व सामर्थ्ययुक्त हें तिनके चरणकमलको स्मरण सदा कर्त्तव्य हे ॥ ७ ॥

मूलं–यस्य स्मरणमात्रेण सकलार्तिविनाशनम्।
तत्क्षणादेव भवति तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–जिनके स्मरणमात्रतेंही सवनकी सर्व आर्तिको नाश तत्क्षणतेंही होय हे तिनकी स्मृति सदा कर्त्तव्य हे ॥ ८ ॥ टीका–एसे श्री कृष्णरूप भावात्मक श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणारविंदको स्मरणकरतमात्रही सकल आर्ति, संसारके दुःख सर्वदोषको नाश होय जाय ओर तत्काल श्रीवल्लभदेव श्रीकृष्णदेव वा जीवके उपर प्रसन्न होय तातें यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनको यह धर्म निश्चय हे जो एसे श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलको स्मरण मन लगायकें अहर्निश करनो जेसें व्रजभक्त रात्रिदिवस स्मरण करतहें तेसेंही करनो ॥ ८ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचदशं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥१५॥

शिक्षापत्र १६.

अब षोडश शिक्षापत्रमें, अहर्निश भगवत्सेवन, स्मरण, कीर्तन करे तिनकों भगवान् निरोध करतहे तथा ऐहिक पारलौकिक स्वतः सिद्ध करतहें तासों भक्त कछू चिंता न करे यह निरूपण हे। उपर कहे ताभांति महाप्रभुजीको स्मरण करे तो प्रभु प्रसन्न होय तब प्रभुके स्वरूपको ज्ञान होय ओर अपनो दोष स्फुरे सो प्रकार कहतहें–

मूलं–सदा स्वभक्तहृदयावासः स्वाचार्यभावितः ।
यशोदातिप्रियः श्रीमान् नंदसूनुर्व्रजेश्वरः ॥ १ ॥
स्मरणीयो यथाशक्ति सेवनीयस्तथा पुनः ।
तादृशैः सह संगेन कथनीयश्च सर्वथा ॥ २ ॥

शब्दार्थः–सदा अपने भक्तनके हृदयमें विराजिवेवारे, अपने श्रीआचार्यजीके भावसों भावित. श्रीयशोदाजीकों अति प्रिय, शोभायुक्त, श्रीनंदरायजीके पुत्र, व्रजके इश्वर ॥ १ ॥ स्मरण करिवेयोग्य तथा अपनी शक्ति अनुसार सेवा करिवेयोग्य हे फेरि तादृशीनके साथ संगकरिकें निश्चय (इनकी लीलाकी) कथा कर्त्तव्य हे ॥ २ ॥ टीका–सदा श्रीठाकुरजी अपने भक्तनके हृदयमें वसतहे सो केसेनके हृदयमें वसतहे ? तहां कहतहें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकों भावकरि प्रसन्न कीयेहे श्रीआचार्यजीके भक्त हे एसे पुष्टिमार्गीय भगवदीयनके हृदयमें प्रभु सदा बिराजतहे, सो प्रभु केसेहें ? श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीयशोदाजीकों अति प्राणप्रिय, श्री (शोभा) सहित, नंदसूनु नंदरायजीके पुत्र सो दशमस्कंधमें नंदमहोत्सवमें शुकदेवजी कहेहें " नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः " (श्रीनंदरायजी अपने

आत्मज (आत्मातें अथवा देहतें उत्पन्न भये एसे पुत्र) उत्पन्न भये तब आह्लादयुक्त ओर बडे मनवारे भये) नंदरायजीके आत्मातें उत्पन्न भये एसे श्रीकृष्ण व्रजके राजा हे सो सदा व्रजहीमें भक्तनके संग विहार करत हे एसे श्रीकृष्ण पुष्टिमार्गमें सेव्य हे सो एतन्मार्गीय भगवदीय [श्रीआचार्यजीके कृपापात्र] हें तिनके हृदयमें वसतहे तथा श्रीठाकुरजीके हृदयमें भक्त वसतहे सो श्रीभागवतनवमस्कंधमें भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहें " साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत्ते न जानंति नाहं तेभ्यो मनागपि" (साधु हे सो मेरो हृदय हे ओर में साधुनको हृदय हों मोतें अन्य यह भक्त नांही जानतहे ओर में इनसों कछुहू अन्य नांही जानतहों) भगवान् कहे भक्तनके हृदयमें में हों मेरे हृदयमें भक्त हे भक्त मोतें अन्य जानत नांही ओर भक्ततें ओरकों में जानतहो नांही एसे श्रीकृष्ण हे। एसे व्रजमें सदा विहारकर्ता नंदयशोदाजीके पुत्र हे तिनहीको स्मरण करनो काहेतें जो एसे भावात्मक प्रभु व्रजभक्तनके वश्य हे तातें व्रजभक्तनसहित स्मरण करनो ओर सेवाहू एसेंही भक्तनके भावसहित करनी तथा तादृशीय भगवदीयसों मिलिके श्रीकृष्णकी कथा हू सर्वथा नित्य नियमसों सुननी ॥१–२॥

मूलं–अहर्निशं व्रजाधीशः प्रपंचास्मृतिसाधकः।
स्वकीयपक्षपाती च निजसक्त्या विरोधकृत् ॥३॥
स्मरणीयः कृपापारावारो विदितरूपवान्।
स एवास्मात्सर्वकर्त्ता चिंताणुरपि नो हृदि ॥४॥

शब्दार्थः–अहर्निश प्रपंचकी विस्मृतिके साधक. अपने भक्तनके पक्षपाती, ओर अपनी आसक्ति करायकें निरोध करिवेवारे श्रीव्रजाधीश ॥३॥ कृपाके समुद्र ओर वेणुगीतमें " बर्हापीडं " यह श्लोकमें नटवर रूप जतायो हे सो रूपवारे स्मरणीय हे सोही अपनों सर्व सिद्ध

करिवेवारे हें तासों हृदयमें अणुमात्र चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ ४ ॥ टीका—स्मरण, सेवा, कथा, वार्त्ता, अहर्निश एक व्रजाधीशकी करे तो यह प्रपंच देह संबंधी लौकिक वैदिक सबकी विस्मृति होय येही (स्मरण, सेवा, कथा, वार्त्ताही, प्रपंचविस्मृतिको साधन तथा पुष्टिमार्गीय भगवद्धर्म हे ओर नांही सो व्रजाधीश अपने भक्तनके पक्षपाती हे अपने सामर्थ्यकरि भक्तनको सब ठोरतें निरोध सिद्ध करत हे ओर जो जप, तप, यज्ञ, होम, तीर्थ, व्रतादिक मर्यादामार्गके साधन हें तामें अनेक कालादि दोष प्रतिबंधक होतहे तामें प्रभु रक्षा नांही करतहे ओर भगवद्धर्ममें प्रभु रक्षा करतहें जेसें प्रह्लादके अर्थ प्रभु स्तंभतें प्रकटे भक्तकी रक्षा कीनी तातें श्रीकृष्णको स्मरण सेवादिक मन लगायकें करनो तहां कालादिक कछु बाधक न होयगो अपने भक्तनके पक्षपाती भगवान् हे सो अपनी आसक्तिको सामर्थ्य भक्तनमें धरि सब ठोरतें निरोध करतहे ॥ ३ ॥ एसे श्रीकृष्णको स्मरण सदाही कर्त्तव्य हे सो श्रीकृष्ण परमकृपालु हे सो वेद, शास्त्र, श्रीभागवतमें प्रसिद्ध हे । षष्टस्कंधमें कहेहे " सांकेत्यं पारिहास्यं च स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुंठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १ ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् । संकीर्त्तितमघं पुसां दहेदेधो यथाऽनलः ॥ २॥ "(संकेतयुक्त, हास्ययुक्त, मशकरिमें कह्यो, अपराधतें लियो, एसोहू वैकुंठ (भगवान्) के नामको ग्रहण हे सो सर्व पापकों हरिवेवारो हे एसें ऋषि जानतहे ॥ १ ॥ अज्ञानतें अथवा ज्ञानतें उत्तम यशवारे भगवानके नामको कीर्तन हे सो अग्नि जेसें काष्ठकों जरावतहे तेसें सर्वपापकों जराय देतहे ॥ २ ॥) यह वचनतें ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्नग्रंथमें कहेहें " अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् । यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना " [अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों प्रभुके आधीन प्राणवारे जिन भक्तननें आत्मनिवेदन कीयो हे तिनकों लौकिक वैदिककी

[विधिनिषेधादिककी] चिंता कहाहे ? कछु नांही) इत्यादिवचनसों जाननों जो सेवा स्मरणादिक भगवद्धर्म जानिकें करे अथवा अनजाने करे तो हू प्रभु कृपा करे सो श्रीमहाप्रभुजीके चोराशी वैष्णवकी वार्त्तामें कहेहें जो गदाधरदासनें शाककी कही सो माधवदास ले आयो ताकरि माधवदासकों भक्ति भई याभांति प्रभु सेवा मानिलेतहे याभांति प्रभुकी कृपा शास्त्रमें प्रसिद्ध हे तातें प्रभुही हमकों अपने जानि सर्वकार्य सिद्ध करेंगे तातें भगवदीयकों लौकिक वैदिककी चिंता तथा अपने उद्धारकी चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ ४ ॥

मूलं–सतामप्यसतां वाऽपि स्वकीयानां कृपानिधिः ।
करिष्यति स्वतः सर्वमतश्चिंता न काऽपि हि॥५॥

शब्दार्थः–सत् [सात्विक] असत् [तामस] अथवा सत् व्रजभक्त असत् अपनहू उनके शरण जाय उनके भये तिनके सर्व मनोरथ कृपाके निधिरूप प्रभु आपुही करेंगे तासों निश्चय कछुहू चिंता नांही हे ॥ ५ ॥ टीका–प्रभुकी यह प्रतिज्ञा हे जो भक्तनके उपर सदा कृपाही करतहे सो प्रतिज्ञा सत्य हे मन, वचन, क्रिया. तीनो करि अपने स्वकीय भक्तनपर कृपाही हे कृपानिधि एसो प्रभुको नाम हे सो त्रिविधनामावलिमें नाम कहेहें “ भक्तजनकल्पवृक्षाय नमः”, “ भक्ताधीनाय नमः ” इत्यादि बोहोत नाम हे सो प्रभु स्वतः आपुही सर्व सिद्ध करेंगे तातें अपने कछुही चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ ५ ॥

मूलं–सत्संगाऽभावतो नित्यमसत्संगस्वभावतः ।
वर्तते विषयाऽऽवेशैश्चक्राऽऽरूढेव मन्मतिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–[अब श्रीहरिरायजी वैष्णवनकों दीनताभाव शिखायवेके लिये पांच श्लोकम अपनी व्यवस्था लिखतहे] सत्संगके अभावसों ओर नित्य दुःसंगके स्वभावसों विषयके आवेशकरिकें मेरी मति चक्रमें आरूढ होय तेसें भ्रमित हे ॥ ६ ॥ टीका–अब श्रीहरि-

रायजी कहतहे उपर कहे जो चिंता नांही कर्त्तव्य हे प्रभु सर्वप्रकार रक्षा करेंगे तोहू भगवदीयनके संगको अभाव हे जो सत्संग होय तो दुःसंग बाधा न करे सो सत्संग तो यह कालमें दुर्लभ हे ओर असत्संग यत्न विना यह कलिकालके स्वभावतें सिद्ध हे सो हृदयमें विषयावेश करावत हे, यद्यपि भगवद्धर्मादिक करतहों तोहू विषयको आवेश हृदयमें रहतहे सो आवेश जहांतांई होय तहांतांई प्रभुको आवेश होय नही सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु संन्यासनिर्णयमें कहेहें " विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वदा हरेः " [विषयाक्रांत देहवारेनके हृदयमें निरंतर अथवा निश्चय हरिको आवेश होय नहीं] इत्यादि वचनतें असत्संगतें विषयको आवेश होतहे ताकरिकें मेरी बुद्धि चक्रारूढकी नांई दशो दिशा फिरे हे प्रभुमें विश्वास नांही होतहे चिंतातें अनेक संसारको दुःखही आय लगतहे ताकरि बुद्धि मलीन हे ॥ ६ ॥

मूलं—नैतस्मिन् समये कोऽपि सहायो मम वर्तते ।
विना श्रीवल्लभाचार्यचरणांबुरुहाश्रयात् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—यह समयमें श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणाविंदके आश्रय विना मोकों काहू सहाय नांहीहे ॥ ७ ॥ टीका—दुःसंगकरि विषयावेशतें मन भ्रमतहे में अनेक दुःख पावतहों भगवदीय कोउ मिलत नांही तातें यह कराल कालमें मेरी सहाय कोन करनहारो हे ? एक श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलको में आश्रय कीयो हे सोई मेरे सहाय हे ओर कोउ सहाय करिवेमें नांही समर्थ हे यहकरिके श्रीहरिरायजी यह जताये जो यह कलिकालमें श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय कीये हे तिनकों तो सर्व [1]फलकी सिद्धि होयगी ओर जिनके

[1] सर्व फलप्राप्तिमें कालदोष, संगदोष, तथा अन्नदोष बाधक हे सो श्रीआचार्यजीको आश्रय जिनकों दृढ होय तिनकी सर्व क्रिया इन श्रीमहाप्रभुनकी आज्ञानुसार विवेक, धैर्य, और आश्रयकों अनुसरीकें होय तातें यह उपर कहे दोष बाधक न होय.

श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय नांहीहे सो कोटानकोटि साधन करो परंतु संगदोष कालदोषतें विषयावेशकरि चक्रारूढकी नांइ भ्रमेगो उनकों कछु फलसिद्धि नांहीहे तातें यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलको दृढ आश्रय निश्चयही कर्त्तव्य हे ॥ ७ ॥

मूलं–ततश्च्युता मतिः कालबलात् केवललौकिके ।
नित्यं स्थिता ततो भीतिर्भूयसी जायते हृदि ॥८॥

शब्दार्थः–कालबलसों आश्रयतें मति निकस गई हे ओर केवल लौकिकमें नित्य रही हे ताकरिकें हृदयमें बोहोत वडो भय हे ॥ ८ ॥ टीका–में अपने श्रवणसों कालको दुःख सुन्यो हे जो जन्ममृत्युसमान ओर कोई दुःख नांहीहे यह अनेक वार बडेनके मुखतें सुन्यो हे ओर मनहूमें कालदुःख आवतहे तोहू यह काल एसो कठिन हे जो बलात्कार-करि सगरो ज्ञान धरयो रहतहे केवल लौकिकही कार्य वनि आवत हे याभांति नित्यही लौकिक कार्यमें स्थिति हे ताकरि अपने हृदयमें बोहोत भय वारंवार पावतहों जेसें परीक्षित् राजाकों कालको भय भयो तव प्रभुकी कृपातें शुकदेवजी भगवदीय आय उह कालभय निवृत्त कीयो तेसें अब मेरे मनमें बोहोत भय भयो हे सो श्रीआचार्यजीके कृपापात्र भगवदीयके संगतें दूरी होय सो मोकों दुर्लभ हे तातें भयकरि वारंवार हृदय कंपायमान हे ॥ ८ ॥

मूलं–किंवा को वेद भगवान् करुणात्मा चिकीर्षति ।
न जाने तेन मे चेतः खिन्नं भवति सर्वथा ॥ ९

शब्दार्थः–करुणात्मा भगवान् कहा करिवेकी इच्छा करत हे सो कोन जाने ? में नांही जानतहों ताकरिकें मेरो चित्त निश्चय खेदयुक्त होय हे ॥ ९ ॥ टीका–करुणात्मा भगवानके अभिप्रायकों कोन जाने ?

काहूसों नांही जान्यो जातहे कोटानकोटि साधन करे परंतु भगवानके हृदयके अभिप्रायको ज्ञान न होय काहेतें जो भगवानकी करुणा होय तो सर्व जान्यो जाय मन वचन करि भगवद्धर्म सेवा स्मरण बनि आवे सो प्रभुकरुणा विना कहू दृढ विश्वास नांही होत हे तातें में अपने चित्तमें निश्चयही खेद पावतहों जहांताई प्रभुकी कृपा नांही तहांताई सर्वथा सर्वकार्यमें दुःखही हे ॥ ९ ॥

मूलं–विशेषः प्रेमजित्पत्राद्बोधव्यः सकलोऽपि हि ।
अनेनैव वयं किंचित्स्वास्थ्यं मन्यामहे हृदः॥१०॥

शब्दार्थः–विशेष सकलहू समाचार प्रेमजिरूप पत्रसों (अर्थात् प्रेमजी वैष्णवके मुखसों) अथवा प्रेमजीके पत्रसों जाननें यह प्रेमजीतेंही हमारे हृदयके कछु स्वास्थ्यकों हम मानतहें ॥१०॥ टीका-ओर विशेष समाचार प्रेमजी वैष्णवके पत्रमें लिखि पठाये हे सो यह पत्रतें बोध न होय तो वामें देखिकें मन लगायकें वांचि जाननें तातें करुणात्मा प्रभुकेही हम हें यह जानि हृदयमें किंचित्स्वास्थ्य (धीरज) हे जो प्रभु कृपाहू करेंगे काहेतें जो भगवद्धर्म जानिकें करियें अथवा अनजाने कछु बनि जाय तोहू प्रभु कृपा करे सो नवरत्नग्रंथमें कहेहें "अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् । यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना" (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों प्रभुके आधीन प्राणकरिकें जिननें आत्मनिवेदन कीयो हे तिनकों कहा लौकिक कर्त्तव्यकी चिंता हे ?) सो निवेदन तो कोई प्रकार भयो हे तातें मनमें स्वास्थ्य हे जो प्रभु कृपा करेंगे ॥ १० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं षोडशं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥१६॥

शिक्षापत्र १७.

सप्तदश शिक्षापत्रमें त्यागके द्वैविध्य निरूपणपूर्वक अत्यागको निरूपण तथा जीवके स्वरूपनिरूपणतें मार्गस्थितिकी दृढ अशक्यता है तासों अपने आचार्यजीके चरणारविंदको दृढ आश्रयकरिके दुःसंग तथा अविश्वासके अभावकरिकें सर्व फलकी प्राप्ति होय सो निरूपण है। उपर कहे जो भगवानके अभिप्रायकों कोन जाने तातें मनमें खेद है ताहू प्रभु करुणात्मा हे ताकरि कछु मनमें धीरज हे सो प्रभु करुणा करे तब उत्तम मध्यम भगवद्धर्म बनि आवे, तहां कोउ कहे जो भगवद्धर्म तो एकसो हे उत्तम मध्यम कहा ? तहां कहतहे–

मूलं–यदुक्तमस्मदाचार्यैर्गौणमुख्यविभेदतः ।
त्यागो गृहधनादीनामथवा कृष्णयोजनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः–जो अपने आचार्यजी श्रीमहाप्रभुजीने गौण ओर मुख्य भेदसों त्याग दोय प्रकारको संन्यासनिर्णयादि ग्रंथमें कह्यो हे तामें गृहधनादिकको त्याग हे सो गौण त्याग हे अथवा गृहधनादिकनको श्रीकृष्णमें विनियोग करनो सो मुख्य त्याग हे ॥ १ ॥ टीका–श्रीआचार्यजी महाप्रभु भक्तिवर्द्धिनी आदि ग्रंथमें उत्तम, मध्यम, प्रकार कहेहें “ अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः । व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा ” (अव्यावृत्त होय पूजा तथा श्रवणादिकरिकें श्रीकृष्णकों भजे ओर व्यावृत्त होय तोहू हरिनिमित्त जो श्रवणादिक तामें सदा यत्न करे) यह वचननें श्रीकृष्णकी कथा, सेवा, स्मरण, अव्यावृत्त होयकें करे यह मुख्य, ओर व्यावृत्तिहू करे परंतु मन हरिमें राखे यह गौण सो श्रीहरिरायजी कहतहे जा

घर, धन, लौकिक, वैदिक, सव त्याग करी प्रभुको भजन करे जेसें गदाधरदास अव्यावृत्त रहे जलकी लोटि भरी पद्मनाभदास छोला वरे यह मुख्य प्रकार, यह न वने तो सर्व श्रीकृष्णके अर्थ लगावे राजसेवा करे तामें सगरो धन गृह लगावे तोहू प्रभु कृपा करे ॥ १ ॥

मूलं–वैराग्यपरितोषादेरत्यागोऽपि निरूपितः।
तथा विषयभोगस्य त्यागोऽपि विनिबोधितः॥२॥

शब्दार्थः–वैराग्य ओर परितोषादिकनको अत्यागहू निरूपण कीयो हे ओर विषयभोगको त्यागहू विशेषकरिकें निरंतर वतायो हे ॥ २ ॥ टीका–वैराग्य ओर संतोषको त्याग न करे काहेतें जो वैराग्य होय तो यह संसारमें लौकिक देहसंबंधी सुख दुःख हृदयमें वाधा न करे भगवद्धर्म वन्यो जाय ओर संतोष होय तो सहजमें आय प्राप्त होय ताहीकरि आनंद रहे लोभ करी पाप आचरण न करे काहेतें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीसुवोधिनीजी निवंधादि ग्रंथमें कहेहें " अचौर्याणामपापानां " (चोरी करिवेवारे न होय तथा पापी न होय तिनके द्रव्यको प्रभु अंगीकार करे) चोरी करी पाप करी कछु ल्यावे ता द्रव्य (अन्न) प्रभु केसें अरोगे ? तातें वैराग्य संतोषादिक धर्म न छोडनो ओर विषयभोगको त्याग करनो काहेतें जो विषय वहुत कीयेतें हृदयमें विषयको ध्यान होय जाय पाछें विषयावेश सगरे देहमें होय तो प्रभुको आवेश न होय सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजी कहेहें " विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वदा (सर्वथा) हरेः " (विषयकरिकें आक्रांत देहवारेनकों निरंतर [अथवा निश्चय] हरिको आवेश न होय) तातें विषयभोगकोहू अवश्य त्याग करनो ॥ २ ॥

मूलं–तथा सत्संगमात्यागः सर्वत्रैव विशेषतः ।
अन्याश्रयपरित्याग उक्तो बाधकरूपतः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–तेसेंही सर्वजग्गेहू विशेषकरिकें सत्संगको अत्याग हे ओर बाधकरूपसों अन्याश्रयको चार्यो ओरसों त्याग कह्यो हे ॥ ३ ॥
टीका–भगवदीयको संग न त्यागे यह सत्संग बोहोत बडो हे सर्वोपरि कर्त्तव्य हे सो श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनकको वाक्य हे " तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः " (भगवद्भक्तके संगके एक लव बरोबर नांही स्वर्गको के नांही मोक्षकों हम तुलेहें तहां मनुष्यनके आशिषनकी तुलना तो केसें करे ?) सत्संगके सुखसमान स्वर्गलोक, अपवर्ग, (मोक्षहू) नांही हे तातें भगवदीयको संग छोडनो नांही जहां भगवदीय होय तहां आपु जायकें सर्वथाही संग करे ओर अन्याश्रयकों शीघ्रही त्याग करे काहेतें जो यह (अन्याश्रय) भावमें बाधक हे. श्रीनंदरायजी अंबिकापूजनकों गये सो सर्पनें ग्रसे श्रीगुसांईजीकी सेवकनी डोकरीने हाकमको कही तुम मोको जीवाई इतनो कहत प्रभु अंतर्धान भये दामोदरदासकी स्त्रीनें अन्याश्रय कीयो सो पुत्र म्लेच्छ भयो तातें अन्याश्रयको सर्वथा त्याग करनो सो अन्याश्रय बडो बाधक हे ॥ ३ ॥

मूलं–एवं निरूपितौ त्यागाऽत्यागौ सर्वत्र सर्वशः ।
न जीवाः स्वबलात्किंचित्कर्तुं शक्नुवते स्वतः॥४॥

शब्दार्थः–ऐसें सर्वप्रकारसों सर्वत्र त्याग ओर अत्याग निरूपण कीये हे सो जीव अपने बलसों कछु करिवेमें समर्थ नांहीहे ॥ ४ ॥
टीका–याभांति निरूपण श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी सुबोधिनीजी आदि ग्रंथमें कीये हे सो विचारकरि त्याग करनो होय ताको त्याग करनो अत्याग करनो होय ताको अत्याग करनो भगवद्धर्ममें साधक होय

ताको अत्याग यह विचार राखे परंतु जीवको बल नांहीहे न त्यागी सके न राखि सके। ब्रह्मादिक, शिवादिक, नारदादिक, बडे त्यागी हे तिनकों हू त्याग कछु वश्यमें नांही तो तुच्छ जीवको कहा सामर्थ्य ? वाको कीयो कछु नांही होत हे जीव तो मायाके वश्य स्वभावकरि दुष्ट होय रह्यो हे ! ॥ ४ ॥

मूलं–अतः कथं भवेन्मार्गस्थितिर्जीवेषु सर्वथा ।
फलाशाऽपि कथं कार्या जनैस्तत्रास्थितौ पुनः॥५॥

शब्दार्थः–तासों जीवके विषे मार्गस्थिति सर्वथा केसें होय ओर मार्गमें स्थिति विना फिर मनुष्य फलकी आशाहू केसें करे ? ॥ ५ ॥ टीका–एसे दुष्ट क्रिया करिवेवारे दुष्ट जीव हे तिनकी यह सर्वोपरि पुष्टिमार्गमें स्थिति सर्वथा न होय अष्ट प्रहर लौकिक विषयादिकमें पड्यो हे सो पुष्टिमार्गमें कोन भांति स्थिति होय ? सर्वथा न होय तो यह जीव पुष्टिमार्गीय फलकी आशा केसें करे ? यह स्थिति नांही तो फल कहांते सिद्ध होयगो जीव तो तुच्छ अरु दुष्ट हे तिनकोंहू जा प्रकार लौकिकतें छुटिवेकी सिद्धि होय सो उपाय कहत हे ॥ ५ ॥

मूलं–तथाऽपि श्रीमदाचार्यचरणाश्रयणादपि ।
अशक्यमपि यच्छक्यं तद्भवेत्सर्वथैव हि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–तोहू श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयसों जो अशक्य हे सोहू सर्वथाही शक्य होय ॥ ६ ॥ टीका–यद्यपि जीव अनेक दोषसों भऱ्यो हे या जीवसों दोष नांही छूटत एसे हू जा जीवनें श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलको दृढ आश्रय कीयो हे तिनकों दोषको त्याग अशक्य हे तोहू शक्य होय ओर पुष्टिमार्गीय फलसिद्धि होय सो श्रीगुसाँईजी कहेहें " चित्तेन दुष्टो वचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः । ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा

विचार्यः ॥ १ ॥ संसारसागरे मग्नजीवोद्धारपरायणम्। आश्रये त्वत्पदांभोजं पुरुषोत्तम ! सद्गुरो ! ॥ २ ॥ " (चित्तकरिकें दुष्ट, वचनकरिकें हू दुष्ट, कायाकरिकें दुष्ट, क्रियाकरिकें दुष्ट, ज्ञानकरिकें दुष्ट ओर भजनकरिकें दुष्ट हों सो मेरो अपराध कितनें प्रकारको विचारिवे योग्य हे ? ॥ १ ॥ संसाररूप समुद्रमें मग्न जीवके उद्धार करिवेमें तत्पर एसे तुम्हारे चरणारविंदकों हे श्रीपुरुषोत्तम ! हे सद्गुरो ! में आश्रय करूंहूं ॥ २ ॥) श्रीमहाप्रभुजी कहेहें " शरणस्थसमुद्धारम् " [शरणमें रहे तिनके उद्धार करिवेवारे] " अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः " [अशक्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरि शरण हे] याभांति निःसाधन होय श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलको दृढ आश्रय करे तिनकों यह पुष्टिमार्गको फल निश्चय होयगो ॥ ६ ॥

मूलं–यदि दुःसंगदोषेण न भवेच्छिथिलं मनः ।
यदि वा कालदोषेणाऽविश्वासोऽपि भवेन्न हि ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–(उपर श्लोकमें कह्यो जो श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयसों अशक्यहू शक्य होय तामें बाधक हे सो बाधक न होय तब अशक्यहू शक्य होय सो कहतहे) जो दुःसंगके दोष करिकें जब मन शिथिल न होय ओर कालदोषकरिकें जब अविश्वास न होय तब अशक्यहू शक्य होय ॥ ७ ॥ टीका–उपर कहे जो आश्रयतें निश्चय फलसिद्धि होय तामें जो दोष महाबाधक हे तिनसों बचे तो फलसिद्धि होय एक तो दुःसंग होय तो ता दोषतें भाव घटि जाय मन शिथिल होय जाय तातें आश्रय जात रहे, भरतकों मृगके दुःसंगतें तीन जन्म भये द्विविद वानर रामभक्त हतो सो नरकासुरके संगतें श्रीबलदेवजीसों लज्यो एसें ओर बोहोत जीव दुःसंगतें गिरे हें तथा कालदोषतें विश्वास न रह्यो, जहां अविश्वास भयो तहां आश्रय छूट्यो तब यह जीव निश्चय गिर्‍यो ॥ ७ ॥

मूलं–" अविश्वासो न कर्त्तव्य " इत्युक्तेः स तु बाधकः ।
अयमेवाऽस्य मार्गस्य मूलमाश्रयसाधकः ॥ ८॥

शब्दार्थः–अविश्वास नही करनो काहेतें जो बाधक हे एसें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें विवेकधैर्याश्रयमें कह्यो हे तासों यह बाधक हे, काहेतें पुष्टिमार्गको आश्रय सिद्ध करिवेवारे यह विश्वास हे सोही मूल हे ॥ वृक्षको मूल स्थित होय तो समग्र वृक्ष स्थित रहे तेसेंही विश्वास दृढ होय तो पुष्टिमार्गीय धर्म–आश्रय दृढ रहे ॥ ८ ॥ टीका–अविश्वास न करनों सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें कहेहें " अविश्वासो न कर्त्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः । ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः " (अविश्वास नांही करनो यह निश्चय बाधक हे ब्रह्मास्त्र ओर चातकपक्षीकी भावना करनी) जो ब्रह्मास्त्रमें अविश्वासतें हनूमान् लोहकी सांकलमें बांध्ये न रहे ओर चातककों विश्वास हे तो मेघ जल देतहें तेसें विचार ओर ममतारहित होय प्राप्तको सेवन करनो यह वचनतें अविश्वास सर्वथा न करे, रावणको अविश्वास भयो तब ब्रह्मास्त्र छूटीगयो, हनूमाननें लंका जराई, चातककों विश्वास हे तो मेघही मनोरथ पूर्ण करतहे तातें अविश्वास आसुर धर्म हे सो सर्वथा न करे यह श्रीआचार्यजी महाप्रभुके पुष्टिमार्गमें मूल हे सर्वोपरि आश्रयको साधक विश्वास ही हे ॥ ८ ॥

मूलं–आश्रयेणैव सकलं सिद्धिमेति न संशयः ॥
पृथक्शरणमार्गोक्तिरत एव प्रभोरपि ॥ ९ ॥
शरणस्थसमुद्धारकृतिविज्ञापनादपि ॥
विवेकधैर्यभक्त्यादिसाधनाभाववादतः ॥ १० ॥

शब्दार्थः–आश्रय करिकेंही सर्व सिद्धि होय यामें संशय नांही तासोंही " पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा " एसे नाम श्रीगुसाँईजीने कहेहे ॥९॥

ओर विवेक, धैर्य, भक्त्यादिक साधनके अभावत्वादतें शरणमें रह्ये एसे जीवनको उद्धारकरिवेकी विज्ञप्तिकरि तासोंही आश्रयतें सकल सिद्ध होयंगे ॥ १० ॥ टीका—जा जीवकों प्रभुमें दृढ आश्रय भयो तिनको सकल कार्य निश्चय सिद्ध भयो यामें संशय नांही, श्रीकृष्ण फलात्मक पुष्टिपुरुषोत्तमकी शरणको यह पुष्टिमार्ग, अपने दैवी जीवनके अर्थ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें न्यारो प्रकट कीयो हे ॥ ९ ॥ श्रीआचार्यजी महाप्रभु कृष्णाश्रयग्रंथमें कहेहें 'शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्' (शरणमें रह्ये एसे जीवको उद्धार करिवेवारे (अथवा उद्धार करिवे-निमित्त) श्रीकृष्णकों में विज्ञप्ति करूंहूं) या भांति श्रीमहाप्रभुजीनें श्रीकृष्णसों कहि अपनें पुष्टिमार्गीय सेवकजनकों शरण सिद्ध कीये ओर विवेकधैर्याश्रयमें कहे साधनको जीवनमें अभाव हे विवेकधैर्यभक्त्यादि-रहित हे तिनहूकों शरण कीये हे ओर विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" (अशक्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरि शरण हे) या भांति पुष्टिमार्गीय शरण, विनसाधनके जीवनकों सिद्ध कीये ओर मर्यादामार्गमें भगवद्गीतामें भगवाननें शरणमार्ग कह्यो हे " सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष-यिष्यामि मा शुचः" (सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरण हो, में तोकूं सर्वपापतें मुक्त करूंगो शोक मति करे) भगवान् कहे हे अर्जुन ! तूं सर्वधर्म छोडिकें मेरि शरण आव में सगरे पापनकों दूरीकरिकें मोक्ष करूंगो. यह मर्यादाकी रीति हे जो पाप दूरी करिकें फल देय ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें तो अपने जीव यद्यपि दोषसहित्त विवेक, धैर्य, आश्रय रहित हे तोहू तिनकों शरण सिद्ध कीये हे ॥ १० ॥

मूलं—सन्मार्गविद्भिः सततं कृतप्रभुपदाश्रये ।
तदुक्तवाक्यभावार्थविभावनपरायणैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—सन्मार्गको जानिवेवारे तथा निरंतर कीयो हे प्रभु (श्रीकृष्ण तथा श्रीगुसाँईजी) के चरणारविंदको आश्रय जिनने एसे ओर इनने कहे वाक्य [गीताजी तथा विज्ञप्ति आदि] को जो भावार्थ ताकी विशेष भावनामें तत्पर एसे [भगवदीयन] के संग सदा रहेनो यह संबंध तीसरे श्लोकमें मिलेगो ॥ ११ ॥ टीका—पुष्टिमार्गमें जो जीव श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आये हें तिनकों श्रीआचार्यजी निश्चय प्रभुके पदको आश्रय आपुही सिद्ध करेंगे अपने जीवनके अर्थ तो यह शरण-मार्ग प्रकट कीयो हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके वाक्यकी भावना अष्टप्रहर करे जो मेरेलिये श्रीमहाप्रभुजी प्रतिज्ञा करी शरण सिद्ध कीये हे या भांति वचनके भावमें अष्टप्रहर परायण रहे, दृढ विश्वास राखे, श्रीकृष्णके सन्मुख कृष्णाश्रय ग्रंथको पाठ करे, तो सकल कार्य सिद्ध होय ॥ ११ ॥

मूलं—यथाशक्तिस्वमार्गीयप्रभुसेवापरैरपि ।
विरुद्धकृतिसंदेहदाहनोद्योगतत्परः ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—यथाशक्ति अपने (श्रीमहाप्रभुजीके प्रकटित) मार्गमें सेव्य प्रभुकी सेवामें तत्पर एसेहू विरुद्ध कृतिमें जो संदेह ताको अथवा विरुद्ध कृति तथा संदेहके दाहनको जो उद्योग तामें तत्पर एसेनके संग रहेनो ॥ १२ ॥ टीका—यथाशक्ति पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवा जितनी बने तितनी करे, " अकाले वा सुकाले वा विकाले वा " (समय विना, आछे समयमें, अथवा विपरीत समयमें) या भांति तीनो वचन श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें. श्रीभागवत अष्टमस्कंधमें ब्रह्माजी कहेहें " यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् । एवमाराधनं विष्णोः

१ यह उत्तरार्द्ध भाषाकी टीकावारे पुस्तकमें त्रयोदश श्लोकमें हे. और यहां त्रयोदश श्लोकमें पूर्वार्द्ध हे परंतु रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार इहां लिख्यो हे.

सर्वेषामात्मनश्च हि " (जेसे वृक्षके मूलकों (जलको) सिंचन हे सो बडी शाखा छोटी शाखा पत्र तांई प्राप्त होयहे, ओर पत्रशाखामें सिंचन करे तो कछु फल न होय उलटो बिगार होय तेसें विष्णुको आराधन हे सो सर्वदेवनको तथा आत्माकोही आराधन होयहे ओर अन्य देवको आराधन हे सो वह देवकों तथा प्रभुकोंहू प्राप्त नांही होय) भगवानकी सेवा करी सो वृक्षके मूलमें जल दीयो तातें शाखा पत्र सर्व हर्यो होय तेसें ओर देवनकी सेवा पत्रशाखावत् हे तातें प्रभुकी सेवा करनी सो पुष्टिमार्गीय भगवदीयको मुख्य धर्म हे ओर पुष्टिमार्गमें जितनो विरुद्ध हे ताकों अग्निवत् जाननो जो यातें जरूंगो याभांति भय मानि छोडिवेको उद्यम राखे जो एतन्मार्गविरुद्ध कृतिको त्यागही करनों ॥ १२ ॥

मूलं—निरंतरं स्वमार्गीयसतां संगसमन्वितैः ।
स्थेयं संसारविमुखैः स्वगुरुं प्रणतैरपि ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—निरंतर स्वमार्गीय सत्पुरुषके संगकरिकें युक्त तथा अहंताममतारूप संसारतें विमुख ओर अपने गुरु श्रीमदाचार्यजीकों अत्यंत नम्रीभूत (नमनपूर्वक श्रीआचार्यजीकी आज्ञामें रहिवेवारे) एसे भगवदीयके संग रहेनो ॥ १३ ॥ टीका—पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग निरंतर करे सो भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्" (सेवामें अथवा कथामें जिनकी आसक्ति दृढ होय) सेवासों पोहोचिकें भगवदीयके मुखतें सुननो काहेतें जो निरोधलक्षणमें कहेहें " महतां कृपया यद्वत्कीर्त्तनं सुखदं स्मृतम् । न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् " (महत्पुरुषकी कृपातें कीर्त्तन जेसो सुख देयवेवारो सुन्यो हे तेसो लौकिकके संगतें नांईहे महत्संग हे सो स्निग्ध (घृतयुक्त) भोजन बरोबरी हे

ओर लौकिक संग हे सो रूक्ष (घृत विना रूखे) भोजन वरोवरी हे) भगवदीयके संग कथा हे सो सुंदर स्निग्ध हे महाप्रसादभोजन हे तातें सर्वदोष जाय ओर लौकिक जनके मुखकी वार्त्ता हे सो रूखो आसुरी भोजन हे तातें स्वमार्गीय वैष्णवनको संग कर्त्तव्य हे ओर यह लौकिक संसारतें विमुख रहे अपने गुरुके शरण रही दीन होय प्रणिपत्तिमें रहे "त्रायस्व भो जगन्नाथ ! गुरो ! संसारवह्निना । दग्धं मां कालदष्टं च त्वदीयशरणागतम्" [हे जगतके नाथ ! गुरो ! संसाररूप अग्नितें जर्यो ओर कालरूप सर्पनें डस्यो एसो आपके शरण में आयो हों ताको रक्षण करो) या भावकरिकें गुरुकी शरणागत रहे काहेतें जो गुरुकी कृपा होय तो प्रभु कृपा करे ओर गुरु अप्रसन्न होय तो प्रभुहू अप्रसन्न होय "हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन" (प्रभु अप्रसन्न होय तो गुरु रक्षा करे ओर गुरु अप्रसन्न होय तो कोई रक्षा न करे) तातें गुरुतें प्रणिपात्तयुक्त रहे या भांति वैष्णव रहे ताकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें पुष्टिमार्गीय सिद्धांतके फलको अनुभव होय ॥ १३ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तदशं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १७ ॥

शिक्षापत्र १८.

अष्टादश शिक्षापत्रमें भगवदीयनकों केवल उदरभरणार्थें कार्य करनो उचित नांही किंतु विरहकरिकें सर्वत्र भगवत्स्फूर्तितें लीलातिरिक्त सृष्टिमें आनंदरहित जानि जो कछु उपायकरिकें प्रपंचको विस्मरण करी श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे ओर श्रीमदाचार्यजी तथा

श्रीगुसाँईजी ओर श्रीस्वामिनीजी आदिसों अन्यमें भगवत्तुल्य बुद्धि न करनी यह निरूपण हे। उपर शरणको ओर सेवाको प्रकार कहे तामें यह काल बाधक हे सो जीव नांही जानत तिनको जा भांति ज्ञान होय सो निरूपण करतहें–

मूलं–कालः स्वकार्यं कुरुते न जानाति जनो यतः।
प्रमाद्यति हरेः कार्ये स्वात्मकार्येऽतिविह्वलः॥ १ ॥

शब्दार्थः–काल [सर्वको आयुष्य हरिवेरूप] अपनो कार्य करतहे सो जीव नांही जानतहे जासों प्रभुके कार्य सेवादिकमें प्रमाद करतहे ओर अपने कार्यमें व्रोहोत विह्वल हे ॥ १ ॥ टीका–यह काल अपनो कार्य कीये जातहे क्षण क्षणमें जीवकी आयुष्यकों हरतहे ओर जीव नांही जानत जो मेरी आयुष्य दिनदिन घटतहे काल नित्य लिये जातहे यह ज्ञान जीवकों नांही होतहे तासों अपने कार्यमें प्रमादी होय रह्यो हे. लौकिक, वैदिक, संसारको काम, देह इंद्रियनको पोषण, विषयादिक, अनेक कार्यकी चिंता करिकें ग्रसित हे तातें प्रमादी हे ताकरि ज्ञान नांही होत जो काल सगरी आयुष्यकों भक्षण करतहे मेरी कहा गति होयगी ? मोको कहा कर्त्तव्य हे ? यह ज्ञान नांही होत हे अनेक कार्यमें प्रमादी हे ओर अपने कार्यमें विह्वल हे देहसंबंधि संसारको कार्य हे तामें तत्पर हे आत्मसंबंधी भगवद्धर्म, सेवा, स्मरण, कीर्तन, वार्त्ता, कथा इत्यादि कार्यमें विह्वल नांही होतहे ॥ १ ॥

मूलं–केवलौदरिकत्वं तु तदीयानां न चोचितम्।
न पूरयेत् किमुदरं सेवकानां कृपानिधिः ॥ २॥

शब्दार्थः–तदीयनकों केवल उदरभरणसंबंधी व्यापार करनो उचित नांही काहेतें जो कृपाके निधि प्रभु अपने सेवकनके उदरकों

कहा नांही पुरे ? पुरेहींगे ॥ २ ॥ टीका—उपर कहे जो लौकिक कार्यमें विह्वल हे सो केवल उदरभरणके कार्यमें तत्पर हे सो यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों उचित नांही काहेतें सो श्रीकृष्ण तो कृपाके निधि हे सगरे जगतके भरणपोषणकर्त्ता हे सो कहा अपने सेवकनको पालन नांही करेंगे ? सेवकनके उपर तो सदा कृपा करतही आये हे या भांति वैष्णव श्रीठाकुरजीको विश्वास मनमें राखि सर्वदा भगवद्धर्म आचरण करे तथा व्यवहार विना न चले तो अनवसरमें प्रहर एक तथा घडी चार व्यवहारहू करे ओर मनमें यह जाने जो जितनो मिलनहार होयगो सो प्रहर एक तथा घडी चारमें सब मिलि रहेगो यह विचार वैष्णव मनमें राखे भगवानको माहात्म्य विचारे जो प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे सब सिद्ध करेंगे ॥ २ ॥

मूलं—चिंता कापि न कार्येति प्रभुवाक्यं विचिंत्यताम् ।
अज्ञानिनो ज्ञानिनश्च यदि स्यात् समता कृतौ॥३॥
तदा तु साधनाभावात् किं वृत्तं ज्ञानतः फलम् ।

शब्दार्थः—नवरत्नग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजी कहेहें जो चिंता कछु नांही करनी ताकी उपर विवरणमें श्रीगुसाँईजी कहेहें जो लौकिक चिंता तो भगवदीयकों होय नांही परंतु भगवदर्थ हू चिंता न करनी एसो प्रभुको वाक्य हे सो विचारनो ओर जब अज्ञानी ओर ज्ञानीनकी कृतिमें तुल्यंता निरूपण करी हे तासों साधनको अभाव होय तब तो साधनके अभावसों ज्ञानतें कहा फल भयो ? ॥ ३ ॥ टीका-मनमें चिंता न करे सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " चिंता कापि न कार्या

१ नवरत्नमें कह्यो हे जो अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों जिननें निवेदन कीयो हे तिनकों कछु चिंता नांही करनी तामें ज्ञानी ओर अज्ञानी तुल्य गिने हे तामें ज्ञानीनको फल होय सो आगे श्लोक देढकरिके निरूपण कीयो हे.

निवेदितात्मभिः कदाऽपि । भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् " (निवेदन कीयो हे आत्मा (आत्मसंबंधी सर्व) जिननें एसे वैष्णवनकों कछूहू चिंता नांही कर्त्तव्य हे काहेतें जो जिनकों निवेदित भयो हे एसे भगवानहू पुष्टिस्थ हे सो लौकिक गति नांही करेंगे) इत्यादि वचनको चिंतन अहर्निश मनमें करे यह न जाने जो में तो कछू जानत नांही प्रभु केसें कृपा करेंगे ? यह विचारनो जो प्रभुकों ज्ञानी भक्त ओर अज्ञानी भक्त दोउ बराबर हे सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजी कहेहें " अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम् " (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों जिननें आत्मनिवेदन कीयो हे तिनकों कहा चिंता हे ?) यह निवेदन श्रीआचार्यजीद्वारा ज्ञानकरि कीयो अथवा अज्ञानतें काहूकी देखादेखि कीयो तोहू चिंता नांही कर्त्तव्य हे काहेतें जो अग्निको यह स्वभाव हे जो अनजाने हाथ धरे अथवा जानिके हाथ धरे सो भस्म होय यह लौकिक अग्निमें इतनो सामर्थ्य हे तो यह तो श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन कीयो ताकों लौकिक गति कबहू न होय. श्रीभागवतषष्ठस्कंधमें कहेहें " अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् । संकीर्तितमघं पुंसां दहेदेधो यथाऽनलः " (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों ग्रहण कीयो एसो जो उत्तम यशवारे भगवानको नाम हे सो अग्नि काष्ठकों जरादेहें तेसें पापकों जारिदेतहे) अज्ञानतें ओर ज्ञानतें भगवन्नाम ले तो सकल दोष भस्म होयजाय इत्यादि वचनकी भावना मनमें राखि चिंता रंचकहू नांही करनी एक प्रभुको आश्रय मनमें राखि तहां जीवबुद्धितें यह चिंता होय जो साधन कछु नांही तब ज्ञानतें कहा फल सिद्ध होय ? सोहू चिंता नांही कर्त्तव्य हे जो साधन नांही बने तोउ श्रीआचार्यजीके अंगीकारतें निवेदनकी फलसिद्धि हे ओर ज्ञानवारे भक्तनकों जो विरहभावना होय सो आगे श्लोकमें कहतहे ॥ ३ ॥

मूलं–विरहेण हरिस्फूर्त्या सर्वत्र क्लेशभावनात् ॥ ४ ॥
लीलातिरिक्तसृष्टौ हि निरानंदत्वनिश्चयात् ।
यथाकथंचिद्विस्मृत्य प्रपंचं हृदये न्यसेत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–जो ज्ञानवारे हैं तिनकों लीलाव्यतिरिक्त पदार्थमें आनंदरहितको निश्चय होयवेसूं सर्वत्र क्लेशकी भावना होय तासों विरहकरिकें हरिकी स्फूर्ति होय ताहिसों जेसेंतेसें प्रपंचको विस्मरणकरिकें श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे।४।५।टीका–जब श्रीआचार्यजी महाप्रभु जीवकों विप्रयोगदान दे तब विरह हृदयमें होय, क्लेशकी भावना होय, हरि सर्व दुःखहर्त्ताको विरह सब ठोर होय, श्रीठाकुरजीके संबंध विना ओर कछु न सुहाय, क्षणक्षणमें विप्रयोगकी भावना होय या भांति जाकों विप्रयोग अग्नि हृदयमें प्रकट होय तिनहीकों ये पुष्टिमार्गीय फलको अनुभव होय लीलासंबंधरहित जो प्रवाही सृष्टि हे सो निरानंद हे उनकों प्रभु अपने आनंदको दान कबहू नांही करतहे वे चर्षणीकी[1] नांई सदा संसारमें भ्रमतहे उनकों यह संसारही फल हे उनकों भगवल्लीलासंबंधको आनंद नांहीहे आनंदकरि रहित हे यह निश्चय जाननों ओर भगवल्लीलासंबंधी देवी सृष्टि हे सो श्रीमहाप्रभुजीद्वारा शरण आय सत्संगकरि एकही वार जिनकों यह प्रपंच नांही छुटत सो थोरो थोरो क्रमक्रमतें छोडतहें अहर्निश अपने मनमें विचार करी प्रभुको स्मरण करतहें, यह ज्ञान हृदयमें होतहे जो हम तो प्रभुके दास हे अज्ञानकरि प्रभुको भूलि गयेहें हमारो तो धर्म यहही हे जो प्रभुकी सेवा स्मरण करने या भांति देवी जीवकों ज्ञान होतहे आसुरी जीवनकों नांही होतहे ॥ ४ ॥ ५ ॥

१ पुष्टिमार्गीय ओर मर्यादामार्गीयके संबंधवारे ओर अंगीकाररहित होय सो धर्माचरण करे परंतु उनकी रुचि स्थिर न होयवेसूं जो भ्रमतहे सो चर्षणी जानने.

मूलं-कृष्णं गूढं सदानंदं तथा लीलायुतं सदा ॥
रसं स्वसमनामानं भक्तभावात्मकं पुनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-(पूर्वश्लोकमें श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे ऐसें कह्यो सो श्रीकृष्ण केसेंहे ? सो आगें निरूपण करतहें) गूढ, सदा आनंदरूप, तथा लीलायुक्त, सदा रसरूप, अपनो नाम जो सच्चिदानंदात्मक (कृष्ण) हें तिन बरोबर नामवारे (ब्रह्मरूप) ओर फिर भक्तनके भावात्मक एसे कृष्णकों हृदयमें स्थापन करे ॥ ६ ॥ टीका-श्रीकृष्ण केसे हें ? महागूढ सर्वोपरि हें जिनकों वेद आदि पार नांही पावतहे 'नेति नेति' कहतहे, बुद्धिवानीतें अगोचर हे ओर सदा आनंदरूप हे, एकरसरूप हे जिनके आनंदकी एककणिकामें सगरे जगतको आनंद हे सो श्रीकृष्णा-श्रयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " प्राकृताः सकला देवा गणि-तानंदकं बृहत्. पूर्णानंदो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिर्मम " (सर्वेदेव प्राकृत हे (इनके आनंदकी गिनती होतहे जो मनुष्यनके शत आनंद होय जब मनुष्यगंधर्वको एक आनंद होय एसें गिनत गिनत) अक्षर-महाहु आनंदकी गणनावारे हे ओर श्रीकृष्ण पूर्णानंद हें सो मेरी गति होउ) ओर देवता तो प्राकृत हे तिनको आनंदहू प्राकृत हे अक्षरानंदहू सगरे आनंदकी गणनामें हे अपार नांहिहे ओर श्रीकृष्ण पूर्णानंद हें जाके आनंदको पार नांही श्रीकृष्ण सदा आनंदरूप हे ओर सदा व्रजभक्तनके हित रसरूप लीलामें मग्न हें भक्तनके संग मानादिक लीलानमें रसवृद्धि करतहें आपु रसरूप अपने भक्तनसों मान छोडेहें दीन होय मनावतहे सो गीतगोविंदमें कहेहें-स्मरगरलखंडनं मम शिरसि मंडनं धेहि पदपल्लवमुदारम् " या भांति प्रार्थना करतहें जो अपनो चरणारविंद मेरे मस्तक उपर धरो तुह्मारो पदपल्लभ मेरे मस्तक को शृंगार हे या भांति अनेक देन्य करतहें व्रजभक्तनके भावात्मक हें श्रीकृष्णको रस व्रजभक्त भावकरिकें अनुभव करतहे ॥ ६ ॥

मूलं-यशोदोत्संगललितं मुग्धभावसमावृतम् ॥
प्रपंचवैरिणं बाधहेतुलौकिकनाशनम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-श्रीयशोदाजीके उत्संगमें शोभित, मुग्धभावतें अतिसुंदर, प्रपंचके वैरी ओर सेवामें बाधरूप लौकिक हेतुनको नाश करिवेवारे (श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे) ॥ ७ ॥ टीका-श्रीकृष्ण केसे हें ? श्रीयशोदाजी अपने उत्संगमें लेय खिलावत हे सो परम शोभा देतहें, मुग्ध बालककी नांई श्रीयशोदाजीके कंठमें वेष्टित हे, प्रपंच जो यह देहसंबंधी स्त्री, पुत्र, पति, घर, लौकिक वैदिक कार्य ताके वैरी हें श्रीयशोदाजी रंचकहू भूमिपें प्रभुकों धरिकें दूध उफनत हतो सो सम्हारन गई सो श्रीठाकुरजी (जाने मोतें दुग्ध विशेष प्रिय हे यह) न सहि सके दधिके माट फोरि डारे ओर वामें मांखन भयो हतो सो बंदरनकों खवायदियो यह कहिकें यह जतायो जो मोकों छोडिकें गृहकार्य करेंगे ताको गृहकार्य लौकिक, वैदिक कछु न सिद्ध होयगो. जो जो भक्तनें प्रभुको आश्रय कीयो तिन सबनको प्रपंच नष्ट भयो काहेतें जो प्रपंचमें आसक्ति बाधक हे तासों लौकिक, काम, कोध, मद, मत्सर, अहंता, ममता, मायाकृत लौकिक सबनके नाशकर्त्ता हे ओर अपनेमें आसक्तिवारे भक्तनको लौकिक सब दूरीकरतहे ॥ ७ ॥

मूलं-स्वप्रवेशाय कामादिसर्वदोषनिवारकम् ॥
स्वार्थत्यक्ताखिलस्वीयपरमार्तिमहोत्सवम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः-अपने प्रवेशके अर्थ (हृदयमेंतें कामादिदोष निकसे तब प्रभुको आविर्भाव होय ताके लिये) कामादिक सर्व दोषनकों निवृत्त

यहां ' स्वार्थं त्यक्त्वा ' एसो हु पाठ काहू पुस्तकमें दिखे हे. ताको अर्थ अपने स्वार्थ [रमण] कूं छोडिकें हु अंतर्हित होय सब भक्तनकूं आर्तिदान देयवेतें परम उत्सववारे श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करने.

करिवेवारे ओर अपने लिये त्यक्त कीये हे अखिल (लौकिक वैदिक) जिननें एसे स्वीय-भगवदीयनकी विप्रयोगकी आर्तिकरिकें हे बडो उत्सव जिनकों (एसे श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे) ॥ ८ ॥ टीका-एसे श्रीकृष्ण जब भक्तनके हृदयमें प्रवेश करनको विचार करतहें ताही समय उह भक्तके हृदयके काम, क्रोध, मद, मत्सर, आदि सकल दोष दूरी करतहें यह कहिकें यह जताये जो जहांताई भक्तके हृदयमें कामादि दोष भरेहे तहांताई श्रीकृष्ण हृदयमें नांही पधारें जब दोष दूरी होय तब जानियें जो प्रभु हृदयमें निश्चयही पधारे, श्रीकृष्ण भक्तके हृदयमें पधारिकें (लौकिक वैदिक कार्य छोडिकें अपने दर्शनकी आर्तिवारे भक्तनको विरह होतहे सो) परम आर्ति (दुःख) देतहें सो महा उत्सवरूप जानतहें सो व्रजभक्तनकों सिद्ध हे, जिनके हृदयमें भावात्मक श्रीकृष्ण विराजतहें तातें गृहकार्य नांही बनि आवत सगरो दिन वेणुगीत युगलगीतादिको गान करिकें वीतावत हें ओर रासपंचाध्यायीमें प्रभु अंतर्धान भये पाछें व्रजभक्तनकों महा विरह भयो तब फेरी प्रभु प्रकटे रसदान कीये सो विरह न होतो तो प्रभु केसें प्रकटते ? तातें श्रीकृष्णमें जितनी विरह आर्ति अधिक होय सो महोत्सवस्वरूप हे ॥८॥

मूलं-श्रीमदाचार्यहृदयशेषपर्यंकशायिनम् । अनंतभावरूपात्मगोपीरमणतत्परम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थः-श्रीमदाचार्यजीके हृदयरूप शेषशय्यामें पोढिवेवारे ओर अनंत भावरूप हे स्वरूप जिनको एसे व्रजभक्तनके संग रमण करिवेमें तत्पर (श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापे) ॥ ९ ॥ टीका-एसे भावात्मक श्रीकृष्ण श्रीआचार्यजीके हृदयमें भक्तनसहित लीला करतहें जेसें क्षीरसागरमें शेषशय्या हे तेसेंही श्रीआचार्यजीको हृदय शय्यारूप हे तहां शेषशय्या पर नारायणं पोढेहें यहां श्रीकृष्ण भावात्मक रसात्मक पोढेहें

वहां एक लक्ष्मी संग हे यहां अनेक भावात्मक कोटानकोटि व्रजभक्तनके संग रमणमें तत्पर हे सो श्रीआचार्यजी अपने हृदयको भाव जतायके दशमस्कंधके श्रीसुबोधिनीजीमें कहेहें "नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्। लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्" (हृदयरूप शेषमें लीलारूप क्षीरसागरमें पोढिवेवारे ओर अनेक लक्ष्मीकी लीलाकरिकें सेव्यमान कलाके निधिरूप श्रीकृष्णकों मे प्रणाम करूं हूं) या भांति अपने श्रीआचार्यजीके हृदयमें प्रभु लीला करतहें तिनकों (मंगलाचरणमें) नमस्कार करी श्रीसुबोधिनीजी प्रकट कीये हे या भांति श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपने निजभक्तनकों अपने हृदयकी लीला प्रकट करी दिखावतहें सो भक्त या भांति लीलासहित श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको स्मरण करे तो अनुभव होय ॥ ९ ॥

मूलं–मधुपालिजवोयुक्तरोमालिसुविराजितम्। प्रसन्नवदनांभोजं करुणारसवद्दृशम् ॥ १० ॥

शब्दार्थः–भ्रमरपंक्तिके वेगयुक्त रोमपंक्तिकरिकें विशेष शोभित ओर प्रसन्न हे मुखारविंद जिनके एसे ओर करुणा [दया] रसवारी हे दृष्टि जिनकी (एसे श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे) ॥१०॥ टीका– श्रीकृष्ण केसे हें? नाभिकमल पास रोमावलि हे सो भ्रमरकी पंक्तिकी नांई शोभा देतहे मुखारविंद अत्यंत प्रसन्न हे व्रजभक्तनके संग अनेक लीला करतहें ताको आनंद भयो हे ताकरि वदनकमल अति प्रफुल्लित हे करुणारससंयुक्त हे भक्तनके उपर करुणारसयुक्त हे भक्तनके उपर करुणादृष्टि करी रसपान करावतहें ॥ १० ॥

मूलं–बर्हिपिच्छशिरोभूषं शृंगाररसरूपिणम्। एवंविधानंतगुणं विधाय हृदये सदा ॥ ११ ॥

तस्य सेवां प्रकुर्वीत यावज्जीवं स्वधर्मतः ।
न फलार्थं न भोगार्थं न प्रतिष्ठाप्रसिद्धये ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–मयूरके पिच्छको हे मुकुट जिनको एसे ओर शृंगाररसरूप एसे अनंतगुणवारे श्रीकृष्णकों सदा हृदयमें स्थापन करिकें॥ ११॥ स्वधर्मसों जीवे तहांताई इनकी सेवा करे फलके अर्थ, भोगके अर्थ, ओर प्रतिष्ठाकी सिद्धिके अर्थ नांही करे ॥ १२ ॥ टीका–बर्हि जो मोरके पिच्छ ताको मुकुट सबारिकें मस्तकपें धरे हे सोई शृंगाररसरूप हे, मोर जब रसदान करतहे तब नृत्य करतहे तेसेंही श्रीठाकुरजी मोरके मुकुटको शृंगार करी भक्तनकों रसदान करतहें तातें मोरमुकुटको सिंगार हे सो शृंगार रसरूप हे, या भांति रासादिक लीलामें अनेक जलस्थल लीलासंयुक्त श्रीकृष्णकों अपने हृदयमें ध्यानकरि स्मरणकरि, दर्शनकरि हृदयमें सदाहि नित्य नियमकरि धारण करे ॥ ११ ॥ उपर कहे एसे शृंगाररसरूप श्रीकृष्णको सदा हृदयमें मानसी सेवासों ध्यान करे सो प्रथम तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायकें करे तब मानसी सिद्ध होय सो सिद्धांतमुक्तावलि ग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता " [कृष्णसेवा सदा करनी सो मानसी उत्तम हे] श्रीकृष्णकी सेवा सदा करे तिनकों मानसी सेवा सिद्ध होय यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनको धर्म हे जो श्रीकृष्णकी सेवा सिद्ध करे, जेसें ब्राह्मण गायत्री न जपे तो ब्राह्मणपनो जाय तेसें वैष्णव होयकें भगवत्सेवा न करे तो वैष्णवता जाय तातें श्रीकृष्णकी सेवा अपनो स्वधर्म जानिकें करे. कछु लौकिक, वैदिक, मोक्ष, आदि फलकी आशा राखिकें सेवा न करे में सेवा करूंगो तो मोकों वैष्णव जानिकें कोउ कछु दे जाय यह लोभ मनमें न राखे ओर प्रतिष्ठाके अर्थहू

सेवा न करे, में सेवा करूंगो तो मेरी बडाई होयगी लोक भलो वैष्णव जानेंगे या भांति अपनकों प्रसिद्ध करिवेके लिये सेवा न करे सो श्रीभागवतनवमस्कंधर्मे भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहें "मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्। नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम्" (मेरी सेवाकरिकें प्राप्त भये एसे सालोक्यादि चारे मोक्ष तिनकों नांही चाहतहें काहेतें जो सेवाकरिकें पूर्ण हें सो कालमें छूवे एसे राज्यादिककों कैसें चाहे?] इत्यादि वचनसों श्रीभगवान् कहतहें जो भक्त मेरी सेवा करी पूर्ण हे ताकरि प्रतीत चारों प्रकारकी मुक्ति [सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य] में देतहों सो नांही लेतहें एसे पूर्ण निष्काम हें तिनकों कालबाधित पदार्थ कहा हे ? या भांति मनपूर्वक सेवा करे सो वैष्णवको स्वधर्म हे ॥ १२ ॥

मूलं-श्रीमदाचार्यमार्गेण नान्येनापि कदाचन । न कल्पितप्रकारेण न दुर्भावसमन्वयात् ॥ १३ ॥

शब्दार्थः-श्रीमदाचार्यजीनें सर्वनिर्णयमें सेवाप्रकार निरूपण कीयो हे ता रीतिसों सेवा करे अन्यमार्गतें कबहू न करे, कल्पित प्रकारसों [ग्रीष्मऋतुमें आभरण धरनें इत्यादिकसों] न करे ओर दुर्भाव आय जाय [जेसें थोरी समृद्धिमें आभरण वस्त्रादि उत्तम न मिलें तासों दुर्भाव आवे] तेसें न करे ॥ १३ ॥ टीका-वैष्णव सेवा करे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके पुष्टिमार्गकी रीति हे ता अनुसार करे. कदाचित् भूलिकेंहू अन्यमार्गकी रीतिसों न करे ओर अपने मनतें कल्पित प्रकारमोहू न करे जो प्रकार न जाने सो पुष्टिमार्गीय भगवदीयसों पूछि लेय मनकल्पित सर्वथा न करे दुर्भावसों न करे जो जेसें लौकिक कार्य हे तेसें सेवाहू हे एसें अश्रद्धासों न करे प्रीतिपूर्वक सर्वोपरि परम फलरूप जानिकें सेवा करे ॥ १३ ॥

**मूलं–तत्त्वं विदित्वा परमं यशोदोत्संगलालितम्।
श्रीमदाचार्यतत्पुत्रान् हित्वाऽस्मत्स्वामिनीरपि॥१४॥
तत्तुल्यबुद्धया नाशः स्यात्सर्वथेति विनिश्चयः।
एतावती सती शिक्षा संक्षिप्ता ध्रियतां हृदि ॥ १५ ॥**

शब्दार्थः–श्रीयशोदाजीके उत्संगमें लालित श्रीकृष्णकों परम तत्त्व जानिकें श्रीमदाचार्यजी. इनके पुत्र. ओर श्रीव्रजभक्तनकों छोडिकें इनके तुल्य बुद्धितें सर्वथा नाश होय यह निश्चय है इतनी सत्य संक्षेप शिक्षा हृदयमें धारण करनी ॥ १४ ॥ १५ ॥ टीका–वैष्णव भगवत्सेवा करे ओर यह चारों पदार्थकों परम तत्त्व जाने–श्रीयशोदोत्संगलालित प्रथमतत्त्व, सो श्रीगुसांईजी कहेहें " जानीत परमं तत्त्वं यशोदोत्संगलालितम्। तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः " (श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीकृष्णकों परम तत्त्व जानें तातें अन्य अथवा मो अन्य एसें जो कहे तिनकों आसुर जानने) या भांति प्रथम तत्त्व श्रीयशोदोत्संगलालित, श्रीआचार्यजी महाप्रभु दूसरो तत्त्व, श्रीगुसाँईजी (श्रीविठ्ठलनाथजी) तृतीय तत्त्व, अस्मत्स्वामिनीजी (व्रजभक्त) चतुर्थ तत्त्व, यह परम तत्त्व अपने मनमें जाने ॥ १४ ॥ उपर कहे चारों तत्त्व श्रीकृष्ण, श्रीआचार्यजी, श्रीगुसाँईजी, श्रीस्वामिनीजी समान लौकिकमें काहूकों जाने इनको शीघ्रही नाश होय वाकों असुर जाननो सो वार्त्तामें कहेहे जो मीरांबाईके घर रामदासजीनें श्रीआचार्यजीके पद गाये तब बाईनें कही जो कछु श्रीठाकुरजीके पद गाओ यह सुनतहि रामदासनें कही जो दारी रांड यह पद कहा तेरे खसमको हे? आजु पीछें तेरो मुख न देखूंगो, पीछें मीरांबाई बोहोत मनुहार करी राखन लागी परंतु न रहे उह गाम छोडि दियो ओर छीतस्वामी बीरबलके इहां बरसोंदी लेन गये हते तहां गायो " छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल येही तेही

तेही येही कछु न संदेह " यह सुनिकें बीरबलनें कही देशाधिपति पूछेगो तो कहा जवाब द्योगे ? यह सुनतही छीतस्वामी कहे जो मेरे भाये तो तुही म्लेछ हे आजु पीछें तेरो मुख न देखूंगो एसें कहिकें वरसोंदी छोडिकें चले आये एसी टेक वैष्णव राखे, तातें यह चारो तत्त्वकों लौकिकमें कोई ईनसमान जाने ताको निश्चय नाश होय. अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो या प्रकार पत्रमें शिक्षा लिखें हे सो तुम विचारिकें हृदयमें अवश्यही धारण करियो ॥ १५ ॥

मूलं–अन्येऽपि चोपदेष्टव्या यदि स्युरधिकारिणः ।
मिलंति स्वेच्छया श्रद्धायुताः पृच्छंति चेत्तदा ॥१६॥

शब्दार्थः–जो अन्यहू अधिकारी मिले ओर श्रद्धायुक्त होय अपनी इच्छातें पूछे तो इनकोंहू उपदेश करनो ॥ १६ ॥ टीका–यह ऊपर शिक्षा कही हे सो ओरकें आगें मति कहियो कोई शिक्षाकें अधिकारलायक होय ताकेही आगें कहियो सो भगवदिच्छातें आपुही आयकें प्रार्थना करी श्रद्धायुक्त होय पूछे, चित्तलगायकें सुने, तासों कहियो अपनी इच्छातें बुलायके मति कहियो यह सर्वोपरि सिद्धांत हे, तातें अधिकारी पात्र विना रस नांही ठहरे यह जानिकें ओरके आगें मति कहियो ॥ १६ ॥

मूलं–जीवतत्परतासिद्धौ कृपालुस्तेषु तुष्यति ॥
यथा विषयिणां तोषो दूतिकासु तथा हरेः ॥ १७ ॥

शब्दार्थः–जीवकी भगवत्परताकी सिद्धि होय तब कृपालु प्रभु भगवद्वार्त्तादिक करिवेवारे उपर प्रसन्न होय जेसें कामी पुरुषनकों संतोष दूतीके उपर होयहे तेसें हरिको संतोष भगवद्वार्त्ता करिवेवारे भक्तनकी उपर होयहे ! ॥ १७ ॥ टीका–उपर कहे ताप्रकार यह जीव भगवद्धर्ममें तत्पर होय तब यह पुष्टिमार्गीय फल सिद्ध होय जेसें श्रद्धा-

दकों हिरण्यकशिपुनें बोहोत दुःख दियो परंतु प्रह्लादजीनें अपनी तत्परता भगवद्धर्म भगवानको आश्रय न छोड्यो तब श्रीनृसिंहजी प्रकट होय प्रतिबंध दूरी कीये फल सिद्ध भये तेसेंही पुष्टिमार्गीय वैष्णव पुष्टिमार्गमें तत्पर होय तो फल सिद्ध होय. प्रभु कृपालु हे सो एसे भक्तनके उपर संतोष पावे प्रसन्न होय जेसें विषयीकों तृतीमें संतोष होय तेसेंही श्रीभगवान् अपने भक्तकी अनन्यता देखिकें ताकी उपर बोहोत प्रसन्न होतहे प्रसन्न होय अपने दासके सगरे कार्य पूर्ण करतहें सदा कृपा करतहें प्रतिबंध दूरी करिकें फल देतहें यह निश्चय सिद्धांत हे॥१७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमष्टादशं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १८ ॥

शिक्षापत्र १९.

एकोनविंशतितम शिक्षापत्रमें यह कराल कलिकालमें कुसंगतें सत्पुरुषनकीहू बुद्धि नाश पावतहे तहां सत्संग तो अत्यंत दुर्लभ हे तासों निरंतर अष्टाक्षरमंत्रको उच्चार करिकें मन श्रीमदाचार्यैकशरण करनो सो निरूपण हे. उपर कहे ता प्रकार वैष्णव तत्पर रहे तो फल सिद्ध होय तामें यह कलिकाल महाबाधक हे यासो बचे तो फलसिद्धि होय सो आगे कहतहे—

मूलं-इदानीं वर्त्तते कालः करालः कलिरीदृशः ।
यस्मिन् विनश्यति मतिः सतामपि कुसंगतः॥१॥

शब्दार्थः—अब एसो कराल कलिकाल हे जामें सत्पुरुषकीहू मति

कुसंगतें नष्ट होयजाय हे ॥ १ ॥ टीका-यह अब जो काल वर्त्तमान हे सो महाकराल हे प्रसिद्ध याको प्रवाह देखियत हे काहेतें जो सत्पुरुषकी मतिहू कुसंगसितें भ्रष्ट भई हे तो अज्ञानीकी वुद्धि भ्रष्ट होय यामें कहा केहेनो? एसो कठिन काल आयो हे तहां कोई कहे जो सत्पुरुषकी वुद्धि क्यों भ्रष्ट भई? तहां कहतहें ॥ १ ॥

मूलं-सत्संगो दुर्लभो यत्र सततं सत्प्रसंगतः । कथाः कृष्णचरित्रैकयुता नित्यं भवंति हि ॥ २ ॥

शब्दार्थः-सत्संग दुर्लभ हे जा सत्संगमें सत्पुरुषके प्रसंगसों श्रीकृष्णके चरित्रकरिकें युक्त एसी कथा नित्य होतहे ॥२॥ टीका-सत्संग तो वोहोत दुर्लभ हे मिलत नांही निरंतर दुःसंगतें सत्प्राणीकी वुद्धि नाश भई हे एकक्षण हू भगवदीयको प्रसंग दुर्लभ भयो हे तो सदा कहांतें होय? जब निरंतर भगवदीयको संग होय कृष्णकी कथा कृष्णकी लीला प्रीतिसों सुने नित्य श्रीकृष्णकी सेवा करे, सो जो भगवदीय आपहू भगवत्सेवा करत होय कथा लीला सुनत होय एसो भगवदीय होय आपहू करे ओरकों बतावे ताकों संग करे जेसें भीज्यो कपरा होय सो सूके कपराकों भींजावे तेसेंही आपु भगवद्धर्ममें तत्पर होय ओरहूकों तत्पर करे ॥ २ ॥

मूलं-निजाचार्यपदांभोजसेविनस्तु सुदुर्लभाः । अदंभिनः कृष्णसेवाकथाचिंतनतत्पराः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः-अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंदकों सेवन करिवेवारे ओर दंभरहित तथा श्रीकृष्णकी सेवा कथाके चिंतन करिवेमें तत्पर एसे भगवदीय तो दुर्लभ हें ॥३॥ टीका-ओर भगवदीय केसें होय? जो अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलकी सेवामें अहर्निश जाको मन होय एसे अनन्य पुष्टिमार्गीय भगवदीय वोहोत दुर्लभ हे

अदंभी होय, पाखंडी न होय, श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर होय, श्रीकृष्णकी लीलाचिंतनमें तत्पर होय, काहूके दिखायवेके लिये सेवा न करत होय, मनसों शुद्ध होय, एसे भगवदीय तो या कालमें बोहोत दुर्लभ हें ॥ ३ ॥

मूलं–अहं तु सर्वथा नित्यं तथा सत्संगवर्जितः ॥
क्लिश्यामि मनसा नूनं निरानंदेन नित्यशः ॥४॥

शब्दार्थः–अब श्रीहरिरायजी अपनकों सत्संगके अभावको निरूपण करतहें जो में तो सर्वथा नित्य एसे सत्संगकरिकें वर्जित हों (तासों) आनंदरहित मनकरिकें नित्य क्लेश पावतहों ॥ ४ ॥ टीका–ओर में केसो हूं जो सर्वथा नित्य सत्संगकरिकें वर्जित हों मोको तो सत्संग मिलत नांही तातें में मनमें बोहोत क्लेश पावतहों जो मोको भगवदीयको संग न भयो जो भगवदीयको संग होय तो श्रीकृष्ण सदा आनंदरूप हे तिनके आनंदको अनुभव होय भगवदीय विना आनंदकरि नित्य रहित हों ॥ ४ ॥

मूलं–बाष्पनिःसरणोपायं न पश्यामि महीतले ॥
को वा मदीयहृदयदुःखं दूरीकरिष्यति ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–अश्रुके निकमवेको उपाय (भक्तकों) पृथिवीके तलमें में नांही देखतहों तामों मेरे हृदयको जो दुःख हे तिनकों कोन दूर करेगो ? ॥ ५ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी दीनताके आवेशमें कहतहें जो में यह महीतल (पृथिवीमें) वास कीयो सो काहेतें कीयो जब हरिशरणको उपाय न वनि आयो, काहेतें जो पृथिवी उपर आय हरिशरण न करे ताको जन्म वृथा हे सो प्रह्लादजी श्रीभागवतसप्तमस्कंधमें कहेहें–" कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह । दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् " (कुमार अवस्थामें

बुद्धिमान् यह संसारमें भगवद्धर्मकों आचरण करे काहेतें जो मानुष-जन्म दुर्लभ हे फेरि निश्चल नांहिहे तोहू अर्थ देववारो हे) ओर एकादश-स्कंधमें जनकविदेह कहेहें–" दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः। तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् " (देही जीवकों यह मनुष्यको देह दुर्लभ हे ओर क्षणभंगुर हे तामेंहू भगवद्भक्तको दर्शन दुर्लभ मानूहूं) यह वाक्यतें यह मनुष्यदेह महाउत्तम हे कौमार अवस्थामें प्रभुही शरण करी भगवद्धर्म करनों उचित हे काहेतें जो क्षणमें भंग होय-जाय तो अंतकालसमय कछु नांही बनि आवेगो फेरि यह देह मिलनों दुर्लभ हे तातें भगवद्धर्म भगवानको दर्शन दुर्लभ हे यह देहसों बने सो अवश्य कर्त्तव्य हे सो मोसों तो कछु न भयो तातें यह देहको महाशोक हे, जेसे चिंतामणि पायकें कोडिके पलटे देई फेर चिंतामणिके गुण सुने तब अनेक दुःख पावे तेसें यह देह पायके लौकिकमें लगावे हरिशरण नांही करे ताको जन्म वृथा हे तातें में हरिशरणको उपाय नांही कीयो सो हृदयमें महादुःख हे यह मेरे हृदयको दुःख दूरी करे एसो कोन हे ? ॥ ५ ॥

मूलं–व्रजवासस्तथा श्रीमद्यमुनादर्शनं गतम् ॥
दूरे गोवर्धनद्दृष्टिर्दूरे तन्नाथदर्शनम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–व्रजमें वास तथा श्रीमद्यमुनाजीको दर्शन तथा यमुना-जीके स्वरूपको ज्ञान तथा श्रीगिरिराजके स्वरूपको ज्ञान ओर श्रीगो-वर्धननाथजीको दर्शन सर्व दूरी गये ॥ ६ ॥ टीका–हरिशरणको साधन कछु न बनि आयो व्रजवासहू न भयो व्रजदेश हे सो महाउत्तम हे प्रभु-शरण करिवेको स्थल हे तहां परे रहिये तो प्रभु अपनो जानिकें कृपा करे सोहू मोकों न भयो ओर श्रीयमुनाजीको दर्शन नांहिहे सो श्रीयमुनाजी

केसे हे जो दुष्ट प्राणी अनजाने एकवारहू जलपान करे तो उह जीवकों यमयातना न होय एसो प्रताप हे. जा जीव श्रीयमुनाजीको आश्रय करे तिनकों श्रीयमुनाजी श्रीठाकुरजीकी लीलाको अनुभव करावे सर्व कार्य सिद्धी करी अलौकिक देह सिद्ध करे एसे श्रीयमुनाजीको दर्शनहू नांहीहे ओर श्रीगिरिराजहू मोतें दूरी हे सो श्रीगिरिराज केसे हे जो इनके संगतें भीलनीकोंहू भक्ति भई एसे श्रीगिरिराजहू मोतें दूरी हे ओर श्रीगोवर्द्धननाथजीको दर्शनहू मोकों दुर्लभ भयो हे या भांति में परदेशमें हों अब में कहा करूं तहां कोई कहे जो मनमें भाव करि जा वस्तुको स्मरण करे सो पासही हे तातें मनसों भाव करि व्रज, श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराज, श्रीगोवर्द्धननाथजी, इन सबनके दर्शन करी लेउ इतनो खेद क्यों पावतहो ? या भांति कोई कहे तहां कहतहे ॥ ६ ॥

मूलं-विषयाक्रांतिलो दूरे भगवद्भावसंततिः ।
देशांतरस्थितस्याद्य दूरे संगः सतामपि ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-विषयाक्रांतिसों भगवद्भावको विस्तार दूर रह्यो ओर अब देशांतरमें रह्यो एसो जो में ताकों सत्पुरुषको संगहू दूर रह्यो ॥ ७ ॥ टीका-विषयाक्रांतिसों देह भरि रह्यो होय तिनकों भगवद्भाव वोहोत दूरी हे जिनको हृदय शुद्ध होय अष्टप्रहर लौकिक नांही स्फूरे मनमें भगवत्स्मरण रहे तिनकों भावनासों सगरी वस्तु सिद्ध हे ओर मोकों विषयावेश करी भगवद्भाव दूरी हे अनेकदेशांतरमें स्थित हों तासों अनेक प्रकारके लौकिक प्रवाही सृष्टिको संग हे भगवदीयनको संग मोतें दूरी हे भगवदीय मिले तब उनसों मिलिकें भगवद्भाव विचारे सो मोतें दूरी हे तातें मनमें खेद बोहोत होतहे ॥ ७ ॥

मूलं-तदभावात् कथा दूरे ततो विमुखता हृदः ।
एवंविधस्य सततं श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—सत्संगके अभावसों भगवत्कथा दूरी हे तासों हृदयकी विमुखता (बहिर्मुखता) होयहे एसे प्रकारको जो में ताको निरंतर श्रीकृष्ण आश्रय हो ॥ ८ ॥ टीका—जो भगवदीय होय तो श्रीसुबोधिनीजी आदि भावात्मक कथा कहे सो सुनिकें हृदयमें भाव उत्पन्न होय सो भगवदीय मोतें दूरी हे तातें भावात्मक कथाहू मोतें दूरी हे तातें हृदयमें विमुखता छाय रही हे सो या भांति सर्वसाधनकरि रहित हो यह देशांतरमें स्थित हों एसो जो में ताको श्रीकृष्णही शरण होउ जब ओर कछु न बने तब शरणकी भावना करतहों ओर में कहा करूं सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीकृष्णाश्रयमें कहेहें " विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः। पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम " (विवेक, धैर्य, भक्ति आदिसों रहित, विशेषकरिकें पापमें आसक्त ओर दीन एसो जो में तिनकी गति (आश्रयस्थान) श्रीकृष्णही हे) विवेक, धैर्य, भक्ति आदि सर्व धर्म करि रहित होय, पापासक्त होय अति दीन होय सोउ श्रीकृष्णकुं शरण करें तातें में सर्वसाधनकरि रहित हों तासों निरंतर श्रीकृष्णही शरण कीये हे ॥ ८ ॥

मूलं—को वेद कृष्णः किं कर्त्ता न जानेऽहं कृपानिधिः। तथापि श्रीमदाचार्यशरणं करवै मनः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—कोन जानें कृपाके निधि श्रीकृष्ण कहा करेंगे? सो में नांही जानतहों तोहु मनकों श्रीमदाचार्यजीरूप एकशरण करूं ॥ ९ ॥ टीका—सो यह में नांही जानत जो श्रीकृष्ण कहा करिवेवारे हे मेरी कहा गति करेंगे सो जानी नांही जात हे परंतु इतनो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी कृपातें जानतहों जो श्रीकृष्ण दयानिधि हें अपने निजभक्तन पर निश्चय कृपा करतहें तातें में एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलकी शरण अपने मनतें करी रह्यो हुं ताकरि श्री-

कृष्णहू कृपा करेंगे ओर सगरो कार्यहू सिद्ध होयगो यह कहिकें यह जतायें जो श्रीआचार्यजीकी शरण जीव आयो हे तिनके सगरे कार्य सिद्ध होयंगे, व्रज, श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराजजी, श्रीजीकी सगरी लीला इनके अनुभव होयगो ओर जो श्रीआचार्यजीकी शरण नांही आयो तिनकों कछु फलसिद्धि नांही हे तातें में श्रीवल्लभाचार्यजीकी शरण मन कीयो हे या आश्रयकरि अपने मनकों समुजाय राखेहे ! ॥ ९ ॥

मूलं-विशेषः प्रेमजित्पत्राद्बोद्धव्यः सर्ववृत्तयुक् ॥
अनेन केवलेनैव किंचित्स्वस्थं मनो मम ॥ १० ॥

शब्दार्थः-सर्ववृत्तांतसहित विशेष (समाचार) प्रेमजीनामके पत्रसों जाननो यह केवल बोधकरिकेंही मेरो मन कछु स्वस्थ हे ॥ १० ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी लिखतहे जो विशेष समाचार प्रेमजीके पत्रतें जानोगे श्रीमहाप्रभुजीकी शरण करिकें किंचित् मनमें स्वास्थ्य हे जो महाप्रभुजी कृपा करी अपनी ओर देखेंगे ॥ १० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकोनविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ १९ ॥

शिक्षापत्र २०.

विंशतितम शिक्षापत्रमें शरणागतिसों प्रथम भये दोषकी चिंता न करनी, ओर शरणागति पीछें तो सावधानतासों रहेनो, निवेदनको अनुसंधान करनो, भगवत्सेवा गुणगानादिक करने, थोरे जानिवेवारेके वचनतें पुष्टिमार्गतें बुद्धि चलित न करनी, सर्वदा सत्संगसों रहेनो, अपने

१ यद्यपि बोहोत पढे भये होय परंतु पुष्टिमार्गीय ग्रंथ जानते न होय अरु जानते होय तो वामें श्रद्धा न होय सो थोरे जानिवेवारे समजने.

श्रीआचार्यजीकेही वाक्यतें निष्ठा राखनी, पुष्टिमार्गीय भगवदीयसों मिलिकें रहेनो यह मार्गतें विरुद्ध होय तिनके संगरहित होयकें रहेनो यह निरूपण हे.

मूलं–समाचारावगत्यैव संतोषो जनितो महान्।
सदोषेऽपि हरिर्जीवेऽनुग्रहं कुरुते स्वतः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–समाचारकों जानिकेंही बडो संतोष भयो काहेतें जो दोषसहित जीव उपरहू हरि भगवान् आपतेंही अनुग्रह करतहे ॥ १ ॥

टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहे जो तुह्मारो पत्र आयो सो वांचिकें मनमें संतोष भयो काहेतें जो यद्यपि गृहभंगको बडो दुःख हतो सो तुह्मारो दुःख निवृत्त भयो, तुह्मारे हृदयमें संतोष भयो ताकरि हमहू मनमें संतोष पाये आगें जो शिक्षा हे सो मनमें धारण करियो. हरि जो भगवान् सो केसें हे यद्यपि जीवके दोषकों जानतहे तोहू अपनी ओरतें जीवपर अनुग्रह करतहे जीवकी ओर नांही देखतहे. शिशुपाल श्रीकृष्णकी निंदाही करतो एसो दुष्ट हतो ताहूकों गति दीनी, इंद्रने जलवृष्टि करी द्वेष कीयो तोहू वापें प्रसन्न भये, एसे श्रीकृष्ण हे सदा कृपाही करत हे अपने प्रमेयबलतें यह जीवपर अनुग्रह करत हे तातें श्रीकृष्णहीको भजन, स्मरण, आश्रय सदा कर्तव्य हे ॥ १ ॥

मूलं–प्रमेयबलमासाद्य किमसाध्यं तदा भवेत् ॥
अतः प्रथमदोषाणां चिंता नैव विधीयताम् ॥ २ ॥

मूलश्लोकमें गृहभंगकी बात नांहीहे ओर टीकामें गोपेश्वरजीनें लिखी हे तासों यह अनुमान होयहे जो छठे शिक्षापत्रके प्रथमश्लोकके टिप्पणमें लिख्यो हे ता प्रमाण नवम शिक्षापत्रमें प्रेम, आसक्ति, ओर व्यसनको निरूपण वांचिकें तथा दशमपत्रमें ख्यातिके कारण वांचिके चित्तको समाधान भयो ताके समाचार उन्नीसमे पत्रके जवाबमें लिखे सो वांचिके श्रीहरिरायजीनें यह श्लोक लिख्यो ताको अभिप्राय श्रीगोपेश्वरजी जानिकें टीकामें यह वृत्तांत लिख्यो हे.

शब्दार्थः—प्रमेयवलकों प्राप्त होय तव असाध्य कहा होयहे तासों प्रथमकें दोषनकी चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ २ ॥ टीका—यह पुष्टिमार्गमें तो प्रमेयवलहीतें सर्वकार्य सिद्ध होयहे जीवके साधनतें कछु कार्य सिद्ध होत नांही ओर जीव कहांताई साधन करेगो याके साधनतें दोष दूरीहू नांही होय सकत तातें वृथा चिंता क्यों करनी? सो श्रीमहाप्रभुजी कहेहें "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" (जीव स्वभावसों दुष्ट हे) जीव तो स्वभावतें दुष्ट हे परंतु अपने अज्ञानकरि उत्तम मानतहे तासों जीवके साधनतें कछु नांही सिद्ध होय प्रभु प्रमेयवलतें सिद्ध करेंगे एसें विचारि चिंता नांही करनी ॥ २ ॥

मूलं-संजातभगवद्भावमपथ्यमिव सद्गुणम् ॥
लोकनिंदाभवं दुःखं न धर्त्तव्यं हि मानसे ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—आछे गुणवारे ओषधको अपथ्य जेसें तेसें भगवद्भाव उत्पन्न भयो तामें लोककी निंदासों दुःख होय सो मनमें नांही धरनों ॥ ३ ॥ टीका—लौकिक चिंतातें भगवद्भावको नाश होय ताको दृष्टांत कहतहें जेसें सुंदर ओषद खाय ताके उपर अपथ्य करे (खारो खाटो खाय) तो विनापथ्य ओषदको गुण जाय ओर रोग बढे तेसें मनमें भगवद्भाव होय स्मरण भजन करे सो सुंदर ओषदकी नांई हे सो लौकिक चिंतादि कुपथ्य करे तो भगवद्भाव उलटो जाय ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्न ग्रंथमें चिंतानिवृत्ति करिवेकें लिये कहेहें "चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि" (निवेदन कीये हें आत्मसंवंधी जिनने एसे वैष्णव कछु चिंता कोय दिनहू नांही करे) जा जीवने निवेदन कीयो हे तिनकों तो निश्चयही चिंता नांही कर्त्तव्य हे ओर जो लौकिकवारे निंदा करतहें सोइ महादुःखरूप हे सो अपने मनमें नांही धरनी काहेतें जो लौकिकमें अनेक भांतिके जीव हे तिनको कह्यो न

करियें तो निंदा करे ताको सहनही उचितहे जेसें श्रीभागवतमें निरूपण हे जो गोपीजननें लोकवेद छोडिकें प्रभुको भजन कीयो हे तव गोपनें ओर मातापितानें निंदा करी सो धारण न करी तब श्रीकृष्ण प्रसन्न होयकें रासलीलामें फलदान कीयो तातें भगवदीयकों लौकिक निंदा सहन करनी ॥ ३ ॥

मूलं–अग्रे तु सावधानत्वं विधेयं सर्वथा पुनः ॥
दुःसंगादिमहादोषा नाशयंत्येव तत्क्षणात् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–आगें निश्चय फेरि सावधानपनो करनो काहेतें जो दुःसंगादि बडे दोष हे सो जब मिले ताही क्षण भगवद्भावको नाश करे ॥ ४ ॥ टीका–आगें सर्वथा सावधान रहियो काहेतें जो दुःसंगदोष महाबाधक हे सो जन्मजन्मतें भगवद्भाव जोरिकें एकठोर कीयो होय सो एक क्षणमेंही तत्काल दुःसंगतें सगरे भावको नाश होय. श्रीभागवतादि पुराणमें कहेहे जो बडे बडे भगवदीय दुःसंगतें गिरेहें तातें तुम दुःसंगतें निश्चय क्षणक्षणमें सावधान रहियो ॥ ४ ॥

मूलं–असज्जनकृता निंदा तुष्ट्यै सत्त्वविनिश्चयात् ॥
यतस्तेषां न रोचंते संत एव हि सर्वथा ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–असत् पुरुषने करी एसी जो निंदा सो धैर्यके विशेष निश्चयके कारणसों संतोषार्थ हे काहेतें जो जासों असत् पुरुषनकों निश्चय सत्पुरुष प्रिय नांही लागत हे तथा सत्पुरुष असत्पुरुषकी वाणीमें प्रीति नांही राखत हे ॥ ५ ॥ टीका–असज्जन (अवैष्णव तथा अन्यमार्गीय तथा बहिर्मुख निंदा करे सो सुनिकें मनमें दुःख मति पाईयो मनमें प्रसन्न (संतुष्ट) रहियो जो यह सत्य ही कहतहे में तो निश्चय ही दोषवान्ही हों या भांति मनमें ज्ञान करी

विचारि निंदाकों सहन करनी सो यातें जो संतजन हे उन दुष्टनकी वाणीमें सर्वथा रुचि राखत नांही जेसें प्रह्लादजीकों हिरण्यकशिपुनें केसो दुःख दियो ओर निंदा करी सो प्रह्लादजीनें सही लियो तामें प्रह्लादजीको कछु बिगर्यो नांही हिरण्यकशिपुको प्रभुनें मार्यो तातें जो संत हे सो दुष्टनकी वाणीमें मन सर्वथा राखत नांही ॥ ५ ॥

मूलं-मार्गविश्वासरहिताः पूर्वदोषैकदृष्टयः ।
यतो नामैव हि हरेः सर्वदोषनिवर्त्तकम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-जासों [असज्जन] पुष्टिमार्गमें विश्वासरहित हे ओर पूर्वलेंही दोषदृष्टिवारे हे तासों इनकी वाणीमें रुचि न राखे तथा इनकों सत्पुरुष न रुचे ओर हरिको नाम हे सोही सर्वदोषकी निवृत्ति करिवेवारो हे ॥ ६ ॥ टीका-वह दुष्ट केसें हें जो यह पुष्टिमार्गमें विश्वास रहित हे सो काहेतें जो पूर्वजन्मतें दोषही देखतहे पुष्टिमार्गको प्रकार सगरे जगतमें प्रसिद्ध हे सो देखियत नांही तासों मार्गमें शरण आये हें तोहू प्रथमकी दुष्टता हे तातें दोषही देखतहें अपनी कुटिलता नांही छोडतहें काहेतें जो वह असुर हें तातें मार्गमें विश्वास नांहीहे सदा दुष्ट हें तातें दुष्टता प्रकट करतहें एसे जाननो ओर भगवानको नाम साधारणमें हू एसो हे जाको नाम लेतमात्र सर्व दोष दूरी होतहें सो षष्ठस्कंधश्रीभागवतमें कहेहें " अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् । संकीर्त्तितमघं पुंसां दहेदेधो यथा नलः ॥ १ ॥ सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुंठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ २ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः । अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ ३ ॥ " (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों उत्तमश्लोक (भगवान्) के नामको कीर्तन अग्नि काष्ठकों जेसें जारें तेसें पुरुषके पापकों जारेहे ॥ १ ॥ संकेतमें लियो, परिहासमें लियो, गीतालापपूरणार्थ ओर

अवज्ञासूं लियो एसो जो भगवन्नामको ग्रहण सो समग्र पापकों हरेहे एसें ऋषिलोक जानेहें ॥ २ ॥ हे पुत्र [दूत]! हरिके नामको माहात्म्य देखो जाकरिकेंही अजामिलहू मृत्युके पाशसों छुटि गयो ॥ ३॥) ओर अष्टमस्कंधमें वाक्य हे "मंत्रतस्तंत्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः। सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव" [शुक्राचार्य श्रीवामनजीकों कहेहें-मंत्रसों, तंत्रसों, देशकालयोग्यवस्तुसों जो न्यून होय सो सर्व आपके नामकीर्तनही पूर्ण करतहे] ओर "ते सुभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्। स्मरंति स्मारयंतीह हरेर्नाम कलौ युगे" (जो यह कलियुगमें हरिके नामकों स्मरण करेंहे तथा स्मरण करावेंहे सो हे राजन्! मनुष्यनमें भाग्यसहित हें तथा कृतार्थ हें यह निश्चय हे) द्वादशस्कंधमें शुकदेवीजीको वाक्य हे "कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः। कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधः परं व्रजेत्" (दोषके निधिरूप कलियुगको एक बडो गुण हे जो श्रीकृष्णके कीर्त्तनसोंही मुक्त होय गये हे बंध जिनके एसे मनुष्य परकों प्राप्त होय) षष्ठस्कंधमें विष्णुदूतको वाक्य हे "ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाघवान्। श्वादः पुल्कसको वापि शुद्धयेरन् यस्य कीर्तनात्" (ब्रह्महत्या करिवेवारो. पितृहत्या करिवेवारो, गोहत्या करिवेवारो, मातृहत्या करिवेवारो, आचार्य (वेदोक्त यज्ञ करिवेवारो) अथवा आर्य (अपनेसें बडे) की हत्या करिवेवारो,) पापी होय, चंडाल होय, नीचजातिमें उत्पन्न भयो होय सोहू जिनके कीर्त्तनसों शुद्ध होय) इत्यादिक ठोर ठोर नामको माहात्म्य हे तातें सहजहूमें मुखमें भगवन्नाम अनजाने निकसि जाय तोहू वह नाम सर्वदोष दूरीकरत हे ॥ ६ ॥

मूलं-तदपि श्रीमदाचार्यवदनांबुजनिःसृतम्।
तत्प्रकाशितमार्गस्य सर्वसंपादनक्षमम्॥ ७॥

शब्दार्थः-सो भगवन्नामहू श्रीमदाचार्यजीके मुखारविंदसों निकस्यो [अष्टाक्षरमंत्र हे सो] श्रीआचार्यजीनें प्रकाश कीयो एसो जो भक्तिमार्ग हे तिनकों सर्व संपादन करिवेमें योग्यता वारो हे ॥ ७ ॥ टीका-यद्यपि सर्व भगवन्नाम सर्वगुणदाता हे संसारदुःखनें छुडावेहे तोहू तामें यह अष्टाक्षरमंत्र [श्रीकृष्णः शरणं मम] रूप नाम श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके वदनकमलतें निकस्यो हे सो पुष्टिमार्गमें स्थिति करावतहे काहेतें जो यह पुष्टिमार्गहू श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें प्रकट कीयो हे तासों जा जीवकों श्रीआचार्यजीद्वारा नाम प्राप्त भयो हे तिनकों सर्व सिद्धि होयगी सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "यदुक्तं तातचरणैः 'श्रीकृष्णः शरणं मम'। तत एवास्ति नैश्चिन्त्यमैहिके पारलौकिके" [जो तातचरण श्रीमहाप्रभुजीनें "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह अष्टाक्षरमंत्र कह्यो हे तासोंही यह लोक और परलोकसंबंधि सर्वमें निश्चितता हे] इत्यादि वचनके भावकों अष्टाक्षरमंत्रको जप वैष्णव करे यह सर्व करिवेमें समर्थ हे ॥ ७ ॥

मूलं-ततोऽपि ब्रह्मसंबंधः सर्वदोषनिवर्त्तकः । निर्दोषानंद सेवापि दोषाभावप्रसाधिका ॥ ८ ॥

शब्दार्थः-तासोंही [भगवन्नामसोंही] ब्रह्मसंबंध हे सो सर्वदोषके निवृत्त करिवेवारो हे ओर निर्दोष आनंदरूप भगवानकी सेवाहू निर्दोष आनंदरूप हे ओर दोषके अभावसों साधिवेवारी हे ॥८॥ टीका-उपर कहे जो नामतें सर्वदोषको नाश होतहे तो जा जीवकों ब्रह्मसंबंध होय तिनके सर्वदोषको नाश होय यह तो उचितही हे काहेतें जो सर्व दोष निवृत्त करणार्थ तो प्रभुनें ब्रह्मसंबंधकी आज्ञा दिनी हे सो सिद्धांतरहस्यमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें "ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः। सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः" (ब्रह्मसंबंधकी-

येतें सर्वके देहजीवके सर्वदोषकी निवृत्ति निश्चय होतहे सो दोष पांच प्रकारके हे) इत्यादि वचनसों जाननो जो श्रीआचार्यजीद्वारा जा जीवकों ब्रह्मसंबंध भयो तिनके सकल दोष दूरी भये काहेतें जो भगवान् निर्दोष हे सो जीवहू निर्दोष होय सेवा करे तो अंगीकार होय तातें श्रीमहाप्रभुजी अपने जीवनकों ब्रह्मसंबंध कराय निर्दोष करिकें पाछें सेवामें लगाये सो भगवत्सेवा केसी हे जामें दोषही नांही निर्दोष आनंदरूप हे सगरे दोष (प्रतिबंध) कों नाश करिवेवारी हे, तहां कोई शंका करे जो ब्रह्मसंबंधतेंही सर्व दोषको नाश भयो तब फेरि सेवातें कोनसे दोषको नाश होय ? ताको समाधान यह हे जो देहजीवके सगरे दोष तो ब्रह्मसंबंधतें निवृत्त भये फेरि प्रभुकी लीलाप्राप्तिमें प्रतिबंधरूप जो दोष हे सो सेवातें दूरी होय तब स्वरूपानंदको अनुभव होय यह भाव विचारि ब्रह्मसंबंध ओर भगवत्सेवा करे ॥ ८ ॥

मूलं–गुणगानं तु सर्वेषां दोषाणां विनिवारकम् ।
गुणगाने ज्ञानमार्गादुत्कर्षः प्रभुणोदितः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–गुणगान तो सर्वदोषनकों निवृत्त करिवेवारो हे तासों ज्ञानमार्गसों गुणगानमें उत्कर्ष प्रभुनें कह्यो हे ॥ ९ ॥ टीका–जो भगवद्गुणगान सगरे दोषको निवारक हे सो गुणगान दोय प्रकारको हे एक पुष्टिमार्गीय तथा एक मर्यादामार्गीय सो दोयके भेद कहत हे. पुष्टिमार्गीय गुणगान जेसें व्रजभक्त गुणगान करत हें श्रीठाकुरजी के संयोगमें सेवा दर्शन करत हें ओर श्रीठाकुरजी गोचारणकों पधारत हें तब विरहकरिकें वेणुगीत युगलगीत गाय गाय संध्यापर्यंत काल वितावत हें तेसेंही श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके पुष्टिमार्गमें विरहकरि गुणगान विप्रयोगकी भावना हे संयोग विप्रयोग दोउ रसको अनुभव हे ओर मर्यादामार्ग (ज्ञानमार्ग) में केवल गुणगानही करत हे ॥ ९ ॥

मूलं–ज्ञानं सकलदोषाणां दाहकं परिकीर्तितम् ।
तथापि न प्रभोः प्रादुर्भावे यत्प्रतिबंधकम् ॥ १० ॥
तन्निवर्त्तयितुं शक्तमतो न्यूनं निरूपितम् ।
ततः स्वाचार्यसान्निध्यं क्षणाद्भावप्रदायकम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–ज्ञानकों सकलदोषनकों भस्म करिवेवारो कह्यो हे तोहू प्रभुके प्रादुर्भावमें जो प्रतिबंधक हे तिनकों निवृत्त करिवेमें समर्थ नांहीहे तासों न्यून कह्यो हे तातें अपने श्रीआचार्यजीको सांनिध्यही क्षणमें भावकों देतहे ॥ १० ॥ ११ ॥ टीका–ज्ञानमार्गको गुणगान केसो हे जो ताकरिकें संसारके सकल दोष भस्म होय जातहे पाछे सदा निर्विघ्न होय तो मोक्षकी प्राप्ति होय परंतु प्रभु प्रकट होयकें दर्शन न देही तातें ज्ञानमार्गको गुणगान हे सो भक्तिमार्गमें प्रतिबंधरूप हे सो काहेतें जो प्रभुको दर्शन नांही, लीलाको अनुभव नांही, स्वरूपानंदको अनुभव नांहीहे तातें ज्ञान हे सो भक्तिमार्गमें प्रतिबंधकही जाननों ॥ १० ॥ सो ज्ञान तुम मति करियो अपने भगवत्सेवाही मुख्य हे यह जाननो काहेतें जो यह ज्ञानमार्ग भक्तिमार्गतें न्यून हे यह श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी संन्यासनिर्णयमें कहेहें "ज्ञानार्थमुत्तरांगं च सिद्धिर्जन्मशतैः परम्" सो जन्म लों ज्ञानमार्गकों साधन सिद्ध होय. प्रतिबंध न होय, तब ब्रह्माके लोकमें जाय पाछे ब्रह्माको लय होय तब वाको मोक्ष होय तातें ज्ञानमार्गीय जीव भक्तितें न्यारो हे तासों तुम पुष्टिमार्गकी रीतिमें तत्पर रहियो. श्रीआचार्यजीको यह पुष्टिमार्ग केसो हे जो एकक्षणहू श्रीआचार्यजीको सांनिध्य होय तो भगवद्भावको दान करे स्वरूपानंदको अनुभव होय तातें सर्वोपरि फलरूप सेवा पुष्टिमार्गमें हे जामें भगवद्रसको अनुभव होय यह भाव विचारिकें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी सेवाकी रीति प्रकट करी हे

तामांति सेवा करियो तवही श्रीआचार्यजी महाप्रभु भावदान करेंगे यह निश्चय सर्वोपरि सिद्धांत है ॥ ११ ॥

मूलं–तद्दिदृक्षाऽऽर्त्तितापानां क्रमादेवेह संभवात् ।
तत उत्तरभावस्य भावनं वह्निरूपतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छा, आर्त्ति ओर तापको क्रमसोंही यह पुष्टिमार्गमें संभव (उत्पत्ति) है तासों विरहात्मकको भावन (भावना) विप्रयोगाग्निसों होय ॥ १२ ॥ टीका–पुष्टिमार्गमें ज्यों ज्यों मन लगायके भगवत्सेवा करे त्यों त्यों श्रीकृष्णके दर्शनको ताप क्रमक्रमतें बढे या भांति जब अधिक ताप होय ता करिकें सगरो दोष दूरी होय जाय तब दैन्य सिद्ध होय तापाछें जब उत्तरभाव हृदयमें सिद्ध होय तब व्रजभक्तनके भावकी भावना करे जाकों मानसी सेवा कहत हैं सो सर्वोपरि है व्रजभक्तनको भाव अग्निरूप है सो भाव हृदयमें होय तब जानियें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु हृदयमें पधारे भावाग्निरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभु है ॥ १२ ॥

मूलं–क्षणेन दोषसंघस्य नाशकं सर्वथा मतम् ।
एवंभूते स्थिते मार्गे नूनं येषामभाग्यतः ॥ १३ ॥
अविश्वासस्ततस्तेषां न गतिः काऽपि विद्यते ।
अतः स्वयं श्रुतं यद्वा भाग्याद्धृदि समागतम् ॥ १४
तदेव हि दृढं स्थाप्यं सर्वथा जीवनावधि ।
नाल्पज्ञवचनाच्चाल्या बुद्धिरापातसुंदरात् ॥ १५ ॥

शब्दार्थः–उपर श्लोकमें कह्यो एसो विप्रयोगाग्निको भावन दोषनके समूहको निश्चय नाश करिवेवारो है एसो यह पुष्टिमार्ग है तामें जिनकों

संयोगात्मक भाव पूर्व दल है ओर विप्रयोगात्मक भाव उत्तर दल है.

अभाग्य हे तिनकों अविश्वास होय तासों तिनकों काहू गति नांही हे तासों अपने सुन्यो अथवा भाग्यसों हृदयमें आयो एसो जो विप्रयोगामिको भावन सोही जीवनपर्यंत दृढ स्थापनों थोरे जानिवेवारेके वचन, उपरतें सुंदर दिखतें होय तासों बुद्धि चलित नांही करनी ॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ टीका-रंचकहू भावरूप अग्नि हृदयमें होय तो एकक्षणमें सगरे दोषकों सर्वथा नाश करे याभांति पुष्टिमार्ग सर्वोपरि हे एसो व्रजभक्तनके भावात्मक यह पुष्टिमार्ग हे, भाग्यहीननकों विश्वास न होय तातें अविश्वाससूंही पुष्टिमार्गीय फलसिद्धि नांही होय ॥ १३ ॥ जा जीवकों यह पुष्टिमार्गमें अविश्वास हे ताकों कहूं गति नांहीहे कोउ जीव होय अविश्वास सबकों बाधक हे सो अविश्वास केसो होय एकतो अपने मनमें स्वकल्पित विचार उठे जो यह पुष्टिमार्गमें कछु मोकों सिद्धि नांही दिसत; दूसरो कोउ ज्ञानमार्गीय, कर्ममार्गीय, भावविरुद्ध कहे सो सुने, अन्यमार्गीय यह पुष्टिमार्गकों देखि नांही सकत हे तातें उनको संगहू बाधक हे उनके मुखतें मार्गकी निंदा सुनिकें अविश्वास होय. तीसरो पुष्टिमार्गको फल सर्वोपरि हे सो भाग्यमें न होय जीवही भीतर प्रवाही होय, मर्यादामार्गीय होय. पुष्टि न होय तो यह फल कहांते पावे ? वाकों अविश्वास होय. चोथो हृदयमें अनेक भांतिके लौकिक वैदिकके विषयके तरंग उठे तो विश्वास छुटिजायवेसूं औरही क्रिया करनलागे. पांचमो काहू बहिर्मुखके समागमतें दुःसंगतें अविश्वास होय। एसे पांच प्रकारके कारणतें अविश्वास होय ताकों पुष्टिमार्गीय फल सर्वथा न होय ॥ १४ ॥ उपर कहे इत्यादि दोषतें अविश्वास हृदयमें दृढ होय जाय सो अविश्वास सर्वथा जीवकों बाधकही हे जेसें जल अग्निको नाश करे तेसें दुःसंगदोष भावको नाश करे। अल्पज्ञानवारे जीवके वचनचातुर्यतें बुद्धि चलायमान न करनी

अल्पज्ञ जीव अज्ञानकरि निंदा दुर्वचन (मर्यादा छोडिकें) बोले तातें अज्ञानीके संग वाद सर्वथा नांही कर्त्तव्य हे ॥ १५ ॥'

मूलं–सत्त्वनिश्चयतः संगः साधको नहि संशयात्।
यत्र वै विपरीतैव कृतिस्तत्र भ्रमः कथम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–विवेकधैर्यादिकके निश्चयसों संग हे सो सर्व सिद्ध करिवेवारो हे संशयसों नांहीहे ओर जहां विपरीतही कृति हे तहां भ्रम केसें होय ? ॥ १६ ॥ टीका–तातें यह निश्चय मनमें जाननो जो या जीवकों सत्संगही भगवद्धर्मको साधक हे संशय नांही सो श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनकको वाक्य हे "तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः" (भगवद्भक्तके संगके क्षणबरोबर स्वर्ग ओर मोक्ष तुले नांहींहें तहां मनुष्यकी दीनी आशिषको तो कहा कहेनों ?) ओर एकादशस्कंधमें भगवद्वाक्य हे " न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ! । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुंधे सत्संगः सर्व संगापहो हि माम् ॥ २ ॥ " (हे उद्धव ! मोकों योग वश नांही करेंहे, नांही सांख्य, धर्म; नांही स्वाध्याय, तप, त्याग; नांही इष्टापूर्त (कूप, आराम, मठादिक); नांही दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम, यम (कोउ वश नांही करेंहें). जेसें सर्व संगकों मिटायवेवारो सत्संग मोकों वश करेंहे) इत्यादिक वचनतें जाननो जो जीवकों सत्संगही बडो साधक हे तातें यह पुष्टिमार्गीय वैष्णव निश्चयही सत्संग करे ओर पुष्टिमार्गतें जिनकी विपरीत कृति होय

१ यह तीन श्लोकको अर्थ टीकामें लेखकदोषसों उलटो लिख्यो हे परंतु पांच छश पुस्तकमें एसेंही दीखवेमें आयो तासूं तेसेंही कछु सुधारिके लिख्यो हे या रीतसों अर्थ सर्वथा नांही होयसके किन्तु प्रथम शब्दार्थ लिख्यो हे तेसें होयहें.

तामें वैष्णवको भ्रम काहेतें होय तातें पुष्टिमार्गतें विपरीत कृतिवारेको संग सर्वथा न करे ॥ १६ ॥

मूलं-तत्र भ्रांताः परं मूढास्तत्संगः खलु बाधकः ॥
अतः सत्संगसहितस्तिष्ठेत्सर्वत्र सर्वदा ॥ १७ ॥

शब्दार्थः-तामें जो भ्रांत हे सो अत्यंत मूढ हे इनको संग निश्चय बाधक हे तासों सत्संगसहित सर्वजग्गे सदा रहे ॥ १७ ॥ टीका-जो जीव भ्रांत हे या पुष्टिमार्गमें विश्वासकरि रहित हे सो महामूढ अज्ञानी हे तासों खल (दुष्ट) को संग महाबाधक हे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णव जहां जाय तहां सबठोर सदा पुष्टिमार्गीय भगवदीयके संगही स्थित रहे तबही दुःसंगतें बचे तातें सर्वथा सत्संगमें रहे सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " (निश्चय तादृशीय वैष्णवजननके संग निवेदनको स्मरण करनों) यह निवेदनको स्मरण सदा सर्वदा तादृशीयसों मिलिकें करे तातें सत्संग हे सो भावबृद्धिकर्त्ता होयवेसूं पुष्टिमार्गीय भगवदीयकूं नित्य कर्त्तव्यही हे ॥ १७ ॥

मूलं-सेवां कुर्वन् सदाचारो धर्ममार्गस्थितोऽपि च ।
अविरुद्धवचोवक्ता ह्यविरुद्धकृतिप्रियः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः-सेवा करिवेवारो, सदाचारवारो, ओर धर्ममार्गमें रह्यो होय तोहू अविरुद्धवचन कहिवेवारो तथा अविरुद्ध कृतिकों प्रिय करिकें रहिवेवारो होय ॥ १८ ॥ टीका-पुष्टिमार्गीय वैष्णव श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन पायकें पुष्टिमार्गकी रीतिसों आचारसहित भगवत्सेवा करे, आचार हे सो वैष्णवको प्रथम धर्म हे तातें आचारविचारपूर्वक खासा, सेवकी, छुयो, सखडी, अनसखडी, प्रसादी, जूठन, प्रभृतिको

ज्ञान राखे, धर्ममें तत्पर रहे, अपने पुष्टिमार्गीय धर्ममें रहे और पापाचरण न करे पुष्टिमार्गतें अविरुद्ध वचन कहे और जो कोई पुष्टिमार्गसों अविरुद्ध सुंदर शिक्षा देय ताकों मानिलेय अविरुद्ध (क्रिया) मार्गकी रीतिकी सेवाकूंहि मनमें प्रियही जानें ॥ १८ ॥

मूलं-स्वाचार्यमात्रवाक्यैकनिष्ठः सततभावुकः ।
तदीयजनसंसृष्टः सर्वसंगविवर्जितः ॥ १९ ॥

शब्दार्थः-अपने श्रीआचार्यजीके वचन-निबंध, श्रीसुबोधिनीजी, और षोडशग्रंथादिकनमें निष्ठावारे, निरंतर भाववारे, भगवदीयसों मिलिवेवारे, और दूसरे सर्वसंगतें वर्जित होय ॥ १९ ॥ टीका-एक अपने श्रीवल्लभाचार्यजीके वचनपें निष्ठा राखे इननें कीये श्रीसुबोधिनीजी-निबंधादिक-एतन्मार्गीय ग्रंथको कहे सुने तामें जो क्रिया भाव कहेहें ताहीमें मन लगायके ताही भांति रहेनो और जो भगवदीय श्रीआचार्यजीके वचन अनुसार चलतहे श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजीके वचनमें जिनकी पूर्ण निष्ठा हे, एसेनको संग करे और रुवेको त्याग करे. जो एसे भगवदीय मिले तो संग करे नांही तो सर्वसंग छोडिके भगवत्सेवा स्मरण मार्गरीतिप्रमाण करे परंतु अन्यको संग सर्वथा न करे या भांति वैष्णव रहे तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें पुष्टिमार्गको फल पावे ॥ १९ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं विंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ २० ॥

शिक्षापत्र २१.

अब एकविंशतितम शिक्षापत्रमें लौकिक व्यावृत्तिकों छोडिकेंही सेवा करनी सो बुद्धि दृढ होय तब होय, भगवदीयके संग निरंतर निवेदनके चिंतनतेंही बुद्धि दृढ होय, विपरीतवार्त्ताके श्रवणसों चित्त खेदयुक्त होय ताकीं प्रभु उपेक्षा करेहें, यह काल हे सो सत्पुरुषनकी बुद्धिकों हरेहे तासों पुष्टिमार्गीय–भगवदीयनके संग रहेनो यह निरूपण हे। उपर कहे ता प्रकार वैष्णव रहे तो फल सिद्ध होय सो कलिकालदोषतें भक्तिमार्गको भाव ओर सत्संग तिरोभूत हे याकों केसें फल होय सो कहतहें.

मूलं–भक्तिमार्गस्तिरोभूतस्तथा संगः सतामपि।
ततो भावस्य शैथिल्यं तदभावेऽखिलं वृथा॥१॥

शब्दार्थः–भक्तिमार्ग तिरोभूत होय गयो हे तेसेंही सत्पुरुषनको संगहू तिरोभूत होय गयो हे ताकरिकें भावकी शिथिलता भई हे ओर भावको अभाव भयो तब सकल वृथा हे॥ १॥ टीका–यह महाकठिन कालतें भक्तिमार्ग तिरोभूत भयो हे ओर पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संगहू तिरोभूत भयो हे ताकरिकें पुष्टिमार्गको भावहू शिथिल भयो हे सो भाव विना सर्व वृथा हे काहेतें जो यह पुष्टिमार्गमें सगरो भावही हे भावात्मक मार्ग हे जितनी क्रिया दीसतहे सो सर्व भावात्मकही हे ता भावकों तो पुष्टिमार्गमें स्थित होय भगवदीयको संग होय तबही जाने नांही तो केसें जाने? भक्तिमार्गमें अष्टप्रहर केवल प्रभुकोही सुख विचारे अपनो देहसंबंधी सुख रंचकहू न विचारे याभांति सेवा करे सो दुर्लभ हे ताकरिकें भाव शिथिल होयरह्यो हे तातें भाव विना सर्व वृथा हे॥ १॥

**मूलं–भक्तिमार्गीयताभावे क्रियामात्रं हि कर्मवत् ।
तत्रापि न मनःस्थैर्यं विक्षेपाद् व्यवहारतः ॥ २ ॥**

शब्दार्थः–भक्तिमार्गीयपनेको अभाव होय तब कर्मकी नांई (यह सेवाहू) क्रियामात्र हे तामेंहू व्यवहारसों विक्षेपतें मनकी स्थिरता नांहिहे ॥ २ ॥ टीका–भक्तिमार्गकी रीति यह हे जो अष्टप्रहर भावमें रहे सो तो कहां हे ? परंतु कर्मवत् क्रिया हे जेसें कर्ममार्गीय कर्म करे तहांताई प्रयोजन पाछें कछु नांही तेसेंही सेवासमय न संयोगको सुख भयो के न अनोसरमें विप्रयोग भयो तातें कर्ममार्गवत् क्रियामात्रही हे सो कर्मवतहू मनलगायकें नांहिहे तहां सेवामेंहू मन एकाग्र नांही अनेक भांतिके विक्षेप मनमें होतहे नानाभांतिके व्यवहारके तरंग मनमें उठतहे ताकरि मन स्थिर नांही किन्तु विक्षेप पावतहे सो कर्मवत् क्रियामात्रहू भगवत्सेवा नांही बनतहे ॥ २ ॥

**मूलं–व्यवहारोऽप्यसिद्धश्चेद्विशेषक्षोभको मतः ।
तदभावे तु गार्हस्थ्यप्रकारैः सेवनं कुतः ॥ ३ ॥**

शब्दार्थः–व्यवहारहू सिद्ध न भयो तब विशेष क्षोभ करिवेवारो होयहे काहेतें जो व्यवहारको अभाव होय तब गृहस्थाश्रमके प्रकारसों सेवन केसें होय ? ॥ ३ ॥ टीका–भगवत्सेवामें व्यवहारके तरंग उठतहे सो व्यवहारहू सिद्ध न होय तब मनमें ओर अधिक क्षोभ होतहे धीरज छूटि जात हे तब गृहस्थको भाव केसें रहे ? ओर भगवत्सेवाहू केसें करे ? तातें यह पुष्टिमार्ग तो भावात्मक सर्वोपरि हे ओर जीव तुच्छ हे यह काल महाकठिन हे सेवाकरतमें व्यवहारको स्मरण स्वतः कालदोषतें होयहे सो व्यवहार खाली परे सिद्ध न होय तब धीरज केसें रहे ? मनमें अतिही दुःख पावे तब लौकिक चिंतातें मनमें भगवद्भाव केसें रहे ? ओर गृहस्थाश्रममें तबही (लौकिक, वैदिक, कुटुंबको

भरणपोषण इत्यादिक सब) मायेहे सो करनो ओर भगवत्सेवा केसें करे?मन तो चिंताने आय ग्रस्यो हे तहां कोई कहे जो व्यवहार मति करो प्रभु तो सर्वसामर्थ्यवान हे लौकिक वैदिक सर्वकार्य सिद्ध करेंगे तुम भगवत्सेवा मन लगायकें करो याभांति कोई कहे तहां आगे कहतहे ॥ ३॥

मूलं-व्यावृत्यभावपक्षस्तु बुद्धयदार्ढ्यात्सुदुर्लभः ॥
बुद्धिदार्ढ्ये तु सततं निवेदनविचिंतनैः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः-व्यावृत्तिके अभावको पक्ष (लौकिक वैदिक छोडिवेको पक्ष) बुद्धिकी दृढता नांही हे तासों अत्यंत दुर्लभ हे ओर बुद्धिकी दृढता तो निरंतर निवेदनके विशेष चिंतनकरिकें होय ॥ ४ ॥ टीका-व्यावृत्तिको अभाव केसें करे ? यद्यपि अव्यावृत्त होय भगवत्सेवा करे सो तो सर्वोपरि हे, परंतु एसी बुद्धि उत्कृष्ट नांहीहे याभांति या कालमें प्रभुको पूर्ण विश्वास तो दुर्लभ हे तातें पूर्ण विश्वास विना अव्यावृत्त होय तो बहुतही दुःख पावे श्रीठाकुरजीमें दोषबुद्धि होयजाय में इनके आश्रय सेवा करतहों ओर मेरो लौकिकहू नांही सिद्ध करतहें याभांति होय तो अनर्थ होय दासभाव जात रहे तातें अव्यावृत्त केसें होय ? एसी तीव्र उत्तम बुद्धि नांहीहे पूर्ण विश्वास नो दुर्लभ हे, तहां कोई कहे जो बुद्धि उत्तम होय पूर्णविश्वास जाभांति होय मोही कार्य करो तहां कहे जो बुद्धि उत्तम ओर पूर्णविश्वास तो तब होय जब अष्टप्रहर निवेदनको चिंतन करे अष्टाक्षर ओर शरणकी भावना करे, गद्यमें कहा निवेदन कीयो हे? अब केसी क्रिया करतहों? कितनें दिनको भूल्यो हों ? सो अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीद्वारा संबंध भयो हे प्रभु केसे हें ? जीव केसो हे? जीवकों कोनप्रकार दासत्व करनो हे ? याभांति पंचाक्षरमें प्रभुही गति हे याभांति निवेदनको चिंतन होय बुद्धि प्रबल उत्तम होय तब विश्वास संपूर्ण होय। अब निवेदनको चिंतन करिवेको प्रकार कहतहे ॥ ४ ॥

मूलं–तत्रापि सहभावस्तु सतामेव निरूपितः ॥
ते दुर्लभा दूरगाश्च ततो बुद्धिर्न तादृशी ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–तामें (निवेदनके चिंतनमें) हू सत्पुरुष (भगवदीय)- कोही संग तो निरूपण कीयो हे सो भगवदीय दुर्लभ ओर दूरी रहत हे तासों एसी उत्तम बुद्धि नांही हे ॥ ५ ॥ टीका– निवेदनको चिंतन अपनी बुद्धितें नांही होयसकतहे सो नवरत्न- ग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी निरूपण कीये हे "निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः" (निवेदन तो निश्चय तादृशीय जनके संग स्मरण करिवेयोग्य हे) तातें निवेदनको चिंतन भावसहित तादृशीय पुष्टिमार्गीय भगवदीयसों मिलिकें करे तब भाव सिद्ध होय, तहां कोई कहे जो भगवदीयसों मिलिकें निवेदनको चिंतन करिलेउ तहां कहतहे पुष्टिमार्गीय भगवदीय मिलनें वोहोतही दुर्लभ हे कहूं हे सो दूरी हे तिनको संग कोन भांतिसों होय ? उन भगवदीयन- के संग विना एसी बुद्धि केसें होय ? ॥ ५ ॥

मूलं–स्थितापि शीर्यते नित्यं पोषकाभावतो मम ॥
खिन्नं च जायते चित्तं वार्त्ताश्रवणतोऽन्यथा ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–मेरी बुद्धि स्थित हे [अथवा ' स्थितोपि ' एसो पाठ होय तो भाव स्थित हे) तोहू पोषण करिवेवारेके अभावसों शिथिल होय- जायहे ओर अन्यथावार्त्ता सुनिके चित्त खेदयुक्त होय हे ॥ ६ ॥ टीका–ओर भाव बढे सो तो परम दुर्लभ हे परंतु कछुक भाव आगेतें हृदयमें स्थित हे सोहू क्षीण होतहे दिनदिन घटत जातहे काहेतें जो पोषकको अभाव हे भगवदीयको मिलाप होय तो भावको पोषण होय भाव बढे सो सत्संग विना भाव शिथिल होतहे ओर लौकिक मनुष्य-

नको संग आयवन्यो हे सो अनेकप्रकारकी लौकिक वार्त्ता कहनी परतहे ओर अन्यथा–लौकिकवार्त्ताश्रवणतें चित्तकों महा खेद होयरह्यो हे अहर्निश अन्यवार्त्ता अन्यश्रवण मेरे कर्णमें होतहे सो में किनसों कहूं एसो मनमें खेद होतहे ॥ ६ ॥

मूलं–श्रुतोत्तमप्रकाराश्च भगवन्मानसा अपि ।
अस्मदीया लौकिकेषु प्रतिष्ठामात्रसाधकाः ॥७॥
चित्तव्ययं प्रकुर्वंति वृथा देहं च तद्गतम् ।
भगवन्मार्गनिष्ठा तु लोकनिष्ठाविरोधिनी ॥ ८॥

शब्दार्थः–भगवानमें मनवारे एसे हमारे जो उत्तम प्रकार सुनिनेवारे हे सोहू लौकिकमें प्रतिष्ठामात्र सिद्ध करिवेवारे हे ॥ ७ ॥ चित्तकों ओर जगे लेजातहे ओर देहकों तामें प्राप्त करे हे काहेतें जो भगवन्मार्गकी निष्ठा हे सो लौकिककी निष्ठासों विरुद्ध हे ॥८॥ टीका–याभांति में मनमें दुःखी हों भगवद्भाव दिनदिन शिथिल होतहे ओर में अपनें श्रवणतें उत्तमप्रकार (अपनी बडाई) सुनतहों कोई कहतहे जो अष्टप्रहर ईनको मन भगवानमें लग्यो रहतहे इत्यादि अनेक बडाई में अपनी श्रुतितें सुनतहों ताकरिकें कहा सिद्धि हे ? लौकिकमें प्रतिष्ठा भई सो प्रतिष्ठामात्रकी साधक भई लौकिकमें यह फल भयो ओरकछु दीसत नांही तब यह प्रतिष्ठातें मेरो कार्य कहा सिद्ध होतहे ? यह प्रतिष्ठा भगवद्भावमें बाधक हे ॥ ७ ॥ सो आगें निरूपण करतहें जो यह चित्त भगवानके चरणारविंदमें न लगे ओर यह मनुष्यदेह इंद्रिय भगवानमें विनियुक्त न भई सो वृथा जातहे सो एकादशस्कंधमें राजा जनक कहेहें " दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः " (देही (जीव) को यह मनुष्यदेह दुर्लभ ओर क्षणमें नाशहोय एसो हे) सो वृथा जातहे ओर सप्तमस्कंधमें प्रह्लादजी कहतहें 'कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्

भागवतानिह । दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् (बुद्धिमान कुमार अवस्थामें यह संसारमें भगवद्धर्मको आचरण करे काहेतें जो मनुष्यजन्म महादुर्लभ हे सोहू निश्चल नांहिहे ओर पुरुषार्थको देवेवारो हे) इत्यादि वचनसों जान्यो जातहे जो मनुष्यदेह महादुर्लभ हे क्षणमें याको नाश हे तातें भगवानको दर्शन सेवा परम दुर्लभ हे सो बने तो आछो। यह कौमार अवस्था भगवद्धर्मकरणयोग्य हे तातें भगवद्विनियोग विना देह यौवन सर्व वृथा हे ओर भगवन्मार्गकी निष्ठा हे सो लोकनिष्ठाविरोधिनी हे काहेतें जो अपनी वडाई सुनिके आनंद मानी वडो जाने सो भगवानकों बुरी लगे मद होय तो भगवान हृदयमेंतें जातरहे तातें यहलोमनकी वडाई हे सो भगवद्धर्मकी निश्चय विरोधिनी हे ॥८॥

मूलं-संसारवैरी कृष्णोऽपि मूढानेतानुपेक्षते।
कालः सतामपि हरत्यसौ संप्रति सन्मतिम्॥ ९॥

शब्दार्थः-संसार [अहंताममतात्मक] के वैरी श्रीकृष्णहू एमे मूढ संसारासक्तनकी उपेक्षा करेहें ओर यह काल या समयमें सत्पुरुषनकीहू सुंदरमतिकों हरतहे ॥ ९ ॥ टीका-संसारवैरी यह श्रीकृष्णको नाम हे जहां श्रीकृष्ण हृदयमें आवे तहां संसार नाश करे निश्चय वार्गी लौकिक देहसंबंधी न बने सो यह जीव अज्ञानी हे श्रीकृष्णको चाहतहे ओर संसारहूकी अपेक्षा करतहे संसार होयगो तहांताई श्रीकृष्ण कहां ? जब श्रीकृष्ण कृपा करेंगे तब [अहंताममतात्मक] संसार कहां ? सो यह कालदोषतें प्रभुको ज्ञान नांही होतहे एसो काल कठिन आयो हे जो सत्प्राणीहूकी मति जो बुद्धि ताहूको हरिलेनहे तातें वारंवार संसारकी अपेक्षा राखत हे यद्यपि संसारको तुच्छ जानतहे ओर भगवानको गुणहू संसारनाशक हे यहही जानते तोहू यह कालकरि सत्पुरुषनकी बुद्धि हीन होय जायहे ॥ ९ ॥

मूलं-कालदोषनिराकर्त्ता न संगोऽस्ति सतामपि ।
अतः स्थैर्यं सावधानैः समस्तैर्मार्गवर्त्तिभिः ॥१०॥

शब्दार्थः-कालदोपकों मिटायवेवारो सत्पुरुषनको संग नांहीं हे तासों समस्त पुष्टिमार्गीय वैष्णव सावधान रहियो ॥१०॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी मगरे पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों शिक्षा देत हें जो सावधान रहियो कालदोष हे सो महादुष्ट हे सर्व धर्ममें प्रतिबंधक हे सो मेंहू यह कालदोपको नाश नांहीं करिमकतहों कादेतें जो सत्संग नांहीं मिलतहे जो भगवदीयको संग मिले तो कालदोष बाधा न करे सो सत्संग दुर्लभ हे तातें हे वैष्णव! तुम समस्त क्षणक्षणमें सावधान रहियो यह पुष्टिमार्ग सर्वोपरि हे तामार्गमें तुम स्थित हो सो दुःसंगतें बचे रहियो भगवदीयको मंग करियो ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलकों अपने चित्तमें धरियो ॥ १० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ २१ ॥

शिक्षापत्र २२.

अब द्वाविंश शिक्षापत्रमें यह पुष्टिमार्गमें अपनो भाव हे सो साधन हे ओर भावात्मा भगवान् हे सो प्रमेय ओर फलरूप हे तासों निविरूप भावकी रक्षा करनी ओर इनसों विरुद्ध होय ताको त्याग करनो हरि-कृष्णनामके वैष्णवको चित्त अतिशुद्ध हे तातें इनकी उपर कृपा राखिकें

इनको संग करनो यह निरूपण हे। उपर कहे जो सत्संग विना यह जीव कालदोष दूरी नांही करिसकतहे तातें समस्त वैष्णव सावधना रहियो काहेतें जो यह भावात्मक मार्ग हे ताको प्रकार आगें कहतहे–

मूलं–भावोऽत्र साधनं मार्गे प्रमेयं भगवान् हि सः।
प्रमाणं कृष्णसेवादौ (सेवादिः) स एव च फलं पुनः॥१॥

शब्दार्थः–यह पुष्टिमार्गमें भाव हे सो साधन हे प्रमेय सोही भगवान् हे प्रथम श्रीकृष्णकी सेवा प्रमाणरूप हे ओर फेरि सोही फलरूप हे अथवा श्रीकृष्णकी सेवा आदि जो कार्य हे सो प्रमाण हे ओर फेरि सोही फलरूप हे॥ १॥ टीका–यह पुष्टिमार्गमें भाव सोई सर्वोपरि साधन हे भगवानको प्रमेयबल फल हे श्रीठाकुरजीहू फलात्मक भावरूप प्रमेयरूप हे यह पुष्टिमार्गमें यह प्रमाण नांही जो इतनी सेवातें फल होय जब प्रमेय बल विचारे ताही क्षण फलदान होय तातें श्रीकृष्णकी सेवा हे सोई प्रमाण ओर सोई फलरूप हे ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्गमें साधन तथा फल न्यारो हे फल पाये पीछे साधन न करे सो यह पुष्टिमार्गमें नांही हे साधनहूमें श्रीकृष्णकी सेवा ओर फलहूमें श्रीकृष्णकी सेवा हे तातें फलरूप जानि सेवा कर्त्तव्य हे श्रीकृष्णकी सेवा उपरांत ओर फल कहा हे? सो नवमस्कंधमें श्रीभगवान् कहेहें "मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्। नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम्" (मेरी सेवातें प्रतीयमान सालोक्यादि चतुर्विध मोक्षकों मेरी सेवातें पूर्ण मेरे भक्त नांही इच्छतहें सो कालमें डूबे एसें राज्यादिककों कहांतें चाहें?) एसे भक्त मेरी सेवामें विश्वास कीये हे जो चारों प्रकारकी मुक्तिकोंहू नांही चाहतहें सेवाहीकरि पूर्ण हे सो मुक्तिकोंहू बाधकरूप जानि नांही चाहतहें तिनकों ओर कहा नांही बाधक हे तातें प्रमाणहू कृष्णसेवा ओर फलहू कृष्णसेवा हे॥ १॥

मूलं–तस्मात् स एव संरक्ष्यो निधिरूपस्तु सर्वथा ॥
यत्तद्विरुद्धं तत्सर्वं ज्ञात्वा ज्ञात्वा निवर्त्तयेत् ॥ २ ॥

शब्दार्थः–तासों यह निधिरूप भावही सर्वथा सम्यक्प्रकारसों रक्षा करिवेयोग्य हे ओर जो तासों विरुद्ध हे सो सर्व जानिकें निवृत्त करे ॥ २ ॥ टीका–तातें निधिरूप श्रीकृष्ण हे तेसेंही निधिरूप भगवद्भावकों जानि लोकिक दुःसंगतें निश्चय रक्षा कर्त्तव्य हे यह पुष्टिमार्गकूं जो अनुकूल होय ताको संग्रह ओर प्रतिकूल होय ताको त्याग करनों येही श्रीआचार्यजीकी आज्ञा हे ॥ २ ॥

मूलं–हरिकृष्णे यथापूर्वं स्नेहः स्थाप्यो विशेषतः ॥
गोष्ठी चतादृशैः[तादृशीं]कार्या ध्रुवमस्मत्प्रयत्नतः॥३

शब्दार्थः–हरिकृष्णनामके वैष्णवर्में प्रथमकी नांई विशेषसों स्नेह स्थापन करनो ओर गोष्ठी (स्नेहसहित वार्त्ता) तेसेंके संग अथवा तेसी अपने प्रयत्नसों निश्चय करनी ॥ ३ ॥ टीका–हरिकृष्णमें प्रथमकी नांई स्नेह स्थापन करनो पुष्टिमार्गीय तादृशीय वैष्णव होय तिनहीसों गोष्ठी प्रयत्नकरिकें करे उनसों मिलिकें पुष्टिमार्गको भाव विचारे तो हृदयमें भगवद्भाव अचल होय तातें अवश्य भगवदीयको संग कर्त्तव्य हे ॥ ३ ॥

मूलं–एतस्यांतःस्थितिः प्रायः समीचीनाऽवलोक्यते ॥
नान्यच्च लौकिकं चित्ते विचार्यमिह सर्वथा ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–इनकी (हरिकृष्णकी) बोहोतकरिकें अंतःस्थिति (अंतर्मुखता) दीसवेमें आवतहे तासों इनको संग करनो ओर चित्तमें इहां अन्य लौकिक सर्वथा नांहीं विचारनो ॥ ४ ॥ टीका–भगवदीयके संग नित्य गोष्ठी करतकरत अंतःकरणमें भावकी सिद्धि

होय तव हृदयमें सदा भगवान् स्थित हे तिनको दर्शन होय तव यह जीवको चित्त लौकिकमें सर्वथा न लगे नानाप्रकारके लौकिक विचार, मिथ्याध्यान, मिथ्याक्रिया, मिथ्यावाणी सव निश्चय छूटि जाय ॥ ४ ॥

मूलं-विशेषस्तु समग्रेऽपि भांडागारिकपत्रतः ॥
विज्ञेयः सर्वथा शीघ्रं लिख्यतां च तदुत्तरम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-विशेष तो सर्व समाचारहू भंडारिके पत्रसों जानने ओर इनको उत्तर शीघ्र निश्चय लिखनो ॥ ५ ॥ टीका-विशेष समाचार भंडारिके पत्रतें जानोगे पत्र वांचिकें सर्वथा वेगही प्रति उत्तर लिखोगे ॥ ५ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वाविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ २२ ॥

शिक्षापत्र २३.

अव त्रयोविंश शिक्षापत्रमें लौकिक दुःख हृदयमें न धरनो, अलौकिकमें चिंता न करनी, वहिर्मुखता न राखनी, वहिर्मुखतानिवृत्तिके प्रकार, (श्रीभागवतको पाठ तथा अर्थश्रवण, वैष्णवके संग निवेदनको स्मरण, सदा भगवन्नामग्रहण, सदा शरणभावना,) अष्टाक्षरको उच्चारण राखनो, पंचाक्षरमंत्रकरिकें तदीयत्वभावना करनी, वैराग्य ओर संतोष

१ विग्रमे पत्रके प्रथमश्लोकके टीप्पणमुजव श्रीगोपेश्वरजीके पत्र आयवेलगे तव श्रीहरिरायजीनें लिखे जो उत्तर वेगि लिखोगे जवताई पत्र नांही आवते तवताई उत्तर लिखिवेकी नांही लिखते.

राखनो, यह निरूपण हे ! उपर कहे भगवदीय संग गोष्ठी कीयेतें हृदयमें भाव सिद्ध होय तब हृदयमें प्रभुकों देखें तब लौकिक विचारमें चित्त न जाय परंतु हृदयमेंतें चिंता न छूटे तहांतांई भाव केसें आवे ? सो सर्व प्रकार आगें निरूपण करतहें–

मूलं–भवंतः श्रुतसिद्धांताः कथं मुह्यंति लौकिके ।
अलौकिके तु चिंता या विषयाभावतो न सा॥१॥

शब्दार्थः–श्रीहरिरायजी लिखतहे जो सुन्यो हे सिद्धांत जिनने एसे तुम हो सो लौकिकमें क्यों मोह पावतहो ? ओर अलौकिकमें जो चिंता हे सो तो विषयके अभावसों नांहिहे ॥ १ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी लिखतहे जो तुम श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण, श्रीभागवत, सर्वके सिद्धांतकों जानतहो सो यह लौकिकमें मोह काहेकों पावतहो यह तुमकों उचित नांही हे अब में तुमकों सिद्धांत कहतहों सो चित्त लगायकें सुनियो. जहांतांई लौकिकविषय हृदयमेंतें नांही जात हे तहांतांई अलौकिक भाव हृदयमें नांही रहत हे तातें क्षणक्षणमें चिंता होत हे जब हृदयतें विषयको अभाव होय तब वह चिंता नांही होतहे सो अपने पुष्टिमार्गमें लौकिक अलौकिक दोउ चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ १ ॥

मूलं–यतः सर्वसमर्थोऽस्मत्प्रभुः सर्वं करोति हि ।
पितेव [पतिवत्] निजदासानामैहिकं पारलौकिकम्२

शब्दार्थः–जासों अपने प्रभु सर्व समर्थ हे सो पिताकी नांई अथवा पातिकी नांई अपने दासनको लौकिक ओर पारलौकिक दोउ सिद्ध करेंगे ॥ २ ॥ टीका–श्रीकृष्ण अपने प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे सो श्रीगुसांईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "कर्तुं पुनरथाकर्तुमन्यथाकर्तुमीश्वरे । सामर्थ्यं मन्मया दृष्टं त्वय्येवातो न संशयः" (ईश्वर एसे जो तुम तिनमेंही करवेको,

न करवेको ओर विपरीत करिवेको सामर्थ्य जो देख्यो तातें मोकों संशय नांहीं) श्रीकृष्ण कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं, सर्वसामर्थ्ययुक्त हे सो प्रभु लौकिक, अलौकिक सर्व सिद्ध करे तातें भगवदीयकों चिंता नांहीं कर्तव्य हे सो दृष्टांत कहत हे जेसें लौकिकमें अपने पिता पुत्रकी रक्षा करे तेसें प्रभु अपने निजदासनको लौकिक, अलौकिक, सर्व सिद्ध करेंगे यह निश्चय जाननो ॥ २ ॥

मूलं–अत एवास्मदाचार्यवचनं वै विराजते ।
'भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्'

शब्दार्थः–तासोंही " भगवानहू पुष्टिमार्गमें विराजमान हे सो लौकिक गति नांहीं करेंगे " यह श्रीमदाचार्यजीको वचन निश्चय विराजित हे ॥ ३ ॥ टीका–पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों चिंता नांहीं कर्तव्य हे एसे अपने श्रीआचार्यजीके वचनामृत विराजत हे जो उत्तरार्ध हे आर्यावृत्तसों लिख्यो हे सो नवरत्नग्रंथके प्रथमश्लोकको उत्तरार्ध हे सो वचनतें यह पुष्टिमार्गमें भगवान् साक्षात् विराजमान हे सो अपने निवेदनीय जीवकी लौकिक गति कवहू न करेंगे यह विचार वैष्णव निश्चय मनमें राखे तातें यह पुष्टिमार्गसमान ओर दूसरो कोउ मार्ग नांहीं हे जामें शरण आये पाछें लौकिक गति कवहू न होय तहां कोउ कहे जो वैराग्यकरि लौकिक गति न होय परंतु लौकिकमें रहे, सगरो लौकिक कार्य करे तिनकों लौकिक गति केसें न होय ? तहां कहतहे ॥ ३ ॥

मूलं–मर्यादामार्गवैराग्याद्यभावेऽपि गतिः सताम् ।
चिंतासंतानहंतारोऽप्याचार्यपदरेणवः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों मर्यादामार्गके वैराग्यादिक साधनको अभाव होय तोहू सत्पुरुषकी गति होय ओर चिंताके

विस्तारकों मिटायवेवारी श्रीआचार्यजीके चरणारविंदकी रजहू (अपनेपें विराजमान) हे ॥ ४ ॥ टीका–मर्यादामार्गकी यह रीति हे जो ज्ञानवैराग्यकरिकें गति होय जितनो साधन जीव करे तितनी उत्तम गति वाकों मिले ज्ञानमार्गकरि सत्य लोक (ब्रह्माके लोक) में जात हे यह मर्यादामार्ग (प्रमाणमार्ग) की रीति हे ओर यह पुष्टिमार्गमें प्रेमयतें फल हे साधनतें फल नांही होतहे सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें भगवान् कहेहें " केवलनैव भावेन गोप्यो गावो मृगाः खगाः । येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा " [केवल भावकरिकेंही गोपीजन, गायें, मृग, पक्षी, और जो अन्य मूढबुद्धिवारे नाग सो सिद्ध होय विनाश्रम मोकों प्राप्त भये] व्रजमें श्रीकृष्णभगवान् निःसाधन हे तासों प्रभु अपने प्रमेयबलतें फलदान कीये हें तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्ण विराजतहे सो साधनकी अपेक्षा नांही राखनहें स्वतः प्रमेयबलतें निश्चय फलदान करेंगे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों लौकिक अलौकिक चिंता कबहू नांही कर्त्तव्य हे सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि " (निवेदन कीयो हे आत्मा जिनने एसे वैष्णवनकों कबहू कछुहू चिंता नांही कर्त्तव्य हे) निवेदन कीयो तो जीवकों चिंता नांही कर्तव्य हे ओर श्रीगुसाँईजीनें नवरत्नकी टीकामें मंगलाचरण कीयो हे " चिंतासंतानहंतारो यत्पादांबुजरेणवः । स्वीयानां तान्निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः " [अपने भक्तनके चिंताके विस्तारकों मिटायवेवारी जिनके चरणारविंदकी रेणु हें इन अपने श्रीआचार्यजीकों वारंवार प्रणाम करूंहूं] श्रीआचार्यजीके चरणकमलकी रेणुके प्रसादतें सगरी चिंताको आपुतें नाश होतहे एसे श्रीआचार्यजीके चरणकमलकोंमें वारंवार नमस्कार करतहों ॥४॥

मूलं–अतस्तदीयाः किं भ्रान्ताश्चिता विदधते जनाः।
ज्ञानिनोऽपि न वै दुःखं चित्ते दधति लौकिकम्॥५॥
सेवारसादिरहिताश्चित्रं भक्ताः कथं तथा।
यैः स्वरूपस्य सेवायां दर्शनस्पर्शनादिकम्॥६॥
अनुभूतं सदा तेषां चित्तं दुःखयुतं कथम्।
परमानंदसंबंधे दुःखं तिष्ठति नैव हि॥७॥

शब्दार्थः–तासों श्रीआचार्यजीके शरण आये एसे भगवदीय जन क्यों भ्रांत भये हें जो चिंता करतहें? सेवासुखके अनुभवकरिकें रहित एसे ज्ञानिजनहू चित्तमें लौकिक दुःखको नांही धरे हें तब सेवासुखसहित भक्त चित्तमें लौकिक दुःख क्यों धरतहें? यह आश्चर्य हे जिननें स्वरूपकी सेवामें दर्शनचरणस्पर्शादिकको सदा अनुभव कीयो हे तिनको चित्त दुःखयुक्त केसें होय? काहेतें जो परमानंदरूप श्रीकृष्णके संबंधमें निश्चय दुःख नांही रहतहे॥५॥६॥७॥

टीका–एसे पुष्टिमार्गीय वैष्णव श्रीआचार्यजीके सेवक तदीय भ्रांत होय चिंतामें क्यों परे हें? काहेतें जो ज्ञानमार्गमें जीव हे सोहू लौकिक दुःख मनमें नांही धरत हें उनहूके चित्तकों लौकिकदुःखासि नांही दहतहें तब यह तो पुष्टिमार्ग हे जहां श्रीआचार्यजीद्वारा भगवानसों संबंध भयो हे सो अज्ञानकरिकें चिंतामें जरतहें सो चिंता न करनी प्रभु सर्व सामर्थ्ययुक्त हे॥५॥ एसे पुष्टिमार्गीय वैष्णव श्रीकृष्णका सेवारस विना क्यों रहतहें? ज्ञानीकों सेवारसको ज्ञान नांही सोहू चिंता नांही करत हे तो यह तो साक्षात्श्रीकृष्णके स्वरूपकी सेवा करत हे दर्शन करत हे चरणस्पर्श करतहे तोहू चित्तमें भगवद्रसके अनुभव करी रहित क्यों रहत हे? तातें यह जान्यों जात हे जो चिंता चित्तमें भरी हे तातें रसको अनुभव नांही होत हे॥६॥

एसो पुष्टिमार्ग हे जामें भावात्मक सर्व पदार्थको अनुभव हे तिनकों चित्तमें दुःख क्यों होतहे ? सो लौकिक चिंताहीतें अज्ञानकरि दुःखी हे भावात्मक रसको अनुभव नांही होतहे ओर श्रीकृष्ण परमानंदरूप फलात्मकको संबंध श्रीआचार्यजीद्वारा भयो हे एसे निवेदनीय वैष्णवके हृदयमें दुःख केसें ठहरत हे? सो अज्ञानकरि लौकिक चिंतातें दुःखी होत हे ॥ ७ ॥

मूलं-पित्रादयस्तु सर्वेऽपि संबंधाद्दुःखहेतवः (संबंधाय स्वहेतवः)। बहिर्मुखजनस्येव बाहिर्मुख्यंततस्त्यजेत्८

शब्दार्थः-पिता, स्त्री, पुत्रादिक सर्वहू बहिर्मुखजनकोंही संबंध सो दुःखके कारणरूप हे (अथवा संबंधके लिये बहिर्मुखको अपने कारणरूप हे) तासों वहिर्मुखताका त्याग करे ॥ ८ ॥ टीका-लौकिकमें पिता हे सो अपने पुत्रकों सर्वस्व देतहे तासों प्रिय लागत हे तेसें स्त्रीपुत्रादिकहू अपने लिये प्रिय लागतहे परंतु यह पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णकों साक्षात् संबंध भयो हे तहां सर्व वस्तु सिद्ध हे तोहू अज्ञानकरिकें चिंताकरि पित्रादिकसों लौकिकके अर्थ स्नेहकरि वहिर्मुखता करतहें अपनो (श्रीकृष्णसों भयो एसो)संबंध विचारे तो वहिर्मुखताको त्याग होय॥८॥

मूलं-बहिर्मुखस्य बाधंते दोषा दैहिकमानसाः।
क्षीणधातोरिवार्त्तस्य रोगा वातिकपैत्तिकाः ॥९॥

शब्दार्थः-जेमें क्षीणधातु रोगीहोय तिनकों वायुके तथा पित्तके रोग वाधा करे तेसें वहिर्मुखको देहसंबंधी ओर मनसंबंधी दोष बाधा करतहे ॥ ९ ॥ टीका-वैष्णवकों वहिर्मुखको संग बाधक हे संगतें दैहिक दोष मानस दोष निश्चयही आयलागे सो दृष्टांत कहतहे जो

१ मोकों पितासों, स्त्रीसों, पुत्रसों कार्य सिद्ध होतहे एसें वहिर्मुखको ज्ञान होतहे.

रोगी होय ताकी धातु क्षीण होय तिनकों वायु पित्त सर्व आय ग्रसें या भांति बहिर्मुखको संग होय तिनकों सब दोष आय लगे ॥ ९ ॥

मूलं–तन्निवृत्तिस्तु संपाद्या सतां संगेन सेवया।
श्रीभागवतपाठेन तदर्थश्रवणादपि ॥ १० ॥

शब्दार्थः–इनकी निवृत्ति तो सत्पुरुषनके संगतें तथा सेवातें संपादन करनी ओर श्रीभागवतके पाठसों तथा इनके अर्थश्रवणसोंहु बहिर्मुखताकी निवृत्ति करनी ॥ १० ॥ टीका–जेसें रोगी सुंदर औषध खाय तो वाको रोग जाय तेसेंही तादृशीय भगवदीयको वैष्णव संग करे, उनकी सेवा करे तो बहिर्मुखता जाय. भगवदीयके संगतें देहिक, मानसिक सर्व दोष दूरी होय, तहां कोई संदेह करे जो तादृशीय वैष्णव मिलने दुर्लभ हे सो न मिले तो कहा करे ? तहां कहतहें जो श्रीभागवतको पाठ करे काहेतें जो श्रीभागवत श्रीकृष्ण-हीको स्वरूप हे और श्रीभागवतके पाठको अभ्यास न होय-तो पुष्टि-मार्गीय भगवदीयके मुखतें श्रवण करे तो सर्व दोष जाय ॥ १० ॥

मूलं–निवेदनस्मरणतः सद्भिः सह कथादिभिः।
सदा नामग्रहणतः सदा शरणभावनात् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–निवेदनके स्मरणसों, सत्पुरुषनके संग कथादिकरिकें, सदा भगवन्नामग्रहणसों, सदा शरणकी भावनासों, चिंता निवृत्त होतहे एसे चतुर्दश श्लोकमें संबंध हे ॥ ११ ॥ टीका–जो श्रीभागवत श्रवणकरिवेको संयोग न वनि आवे तो अहर्निश निवेदनको स्मरण कीयो करे तथा सदा भगवदीयके मुखतें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीगुसाँईजीके ग्रंथनकी कथा सुने, येहु न वने तो सदा श्रीकृष्णके नामको स्मरण करे, परंतु नामहूको स्मरण यह जीवकों दुर्लभ हे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " त्वन्नामोच्चारणेऽप्यस्ति न जीवस्य-

धिकारिता । अलौकिकत्वात्स्वतःप्राप्तस्तद्वाचो लौकिकत्वतः " (श्रीगुसाँईजी श्रीगोवर्द्धननाथजीसों कहतहें जो तुह्मारे नामकोहू उच्चारण करिवेकी योग्यता जीवमें नांहीहे काहेतें जो तुह्मारो नाम तो महा अलौकिक हे सो जीवकी लौकिक वाणीतें केसें लियो जाय ?) तासुं नामहू न बनिआवे तो शरणकी भावना करे सो विवेकधैर्याश्रयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः । दुःखहानो तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥ भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते । अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः " (यह लोकमें तथा परलोकमें निश्चय हरि शरण हें. दुःखकी हानिमें तथा पापमें, भयमें, कामादिक अपूर्ण होय तहां, भक्तकृतद्रोहमें अथवा भक्तको द्रोह होयजाय तहां, भक्तिके अभावमें, ओर भक्त अतिक्रम करे तहां, अशक्यमें तथा सुशक्यमें, सर्व अर्थमें हरि शरण हें) इत्यादि वचनके अनुसार शरणकी भावना करे ॥ ११ ॥

मूलं-अष्टाक्षरमहामंत्रकीर्त्तनेन विशेषतः । पंचाक्षरेण मंत्रेण तदीयत्वविभावनात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः-अष्टाक्षर महामंत्रके कीर्तनकरिकें, विशेषसों पंचाक्षरमंत्रकरिकें तदीयपनेके विशेषभावनासों चिंता निवृत्त होतहे ॥ १२ ॥

टीका-अष्टाक्षर महामंत्र हे " श्रीकृष्णः शरणं मम " येही मंत्रको अष्टप्रहर पुकारिकें कीर्तन करे तो सर्व सिद्ध होय सो द्वादशस्कंधमें श्रीशुकदेवजी कहेहें " कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधः परं व्रजेत् "(यद्यपि कलियुग दोषनिधि हे परंतु तामें एक बडो गुण हे जो श्रीकृष्णके नामको कीर्त्तन जो करतहे सो यह कालबंधनतें छुटिजातहे) तातें अष्टाक्षरमंत्रको कीर्त्तन करतेतथा पंचाक्षरमंत्रकी भावना तदीय होयकें तदीयके ~~संग मिलिके~~ करे.

श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्नमें कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " [सर्वथा तादृशीय वैष्णवजनके संग निवेदन तो स्मरण करिवेयोग्य हे] भगवदीयके संग विना पंचाक्षरभाव प्रकट न होय तातें निवेदनके स्मरणमें भगवदीयकी अपेक्षा हे ॥ १२ ॥

मूलं–वैराग्यपरितोषाभ्यां कृष्णसन्निहितस्थितेः ।
लौकिकक्केशऔदास्यात् पुत्राद्यननुरागतः॥ १३ ॥

शब्दार्थः–वैराग्य तथा संतोषकरिकें, श्रीकृष्ण (भगवत्स्वरूप) के सन्निधानमें स्थितिसों, लौकिकक्केशमें भयो जा औदासीन्य तासों, ओर पुत्रादिकनमें अप्रीतिसों चिंता निवृत्त होतहे॥ १३॥टीका–संसार (यह देहसंबंधी लौकिक पदार्थ) में वैराग्य राखनो, संसारमें वैराग्य होय तो यह लौकिक दुःख सुख चित्तकों बाधा न करे तातें वैराग्य राखे ओर यथालाभ संतोष होय (जो सहजमें आय प्राप्त होय ताहीमें संतोष होय) तो मनमें विक्षेप न होय ओर श्रीकृष्ण जहां विराजत होय पुष्टिमार्गकी रीतिसों सेवा होय तिनके पास स्थिति होय तो दर्शन सेवा वनिआवे सो भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति " (समीपमें अथवा दूरीमें जेसें चित्त दोषयुक्त न होय तेसें रहे) निकटरहिकें सेवा करे तो चित्तके सगरे दोषको नाश होय परंतु वोहोत निकटमें चित्तमें दोष आवे तो नेक दूरी रहे परि नित्य सेवा दर्शन बने सो करे, लौकिक क्केशतें अपनो मन उदास राखे अपने चित्तमें लौकिक क्केश न करे ओर देहसंबंधी पुत्र, स्त्री, वंधु, कादूमें अनुराग न राखे ॥ १३ ॥

मूलं–गृहवित्ताद्यनासक्त्या तदीयेष्वतिरागतः ।
नवरत्नस्य पाठेन सर्वचिंता निवर्त्तते ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—गृह ओर धन आदिमें अनासक्तिकरिकें, तदीय वैष्णवजनमें अतिस्नेहमों, ओर नवरत्नग्रंथके पाठकरिकें लौकिक अलौकिकसंबंधी सगरी चिंता निवृत्त होतहे ॥ १४ ॥ टीका—गृह, धन इत्यादिकमें आसक्ति न राखे ये सगरे चिंताके मूल हे तातें इनमें प्रीति न करे पुष्टिमार्गीय भगवदीयमें अनुराग राखे तथा नवरत्नग्रंथको पाठ नित्य नियमसों बने तितनो करे तो मनमेंतें सगरी चिंता निवृत्त होय. चिंतानाशके अर्थ गोविंददुबे वैष्णवके मिष एतन्मार्गीय सवनके लिये श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नग्रंथ प्रकट कीये हे तातें नवरत्नके पाठतें सर्वचिंता निश्चय दूरी होय ॥ १४ ॥

मूलं—एवं निवृत्तवैमुख्यं जनं दुःखं न बाधते ।
अतस्तन्मात्रयत्नैस्तु भवितव्यं भवादृशैः ॥१५॥

शब्दार्थः—उपर कहे ताप्रकार निवृत्त होय गई हे वहिर्मुखता जिनकी एसे वैष्णवजनकों दुःख बाधा नांही करतहे तासों वहिर्मुखतानिवृत्तिमात्रमें हे यत्न जिनको एसे तुह्मारे सारिखेकों रहेनो ॥ १५ ॥ टीका—उपर सगरे भगवद्धर्म कहेहें तिनसों वहिर्मुखता निवृत्त करी हे तिनको सगरो दुःख दूरी होयगो उह मनमें परम सुख पावेगो याभांति दुःखनिवृत्तिके अनेक यत्न कर्त्तव्य हे यह यत्न भावके वर्द्धक हे जाके भाग्यमें वेगि फलदान हे तिनसों भावके वर्द्धक यत्न बनिआवेंगे ॥ १५ ॥

मूलं—दुःखेन न वृथा नेयः कालः परमदुर्लभः ।
कृष्णसेवानुकूलस्तु निजाचार्याश्रयाश्रितैः॥१६॥
द्रुतं हेया वृथा चिंता प्राप्ताऽपि निजदोषतः ।
चित्तोद्वेगं विधायाऽपीत्येतद्वचनचिंतनात् ॥१७॥

- शब्दार्थः—अपने श्रीआचार्यजीके आश्रयके आश्रित अथवा अपने श्रीआचार्यजीके दृढ आश्रयवारे भगवदीयके आश्रित एसे वैष्णवकों दुःखकरिकें भगवत्सेवामें अनुकूल यह परम दुर्लभ काल नांही वीतावनो ॥ १६ ॥ ओर अपने दोषतें प्राप्त भई एसीहू वृथा चिंता (चित्तको उद्वेग करिकेंहू भगवान् जो जो करेंगे सो इनकी लीला हे) नवरत्नके वचनके चिंतनसों शीघ्र छोडनी ॥ १७ ॥ टीका—यह काल परम दुर्लभ हे फेरि एसो समय न वनेगो यह मनुष्यदेह श्रीकृष्णकी सेवाके अनुकूल हे सो यह लौकिक चिंताकरिकें वृथा न खोवे काहेतें जो येही देहतें श्रीकृष्णकी सेवा वनतहे ओर युगमें यह पुष्टिमार्गीय सेवा नांही तासों यह समय ब्रह्मादिकनकों दुर्लभ हे श्रीआचार्यजीद्वारा ब्रह्मसंबंध ओर युगमें कहां हे? श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको आश्रय फेरि कहां? तथा श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके आश्रयवारे तादृशीय निजसेवकको आश्रय फेरि कहां हे? या भांति मनमें विचारिकें यह काल परम दुर्लभ जानि दुःख क्लेश लौकिकमें मन लगाय नांही खोवनो भगवदीयको आश्रय तथा अपने श्रीवल्लभाचार्यजीको आश्रय करी श्रीकृष्णकी सेवा अवश्यही कर्तव्य हे सो यह देह तथा काल सेवानुकूल हे यह जानि एकक्षणहू सेवा विना न रहे ॥ १६ ॥ शीघ्रही चिंताको त्याग करे एकचिंतातें अनेक दोष प्राप्त होतहे तातें नवरत्नको वचन चिंतन करी निश्चयही चिंताको त्याग करे सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेंहें— "चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति । तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां द्रुतं त्यजेत्" (चित्तोद्वेग करिकेंहू हरि भगवान् जो जो करेंगे तेसेंही इनकी लीला हे एसें मानिकें शीघ्र चिंताको तजे) यह-वचनतें शीघ्रही चिंताको त्याग करी उपर भगवद्धर्म कहे तामें प्रवृत्त होय भगवत्सेवा, स्मरण, तादृशीयको संग, मन लगायकें करे यह

नवरत्नग्रंथको नित्य चिंतन करे पाठ करे भाव विचारे तो चिंता दूरी होय ॥ १७ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रयोविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ २३ ॥

शिक्षापत्रं २४.

अब चतुर्विंश शिक्षापत्रमें भगवत्कृपाही कारण हे तासों अपने आचार्यको दृढ आश्रय राखनो अवतारदशामें जेसें श्रीयमुनाजी आदि भगवत्संबंध करायवेवारे हें तेसें अनवतारदशामें श्रीमदाचार्यवर्य भगवत्संबंधसाधक हें जेसें सबनकों मारिवेवारोहू सर्प अमृतपान करिवेवारोकों दुखिवेमेंहू समर्थ नांहीहे तेसें सबनकी बुद्धिको नाश करिवेवारोहू यह कराल काल श्रीमदाचार्यजीके आश्रय करिवेवारेकों कछु करिवेकों समर्थ नांहीहे तासों आपनकों तो संपत्तिमें तथा विपत्तिमेंहू श्रीआचार्यचरणोदित अष्टाक्षर महामंत्रही साधन ओर साध्य है यह निरूपण हे। उपर कहे जो चिंता तजे भगवत्सेवादि भगवद्धर्म करे सो जीवमें कहा सामर्थ्य हे? कालदोषतें ग्रसित हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको दृढ आश्रय होय तो प्रभु कृपा करे सो आश्रय कोन भांतिकरे सो आगें कहतहें.

मूलं–भक्तिमार्गे कृपामात्रं कारणं परमुच्यते ।
तेनैव मार्गे सकलं सिद्धिमेति न संशयः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–भक्तिमार्गमें कृपामात्र उत्तम कारण हे या कारणतेंही सकलसिद्धिकों पावेंगे संशय नांही ॥ १ ॥ टीका–यह श्रीआचार्यजी

यह शिक्षापत्रमें आगे दोयक जगे श्लोकांकमें कछुक गडबड दिखे हे परंतु ता प्रमाण राखिवेसूं अर्थसंदर्भ ठीक दिखे हे तासूं पूर्ववत् श्लोकांक रखे हे.

महाप्रभुजीको पुष्टिभक्तिमार्ग हे तामें एक कृपाही फलको कारण हे साधनतें फल नांही हे कृपाहीतें फलसिद्धि हे तातें श्रीकृष्णकी कृपा परमकारण हे ताहीतें यह पुष्टिमार्गमें स्थित जो वैष्णव हे तिनकों सकलफल सिद्धहीहे यद्यपि इन जीवनतें साधन नांही बनत तोहू कहा भयो? पुष्टिमार्गमें स्थिति तो भई निवेदन तो कीयो तातें प्रमेयबलतें विनाहीसाधन इनकों श्रीकृष्ण सर्वथा सर्व सिद्ध करेंगे यामें संशय नांही ॥ १ ॥

मूलं-सा तु स्वाचार्यशरणागतौ तैर्ज्ञापितः प्रभुः ।
यदैव कुरुते कृष्णस्तदा भवति सर्वथा ॥ २ ॥

शब्दार्थः-यह कृपा तो अपने श्रीआचार्यजीके शरण जाय तब इननें जताये एसे प्रभु श्रीकृष्ण जबही कृपा करेंगे तब निश्चय होयगी ॥ २ ॥ टीका-पुष्टिमार्गमें आय अपने श्रीवल्लभाचार्यजीके शरणागत होयरहे तब श्रीआचार्यजी जीवकों श्रीकृष्णकों जतावेंगे तब सर्वथा उह जीवपर श्रीकृष्ण कृपा करेंग ॥ २ ॥

मूलं-अतस्तदाश्रयो जीवैर्दृढ एव विधीयताम् ।
यथावतारलीलायां तासां श्रीयमुना मता ॥ ३ ॥
यथा वा हरिदासो हि पुलिंदीनां गिरिर्मतः ।
यथा वाग्निकुमाराणां व्रते कात्यायनी मता ॥ ४ ॥
प्रादुर्भूतः स्वयं कृष्णो यथा स्वप्रापणे मतः ।
यथा वा दैन्यभावात्मा प्रादुर्भावे स्वयं मतः ॥ ५ ॥
तथा परोक्षे जीवानां पुष्टिसंबंधसिद्धये ।
श्रीमदाचार्यसंबंधो नान्यदस्ति हि साधने ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-तासों जीव श्रीमदाचार्यजीकों दृढ आश्रय करे काहेतें जो जेसें अवतारलीलामें कुमारिकानकों श्रीयमुनाजी हे ॥ ३ ॥ अथवा

जेसें पुलिंदीकों भगवद्भक्त गिरिराज हे अथवा जेसें अग्निकुमारिकानकों व्रतमें कात्यायनी हे यह सर्व भगवत्संबंध करायवेवारे हे ॥ ४ ॥ जेसें श्रीकृष्णकी प्राप्तिमें आपही श्रीकृष्ण प्रादुर्भूत भये हें ओर जेसें रासपंचाध्यायीमें प्रादुर्भावमें दैन्यभावात्मक आपही हें ॥ ५ ॥ तेसें जीवनकों परोक्षमें पुष्टिसंबंधकी सिद्धिके अर्थ श्रीमदाचार्यजीद्वारा संबंधही साधन हे अन्य साधन नांहीहे ॥ ६ ॥ टीका–तातें यह पुष्टिमार्गीय जीव श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलको दृढ आश्रय निश्चयही करे तब फल प्राप्त होय जेसें अवतारदशामें श्रीयमुनाजीद्वारा कुमारिकानकों प्रभु प्राप्त भये तेसेंही अब श्रीआचार्यजीद्वारा जीवनकों प्रभुको संबंध भयो तातें मुख्य श्रीआचार्यजीको आश्रय हे ॥ ३ ॥ या समयमें तो एक श्रीआचार्यजी द्वार हे जेसें अवतारलीलामें हरिदास (श्रीगिरिराज) परमभक्त हे तिनके संगतें पुलिंदीकों भक्ति सिद्ध भई लीलाकी प्राप्ति भई ओर अग्निकुमारिकानकों कात्यायनीमिसतें श्रीयमुनाजीद्वारा सिद्धि भई पुलिंदीकी सेवा श्रीगिरिराजद्वारा प्रभु अंगीकार करी कुमारिकानकी सेवा श्रीयमुनाजीद्वारा अंगीकार करी तेसेंही अब श्रीआचार्यजीद्वारा वैष्णवकी सेवा प्रभु इहां अंगीकार करतहें ॥ ४ ॥ ओर श्रीकृष्णप्राकट्यदशामें स्वयं प्रभु आपकी प्राप्ति करावतहें फलप्रकरणरासपंचाध्यायीमें अतिदैन्यकी भावनातें आपही प्रभु प्रकटे सो " इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा । रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः ॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः" (एसें (गोपिकागीतसों) उत्कृष्टगान करते, ओर विचित्रप्रकार विलाप करते, श्रीकृष्णके दर्शनमें लालसावारे. गोपीजन हे परिक्षित! विप्रयोगद्योतकस्वरसों रुदन करत भये ॥ इनके मध्यमेंतें हास्ययुक्त हे मुखारविंद जिनको, एसे पीतांबर धारण करिवेवारे, वनमालायुक्त, ओर

साक्षात् कामदेवके कामदेवरूप प्रभु प्रकट भये) याभांति दैन्यतें प्रकटे ॥ ५ ॥ प्राकट्यदशामें जेसें श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराज, प्रभु आप ओर दैन्य उनतें सब सिद्ध हे तेसेंही अब परोक्षदशामें पुष्टिसंबंध भयो हे काहेतें जो यह कलियुगमें ओर साधन नांही हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुके संबंधतें निवेदन होय सोही, साधन हे ओर दूसरो साधन नांही एक श्रीआचार्यजीके संबंधतेंही प्रभु फलदान करतहे ॥ ६ ॥

मूलं-अत एवोक्तमाचार्यैः स्तोत्रे कृष्णाश्रयाभिधे।
"शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्" ॥७॥

शब्दार्थः—तासोंही श्रीमदाचार्यजी श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रमें "शरणमें रहे एसे जीवनके उद्धारनिमित्त श्रीकृष्णकों में विज्ञप्ति करूंहूं" एसें कहेहें ॥ ७ ॥ टीका—हमारे श्रीवल्लभाचार्यजी श्रीकृष्णाश्रयग्रंथमें श्रीकृष्णसों जीवके लिये विज्ञप्ति कीये हे जो, जीव शरण आये तिनको उद्धार करो ओर प्रतिज्ञा करी जीवनकों विश्वास कराय धीरज दिये जो उद्धार होयगो चिंता मति करो सो अब कहतहें ॥ ७ ॥

मूलं-विश्वासार्थं वरमदादिति श्रीवल्लभोऽब्रवीत्।
अतो नान्यप्रकारेण फलं स्वहृदि चिंत्यताम् ॥८॥

शब्दार्थः—वैष्णवकों विश्वासके अर्थ श्रीकृष्णाश्रयग्रंथमें [श्रीकृष्णके समीप श्रीकृष्णाश्रयको जो पाठ करे तिनकों श्रीकृष्ण आश्रय होय] एसें श्रीवल्लभाचार्यजी कहतहें यह प्रतिज्ञा करी हे तासों अन्य प्रकारकरिकें अपने हृदयमें फलको विचार नांही करनो ॥ ८ ॥ टीका—श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी प्रथम श्रीकृष्णसों [उपरके श्लोकमें लिखे ता प्रकार] विज्ञप्ति करिकें अब अपने पुष्टिमार्गीय वैष्णवनसों कहतहें "कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत्कृष्णसन्निधौ। तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण

इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत्" यह कृष्णाश्रयग्रंथको पाठ श्रीकृष्णके सन्मुख करियें ताकरिकें श्रीकृष्ण अपने आश्रय निश्रय सिद्ध करेंगे यह मेरी प्रतिज्ञा हे या प्रकार श्रीमहाप्रभुजी प्रतिज्ञा कीये जेसें चीरहरणमें श्रीठाकुरजी भक्तनसों कहे जो शरदऋतुमें रासकरि तुह्मारे मनोरथ पूर्ण करेंगे यह कहे तब भक्तनको विश्वास भयो नांही तो शरदऋतु-पर्यंत विश्वास न रहेतो तेसेंही श्रीआचार्यजी महाप्रभु प्रतिज्ञा करी अपने निजसेवकनकों विश्वास दिये तातें एक श्रीआचार्यजी महाप्रभुद्वारा फलसिद्धि हे ओर प्रकार फलको चिंतन न करनो ॥ ८ ॥

मूलं–विश्वासेन यथाप्नोति चातकः स्वातिजं जलम् ।
तथा चेत्कृष्णजलदः स्वानंदं वर्षयिष्यति ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–विश्वासकरिके जेसें चातक पक्षी स्वातिके जलको पावेहे तेसेंही श्रीकृष्ण घनश्याम हे सो अपने आनंदकों वरखेंगे ॥ ९ ॥ टीका–विश्वासकरि चातक जेसें स्वातिके जलकी अपेक्षा राखतहे ओर पृथ्वीपर कुवा, तलाव, नदी. समुद्र पर्यंत भयों हे तामें आशा नांही करतहे यह विश्वास देखि घनहु चातकको मनोरथ पूर्ण करतहे तेसेंही जा वैष्णवनें एक श्रीकृष्णहीको दृढ आश्रय मनमें कीयो हे ओर अवतार तथा ओर देवतानसों फलकी अपेक्षा नांही राखतहे तिनकों जलद (मेघ) रूप श्रीकृष्ण अपनो आनंद वरखेंगे निश्चय आनंददान करेंगे ॥ ९ ॥

मूलं–एवं विश्वाससद्भावे सर्वमेव भविष्यति ।
यतः परिवृढोऽस्माकं सर्वं कर्तुं क्षमो मतः ॥ १० ॥

शब्दार्थः–एसें विश्वास होय तो सर्वही सिद्ध होयंगे काहेतें जो अपने स्वामी प्रभु सर्व करिवेमें समर्थ हे ॥ १० ॥ टीका–या भांति पुष्टिमार्गीय वैष्णव शुद्धभावसों विश्वास करे तिनकों सर्व सिद्ध होय

सो श्रीहरिरायजी कहतहे जो एसे हमारे प्रभु सर्वकरणमें सामर्थ्य-युक्त हे तातें कृपा करेहींगे ॥ १० ॥

मूलं–स हि स्वतः समर्थत्वान्न साधनमपेक्षते ।
कालकार्यं विलोक्यात्र तदीयानां विशेषतः ॥
निःसाधनत्वसंस्फूर्त्या दृढःस्यात्तत्पदाश्रयः॥११॥

शब्दार्थः–अपने स्वामी प्रभु आपतेंही समर्थ हे तासों साधनकी अपेक्षा नांही राखतहें तासों कालके कार्यको देखीकें तदीय वैष्णव-नकों विशेषकरिकें निःसाधनपनेकी बरोबर स्फूर्ति होय ताकरिकें इनके चरणारविंदको दृढ आश्रय होय ॥ ११ ॥ टीका–श्रीकृष्ण आपुही स्वतः सामर्थ्ययुक्त हे, कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं समर्थ हे सो अपने भक्तनके साधनकी अपेक्षा नांही राखतहें जो यह इतनो साधन करे तो यह फल होय यह तो अन्य देवतामें हे जो जितनो साधन करे तितनो लौकिक फल देय सो श्रीकृष्णमें नांहीहे यह कालकी कृति महा कठिन विपरीतधर्मयुक्त देखिकें अपने तदीयपर विनसाधनही विशेष कृपा करतहे जेसें व्रजभक्त रासपंचाध्यायीमें अंतर्ध्यानसमय अनेक साधन कीये, लीला कीये. पाछे निःसाधन होय गुणगान कीये तब प्रभु अपनोही आश्रय जानिकें प्रकटे तेसेंही जब वैष्णव मनतें निःसाधन होय दैन्य करी दृढ आश्रय करे तब प्रभु कृपा करे ॥ ११ ॥

मूलं–असुराणामविश्वासस्तथा तत्संगिनामपि ।
मतिमोहो महादोषनिधानं संभविष्यति ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–असुर जीवकोही प्रभुनमें अविश्वास हे तेसें इनके संगी-कोंहु अविश्वास हे तातें इनमेंसूं काहूको संग होय तो मतिमोहरूप महादोषके निधानको अवश्य संभव हे ॥ १२ ॥ टीका–जिनके

मनमें अविश्वास हे सो केवल असुरही हे तिनको जो कोय संग करे तिनकोंहू आसुरावेशरूप अविश्वास होय तातें उनको संग न करनो या जीवकों मतिको मोह भयो हे तातें दोषरूप होयरह्यो हे तातें निःसाधनता नांही आवतहे अहंतादोषसहित हे अपनकों यह जानतहे जो मेंही करतहों यह अज्ञानदोष कवहू न दूरी होय ॥ १२ ॥

मूलं-यथा पूर्वकथां श्रुत्वा भगवत्पादसेविनाम्।
स्वस्मिन्दैन्यसमुत्पत्तिस्तथा साधननाशनम्॥१३॥

शब्दार्थः-भगवानके चरणारविंदकों सेवन करिवेवारेनकी पेहेलेंकी (प्रह्लादादिककी) कथा सुनिकें जेसें अपनेमें दैन्यकी बरोबर उत्पत्ति होतहे तेसें साधनको नाश होतहे ॥ १३ ॥ टीका-जब पूर्वजो प्रथमके भक्त प्रह्लादजी तथा व्रजभक्तादिक श्रीभागवतमें कहेहें तथा पुष्टिमार्गीय श्रीआचार्यजी महाप्रभुके सेवक चोराशीवैष्णवकी वार्ताप्रभृति कथा सुने प्रथम याभांति सेवा करीहे में कहा करतहों याभांति दैन्य होय भगवत्सेवा करे तब निःसाधन होय सर्वदोष दूरी होय तातें श्रवण मुख्य सेवाको पोषक हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभु भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " सेवायां वा कथायां वा " दोय कर्त्तव्य हे सो भगवत्सेवा प्रीतिसों करे भगवदीयके मुखतें कथा सुनिवेतें दैन्य होय ताकरिकें अहंतारूप [में साधन करतहों यह] दोषको नाश होय ॥ १३ ॥

मूलं-तदीयानां सर्वमस्ति सदा तद्भावभाविनाम्।
इतरेषां कालिकानां कालेन निखिलं गतम्॥१४॥

शब्दार्थः-निरंतर इनके भावकरिकें भावित जो तदीय हे इनकों सर्व सिद्ध हे ओर जो कालके वश्य हे तिनको सर्व कालकरिकें गयो हे ॥ १४ ॥ टीका-तदीय जो हे तिनके भावकरिकें भावित होय वे जो भावतें करतहे ता भावमें येहू लगे तब फलसिद्धि होय तातें श्रवणहू

आवश्यक हे सो गोपिकागीतमें कहेहें " तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्। श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदा जनाः " (संसारतें तप्त अथवा विप्रयोगाग्नितें तप्तकों जीवनरूप, कविजननें प्रशंसा कीयो, पाप (मद) कों मिटायवेवारे, श्रवणतें मंगलरूप, लक्ष्मीयुक्त, ओर सर्वत्र व्याप्त, एसे आपकी कथारूप अमृतके कहिवेवारे जो हे सो बोहोत अर्थ देवेवारे अजन (भगवद्रूप) अथवा जन्मादिदोषरहित हे) तातें श्रवणतें सर्व दोष दूरी होय और भगवद्भाव बढे तातें यह भावरहित जो हे तिनको सगरो साधन यह कराल काल खातहे काहेतें जो काल सगरेको संहारकर्त्ता हे सो अखिल जगतकों खातहे ॥ १४ ॥

मूलं–यतः कालस्तद्विभूतिः " कालः कलयतामहम् "। मुख्याधिकार्यपि हरेरिच्छाशक्तिस्वरूपवान् ॥ १५॥ तदंतरंगदासेषु न तत्सामर्थ्यमिष्यते ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–जासों काल हे सो भगवानकी विभूति हे काहेतें जो गीताजीमें विभूतिके अध्यायमें श्रीभगवाननें कह्यो हे जो संख्या करिवेवारनमें काल हे सो में हूं तासों यह काल मुख्य अधिकारी इच्छाशक्तिरूप हे तोहू श्रीभगवानके अंतरंग दासनकी उपर इनको सामर्थ्य नांहिहे ॥ १५ ॥ १६ ॥ टीका–काल भगवानकी विभूति हे सो यह कलिदोषतें महामलिन सृष्टि यह कालमें लीन होतहे सो काल

---

१ वैराग्यसाधक. २ ज्ञानसाधक. ३ ऐश्वर्य अथवा धर्मसाधक. ४ आनंदसाधक. ५ लक्ष्मीयुक्त. ६ वीर्य अथवा ऐश्वर्ययुक्त एसें षड्गुणयुक्त आपकी कथा आपजेसी हे एसो श्रीसुबोधिनीजीमें निरूपण हे. ७ जेसें लौकिकमें राजाको मुख्य दीवान होय सोहू एसें राजाके हजुरीकी उपर हुकम नांही करी सकतहे किंतु इनसों डरपतहे तेसेंही काल भक्तनको कछु नांही करी सकतहे.

भगवानको मुख्य अधिकारी हे इच्छाशक्तिको स्वरूप हे तातें ब्रह्मादिकनकों नांही छोडतहे एसे कालकोहू सामर्थ्य श्रीकृष्णके अंतरंग दासनकी उपर नांहीहे भगवदीयकों बाधा नांही करीसकतहे ॥ १६ ॥

मूलं-स हि सर्पो यथाऽन्येषां मारकोऽपि न हि क्षमः ।
पीतामृतं जनं जातु स्प्रष्टुमाघ्रातुमेव च ॥ १७ ॥
तथा कालोऽपि मनुजं महापुरुषसंस्थितम् ।
भक्तिपीयूषपातारं न किंचित्कर्त्तुमीश्वरः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः-जेसें यह सर्प अन्यकों मारिवेवारो हे सोहू अमृतपान करिवेवारेकों कदाचित् स्पर्श करिवेमें ओर सुंघिवेमेंहीं समर्थ नांहीहे ॥ १७ ॥ तेसें कालहू महापुरुष (श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी) को आश्रय करिवेवारे, भक्तिरूप अमृतपान करिवेवारे मनुष्यकों कछु करिवेमें समर्थ नांहीहे ॥ १८ ॥ टीका-यह कालरूप सर्प हे सो सगरे जगतकों खातहे परंतु श्रीकृष्णके चरणामृत तथा अधरामृत जिननें पान कीये हें एसे भक्तको स्पर्श नांही करतहे ओर सुंघतहू नांहीहे सो श्रीगुसाँईजी सप्तश्लोकीमें कहेहें "अघौघतमसावृतं कलिभुजंगमासादितं जगद्विषयसागरे पतितमस्वधर्मे रतम् । यदीक्षणसुधानिधिः समुदितोऽनुकंपामृतादमृत्युमकरोत् क्षणादरणमस्तु मे तत्पदम् " (पापके समूहरूप अंधकारकरिकें आवृत, कालरूप सर्पने ग्रसित, जगतके विषयरूप समुद्रमें गिर्यो, ओर अपने धर्मतें विमुख, एसे जीवकों जीनके [श्रीआचार्यजीके] कृपाकटाक्षरूपचंद्र उदित होय दयारूप अमृतसों एकक्षणतें अमर करी दियो इनके चरण मेरो शरण होउ) याभांति श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणामृतको पान जो कोउ जीव कीयो हे तिनकों कालरूप सर्प नांही स्पर्श करतहे ओर सुंघतहू नांही ॥ १७ ॥ महापुरुषसर्वमें उत्तम श्रीआचार्यजी महाप्रभु तथा

पुष्टिमार्गीय भगवदीयके आश्रित जो मनुष्य होयरहेहें पुष्टिभक्ति अमृतरसको पान करतहें तिनकों रंचकहू कालदोष बाधक नांहीहे, काल जेसें ईश्वरकी आज्ञामें रहतहे तेसेंही भगवदीयसों डरपतहे ईश्वरहू भगवदीयकों बाधा नांही करत तहां काल कहाहे ? सो वार्त्तामें प्रसिद्ध हे जो प्रभुदासनें दहीके पलटे मुक्ति दीनी जो भक्ति मांगते तो भक्ति देते इनकों काल कहा करी सके ? ॥ १८ ॥

मूलं–तदीयैः सर्वकार्येषु न कालश्चिन्त्यतां हृदि ।
" तथैव तस्य लीलेति " वचनात् सर्वं चिन्त्यताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थः–जो तदीय हे तिनकों सर्वकार्यमें हृदयमें कालको चिंतन नांही करनो काहेतें जो नवरत्नग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजी कहेहें " जो जो भगवान् करेंगे सो तेसेंही इनकी लीला जानिकें चिंताकों छोडनी " यह वचनतें प्रभुकी लीलाकोही चिंतन करनो ॥ १९ ॥

टीका–जो तदीय हे सर्वकाल भगवद्धर्ममें निपुण हे तिनकों अपने कालकी चिंता नांही करनी कोई कालमें चिंता नांही कर्त्तव्य हे सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् " (तेसेंही इनकी लीला हे एसें मानिकें शीघ्र चिंताकों तजे) यह वचनको चिंतन हृदयमें करिकें चिंता नांही कर्त्तव्य हे सगरी श्रीकृष्णकी लीलाही जाननी ॥ १९ ॥

मूलं–सर्गादिलीलाकर्तृत्वात् किं चित्रं तादृशि प्रभौ।
विवेकोऽप्ययमेवात्र स हितं वै विधास्यति ॥ २० ॥
स्वकीयानां निजेच्छातस्ततश्चिताऽत्र का भवेत् ॥२१॥

शब्दार्थः–श्रीभागवतमें कहा एसी सर्गादिलीला करिवेपनो जामें हे एसे प्रभुमें आश्चर्य कहाहे? प्रभु निजेच्छातः अपने भक्तनको हितही करेंगे यहहू इहां विवेक हे तासों इहां चिंता कहा होय ? ॥ २० ॥ २१ ॥

टीका–श्रीभागवतमें सर्गविसर्गादि दशविधलीला कही हे एसें प्रभुकी सगरे जगतमें लीला जाने एसो जाके मनमें होय सोई विवेकी कहियें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें "विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति" (हरि अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छातें सर्व करेंगे यह विवेक जानवो) येही विवेक जो सर्व कार्यमें निजेच्छा माने या भांति भगवानके स्वकीय निजभक्त हे सो सर्व-कार्यमें भगवदिच्छा जानतहें ॥ २० ॥ २१ ॥

मूलं–भवंतः श्रुतसद्वार्त्ताः सत्संगकृतयोऽपि हि।
प्रभुपादैकगतयस्तेषां का परिदेवना ॥ २२ ॥

शब्दार्थः–तुम सुनी हे सद्वार्त्ता (भगवदीयनकी वार्त्ता) जिननें एसे, ओर सत्संग करिवेवारे, तथा प्रभुके चरणारविंदमेंही एक आसक्तिवारे हो इनकों कहा चिंता हे?॥ २२ ॥ टीका–ओर तुम तो भगवानके संबंधी हो भगवद्भाव सुनोहो भगवद्वार्त्ता सुनोहो ओर सत्संगहू श्रोहोत करोहो तातें तुमकों कोई प्रकारकी चिंता नांही कर्त्तव्य हे प्रभु जो श्रीकृष्ण तथा श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी तिनके पदकमलमें तुह्मारी प्रीति हे एसे तुम हो तासों परिवेदना (चिंता) नांही कर्त्तव्य हे ॥ २२ ॥

मूलं–धर्मसंस्थापनार्थाय यस्य प्राकट्यमुच्यते।
स हि धर्मव्यतिकरं स्वकृतं सहते कथम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थः–धर्मके सुंदर स्थापनके अर्थ जिनको प्राकट्य सर्वत्र कह्यो हे सो स्वकृतिसों धर्मको व्यतिक्रम (नाश) करे सो केसें सहन करे ? ॥ २३ ॥ टीका–धर्मके स्थापनके लिये श्रीमहाप्रभुजीको तथा श्रीगुसाँईजीको प्राकट्य हे सो उचित हे, प्रभु सदा धर्मकी रक्षा करीहे सो भगवदीय गायहे "चहुजुग वेदवचन प्रतिपार्यो। धर्मग्लानि भई जबहीं जब तब तब तुम वपु धार्यो ॥ १ ॥ सत्ययुग श्वेत्व-

राहरूप धरि हिरण्याक्ष रिपु मार्यो । त्रेता रामरूप दशरथगृह रावण-कुल संहार्यो ॥ २ ॥ द्वापर व्रज ह्वतर्ते राख्यो सुरपति पावन पार्यो । कंसादिक दानव सब मारे वसुधाभार उतार्यो ॥ ३ ॥ कलियुग श्रीवल्लभगृह प्रकटे मायावाद निवार्यो । मानिकचंद प्रभु श्रीविठ्ठल पुरुषोत्तमरूप निहार्यो ॥ ४ ॥ " याभांति श्रीविठ्ठल पुरुषोत्तमरूप हे धर्मस्थापनार्थ प्राकट्य हे तासों जे कोई वेदधर्मको अतिक्रम करे अपने मनमानि क्रिया करे उन्मत्त होय सो प्रभुकों न सुहाय ॥ २३ ॥

मूलं-ब्रह्मण्यो धेनुविप्रेशो वेदधर्मैकपालकः ।
स कथं सहते कृष्णस्तद्विरोधं जनैः कृतम् ॥२४॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्ण ब्राह्मणकी रक्षा करिवेवारे हें, धेनु ओर ब्राह्मणके ईश हें, वेदधर्मके मुख्य पालक हें सो श्रीकृष्ण ब्राह्मण, गाय ओर वेदधर्म, इनको विरोध जननें कीयो हे सो केसें सहेंगे ? ॥ २४ ॥ टीका-प्रभु ब्रह्मण्य हें, धेनु, विप्र, वेदधर्मके प्रतिपालक हें एसें भगवानसों बहिर्मुख जीव [उनसों विरोधकर्त्ता मनुष्य] की विरुद्ध-कृति श्रीकृष्ण केसें सहे ? ॥ २४ ॥

मूलं-परमानंदसंदोहो दयालुः सुतरामपि ।
स कथं सहते कृष्णो दयाभावं जनेष्वपि ।
अतोऽत्र यदिदं जातं तत्स्वदोषेण सर्वथा ॥ २५ ॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्ण परम आनंदके समूह हें ओर निरंतर अत्यंतही दयावारे हें सो मनुष्यनमें दयाके अभावकों केसें सहन करे ? तासों इहां यह जो भयो सो अपने दोषकरिकें निश्चय भयो हे ॥ २५ ॥ टीका-श्रीकृष्ण परमानंदरूप हे, परमदयालु हे, काहूको दुःख नांही देखि सकतहे, प्राणिमात्रके आनंददाता हे, सो अपने स्वकीय निजभक्तनके दुःख केसें सहेंगे ? सर्वथा न सहेंगे, तातें वैष्णव भगवदीयको यह लक्षण हे जो

लौकिक वैदिक कछु कार्य सिद्ध न होय काहू वस्तुकी हानि होय तहां अपनोही दोष विचारनो देहसंबंधी अनेक दुःखमें अपनोही दोष विचारनो ॥ २५ ॥

मूलं-निर्दोषपूर्णगुणता हरौ नित्यं विराजते ।
कदाचित् स्वप्रभोर्दोषो नानेयः सर्वथा हृदि ॥२६॥

शब्दार्थः-हरिमें निर्दोषपूर्ण गुणपनो विराजित हे तासों काहू समय प्रभुके दोष सर्वथा अपने हृदयमें नांही लावने ॥ २६ ॥ टीका-प्रभुविषे रंचकहू दोष न विचारनो प्रभु तो भलीहीं करतहें मेरो दोष हे तातें यह क्लेश भयो हे यह निश्चय मनमें जानियें जो श्रीकृष्ण निर्दोष सदा हैं सकलगुणकरिकें पूर्ण हैं एसे श्रीकृष्ण सर्वदुःखके हर्त्ता हैं तामें निर्दोष पूर्णगुण सदा विराजमान हे तातें कदापि कोई प्रकारसों प्रभुको दोष हृदयमें सदा नांही लावनो ॥ २६ ॥

मूलं-के वा वयं वराका यदुद्धवाद्या अपि प्रभोः ।
श्रुतवंतो विसदृशीं लीलां पश्चात्स्थिता अपि॥२७॥

शब्दार्थः-जासों उद्धवादिक भक्तहू प्रभुकी विपरीत (प्रभासमें आसुरव्यामोहकी) लीला सुनकेहू पाछें पृथ्वीपर रहे तहां तुच्छ अपन कोनमात्र? ॥ २७ ॥ टीका-श्रीहरिरायजी कहतहें जो में अपनकों कहा कहूं महातुच्छ हूं उद्धवादिक वडे भगवद्भक्तकीहू यह गति हे जिनकी लीला सुनि देखि अनुभव करी सो उद्धव अपने प्रभुके अंतर्धानसमय सुनिके फिर प्रभु विना स्थित रहे तो में कहा कहूं ? ॥ २७ ॥

मूलं-कुंतीवदीदृशं भाग्यं कस्य भाग्यवतो भवेत् ।
सद्यः प्राणविमोकोऽत्र श्रीकृष्णविरहेण हि ॥२८॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्णके विरहकरिकें शीघ्र इहां प्राणको त्याग होय एसो कुंतीजीके बरोबर कोन भाग्यवारेको भाग्य होय ? ॥ २८ ॥

टीका–कुंती बडी भक्त परम भाग्यवती जो श्रीकृष्णके अंतर्धान सुनतही विरहकरिकें अपने प्राण तत्काल छोडि दिये तातें कुंती महाभाग्यवती भक्त हती ॥ २८ ॥

मूलं–अस्माकं तु प्रभुर्नित्यमक्षताव्याहतोऽधुना ।
विराजते ततो दुःखं न विधेयं मनस्यपि ॥ २९॥

शब्दार्थः–अपने प्रभु तो अखंडित सदा अब नित्य विराजतहे तासों मनमेंहू दुःख न करनो ॥ २९ ॥ टीका–हमारे प्रभु तो नित्यही प्रत्यक्ष विराजमान हे श्रीआचार्यजीद्वारा जिनको संबंध भयो हे सो प्रभु सदा घरमें विराजमान हैं तातें मनमें दुःख धारण सर्वथा नांही कर्त्तव्य हे ॥ २९ ॥

मूलं–भवद्भिर्मिलितैः सर्वैरियं शिक्षा विचार्यताम् ।
ततः संदेहजातं यद्बुद्धिस्थं तदव्यपोह्यताम्॥३०॥

शब्दार्थः–श्रीहरिरायजी लिखतहें जो तुम सगरे भगवदीयनसों मिलिकें यह शिक्षा विचारोंगे तासों जो बुद्धिमें रह्यो संदेहसमूह सो दूर होयगो ॥ ३० ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह शिक्षा में तुमकों लिखि पठाई हे ताको सगरे पुष्टिमार्गीय भगवदीय भक्तनसों मिलिके विचार करियो तातें मनको चितारूप सकल संदेह दूरी होयजायगो सुंदर बुद्धिकी पोषक होयगी ॥ ३० ॥

मूलं–अस्माकं साधनं साध्यं 'श्रीकृष्णः शरणं मम'।
संपत्स्वापत्स्वपि सदा स्वाचार्यचरणोदितम ॥३१॥

शब्दार्थः–हमारे संपत्तिमें तथा आपत्तिमेंहू सदा अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीने कह्यो जो "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह अष्टाक्षर मंत्र सो साधन तथा फलरूप हे ॥ ३१ ॥ टीका–हमारे तो साधन ओर

सिद्धिहू एक ' श्रीकृष्णः शरणं मम ' यह हे सो यह श्रीवल्लभाचार्यजी अष्टाक्षर महामंत्र प्रकट करी श्रीकृष्णहीके शरणसिद्धि कीयेहें तातें हम तो एक श्रीकृष्णहीको आश्रय हृदयमें करिकें श्रीकृष्णहीको शरण मन वचन कर्म करिकें सर्वभांति येही साधन तथा साध्य जानेंहे तातें संपत्ति अनेक सुखहूमें श्रीकृष्णकी शरण हे ओर आपत्ति (दुःख) हूमें एक श्रीकृष्णहीकी शरण कीयेहे काहेतें जो हमारे आचार्यचरणननें यह मंत्र प्रकट कीयो हे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " यदुक्तं तातचरणैः ' श्रीकृष्णः शरणं मम '। तत एवास्ति नैश्चित्यमैहिके पारलौकिके "(जो पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी कहेहें जो ' श्रीकृष्णः शरणं मम ' तासोंही यहलोक तथा परलोक संबंधी सगरेमें निश्चितता हे) इत्यादिवचनानुसार अष्टाक्षरमंत्रही हमारे साधन तथा साध्य हे ॥ ३१ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुर्विंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ २४ ॥

शिक्षापत्र २५.

अब पंचविंश शिक्षापत्रमें फलात्मक श्रीमदाचार्यचरणद्वय सदाही हृदयमें धारण करने तामें फलको संशय नांही राखनो ओर यामें जो संशय राखे सो आसुरी जाननें सुबोधिन्यादि ग्रंथ विद्यमान सते मनुष्य भक्तिमार्गमें प्रवृत्त नांही होत हे तासों भगवानकी कृपाही साधन हे एसें जानिवेमें आवतहे जेसें इंद्रियनकी वृत्ति प्राण विना नांही चलेहे तेसें प्रभुकी कृपा विना साधनको उपयोग

नांही होय हे यह निरूपण हे. उपर कहे जो चिंता नांही कर्त्तव्य हे अष्टाक्षरही परमगति हे सो कोटानकोटि साधन करे सगरे धर्म होय ओर श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय सिद्ध न होय तो कछु सिद्ध न होय तातें जा भांति श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलको सदा आश्रय होय तिनको फलदान होय सो आगे शिक्षापत्रमें निरूपण करतहें

मूलं–श्रीवल्लभपदांभोजभजनादरणादपि ।
दयापरः कदाचित्तं न जहाति जनं हरिः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलकें भजनमें आदरसोंहू दयालु हरि कोयदिन वह जनकों नांही छोडत हें ॥ १ ॥ टीका–जो वैष्णव श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणारविंदको भजन आदरपूर्वक करतहे एक वाहीमें अनन्य भाव हे जेसें सूरदासजीने गायो " भरोंसो दृढ इन चरननकेरो । श्रीवल्लभ नगचंद्रछटाविन सब जगमेंही अंधेरो " श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलकी सेवामें सदा जो वैष्णव आदर करेहे तिनके उपर हरि जो श्रीकृष्ण सो सदा दया करत हे प्रसन्न होयकें कृपाहु करतहें अपने स्वरूपानंदको दान सदा करत हे ॥ १ ॥

मूलं–कृपाकटाक्षसंपातपक्षपातपरो हरिः ।
क्षमते तत्कृतं दोषलक्षमप्यक्षमं स्वतः ॥ २ ॥

शब्दार्थः–श्रीमदाचार्यजीके कृपाकटाक्षको सुंदरपात जिनपें तिनके पक्षपात करिवेवारे हरि ता जीवनें कीये लक्षदोष जो आपतें सहन नहोय एसेकोंहू सहन करतहें ।२। टीका–जिन वैष्णवनके उपर आप श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कृपाकटाक्ष करतहें तिनको पक्षपात श्रीठाकुरजी करतहे पद्मनाभदास छोला धरते सो श्रीठाकुरजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुकी

कृपा तें प्रीतिसों आरोगते या भांति जापर श्रीआचार्यजी कृपाकटाक्ष करिकें भक्तिरसदान करतहें तिनकों श्रीकृष्ण आप सदा पक्षपात करतहें सो उन वैष्णवनतें लक्षावधि अपराध परतहें तोहू श्रीकृष्णचंद्र सर्व अपराध क्षमा करिकें आप कृपाही करतहें ॥ २ ॥

मूलं-यदीयहृदये श्रीमदाचार्यचरणद्वयम् ।
त एव शरणं दोषशतावृत्तिमता मम ॥ ३ ॥

शब्दार्थः-जिनके हृदयमें श्रीमदाचार्यजीके चरणद्वय हे वहही शतदोषकी आवृत्तिवारो में हूं तिनकों शरण हे ॥ ३ ॥ टीका-जो पुष्टिमार्गीय भगवदीयके हृदयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके दोउ चरणकमल विराजतहें ताके शतादिक अपराध होय तिनहूकों नाश करी प्रतिबंध दूरी करतहें ॥ ३ ॥

मूलं-यदंगुलिनखानंदचंद्रशैत्यं सदा हृदि ।
तापं हरति भक्तानां तदानंदपदांबुजम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः-जिनके अंगुलियनके नखरूपचंद्रकी शीतलता हे सो आनंदरूप चरणारविंद भक्तनके हृदयमें सदा तापकों हरत हे ॥ ४ ॥ टीका-श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलकी दश अंगुलि परम-सुंदर हे तिनमें नखचंद्र १० हे सो एक नखचंद्रकी छटा आगें कोटिचंद्रमाकी कला लज्जा पावतहे एसे नखचंद्र जिन वैष्णवननें हृदयमें धारण कीये हें तिन भक्तनके हृदयके त्रिविध ताप (आध्यात्मिक, आधिभौतिक ओर आधिदैविक, तथा कायिक, वाचनिक ओर मानसिक) अनेक जन्मके दोषरूप तथा श्रीकृष्णके मिलनमें प्रतिबंधरूप सगरे पाप दूरी होतहें एसें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमल हे सो सेवकनकों सदा आनंददान करतहें ॥ ४ ॥

मूलं-अस्तु वस्तुशतं लोके वेदे च परिकीर्त्तितम् ।
फलत्वेन निजाचार्यचरणाब्जद्वयं मम ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-लोकमें तथा वेदमें कह्यो एसे शतवस्तु होउ परि मोकों फलत्वकरिकें अपने श्रीआचार्यजीके दोउ चरणकमल हें ॥ ५ ॥ टीका-लोकमें ओर वेदमें कीर्तित एसो वस्तुरूप पदार्थ वोहोत हे सत्य लोक (ब्रह्मलोक) सगरे ज्ञानमार्गीय मर्यादामार्गीयकों सर्वोपरि फलरूप हे सो हमारे पुष्टिमार्गमें ब्रह्मलोक कहा ? मोक्षचतुष्टयताई सब तुच्छ हे एसे यह पुष्टिमार्ग हे जामें श्रीकृष्णाधरसुधापानही परमफल हे सो साधनकरिकें सिद्ध नांही होतहे एक श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणांबुजद्वयही फलरूप हे इनहींकरि श्रीकृष्णाधरामृतसिद्धि हे ॥ ५ ॥

मूलं-न कर्म वेदविहितं फलं जनयति ध्रुवम् ।
यतो बहिर्मुखं चित्तं जायतेऽन्यश्रुतेर्हरेः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-वेदोक्त कर्म निश्चय फलकों नांही उत्पन्न करतहें काहेतें जो भगवानसों भिन्नश्रवणतें चित्त बहिर्मुख होतहे ॥ ६ ॥ टीका-वेदविहित अनेक प्रकारके कर्म हे ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, अनेकव्रत, संयम, नियम, इत्यादि अनेक साधन हे तासों यह पुष्टिमार्गको फल निश्चय जान्यो नांही जातहे काहेतें जो पुष्टिमार्ग केवल व्रजभक्तनके भावात्मक सर्वोपरि हे सो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें साध्य हे साधनतें सिद्धि नांहीहे जासों बहिर्मुख जीवके चित्तमें तथा श्रवणमें श्रीहरिकी कथारूप अमृत ओर भगवद्धर्म न सुहाय ॥ ६ ॥

मूलं-ज्ञानं तु [मुक्ति] भक्तिहेतुत्वात्सा नैव फलरूपिणी।
यतो जीवस्य दासत्वहेतुभेदनिवर्त्तिका ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-ज्ञान तो मर्यादाभक्तिकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसूं कदाचित् फलरूप हे परंतु मर्यादाभक्ति फलरूप नांहीहे काहेतें जो

सो मर्यादाभक्ति जीवकों दासत्वके कारणरूप भेदकों मिटायवेवारी हे अथवा ज्ञान तो मुक्तिकों उत्पन्न करिवेवारो हे वा मुक्ति फलरूप नांही हे काहेतें जो मुक्ति जीवके दासत्वके कारणरूप भेदकों मिटायवेवारी हे (मुक्तिमें प्रभु ओर जीवको भेद नांही रहे) ॥ ७ ॥ टीका–शास्त्रमें एसें कहेहें जो ज्ञान हे सो भक्तिको हेतु हे तातें भक्तिको ज्ञान भयो हे ताकरि भक्ति होय सो यह मर्यादामार्गीय भक्ति हे जामें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फल हे तामें प्रथम ज्ञानही मुख्य हे तापाछें मर्यादाभक्ति होय सो ज्ञान ओर मर्यादामार्गीय भक्ति दोउ पुष्टिमार्गके फलके विरोधी हे काहेतें जो वामें दासत्व नांही रहत हे ओर पुष्टिमार्गमें तो जीवकों दासत्व मुख्य हे जीव सेवक हे प्रभु स्वामी हे या भांति श्रीभगवत्सेवा हे ता भावकों निवर्त्तक ज्ञान हे तहां स्वामी-सेवकभाव नांही हे ॥ ७ ॥

मूलं-मर्यादाभक्तिरप्येषा तावदेव फलात्मिका ।
यावन्न जायते (ज्ञायते) पुष्टिभक्तिःसकलमूर्द्धगा ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–यह मर्यादाभक्तिहू जबताँई सकलके मस्तकपर रहेवेवारी पुष्टिभक्ति उत्पन्न भयी न होय अथवा जानिवेमें आवे नांही तवताँई फलात्मक हे ॥ ८ ॥ टीका–उह मर्यादाभक्तिके ज्ञानमें अहंब्रह्म मानत हे जो मेंही ब्रह्म हों ताकरिकें प्रभुसों सेवकभाव छूटिजात हे तातें यह पुष्टिमार्ग सर्वोपरि (शिरोमणि) हे ज्ञान तथा मर्यादामार्गकी भक्तिके माथेपर विराजत हे ॥ ८ ॥

मूलं–पुष्टिभक्तिर्हरेरास्यं तत्त्वस्मत्प्रभवः स्वयम् ।
त एव संश्रिताः संतः फलरूपा भवंति हि ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–हरि भगवानको मुखारविंद हे सो पुष्टिभक्ति हे सो मुखारविंद तो अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी आप हे इनको श्रद्धा-

पूर्वक आश्रय करे तो यहही निश्चय फलरूप होय ॥ ९ ॥ टीका—यह पुष्टिभक्ति हे सो श्रीठाकुरजी रासादिलीलाकरि भक्तनकों सुधादान दिये सो श्रीकृष्णके मुखारविंदरूप श्रीवल्लभाचार्यजी (यह कलियुगमें पुष्टिभक्तिके लिये) प्रकटे हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके मुखारविंदरूप प्रकटे हें तातें श्रीआचार्यजीके चरण-कमलके दृढ आश्रित हें तिनही भगवदीयनकों फलसिद्धि हे ॥ ९ ॥

मूलं–तदुत्तरं न कर्त्तव्यमनुभूतेः परं किमु ।
यथा लोके फले प्राप्ते न भोगादधिका कृतिः ॥१०॥

शब्दार्थः–ताकों उत्तर (सामनो तर्क) नांही करनो काहेतें जो अनुभवसों अधिक ओर कहाहे जेसें लोकमें फल प्राप्त होय तब भोगसों अधिक कृति नांहिहे ॥ १० ॥ टीका—तातें उत्तर जो पुष्टिमार्गतें प्रतिकूल विचार (ज्ञान, कर्म, वेद, मर्यादाभक्ति, इत्यादिक विरुद्ध धर्मके अनुसार विचार) नांही कर्त्तव्य हे जेसें लौकिक फल प्राप्त भयो तब वाको भोग करनो येही कर्त्तव्य हे ओर क्रिया अधिक नांही तेसें पुष्टि-मार्गको अनुभव भयो तापाछें ओरकों अधिक नांही जाननों ॥ १० ॥

मूलं–तस्मात् फलं निजाचार्यपदांभोजद्वयं सदा ।
हृदि धार्यं नैव कार्यं संशयायितमानसम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–तासों फलरूप अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंद दोउ सदा हृदयमें धारण करने (तामें) संशययुक्त मन नांही करनो ॥ ११ ॥ टीका—यह पुष्टिमार्गीय भगवद्धर्म सेवादि करी अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके दोउ चरणकमलकों अपने हृदयमें धारण करने, मनमें संशय (अविश्वास) न राखनो सो गीताजीमें कहेहें " संशयात्मा विनश्यति " (संशयरूप अंतःकरण होय सो नाशकों पावत हे) संशयतें फलको नाश होय तातें संशय न करे ॥ ११ ॥

मूलं–अत्र संशयमापन्नाः सर्वथा ह्यासुरा मताः ।
दैवा अपि पुरा तेऽपि हरिणा पातिताः करात्॥१२॥

शब्दार्थः–यामें संशयको प्राप्त भये यह निश्चय आसुर जीव जाननें पहेले दैवी सृष्टिमें उत्पन्न भये होय सोहू हरिने अपने श्रीहस्तसों (संसारमें) डारेहें ॥ १२ ॥ टीका–श्रीवल्लभाचार्यजीके स्वरूपमें संशय होय तथा यह पुष्टिमार्गमें संशय होय ताकों सर्वथा आसुरही जानियें, दैवी जीव होय अथवा आसुर कोई होय जाकों अविश्वास होय ताकों श्रीठाकुरजी अपने हाथ संसारमें डारि देय ताको अंगीकार कवहू न करे तातें विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " अविश्वासो न कर्त्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः " (अविश्वास नांही करनो काहेतें जो वह सर्वथा बाधक हे) तातें अविश्वास महाबाधक हे ॥ १२ ॥

मूलं–अहो महच्चित्रमिदमवतीर्णे हरौ भुवि ।
विद्यमाने भागवते विवृतावपि सर्वथा ॥ १३ ॥
सत्यां भुवि सुबोधिन्यां सत्सु सत्सु क्वचित्क्वचित् ।
ग्रंथेषु विद्यमानेषु सर्वार्थज्ञापकेष्वपि ॥ १४ ॥
तथापि न प्रवर्त्तंते जना भक्तिपथे पुनः ।
प्रायः कृपैव हरिणा कारणत्वेन रक्षिता ॥ १५ ॥

शब्दार्थः–यह बडो आश्चर्य हे जो पृथ्वीपर हरि प्रकट भये हे, श्रीभागवत विद्यमान हे,विवरणहू सर्वथा विद्यमान हे,॥ १३॥श्रीसुबोधिनीजी पृथ्वी उपर विद्यमान हे, कहूं कहूं सत्पुरुष (भगवदीय) विद्यमान हे, ओर सर्व अर्थकों जतायवेवारे सगरे ग्रंथहू विद्यमान हे ॥ १४ ॥ तोहू मनुष्य फिर भक्तिमार्गमें प्रवृत्त नांही होतहे तासों यह जान्यो जातहे जो हरिनें अपनी कृपाही कारणरूप राखी हे ॥१५॥ टीका–मेरे मनमें बडो आश्चर्य होतहे जो भूमिविषे श्रीकृष्णके मुखारविंदरूप श्रीवल्लभाचार्यजी

प्रकटे है तिनको कुल निष्कलंक भूमिपर विराजमान हे ओर श्रीभागवत हू विद्यमान हे श्रीभागवतकी टीकाहू विराजमान हे तोहू जीव सर्वथा भक्तिमार्गमें नांही प्रवृत्त होतहे यह मोकों बडो आश्चर्य हे॥१३॥श्रीसुबोधिनीजी निबंधादि भूमिपर विराजमान हे कहूं कहूं श्रीसुबोधिनीजी निबंधादिकके वक्ता सत्पुरुषहू विराजित हे ओर छोटेबडे श्रीगुसाँईजी श्रीमहाप्रभुजीके ग्रंथहू विद्यमान हे सो ग्रंथ केसे हें जो सर्व पुष्टिमार्गके भावके ज्ञापक हें इन ग्रंथद्वारा पुष्टिमार्गीय सगरी रीति जानि जातहे या भांति सगरी वस्तु विद्यमान हे ॥ १४ ॥ ऊपर कहे सो सगरे पदार्थ भूमिपर विराजमान हे तोहू जीव यह पुष्टिमार्गमें नांही प्रवृत्त होतहे सो काहेतें जो एक श्रीहरिकी कृपाही कारण हे, सगरे पदार्थ होय परि श्रीहरिकी कृपा होय तबही जान्यो जाय श्रीहरिकी कृपा विना जीव भक्तिमार्गमें नांही प्रवृत्त होतहे तातें यह पुष्टिमार्ग तो केवल प्रमेयमार्ग हे सो श्रीहरिकी कृपा प्रमेयबल विना तामें केसें आवे?॥१५॥

मूलं–मूर्छितेंद्रियवृत्तीनामुद्भवो नासुमंतरा ।
तथा कृपां विना सर्वसाधनानां न चोद्भवः ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–मूर्छित इंद्रियनकी वृत्ति हे तिनकी उत्पत्ति प्राण विना नांही होतहे तेसें कृपा विना सर्व साधनकी उत्पत्ति नांही होतहे ॥ १६ ॥

टीका–श्रीमहाप्रभुजीकी कृपा विना कछु सिद्ध न होय सगरी इंद्रिय मूर्छित होय तिनतें प्राण विना कछु कार्य न होय जब प्राण आवे तब सगरी इंद्रियनमें चैतन्य आवे अपने कार्यमें तत्पर होय तेसेंही जहांताई श्रीकृष्णकी कृपा (प्राणस्थानीय) नांहीहे तहांताई सगरे साधन (इंद्रियस्थानीय) तें कछु न होय जब श्रीकृष्ण कृपा करे तबही यह पुष्टिमार्गमें आय सेवादि करे भाव सिद्ध होय यह निश्चय हे ॥ १६ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्।२५।

शिक्षापत्र २६.

षड्विंश शिक्षापत्रमें जेसें माता बालककी रक्षाके लिये डाकिनी आदि ग्रहनसें डरपेहे तेसें भावकी रक्षाके लिये दुःसंगसें डरपनों, जेसें व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषविषे अपनो स्नेह हे ताकों अपने समस्त संबंधीसों गुप्त राखेहे तेसें भगवत्सेवामें प्रतिबंधक जो अपने संबंधी होय तिनके आगें भाव गुप्त राखनों, जेसें दूतीके वचन ओर संग व्यभिचारिणी स्त्रीकों प्रीति करेंहे तेसें भक्तनके वचन ओर संग भावकों वृद्धि करतहे, ओर जेसें व्यभिचारिणी स्त्रीको चित्त सदाही गृहादिकमें उदासीन रहेहे तेसेंही चित्तकों गृहादिकमें उदासीन राखनों, यह निरूपण हे। उपर कहे जो पुष्टिमार्गीय सगरो पदार्थ प्रकट हे परंतु श्रीकृष्णकी कृपा विना जीव नांही प्रवृत्त होतहे तहां कोई कहे जो श्रीकृष्ण कृपा नांही करत होयगे जीव कहा करे? तहां कहतहें–

मूलं–स्वकीयानामैहिकं यदथवा पारलौकिकम्।
अकरोत् कुरुते कर्त्ता प्रभुरेव न संशयः॥ १॥

शब्दार्थः–स्वकीय भक्तनके जो लौकिक अथवा पारलौकिक हे सो प्रभुनेंही कीयो हे, प्रभुही करतहें ओर प्रभुही करेंगे संशय नांहीहे ॥ १ ॥ टीका–श्रीकृष्ण परम कृपालु हे अपने स्वकीय निजभक्तनकों यह लोक परलोक दोउ सिद्ध करतहे यह लोक सिद्ध करतहे सो विषयादिक सिद्ध करतहें एसें मति जानियो, यह लोकमें स्त्री, पुत्र, धन, सब देवी करतहें जो भगवत्सेवादिकमें विरोध न करे या भांति लौकिक सिद्ध करतहें ओर अलौकिकमें लीलाको अनुभव स्वरूपानंदको दान यह सिद्ध करतहें सो त्रिविधनामावलिमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " भक्तसर्वदुःखनिवारकाय नमः " भक्तके लौकिक अलौकिक सर्व

दुःख दूरी करिकें सर्वथा सर्वकार्य सिद्ध करतहें यामें संशय नांही ॥ १॥

मूलं–तथापि कुरुते जीवः प्रयत्नं निजदोषतः।
अज्ञानात् करुणावार्द्धिः क्षमते तादृशं स्वतः॥२॥

शब्दार्थः–तोहू जीव अपने दोषतें अज्ञानसों प्रयत्न करतहे एसे जीवकों कृपाके समुद्र प्रभु आपतें क्षमा करतहें ॥ २ ॥ टीका–या भांति श्रीकृष्ण लौकिक अलौकिक सर्वकार्य सिद्ध करतहें तोहू जीव अपने मनमें अनेक प्रकारके साधन करत हे जीव बुद्धिके अज्ञानतें अनेक यत्न करतहे एसे अज्ञानी जीवनपर श्रीकृष्ण कृपानिधि हे सो सगरो अपराध अपनी ओरतें क्षमा करतहे सो अंतःकरणप्रबोधमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति " (प्रभु सत्यसंकल्प हे तासों अन्यथा नांही करेंगे) श्रीकृष्ण सत्यसंकल्प हे श्रीआचार्यजीद्वारा अंगीकार कीये हे सो दृढ हे जीव अज्ञानकरि भूलत हे परंतु प्रभु केसें भूलेंगे ? ॥ २ ॥

मूलं–अविरुद्धं प्रकुरुते विरुद्धं वारयत्यपि।
दासेषु कृष्णो बालेषु पितेव कुरुते हितम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्ण अपने दासनमें अविरुद्ध करतहें ओर विरुद्धकोहू वारण करतहें जेसें बालकनकी उपर पिता हित करतहे तेसें भक्तनकी उपर श्रीकृष्ण हित करतहें ॥ ३ ॥ टीका–यह पुष्टिमार्गमें अविरुद्ध भगवत्सेवादिक सो करावतहें ओर अनेक साधन प्रयत्न जो पुष्टिमार्गतें विरुद्ध हे तासों निवृत्त करतहें एसे श्रीकृष्ण श्रीआचार्यजीकी कानितें रक्षा करतहे जेसें पिता बालकको हित करे बालक अज्ञानतें दोष करे परंतु पिता दोषकों नांही विचारत हितही करतहे सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें "हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे। अन्यथा मातरो बालान् स्तन्यैः पुपुषुः कचित् " (यह भक्तिमार्गमें)

हरि भगवान् बाधा करिवेमें समर्थ नांहीहे तहां ओर कहांतें समर्थ होय ओर एसें न होय तो माता बालककों स्तन्यपान करायकें पोषण क्यूं न करते जेसें माता पुत्रकों वारंवार अपने स्तन्यसों पोषण करतहे तेसेंही जो जीव श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आये हैं तिनकों प्रभु बाधा नांही करतहें जा प्रकार भक्ति बढे दासको कल्याण होय सोई प्रभु करतहें एसें कृपालु हें ॥ ३ ॥

मूलं–न जानाति निजाज्ञानात्तत्कृतिं स कृतघ्नतः।
क दोषराशिर्जीवोऽयं क हरिर्गुणवारिधिः ॥ ४॥

शब्दार्थः–जीव अपने अज्ञानसों कृतघ्न हे तासों भगवानकी कृतिकों नांही जानत हे काहेतें जो दोषके समूहरूप यह जीव कहां? ओर गुणके समुद्र हरि कहां? ॥ ४ ॥ टीका–याभांति प्रभु करत हें ओर जीव अपने अज्ञानतें नांही जानत हे सो जीव कृतघ्न हे उपकारकों नांही जानत हे एसो दोषको भयो जीव हे ओर हरि [श्रीकृष्ण] गुणनिधि हे जीव दोषनिधि हे ॥ ४ ॥

मूलं–कथमन्योन्यसंबंधः स्यात्तमस्तेजसोरिव।
तथापि दोषराशीनां दाहनेन निवेदनात् ॥ ५ ॥
स्वाचार्यद्वारकात्तु स्यायोग्यता हरियोजने।
अतःस्वाचार्यचरणौ स्थाप्यौ हृदि निरंतरम्॥६॥

शब्दार्थः–[भगवान् गुणनिधि हे ओर जीव दोषनिधि हे तिनकों] अंधकार ओर तेजकीसीनांई अन्योन्य (परस्पर) संबंध केसें होय? तोहू अपने श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन भयो हे तासों दोषके समूहको दाह भयो ताकरिकें हरि भगवानके संबंधमें योग्यता होयहे तासों अपने श्रीआचार्यजीके दोउ चरणारविंद हृदयमें स्थापन करने ॥ ५॥

॥६॥ टीका-उपर कहे ऐसें श्रीकृष्णसों जीवको परस्पर संबंध केसें होय जेसें अंधियारेको संबंध सूर्यसों केसें होय ? जहां तेज होय तहां तम केसें आवे तेसेंही यह जीव कोन प्रकार श्रीकृष्णसों मिले सो कहतहें जो ओर तो कोउ उपाय नांही हे जीव सर्व भगवानमें निवेदन करे तबही सर्व दोष दूरी होय सो चोराशी वैष्णवकी वार्त्तामें प्रसिद्ध हे जो श्रीआचार्यजीकों चिंता भई तब श्रीकृष्णनें येही आज्ञा करी जो समर्पण करावो निर्वेदनतें जीवके सगरे दोष दूरी होयंगे तातें जीवके दोष निवेदनतें निश्चय दूरी होतहे ॥ ५ ॥ एसे दोषरूप जीवकों जब अपने श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन होय तब सगरे दोषको नाश होय तब श्रीकृष्णकी सेवामें योग्य होय ओर कोउ उपाय नांही, एसें श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमल अपने हृदयमें स्थापन करनें येही योग्य हे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवको परम धर्म येही हे जो श्रीआचार्यजीके चरण हृदयमें अहर्निश धारण करे याहीतें सर्वफल सिद्ध होय ॥ ६ ॥

मूलं-यथा बालकरक्षायै डाकिनीतो बिभेति हि।
माता तथैव भेतव्यं दुःसंगाद्भावरक्षकैः ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-माता जेसें बालककी रक्षाके लिये डाकिनीसों डरपतहे तेसेंही भावकी रक्षा करिवेवारेनको दुःसंगसों डरपनों ॥ ७ ॥ टीका-जेसें बालककी रक्षा माता करे डाकिनी बालकको घात करत हे सो बालककी रक्षार्थ डाकिनीतें माता भयभीत हे तासों बालककों छिपाय राखेहें तेसेंही पुष्टिमार्गीय भगवदीय दुःसंगरूप डाकिनीतें डरपें अपने भगवद्भावरूप बालककी रक्षार्थ डाकिनीरूप दुःसंग त्याग करे तातें वैष्णवकों दुःसंग वोहोतही बाधक हे तासों सर्व भाव जाय यह जानिके दुःसंगतें अहर्निश डरपत रहे तो भावकी वृद्धि होय ॥ ७ ॥

मूलं-समस्तेभ्यो निजस्नेहं गोपायति यथा (ऽ) सती।
तथैव भगवद्भावगोपनं क्रियतां जनैः ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–जेसें असती [व्यभिचारिणी] स्त्री अपनो जारपर स्नेह हे ताकों समस्तसों छिपावेहे ओर जेसें सती [पतिव्रता] स्त्री अपने पतिपर स्नेह हे ताकों समस्तसों छिपावेहे तेसेंही भगवदीय जन भगवद्भावकों गोपन करे ॥ ८ ॥ टीका–अपने हृदयमें जो स्नेह [भगवद्भाव] हे सो सबनके आगें गुप्त राखनो काहूके आगें केहेनो नांही जेसें सती [पतिव्रता] स्त्री होय सो अपने हृदयको अभिप्राय अपने पतिके आगें कहे ओर काहूके आगें सर्वथाही न कहे तेसेंही पुष्टिमार्गीय भगवद्भक्त अपनो भाव सबनके आगें गुप्त राखें या भांति दास रहे तो या कालमें धर्म रहे नांही तो बाधकही होय ॥ ८ ॥

मूलं–दूतिकालापसंसर्गे यथा वर्द्धयते रतिम् ।
स्वैरिणी भक्तसंसर्गे भावबृद्धिं तथा नयेत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थः– जेसें स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) स्त्री दूतिकाके संग बोलिवेमें तथा इनको संसर्ग करिवेमें प्रीति बढावेहे तेसें भक्तके संसर्गमें भावकी वृद्धि करे ॥ ९ ॥ टीका–जेसें दूतिके आलाप अनेक वचनतें व्यभिचारिणी स्त्रीको काम बढे दूतिके संगतें रति बढे तेसेंही वैष्णवको भगवद्भक्त तादृशीय मिले तो भगवानमें भाव बढे. यह प्रसिद्धही भाव हे जो दूति अनेक प्रकारके विषयसंबंधी मर्मवचन कहे तासों काम बढे जारमें प्रीति बढे तेसेंही भगवदीय भगवानकी कथा एसी भावात्मक कहे जो तासों हृदयमें भगवद्भाव प्रकट होय आवे तातें पुष्टिमार्गीय भगवदीय होय तिनको संग अवश्य कर्त्तव्य हे ॥ ९ ॥

मूलं–असत्या सर्वदा चित्तं गृह उच्चाटितं यथा ।
तथैव भवनादौ तु चेतः स्थाप्यं तदाश्रितेः ॥१०॥

शब्दार्थः–जेसें असती (व्यभिचारिणी) स्त्रीनें अपनो चित्त सर्वदा गृहमें दूरी राख्यो हे तेसेंही जो भगवदाश्रित हे तिनकों गृहादिकमेंतें

खेंचके प्रभुमें चित्त स्थापन करनो ॥ १० ॥ टीका–जेसें व्यभिचारिणी स्त्री (असती) को चित्त अपने गृहमें सर्वथा न लगे सदा गृहमेंतें मन उचाटितही रहे परपुरुषमें लग्यो रहे तेसेंही भगवदीयको चित्त श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें लगावनो एक श्रीकृष्णके चरणारविंदमें आश्रित भगवदीय अपनो मन गृहदेहसंबंधी लौकिक वैदिक कार्यमें न लगावे एक प्रभुकी वार्त्ता ओर भगवत्सेवामें लगावे ॥ १० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं षड्विंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ २६ ॥

शिक्षापत्र २७.

सप्तविंश शिक्षापत्रमें श्रीभगवानकों विस्मरण करे एसे दोषको निरूपण हे अब सबनकी बुद्धिको नाश करिवेवारो काल आयो हे, साधनहू सिद्ध नांही होयहे जो सेवामें तीन प्रतिबंध हे सो सिद्ध हे तोहू श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयतें फललाभ होयगो तासों फलमें निराशता नांही राखनी यह निरूपण हे। उपर कहे जो भक्त प्रभुके आश्रित हे तिनको चित्त लौकिकमें नांही लगतहे तहां फलमें अनेक बाधक हे तिनकों तजियें तब फल सिद्ध होय सो कहा बाधक हे ? केसें तजियें ? सो आगें निरूपण करतहें—

मूलं–निजाचार्यपदांभोजयुगलाश्रयणं सदा ।
विधेयं तेन निखिलं फलं भावि विना श्रमम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः–अपने आचार्यजीके दोउ चरणारविंदको आश्रय सदा करनो ताकरिके श्रम विना सर्व फल होयगो ॥ १ ॥ टीका–पुष्टिमार्गीय

वैष्णव अपने निजाचार्यके दोउ चरणको आश्रय सदा राखे ता वैष्णवको निखिल विनाश्रमही सिद्ध होय विनासाधनतेंही श्रीप्रभुकृपातें सकल फल सिद्ध होय ॥ १ ॥

मूलं–धनं गृहं गृहासक्तिः प्रतिष्ठा लोकवेदयोः।
कर्मादिनिष्ठा मनसः स्वर्गादिफलकांक्षणम् ॥२॥

शब्दार्थः–धन गृह, गृहमें आसक्ति, लोकवेदमें प्रतिष्ठा, कर्मादिकमें मनकी निष्ठा, ओर स्वर्गादि फलकी इच्छा यह सर्व हरिके विस्मारक हे एसें न्यारमे श्लोकमें अन्वय हे ॥ २ ॥ टीका–पुष्टिमार्गके फलमें चालीश दोष हे सो बाधक हे ओर दोष तो अनेक हे परंतु यह चालीश दोष मुख्य हे तिनकों तजियें तब फलसिद्धि होय सो कहतहें-प्रथम धन हे सो महा दोषहे, धनमदतें यह जीव आंधरो होयजातहे काहूकों गिनत नांही तातें धनकों प्रभुमें निवेदन करी भगवत्सेवामें लगावे जामें प्रभु अपनो दास जाने। १। दूसरो गृह, जो यह गृह हे में बनायो हे मेरे पिताको हे यह ममता बाधक हे सो छोडे। २। तिसरो गृहासक्ति, अष्टप्रहर गृहादि कार्यमें आसक्ति रहे आजु यह करनो हे यह आसक्ति बाधक हे। ३। चोथो लोकवेदकी प्रतिष्ठा, जो हों लौकिकमें कछु घटतो कार्य करूंगो तो मेरी प्रतिष्ठा जायगी तातें फलानो ५ लगावेगो तो में १० लगाऊंगो जामें मेरी बडाई होयगी ओर वैदिक श्राद्ध, व्याह, यज्ञ होय इत्यादिकमें सर्वतें वोहोत में करतहों यह प्रतिष्ठा बाधक हे। ४। कर्मादिकमें निष्ठा, संध्या, तर्पण, व्रत, नियम, इत्यादिकमें निष्ठा। ५। मनमें स्वर्गादि फलकी आकांक्षा, जो स्वर्गलोकमें जाय नानाप्रकारके भोगविलास करूंगो यह बाधक हे। ६। ॥ २ ॥

मूलं–लौकिके परमा प्रीतिर्विरुद्धविषयेषणा।
अविरुद्धे तथासक्तिर्विषयैर्भोगभोजनम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—लौकिकमें बोहोत प्रीति (भक्तितें) विरुद्ध विषयकी इच्छा, (लौकिकतें) अविरुद्धमें आसक्ति, विषयहेतु सुंदर भोजन, ॥ ३ ॥ टीका–लौकिक जो देहसंबंधी स्त्रीपुत्रादिकमें परम प्रीति सो भक्तिमें बाधक हे । ७। भक्तिमें विरुद्ध जो लौकिक विषय ताकी इच्छा सो फलमें बाधक हे । ८ । लौकिकतें अविरुद्ध विषयमें आसक्ति सोउ बाधक हे । ९ । विषयभोगार्थ आछो आछो खानो भगवत्सेवार्थ वैष्णव महाप्रसाद लेतहे सो भाव नांही विषयार्थ आछो भोजन घृतादिकको करनों सोउ बाधक हे । १० ॥ ३ ॥

मूलं–देहाभिमानः कुलजोविद्यादिविहितोऽपि च ।
भगवत्सेवनाभावसहितं देहपोषणम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–देहको अभिमान, कुलको अभिमान, विद्यादिकसों भयो एसो अभिमान, भगवानकी सेवाके अभावसहित देहको पोषण, ॥ ४ ॥ टीका–देहाभिमान जो मदतें काहू न गिने देह संद्वारे रहे, चोटी नित्य संद्वारे, अपनो देह देखिकें मनमें फूले यह बाधक हे।११। कुलको मद जो में बडे कुलमें हों ओर सब मोतें नीचे हे मोसमान कोउ नांही यह भक्तिमें बाधक हे।१२। विद्यामद जो में बोहोत पढ्यो हों मोकों षट्शास्त्रको ज्ञान हे ओर तो सब मूर्ख हे यह विद्यामद बाधक हे या मदतें दैन्यसिद्धि नांही होत ।१३। भगवत्सेवा नांही करत लौकिक वैदिक अनेक कार्यमें दिन वितावतहे भगवत्सेवामें मन नांहीहे यह भक्तिमें बाधक हे जेसें ब्राह्मण गायत्री न जपे तो ब्राह्मणपनों जाय तेसेंही वैष्णव होयकें भगवत्सेवा न करे तो वैष्णवपनों जाय यह बाधक हे । १४। देहको पोषण करे. रंचकहू शीत उष्ण सही न सके अनेक औषधतें खानपानतें देहकी रक्षा करे देहकी रक्षा तो भगवत्सेवार्थ करनी सो भाव नांही हे केवल लौकिकार्थ देहको पोषण करे सो बाधक हे । १५ ॥ ४ ॥

मूलं-असत्संगैः सदा दुष्टः कृष्णानुच्छिष्टभक्षणम् ।
निवेदनानुसंधानत्यागः शरणविस्मृतिः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-असत्पुरुषके संगकरिकें सदा दुष्ट रहे, श्रीकृष्णकों भोग धरे विना अन्नको भक्षण, निवेदन मंत्रकें अनुसंधानको त्याग, शरणकी विस्मृति ॥ ५ ॥ टीका-असत्संग महादुष्ट बहिर्मुखसों संग ताके संग एक क्षणहू बेठे तो भगवद्भावको नाश होय तिनहूको संग सदा करे तातें बहिर्मुखता (दुष्टता) होय सो बाधक हे ।१६। ओर श्रीकृष्णको उच्छिष्ट महाप्रसाद छोडिकें असमर्पित खाय यह महा बाधक हे सो पद्मपुराणमें कहेहे " अनिवेद्य तु यो भुंक्ते हरये परमात्मने । पतंति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः ॥ अवैष्णवानामन्नं च पतितानां तथैव च अनर्पितं तथा विष्णौ श्वमांससदृशं भवेत् " (हरि परमात्माकों अर्पण कीये विना जो खायहे ताके पितृपितामहादिक बोहोत वर्षपर्यंत नरकमें गिरतहें ॥ अवैष्णवनको अन्न, पतितनको तथा विष्णु-निमित्त अर्पण नांही कीयो एसो अन्न श्वानके मांस बराबर होय) कूर्मपुराणमें कह्यो हे " अनर्पयित्वा गोविंदे यो भुंक्ते धर्मवर्जितः । श्वविष्ठासदृशं चान्नं नीरं तत्सुरया समम् " (गोविंदनिमित्त अर्पण कीये विना धर्मरहित जो खायहे सो अन्न श्वानके विष्ठासमान हे ओर जल मदिरासमान हे) यह वाक्यतें असमर्पिततें बुद्धि भ्रष्ट होय तातें महा बाधक हे ॥ १७ ॥ निवेदन कीयो हे ताको अनुसंधान नांही करतहे जो में समर्पण कीयो हे पंचाक्षरको कहा अभिप्राय हे या भांति निवेदनको अनुसंधान नांही करत हे यह बाधक हे । १८ । श्रीकृष्णके शरणकी विस्मृति जो अष्टाक्षर महामंत्र " श्रीकृष्णः शरणं मम " यह हे ताकी विस्मृति बाधक हे ॥ १९ ॥ ५ ॥

मूलं–देवांतराश्रयस्तेभ्यः प्रार्थनाऽपि फलार्थितः ।
भगवच्चित्तरहिता व्यावृत्तिरपि लौकिकी ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–ओर देवनको आश्रय, फलकी इच्छासों इनकी पास प्रार्थना करनी, भगवानमें चित्तरहित (एसी) लौकिक व्यावृत्ति ॥ ६ ॥

टीका–ओरदेवको आश्रय महा बाधक हे साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्णको आश्रय छोडिकें अन्यदेवको आश्रय करे ताकों यह पुष्टिमार्गको फल नांही सिद्ध हे. हारितस्मृतिमें कहेहें " नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् । नान्यप्रसादमश्नीयान्नान्यदायतनं व्रजेत् " (अन्यदेवकों नमस्कार न करे, अन्य देवके दर्शन न करे, अन्यदेवको प्रसाद न खाय ओर अन्यदेवके मंदिरमें न जाय) या भांति अनन्य रहे तो फल सिद्ध होय सो श्रीगुसाँईजी कहेहें " भगवत्पदपद्मपरागजुषो नहि युक्ततरं मरणेऽपि तराम् । इतराश्रयणं गजराजधृतो नहि रासभमप्युररीकुरुते ॥ अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते " (भगवानके चरणारविंदके रजकों सेविवेवारेकों मरणपर्यंत संकट आयजाय तोहु अन्यको आश्रय करिवो उचित नांहीहे जेसें हाथीकी स्वारी करिवेवारो रासभ [गर्दभ] कों कबूल नांही करतहे ॥ अन्यसंबंधको गंधहु कंधरा (ग्रीवा) कों बाध करतहे) याभांति अन्य देवादिककों आश्रय बाधक हे ॥ २० ॥ अन्यदेव इंद्रादिक, शिवादिक, ब्रह्मादि, गणेश, सूर्य, यह देवनसों फलकी आशा सो बाधक हे, श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्त हे तिनकों छोडिकें अन्यदेव सदा पराधीन हे, तिनसों फलाकांक्षा सो यह पुष्टिमार्गमें बाधक हे ॥ २१ ॥ भगवानके चरणारविंदमें वैराग्य, लौकिक वैदिक कार्य, मनमें असंभावना, विपरीतभावना, मिथ्याध्यान, यह पुष्टिमार्गके फलमें बाधक हे ॥ २२ ॥ अष्टप्रहर लौकिक व्यावृत्ति करी लौकिकावेश होय तातें अष्टप्रहर यह लौकिक कार्य बाधक हे ॥ २३ ॥ ६ ॥

मूलं–गुरुद्रोहस्तदीयेभ्यः स्वस्याधिक्यविभावनम् ।
अत्यंतदेहसामर्थ्यमिंद्रियाणां च पोषणम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–गुरुको द्रोह, पुष्टिमार्गीय भगवदीयनसों अपनी अधिकताकी भावना, बोहोत देहको सामर्थ्य, इंद्रियनको पोषण, ॥ ७ ॥
टीका–गुरुद्रोह करे तो गुरु अप्रसन्न होय सो बाधक, हे प्रभु अप्रसन्न होय तो गुरु रक्षा करे परंतु गुरु अप्रसन्न होय तो रक्षा करिवेमें कोउ समर्थ नांही ।२४। पुष्टिमार्गीय भगवदीयकों अपनेतें न्यून जाने अपनकों अधिक जाने सो बाधक हे ।२५। देहमें अत्यंत सामर्थ्य होय सो काहूकों गिने नांही अहंकार होय तथा बडो विषयी होय यहहू बाधक हे। २६। अपनी इंद्रियनके पोषणमें तत्पर रहे सो इंद्रियनकों विषयभोगही प्रिय हे तातें इंद्रियनके पोषणतें विषयावेशही बढे ।२७॥७॥

मूलं–गृहेष्वभिरतिर्भार्यापुत्रादिषु मनोगतिः ।
कृष्णानुभावरहितदेशे सततसंस्थितिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–गृहादिकमें प्रीति, स्त्रीपुत्रादिकनमें मन लग्यो रहे ओर श्रीकृष्णकी कथा-सेवा-कीर्तनादिरहितदेशमें निरंतर स्थिति, ॥८॥
टीका–गृहादि लौकिक कार्यमें अष्टप्रहर प्रीति।२८। स्त्रीपुत्रमें मनकरिके प्रीति जो देहसंबंधी स्त्रीपुत्रादिक हे तामें मन रहे इनके दुःखतें दुःखी होय इनके सुखतें सुखी होय यह पुष्टिफलमें बाधक हे।२९। श्रीकृष्णके अनुभव विनाके देशमें रहेनो श्रीगोवर्धननाथजी तथा सातो स्वरूपके मंदिर तथा श्रीवल्लभकुलके मंदिर तथा पुष्टिमार्गीय तादृशीयके इहां राजसेवा तथा व्रज इतनी ठोर वैष्णवकों अनुभव हे उत्सव भगवद्वार्ता विना जीवकों अनुभव कछु न होय। ३० ॥ ८ ॥

मूलं–हर्षशोकौ लोकलाभतदभावकृतौ तथा ।
स्वातंत्र्यभावनं स्वस्य जीवस्वाभाविको हठः॥९॥

शब्दार्थः-लोकमें लाभ ओर हानिकी कृतिमें हर्षशोक होय, तथा अपनकों स्वतंत्रताकी भावना ओर जीवको स्वाभाविक हठ, ॥ ९ ॥ टीका-यह लौकिकमें हर्ष शोक होय देहसंबंधि, कुटुंब, द्रव्य, अनेक कार्य, आछो होय तो सुख पावे हर्ष होय बूरो होय तथा हानि होय तो दुःख पावे, शोक होय सो यह संसाररूपी वृक्षमें दोय फल हे कबहू सुख होय कबहू दुःख होय याहीमें मग्न रहे सो फलमें बाधक हे।३१।द्रव्यादिक लाभमें लोभ होय जो इतनो तो द्रव्य भयो अब ओर होयगो तो आछो, कुटुंब बढे तो आछो इत्यादिक लोभ पुष्टिमार्गमें बाधक हे। ३२। आपनकों स्वतंत्रकी भावना मनमें राखे दासपनो भूले यहहू बाधक हे। ३३। जीवको स्वभाव दुष्टताही हे ताकरिकें सबको बूरोही चाहे यह बाधक हे। ३४ ॥ ९ ॥

मूलं-अधिकारः पापरतिः पक्षपातो दुरात्मनाम्।
हृदयक्रूरता दीनजनोपेक्षाऽक्षमा पुनः ॥ १० ॥

शब्दार्थः-अधिकार, पापमें प्रीति, दुरात्मा (दुष्टपुरुष) को पक्षपात, हृदयमें क्रूरता, दीनजनकी उपेक्षा, फिर अक्षमा, ॥ १० ॥ टीका-काहूको अधिकार लेई तातें अनेक जीवको भलो बुरो करनो पडे सो बाधक हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीसुबोधिनीजी ओर निबंधमें कहेहें जो नारायणने ब्रह्मासों श्रीभागवत कहे सो ब्रह्मा सृष्टिकरिवेके अधिकारी हे तासों ब्रह्माको अनुभव न भयो फिर ब्रह्मानें नारदजीसों कह्यो सो नारदजीकों सगरे फिरनो हे एकाग्र मन नांही तातें इनकूंहू अनुभव न भयो फिर नारदनें वेदव्याससों कह्यो सो व्यासजी वेदपुराणके अधिकारी हे तातें इनहूकों अनुभव न भयो फिर व्यासजीनें श्रीशुकदेवजीसों कह्यो सो शुकदेवजी काहूवातके अधिकारी नांही तातें अनुभव भयो तासूं अधिकार हे सो फलमें बाधक हे।३५। जो जीव पापमें प्रीतिवारो हे ताकों इष्ट अनिष्टकी परीक्षा नांही सो फलमें बाधक हे।३६।

खोटे मनुष्य चोरादिक दुष्टक्रिया करिवेवारे इनको पक्षपात करे साचेकों जूठो करें जुठेकों साचो करे ताकों फलमें बाधक हे । ३७ । हृदयतें क्रूर होय काहूको भलो न विचारे महा कपट छल राखे सो बाधक हे । ३८ । दीनजन कोई होय सो आयके शरण होय तिनकी उपेक्षा करे वाको त्याग करे यह पुष्टिभक्तिमें बाधक हे । ३९ । ओर क्षमा न होय विनाकारण क्रोध होय, भ्रकुटी चडी रहे, सहन न होय यह पुष्टिमार्गमें बाधक हे । ४० ॥ १० ॥

मूलं–एते चान्ये च बोद्धव्या दोषा विस्मारका हरेः ।
सावधानीभूय दासैः कृष्णस्य स्थेयमादरात् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–यह उपर कहे ओर या सिवाय ओर दोष हे सो सब हरिकों विस्मरण कराइवेवारे हें तासों श्रीकृष्णके दासनकों आदरसों सावधान होयके रहेनो ॥ ११ ॥ टीका–यह चालीश दोष कहे ओर अनेक दोष हे तिनमें यह चालीश मुख्य हे यह दोष हरिके विस्मारक हे यह दोष जिनमें होय तिनकों हरि न जाने जाय तातें श्रीहरिरायजी कहत हे जो उपर कहे समस्त दोषतें सगरे वैष्णव सावधान रहियो (यह दोषतें डरपत रहियो) इन दोषनकी निवृत्तिके नवगुण कहतहे–श्रीकृष्णके चरणारविंदमें अत्यंत आदर राखनो । १ । येही सर्वस्व जानने ॥ ११ ॥

मूलं–भगवन्मार्गमात्रस्थैस्तन्मार्गफलकांक्षिभिः ।
विरक्तैरन्यतःकृष्णगुणासक्तांतरात्मभिः ॥ १२ ॥
स्वाचार्यशरणं यातैस्तद्विश्वाससमन्वितैः ।
परित्यक्ताखिलैःस्थेयं सदा तद्दर्शनोत्सुकैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थः–भक्तिमार्गमें रहिवेवारे, यह मार्गके फलकी इच्छावारे, अन्यसों विरक्त, ओर श्रीकृष्णके गुणमें आसक्ति युक्तहे मन जिनको

एसे, ॥ १२ ॥ अपने आचार्यजीके शरण गये, इनमें विश्वासयुक्त, समग्र त्याग करिवेवारे ओर सदा इनके दर्शनमें उत्साहवारे, (वैष्णवनकों) एसे होय रहेनो ॥ १३ ॥ टीका—भगवन्मार्ग (भगवानही अपने मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी प्रकट भये हे तिननें प्रकट कीयो पुष्टिमार्ग सो भगवन्मार्ग) में स्थित होय रहे। २। एतन्मार्गीय (यह पुष्टिमार्गके) फलकी आकांक्षा होय मर्यादामार्गके फलकी इच्छा न होय काहेतें जो पुष्टिमार्गको फल श्रीकृष्णकी सेवा, स्वरूपानंदको अनुभव, यह हे ओर अन्यमार्गमें स्वर्गादिक, ब्रह्मलोक, चतुर्विध मुक्ति, यह फल हे सो पुष्टिमार्गतें विरुद्ध हे तातें वा फलकी चाहना न करे पुष्टिमार्गके फलकी चाहना करे। ३। यह लौकिक अन्यकार्यतें विरक्त रहे श्रीकृष्णकी सेवा स्मरण विना सर्वठोरतें मन विरक्त राखे। ४। श्रीकृष्णके गुणमें आसक्त रहे आत्मा मनकरिकें ध्यानकरिकें श्रीकृष्णहीकी सेवा करे, वचनकरिकें गुणगान श्रीकृष्णहीको करे, क्रियाकरि श्रीकृष्णहीकी सेवा करे, याभांति श्रीकृष्णहीमें सर्वात्मभाव रहे तथा एसे भगवदीय होय इनको संग करे। ५।। १२ ॥ अपने आचार्यजीके चरणकमलके शरण रहे। ६। मनमें दृढ विश्वास राखे यह जाने जो श्रीआचार्यजीके चरणकमलकी कृपातें सकल कार्य निश्चय सिद्ध होयंगे यह विश्वास राखे। ७। लौकिक वैदिक (पुष्टिमार्गतें विरुद्ध होय) ताको त्याग करे। ८। ओर श्रीआचार्यजीके दर्शनमें तथा श्रीकृष्णके दर्शनमें उत्साह राखे यह दर्शनकी क्षणक्षणमें अपेक्षा राखे। ९। यह नव भांतिके गुण हृदयमें होय तो सर्व रोग दूरी होय एसे गुणसहित भगवदीय होय तिनहीको संग करे तब समस्त दोष दूरी होय प्रभु कृपा करे ॥ १३ ॥

मूलं—इदानीमागतः कालः सर्वबुद्धिविनाशकः।
करे पतति दुःसंगो मीलिताक्षस्य चापि हि॥ १४॥

शब्दार्थः-अब सबनकी बुद्धिकों विशेष नाश करिवेवारो काल आयो हे ओर नेत्र मुंदिकें रहिवेवारेकोहू निश्चय दुःसंग हस्तमें आय जातहे ॥ १४ ॥ टीका-उपर दोष चालीश कहे ताके दूरी करणार्थ गुण ९ नव कहे परंतु यह काल सर्वबुद्धिको नाशक आयो हे, सत्प्राणिकीहू बुद्धिको नाश भयो हे तो अज्ञानीकी बुद्धिको नाश होय या में कहा कहेनो ? एक तो काल बाधक हे दूसरो दुःसंग विनाचाहे स्वतःसिद्ध (आपुतें) आयमिलतहे मानो करमें धरयो हे ताकरिकें धर्मको लेश हे सोहू चल्यो जातहे तहां भगवद्धर्म बढिवेकी कहा बात हे ? दिनदिन वढत जातहे तातें कालदोष ओर दुःसंग बोहोत बाधक हे ॥ १४ ॥

मूलं-किं कार्यं किमकार्यं वा यतः स्फुरति नैव हि ।
प्रभुणा स्वबलं तावदुपसंहृतमेव च ॥ १५ ॥

शब्दार्थः-कहा करनो अथवा कहा करिवेयोग्य हे कहा नांही हे यह स्फुरायमान नांही होत हे काहेतें जो प्रथमतें प्रभुनेंही अपनो वल समेट्यो हे ॥ १५ ॥ टीका-यह कालदोष कछु कार्य करियें सो भगवत्संबंधी होय तामें जल्दीही स्फुरणा होतहे एकक्षणमें कछु विचारे तो दूसरे क्षणमें कछु स्फुरे याभांति भले कार्यमें अनेक प्रतिबंध पडतहे केवल प्रभुको प्रतापबल मनमें आवत हे जो श्रीकृष्ण सर्वोपर सर्वकार्य सिद्धकर्ता हे इनको प्रताप दशोदिशामें प्रकट हे वेद, पुराण, श्रीभागवत, गीता इत्यादिक सर्वशास्त्रमें प्रसिद्ध हे एसे श्रीकृष्ण हमारे प्रसिद्ध पति हे सो हमकों कहा डर हे ? याभांति प्रभुको प्रतापबलहू हृदयमें आवत हे परंतु प्रभुनें एसो अपनो वल हे तिनको उपसंहार कीयो हे तासों विश्वास छुटि जात हे लौकिक सुखदुःखको पावतहे ॥ १५ ॥

मूलं-साधनानि न सिद्ध्यंति कालदोषाद्दुरात्मनः ।
प्रतिबंधश्च कालादिकृतः प्रत्यहमेधते ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–कालदोषसों दुष्ट हे आत्मा जिनको एसेको साधन सिद्ध नांही होतहे ओर कालादिकृत प्रतिबंध प्रतिदिन बढतहे ॥ १६ ॥ टीका–जा साधनतें मनमें दुर्वासना न उठे भगवत्कार्य होय सो साधन करो या भांति कोई कहे तहां कहतहें जो साधन सिद्ध नांही होत हे तो फल तो महादुर्लभ हे काहेतें जो कालादि प्रतिबंध दिनदिन प्रति बढत जातहे ॥ १६ ॥

मूलं–उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगश्चापि प्रजायते।
प्रतिबंधसेवनं तैः प्रत्याशा का फलस्य हि॥१७॥

शब्दार्थः–उद्वेग अथवा प्रतिबंध ओर [शरीरादिकनको] भोग उत्पन्न होतहे यह तीन (सेवामें) प्रतिबंधक हे ताके सेवनकरिकें फलकी आशा कहा हे ? अथवा यह तीन प्रतिबंधकके सेवनतें कुत्सित फलकीही आशा हे ॥ १७ ॥ टीका–श्रीआचार्यजी महाप्रभु सेवाफलमें निरूपण कीये हे "उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः" (उद्वेग, प्रतिबंध, ओर भोग यह बाधक हे) याभांति कहेहें तामें प्रथम मनको उद्वेग होय तब मन सेवामें न लगे पाछें प्रतिबंध होय तो पाछें शरीरादिकके भोगको मन होय भोगतें विषयावेश होयजाय तब प्रभु अप्रसन्न होय याभांति प्रतिबंधतें जब भगवत्सेवा न होय तब पुष्टिमार्गीय फलकी आशा काहेकों करिये ? या मार्गमें तो भगवत्सेवाही फल हे सोई न भई तो आगें कहा फल होयगो ? ॥ १७ ॥

मूलं–तथापि श्रीमदाचार्यचरणाश्रयणान्मम।
निवर्त्तते निराशं सन्न मनः फललिप्सितः॥ १८॥

शब्दार्थः–तोहू श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयसों मेरो मन फलकी प्राप्तितें निराश सते निवृत्त नांही होतहे ॥ १८॥ टीका–या मार्गमें सेवा ही फल हे सो यह महा कालदोष हे तातें निश्चय में सेवा

विना फलमें निराश हों तोहू एक भरोसो मेरें मनमें हे जो मेनें श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलको आश्रय अपने मनमें कीयो हे तासों [भगवत्सेवाकरि रहित हों तोहू] श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलके आश्रयतें सर्वोपरि यह पुष्टिमार्गीय फल निश्चयही सिद्ध होयगो यह विश्वास हे ॥ १८ ॥

इतिश्रीहरिरायजीकृतं सप्तविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥२७॥

शिक्षापत्र २८.

अब अष्टाविंशतितम शिक्षापत्रमें अपनी दीनताके आविर्भावपूर्वक श्रीभगवानकी प्रार्थनाको प्रकार निरूपण करतहें । उपर कहे जो सर्व साधनकरि रहित तथा सेवाकरि रहित हों तोहू श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणाश्रयतें फल होयगो सो फल कोंन भांति होयगो सो आगें कहतहें जो आश्रयतें दैन्य स्फुरे सो फलरूप हे सो दीनता आगें वर्णन करतहें–

मूलं–कदा नंदात्मजः स्वेषु कृपादृष्टिं करिष्यति ।
प्रतीक्षयैवास्मदादिमनः श्रांतं सहेंद्रियैः ॥ १ ॥

शब्दार्थः–श्रीनंदरायजीके पुत्र अपने भक्तनकी उपर कब कृपादृष्टि करेंगे ? यह प्रतीक्षा [राह देखनी ता] करिकेंही अस्मदादिकनको मन, इंद्रियनसहित श्रांत [शिथिल] होयगयो हे ॥ १ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी विज्ञप्ति करतहें जो नंदात्मज श्रीकृष्ण हे यह कहिकें श्रीनंदरायजीके पुत्र कहे वसुदेवजीके नांही काहेतें जो यह पुष्टिमार्गमें

नंदकुमारही सेव्य हे श्रीशुकदेवजी नंदमहोत्सवके अध्यायमें कहेहें " नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः " (श्री नंदरायजी आत्मातें उत्पन्न एसे पुत्र भये तब भयो हे आनंद जिनकों ओर बडे मनवारे जातकर्म करावनलगे) यह वाक्यतें नंदरायकी आत्मातें प्रकटे एसे श्रीकृष्ण भावात्मक पुष्टिपुरुषोत्तम मोकों अपने स्वकीय निजभक्त जानि अपनी कृपादृष्टि कब करेंगे ? यह प्रतीक्षा करत करत अस्मदादिकनको मन इंद्रियनसहित शिथिल होयगयो सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " यादृशी तादृशी नाथ ! त्वत्पदाब्जैककिंकरी । त्वद्वक्त्रं कथमप्याशु कुरु दृग्गोचरं मम " (हे नाथ ! में जेसी हों तेसी एक आपके चरणारविंदकीही दासी हों तासों केसेंहू आपको मुखारविंद शीघ्र मेरे दृष्टिगोचर करो) ॥ १ ॥

मूलं–करुणावारिधिः स्वीयनिधिः सर्वाधिकः प्रभुः । उपेक्षते कुतः स्वीयानिति चिंतातुरं मनः ॥ २ ॥

शब्दार्थः–दयाके समुद्र, अपने निधिरूप, सर्वतें अधिक, प्रभु अपने निजभक्तनकी क्यों उपेक्षा करतहें ? एसें चिंतातुर मन हे ॥ २ ॥

टीका–हे श्रीकृष्ण ! तुम केसें हो करुणाके निधि हो ओर सगरे प्राणिमात्रके सर्व जगतके प्रभु हो तातें स्वीय जो तुह्मारे भक्त हे तिनके तो सर्वस्वनिधि हो एसे प्रभु स्वीय अपने भक्तनकी उपेक्षा क्यों करतहो ? यह चिंताकरिकें मनतें आतुर भयो हूं सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " हा नाथ ! जीविताधीश ! राजीवदललोचन !। यथोचितं विधेहीति प्रार्थनं तावकस्य मे " (हा नाथ ! जीवितके अधीश ! कमलदललोचन ! जेसें योग्य होय तेसें करो यह तुह्मारो जो हूं इनकी प्रार्थना हे) हे नाथ कमललोचन ! में तुमसों प्रार्थना कहा करूं ? तुह्मारी कृपातें जीवतहो

सो यह विप्रयोग उचित हे तातें में प्रार्थना कहा करूं ? तुम सर्वज्ञ हो सब जानतहो ॥ २ ॥

मूलं–निजानंदनिमग्नस्य भवेद्यद्यपि विस्मृतिः ।
भक्तार्थमवतीर्णस्य कृपालोरुचिता न सा ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–अपने आनंदमें मग्न एसेकों यद्यपि विस्मृति होयं तथापि भक्तके अर्थ प्रकट भये एसे दयालुकों यह विस्मृति उचित नांहिहे ॥ ३ ॥ टीका–हे श्रीकृष्ण ! तुम अपने आनंदमें रात्रिदिन मग्न रहतहो तासों यद्यपि संसारादिक भावकी विस्मृति हे तोहू अपने भक्तनके अर्थ तुम अवतार लिये हो तातें ओर तुम परमकृपाल हो तातें तुह्मारे भक्त जो संसारमें हे तिनकी विस्मृति नांही करोगे कृपा करी अंगीकारही करोगे सो श्रीगुसांईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " त्वदंगीकृतयो जीवेष्वधिकारा यतः प्रभो ! । अतस्ते न विचारार्हाः कृपां कुरु कृपानिधे ! " (जीवनमें जासों तुह्मारी अंगीकृतिरूप अधिकार हे तासों हे प्रभो ! हे दयाके निधि ! यह जीव विचार करिवेयोग्य नांहिहे तासों कृपा करो) हे नाथ ! तुह्मारो अंगीकृत जीव हे तुह्मारे अधिकारयोग्य हे सो इहां लौकिक संबंधतें तुमकों भूले हें अधिकारयोग्य नांही हे तोहू तुम कृपासमुद्र हो तासों हमपर कृपाही करो ॥ ३ ॥

मूलं–कं प्रार्थयेयुस्ते दीना विहाय निजनायकम् ।
तदेकशरणा नित्यं विमुक्ताः सर्वसाधनैः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–सर्वसाधनकरि रहित, नित्य येही एक हे शरण जिनकों एसे दीन भक्त अपने पतिकों छोडिकें कोनकी प्रार्थना करे ? ॥ ४ ॥

१ अपने आनंदात्मक धाममें विराजत होय वा समय तो जीव स्मरणमें न आवे परंतु भक्तके अर्थ प्रकट भये तब तो भक्तको स्मरण राखनो चहियें सो स्मरण न रहे यह योग्य नांही.

टीका–हे नाथ ! हम तुमतें कहा प्रार्थना करे ? हम दीन हें तुमकों हम अपने नायक (पति) जानतहें तुम विना ओर कोईकों हम नांही जानतहे ओर हम सर्वसाधनकरि रहित हें तातें नित्य तुह्मारे शरण हें येही भरोसो हे। साधन होतो तो कछु प्रार्थना करते सो नांही हे तातें तुह्मारो आश्रयकरि तुह्मारे शरण हे । सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें कहेहें "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" [अशक्य अथवा सुशक्यमें सर्वथा हरि शरण हे] यह वाक्यकों विचारी ओर उपाय हमकों नांही सूझतहे तातें तुह्मारे शरण हे ॥४॥

मूलं-मन्नाथ ! नाथये नूनं भवामि विरहाकुलः ।
दर्शनं स्पर्शनं वापि देहि वेणुस्वरश्रुतिम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–हे मेरे नाथ ! में आपके विरहकरिकें आकुल भयो हुं तासों निश्चय में प्रार्थना करूंहुं जो [सेवामें] दर्शन, स्पर्शन ओर वेणुस्वरकी श्रुतिकोंहु देहो ॥५॥ टीका–हे श्रीकृष्ण ! तुम मेरे नाथ हो ओर में महाविरहकरिकें आकुल भयो हुं यह संसारके कार्यमें तत्पर हों ओर तुह्मारी सेवा भगवद्धर्मकरि रहित हों तासों संसाराग्निपीडित हों सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें–"त्वदर्शनविहीनस्य त्वदीयस्य तु जीवितम् । व्यर्थमेव यथा नाथ ! दुर्भगाया नवं वयः" [तुह्मारे दर्शनकरि रहित तुह्मारे भक्तनको जीवित, हे नाथ । विधवाकी नवीन अवस्थाकी नांई व्यर्थ हे] तुह्मारे दर्शन विना त्वदीय तुह्मारे भक्त जीवें हें सो व्यर्थ हे जेसें दुर्भगा (खोटे भाग्यवारी विधवा) को जोवन[1] व्यर्थ हे, तातें श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमकों दर्शन देहो ओर श्रीअंगको स्पर्श करावो [अर्थात् सेवा करावो तामें दर्शन ओर चरणस्पर्श होय] ओर वेणुनादकरि वेणुद्वारा हमारे हृदयमें सुधा धरो

१ विधवाको जोबन होय सो ओरको तथा अपनकोहु दुःखरूप होय तेसें भगवानके दर्शन विना भक्तको जीवित अपनेकों तथा ओरकों दुःखरूप होयहें.

तब हमकों सुख होय विरहाग्निकरि व्याकुल हे तातें केवल दर्शनहीतें दुःख दूरी न होयगो दर्शन, स्पर्श ओर वेणुनादके सूरतें हृदयमेंतें दुःख दूरी होयगो तासों या भांति सुख देहो ॥ ५ ॥

मूलं–निजाचार्याश्रितानस्मान्यदि कृष्ण प्रहास्यसि। गमिष्यति हरे! नाथ! प्रतिज्ञैव तदा तव ॥ ६॥

शब्दार्थः–अपने आचार्यजीके आश्रित एसें हमकों जो हे श्रीकृष्ण! तुम त्याग करोगे तो हे नाथ! हे हरे! तुह्यारीही प्रतिज्ञा जायगी ॥ ६॥ टीका–अपने श्रीवल्लभाचार्यजीके आश्रित पुष्टिमार्गीय तदीयनकों हे नाथ! खोटे जानि दोष देखिकें छोडोगे तो तुह्यारी निश्चय प्रतिज्ञा भंग होयगी तातें कृपाकरो काहेतें जो तुम श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीतें प्रतिज्ञा करी हे जो जिनकों ब्रह्मसंबंध कराओगे तिनके सकल दोष दूरी होयंगे तिनकों में अंगीकार करतहों। सो सिद्धान्तरहस्यमें कह्यो हे " ब्रह्मसंबन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः। सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः "॥ (ब्रह्मसंबंध कीयेतें सबनके देह जीवके सर्वदोषकी निश्चय निवृत्ति होतहें सो दोष पांच प्रकारके हें) इत्यादि वचनतें तुम हमारे दोष देखोगे तो तुह्यारी प्रतिज्ञा जायगी तातें अपने प्रतिज्ञाके लिये श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके आश्रित जानि हमपर कृपा करो॥ ६॥

मूलं–वयं तु सर्वथा दुष्टाः स्वधर्मविमुखा अपि। त्वमस्मदीयान् मा धर्मान् गृहाण गुणपूरितः॥७॥

शब्दार्थः–हम तो सर्वथा दुष्ट हें ओर स्वधर्मतें विमुख हें तोहू तुम गुणकरि पूरित हो सो हमारे धर्मकों मति ग्रहण करो ॥ ७ ॥ टीका–हम सर्वथा दुष्ट हें बालापननें दुष्टही आचरण कीये हें अपने पुष्टिमार्गतें विमुख हें कबहू पुष्टिमार्गरीतितें भावसहित सेवा नांही करी हे तातें अपने स्वधर्मतें विमुख हें, ओर हे नाथ! तुम केसे हो सर्वगुणकरिके पूर्ण

हो सो अस्मदीय (अपने दासंजन) के धर्मकी चाहना नांही करोगे? कृपा करो अवगुणी हमसारिखे पर निश्चय प्रमेयबलतें कृपा करोगे सो विज्ञप्तिमें श्रीगुसाँईजी कहेहें " बलिष्ठा अपि मद्दोषास्त्वत्कृपाग्रेऽतिदुर्बलाः । तस्या ईश्वरधर्मत्वात् दोषाणां जीवधर्मतः " (यद्यपि हमारे दोष बोहोत बलिष्ठ हे तोहू तुह्मारी कृपाके आगें दुर्बल हें काहेतें जो तुह्मारी कृपा हे सो ईश्वरधर्म हे ओर दोष हे सो जीवधर्म हे) सो ईश्वरधर्मके आगें जीवधर्म तुच्छ हे तातें कृपा करो ॥ ७ ॥

मूलं–कृपालो ! पालनीयानां गुणदोषविचारणा ।
न कार्या स्वीयशरणविहितं वरणं यदि ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–हे कृपायुक्त ! आपके शरणसों भयो एसो जो वरण हे तो आपकों पालन करिवेयोग्य जो जीव हे इनके गुणदोषकी विचारणा नांही कर्त्तव्य हे ॥ ८ ॥ टीका–हे नाथ ! तुम कृपालु हो सो पालन करो हमारे गुणदोषको विचार तुम मति करो, काहेंते जो हम तुह्मारे हें श्रीआचार्यजीद्वारा हमारो धर्म तुमतें भयो हे तातें हमारो वरण भयो हे सो अपने कार्यके लिये सेवा, टहल, जो धर्म हे सो कार्य मोसों न बनिआयो ओर उलटो अपराध अनेक दोष बन्यो सो तुम मेरी ओर मति देखो आपुन वरण जानि कृपा करो सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " त्वदंगीकृतयो जीवेष्वधिकारा यतः प्रभो। अतस्ते न विचारार्हाः कृपां कुरु कृपानिधे ! " (हे प्रभो ! जीवमें तुह्मारी अंगीकृतिरूप अधिकार हे तासों (वे योग्य होय अथवा दोषकरि अयोग्य होय तोहू) वे विचार करिवेयोग्य नांहिहे तातें उनके दोष मति विचारो आप कृपाके निधि हो सो कृपा करो) ॥ ८ ॥

मूलं–अश्रांतोऽपि हरे ! दोषगणनायां मम प्रभो !।
श्रममेष्यसि गोपीश ! ततो विस्मर सर्वथा ॥९॥

शब्दार्थः–हे हरे ! आप श्रमरहित हो तोहू हे प्रभो ! मेरे दोषनकी गणनामें श्रम पावेंगे ! तासों हे गोपीजनके ईश ! सर्वथा वह दोषनकों विसरिजाओ ॥ ९ ॥ टीका–हे नाथ ! तुम कोय वातमें हारो नांही तुमकों कवहू कोई कार्यमें श्रम न होय एक क्षणमें चाहो सो करो एसे सामर्थ्ययुक्त यद्यपि हो तोहू मेरे दोषकी गणना तुम करोगे तो तुमकों श्रमही होयगो। मेरे अपार दोष हें तातें हे गोपीश ! (यह संबोधन कहि यह जतावे जो तुम गोपीके ईश हो विनासाधन गोपीजनपें कृपा करी तेसें हमारी उपर कृपा करो) सर्वथा हमारे दोषकों विसरिजाओ सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "अपराधेऽपि गणना नैव कार्या व्रजाधिप !। सहजैश्वर्यभावेन स्वस्य क्षुद्रतया च नः" (हे व्रजके अधिप! निःसाधनके फलात्मक ! हमारे अपराधकी गणना करनी तुम्हें उचित नांहीहे काहेतें जो तुह्मारो सहजैश्वर्य हे ताके आगें हमारे दोष क्षुद्र हे सो कहां ?) तातें कृपा करो ॥ ९ ॥

मूलं–दीनेषु गुणलीनेषु (हीनेषु) तावकीनेषु मत्प्रभो। पराधीनेषु करुणा करणीयैव सर्वथा ॥ १० ॥

शब्दार्थः–दीन, संसारके गुणमें लीन, (अथवा गुणरहित) ओर पराधीन, एसे जो तुह्मारे भक्त हे तिनकी उपर सर्वथा कृपाही करनी योग्य हे ॥ १० ॥ टीका–हे नाथ ! में अत्यंत दीन हों, दुःखी हों, काहेतें जो मायाके गुणकरि संसारादिकमें लीन हों ओर पराधीन हों एसे दोषकरि दीन हों तोहू तुह्मारो हों तातें मेरे उपर सर्वथाही करुणा करियें। सो विज्ञप्तिमें श्रीगुसाँईजी कहेहें "कालकर्माधीनतां यत्करोषि मयि सुंदर!। तदप्यनुचितं यस्मात्त्वदीयोऽस्म्युररीकृतः" (हे सुंदर ! मोपें कालकर्मके आधीनपनो जो आप करतहो सोहू योग्य नांहीहे, काहेतें जो

में आपको हों एसें अंगीकार कीयो हे) हे सुंदर श्रीकृष्ण ! में कालकर्मके आधीन हों तोहू तुह्मारो हों तातें अपनो जानि कृपा करो ॥ १० ॥

मूलं–निःसाधना गतधना मनोदीनाः सुदुःखिताः ।
निजाचार्याश्रिताःशोकलोभमोहभयाकुलाः॥११॥
भवन्ति ते कृपापात्रं महोदार ! दयानिधे ! ।
प्रयच्छ करुणां तेभ्यो दत्तं पात्रेऽक्षयं भवेत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–निःसाधन, गयो हे धन जिनको एसे, ताकरि मनमें दीन, अत्यंत दुःखी, अपने श्रीआचार्यजीके आश्रित, शोक, लोभ, मोह, भयकरिकें व्याकुल, ॥ ११ ॥ एसे जो हें सो आपकी कृपाके पात्र हे तातें हे बडे उदार ! दयाके निधिरूप ! इनकों करुणा देहो काहेतें जो पात्रमें दियो सो अक्षय होय ॥ १२ ॥ टीका–में निःसाधन हों मेरेमें कोई साधन नांहीहे भावरूपी धनहू गयो हे ताकरि अति दीन हों बोहोत दुःखी हों ओर अपने श्रीआचार्यजीके आश्रित हों ओर शोक, लोभ, मोह, भय, यह मायाके गुणकरिकें व्याकुल हों ॥ ११ ॥ उपर कहे एसे होय तो प्रभुके कृपापात्र होय तातें श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेंहू एसो हूं तुह्मारे कृपापात्र हों तुम महोदार हो दयाके निधि हो तातें दया करो पात्रमें दान दियो सो अक्षय होतहे सो में दयाको पात्र हों तातें दया करो ॥ १२ ॥

मूलं–संसारदावदग्धानां जीमूतजलकांक्षिणाम् ।
न नीलजलदानंतजलदानं विना सुखम् ॥१३॥

शब्दार्थः–संसाररूपी दावानलतें दग्ध एसे ओर मेघके जलकी इच्छावारेनकों श्याममेघके अनंत जलके दान विना सुख न होय ॥ १३ ॥ टीका–अब लौकिक दृष्टांत कहतहें । वनमें दावानलतें बनके सगरे जीव आदि जरत होय तिनकों शीतल करिवेको एक मेघजल

वरखे येही उपाय हे ओर कोई उपाय नांहीहे। यद्यपि जलतें समुद्र, नदी, अनेक भरे हें परंतु बनमें दावानलकों मेघ जलदानकरि निवृत्त करे तब होय, तेसेंही यह मायासंबंधी देहसंबंधी अहंताममतारूप यह दावानलमें जरतहें तिनको नीलमेघरूप श्रीगोवर्धननाथजी अपने आनंदरूप अनंत जलको दान करे (वडी कृपा करे) तबही यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों सुख होय ओर कोउ उपाय नांही ॥ १३ ॥

मूलं–ये मयांगीकृताः सर्वे त्वत्सेवायै गृहस्थिताः।
त एव भावनाशाय भवंति करवै किमु ॥ १४ ॥

शब्दार्थः– आपकी सेवाके लिये गृहमें रहे एसे जो मेने अंगीकृत कीये हे यहही भावको नाश करिवेकों तत्पर होतहे सो अब में कहा करूं?॥ १४ ॥ टीका–जो हमने सेवक कीये हें तिनकी प्रार्थना प्रभुसों करी अंगीकार कराये एसे अंगीकृत सेवक वोहोत कीये हें। सो काहेतें जो मोसों गृहस्थाश्रममें भलीभांति सेवा नांही बनी आवतहे तासों अपने गृहमें स्थित हें तिन सबनकों सेवक करी सेवारीति बताई हे सो मेरे सेवक तुह्मारी भली सेवा करेंगे तो मोकों सुख होयगो यह जानि अपनी सहायके लिये अपने गृहस्थित अंगीकृत कीये हें सो वे गृहस्थ भगवानकी सेवामें भावनाश होय एसो उलटो कृत्य करतहें सो में कहा करूं? ॥ १४ ॥

मूलं–बहिर्मुखाः प्रकुर्वंति स्वसंबंधं बहिर्मुखम्।
सहायताभ्रमादेव न हातुमहमुत्सहे ॥ १५ ॥

शब्दार्थः–बहिर्मुख हे अपने संबंधतें मोकों बहिर्मुख करतहें अथवा बहिर्मुख अपने संबंधकों बहिर्मुख करतहें परंतु यह सहायता करेंगे एसें भ्रमसोंही में इनकों छोडिवेकों उत्साह नांही करतहों ॥ १५ ॥ टीका–जो जीव स्वभावतें बहि-

सुख हे सो अपने संबंधतें सगरे जीवको, वहिर्मुख करतहे सो मेनें भ्रमसों, अपनी सहायता करेंगे एसें जान्यो तासो अंगीकृत कीये सो वे उलटे चलतहे भगवत्सेवा नांही करतहे तोहू उनकों छोडिवेको उत्साह नांही करतहों ॥ १५ ॥

मूलं–सहायभ्रममुत्पाद्य वंचयंति यथा जनम् ।
मार्गस्थितं तथा नाथ! वंचितोऽहं गृहस्थितैः ॥ १६॥

शब्दार्थः–जेसें ठगपुरुष मार्गमें रहे मनुष्यकों सहायको भ्रम उत्पन्न करिकें ठगतहे तेसें हे नाथ ! में गृहस्थित जनसों ठगायो हों ॥ १६ ॥ टीका–मेनें भ्रमकरिकें अपनी सहायताके अर्थ सेवक कीये तामें उलटो ठग्यो गयो हू हे नाथ ! मार्गस्थित जनकों जेसे कोई ठगे तेसें गृहस्थ वैष्णवनें मोकों ठग्यो ॥ १६ ॥

मूलं–यथांधकूपपतितं मंडूका दुःस्वरैर्जनम् ।
व्यथयंति तथा मह्यं दुर्वचोभिर्गृहस्थिताः ॥ १७ ॥

शब्दार्थः–जेसें अंधकूपमें गिरे जनकों मंडूक दुष्टस्वरसों व्यथा करतहें तेसें मोकों गृहस्थित दुर्वचनसों व्यथा करतहें ॥ १७ ॥ टीका–लौकिक दृष्टांत कहतहे–जेसें अंधकूपमें पर्‍यो होय ताकों मेंडुक दुष्ट स्वरतें बोले सो भय उपजावे तेसें गृहस्थित अनेक लोकके दुर्वचन सुनिकें मोकों महाभय होतहे गृहमें स्थित एसे मनुष्यके अनेक भांतिके वचन सुनिके मेरे मनमें व्यथा होतहे ॥ १७ ॥

मूलं–कियत्पर्यंतमेवं हि मदुपेक्षां करिष्यसि ।
त्यक्तो वा दोषसाहित्याद्विमुखोऽहं दयालुना ॥१८॥

शब्दार्थः–कितनेक दिनपर्यंत एसेंही मेरी उपेक्षा करोगे ? किंवा दोषसहितमें हों तासों विमुख हों सो दयालुनें त्याग कीयो ? ॥ १८ ॥

टीका–तातें हे नाथ ! एसो दुःखी में हों सो मेरी उपेक्षा करोगे के मोकों दोषसहित जानिकें त्याग करोगे ? परंतु में यह मननें जानतहों जो तुम दयालु हो तातें त्याग तो कबहू न करोगे श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " चित्तेन दुष्टो वचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः । ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः " (चित्तहू दुष्ट हे तुह्मारेमें नांही लागत, वाणी हू मिथ्याभाषणतें दुष्ट हे, कायाहू तुह्मारि सेवा नांही करत तातें दुष्ट हे, क्रियाहू लौकिक करियतहे, ज्ञानहू दुष्ट हे, भजनहू निष्कपटतासों नांही होतहे तातें हे नाथ! हमारो दोष (अपराध) कहांतांई विचारोगे?) तातें कृपा करो ॥ १८॥

मूलं–त्यक्तः कुत्र गमिष्यामि न मेऽस्ति शरणं कचित् ।
नावमारोप्य दीनं स्वं मध्येधारं न मज्जय ॥१९॥

शब्दार्थः–आप त्याग करो तो में कहां जाउंगो ? मोकों काहू जगे शरण नांहीहे । दीन अपने जनकों नावपर बेठायके धाराके मध्यमें मति डुबावो ॥ १९ ॥ टीका–हे नाथ ! तुम ईश्वर हो कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथाकर्त्तुं सर्वसामर्थ्ययुक्त हो सो यह जानो मेरे शरणलायक यह नांहीहे यह विचारिकें कदाचित् त्याग करो तो हम कहां जाय ? हमारे तुम बिना ओर कहूं ठिकानो नांहीहे तुह्मारी शरण विना रंचकहू काहूकों नांही जानत। तातें तुम त्याग करोगे तब मेरी कहा दशा होयगी ? जेसें नावमें बेठाय मध्यधाराके बीचमें नाव छोड देई तो उह कहा करे ? तहां खेवटही सहाय होय तो पार लगे ओर उपाय नांहीहे तेसेंही हम तुह्मारे पुष्टिमार्गरूपी नावमें बेठे हें अब तुह्मारे मनमें आवे तेसी करो ॥ १९ ॥

मूलं-निजाचार्यकुले जन्म किमर्थं विहितं मम ।
विहितं चेन्मयि सदा दोषपीने कृपां कुरु ॥२०॥

शब्दार्थः–अपने आचार्यकुलमें मेरो जन्म काहेकों कीयो ? जब कीयो तब सदा दोषसों पुष्ट एसो जो में ताकी उपर कृपा करो ॥ २० ॥ टीका–भलें तुम मेरो त्याग करोगे तो तुमसों हमारी कहा कछु चलतहे? परंतु यह में कहतहों जो निज (हमारे) श्रीआचार्यजी श्रीवल्लभाचार्यजीके कुलमें हमारो जन्म क्यों दियो? तुम प्रथम नांही जानत हते ? अब छोडतहो में तो सदा दोषकरिकें भर्यो हों तातें कृपाही करो ॥२०॥

मूलं–असंगः सर्वथा दूयेऽसत्संगसहितोऽप्यहम् ।
यथाऽरण्ये परित्यक्तः कादिशीको मृगादने॥२१॥

शब्दार्थः–में असत्पुरुषनके संगसहित हों सो इनसों सर्वथा असंग [संगदोष न लगे तेसें दूरी] रहतहों तोहू खेद पावतहों जेसें वनमें परित्यक्त ओर दिङ्मूढ (माथो फिरगयो तासों दिशा भूल गयो) पुरुष मृगादन जो सिंहादिक ताकरि भय पावे तेसें में असत्संगसों भय पावतहों ॥ २१ ॥ टीका–हे नाथ ! असत्संग मोकों दशोदिशातें घेरे हे यह मोकों बडो दुःख होरंचकहू कुसंगतें बुद्धि बिगरे तो सर्व ओरतें मोकों दुःसंग वेष्टित हे तातें सुंदरबुद्धिको नाश भयो हे ओर सत्संगतें सर्वधर्मको तोष होय सो सत्संग मोतें बोहोत दूरी हे तातें में अकेलो हूं दुःसंगके मध्ये वेष्टित हों तिनसों डरपतहों सो मेरी कहा दशा हे जेसें अरण्य वनमें अकेलो छोडि देई सो सिंहकी गरज दशोदिशा सुनि कोन दिशाकों जाय तेसेंही मोकों भई हे सो कोन दिशाकों जाऊं सो उपाय दीसत नांही ॥ २१ ॥

मूलं–जातपक्षाः खगाः स्वीयजननीं च त्यजंति हि[1] ।
यथा तथा करालेऽस्मिन्काले हं भगवज्जनैः॥२२॥

१ 'जातपक्षान् खगान् स्वीयजननी त्यजति ध्रुवम् ।' एसो कहुं पाठ हे ताके अनुसार अर्थ, जेसें पांख उत्पन्न भई एसे पक्षीकों माता निश्चय छोडतहे तेसें मोकों थोरो भाव भयो ओर यह कराल कालमें भगवदीय जननें छोडदियो ।

शब्दार्थः–जेसें पांख उत्पन्न भये एसे पक्षी अपनी माताकों छोडि देतहे (फिर माताकरि रहित होतहे) तेसें में भगवानके जन जो भक्त ताकरि रहित होय गयो हूं ॥ २२ ॥ टीका–मेरी कहा अवस्था हे जेसें खग जो पक्षी हे ताके बचाकों जब पांख होय तब उह बचा अपनी जननी जो माता ताकों तजिकें अनेक वनमें उडिजातहें, तेसेंही हमारे पास भगवदीय कथा वार्त्ता करते सो यह कराल कालमें मोकों छोडिगये सो में कहा करूं ? ॥ २२ ॥

मूलं–चिंतापारावारे पतितस्यात्रैव मग्नस्य ।
एतज्जलवडवाग्निः शरणं श्रीवल्लभाचार्याः ॥ २३ ॥

शब्दार्थः–चितारूप समुद्रमें गिर्यो ओर यामेंही डूब्यो एसो जो में ताकों वह जलके शोषणमें वडवानलरूप श्रीवल्लभाचार्यजी शरण हें ॥ २३ ॥ टीका–भगवदीयके संग विना मेरे हृदयमें एसी चिंता हे जाको पार नांही । चिंतारूप समुद्रमें मग्न हों तहां दृष्टांत कहतहें जेसें कोउ महागंभीर पानीके समुद्रमें मग्न भयो होय ताकों एक वडवामिही सहायभूत हे एकक्षणमें सगरो पानी शोष लेय ओर कोउ नांही तेसेंही में यह संसाररूप भवसागरके चितारूपजलमें मग्न पर्यो हों तामें एक श्रीवल्लभाचार्यजीही शरण हे यह उपाय हे श्रीमहाप्रभुजी अलौकिक अग्निरूप हे सो एकक्षणमें सगरी चिंता संसारदुःख सब शोषलेयंगे यह उपाय हे ॥ २३ ॥

मूलं–हा कृष्ण ! हा नंदसूनो ! हा यशोदाप्रियार्भक !
हा गोपिकाहृदाधार ! धारयस्व करेण माम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थः–हा श्रीकृष्ण ! हा श्रीनंदरायजीके पुत्र ! हा श्रीयशोदाजीके प्रियपुत्र ! हा श्रीगोपीजनके हृदयके आधार ! श्रीहस्तकरि [उपर श्लोकमें कहे एसे समुद्रमें मग्न हों तातें] मोकों पकरि लेव ॥ २४ ॥ टीका–उपर कहे याप्रकार श्रीहरिरायजी दीनता करत हते सो दीनता

करत करत विप्रयोगात्मक अग्नि हृदयमें प्रकट भयो सो अत्यंत विरहसों देहानुसंधान भूलिकें बोले, हा कृष्ण ! यह फलात्मक नाम श्रुतिरूपके भावतें हे १. हा नंदसुनु ! श्रीनंदरायजीके पुत्र जेसें श्रीनंदरायजीने हम पाले तेसें तुमहू पालो यह दूसरो नाम कुमारिकाके भावतें हे २. हा श्रीयशोदाजीके प्राणप्रिय पुत्र ! यह श्रीयमुनाजीके भावतें हे ३. पाछें कहे हा गोपीजनके प्राणआधार ! यह मुख्य श्रीस्वामिनीजीके भावतें हे ४. यह चारो नाम लेय कहे जो एसे प्रभु विप्रयोगसमुद्रमें हम परे हें तिनको अपने करतें उद्धार करो ॥ २४ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमष्टाविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्।२८।

शिक्षापत्र २९.

अब एकोनत्रिंश शिक्षापत्रमें बुद्धिको नाश करिवेवारो यह काल आयो हे तासों सत्संग, श्रीकृष्णस्मरण ओर शरणागतिरूप साधनकरि बुद्धि स्थिर राखनी. एसें न करे तो सर्वकृति व्यर्थ हे, तासोंही श्रीआचार्यजी [बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णके चरणकमल प्रसन्न होउ] एसें प्रार्थना करी गायत्रीको अर्थ बतायो हे। सो श्रीकृष्णस्मरण ओर शरणागतिसों प्रभुही बुद्धि स्थिर राखेंगे यह निरूपण हे। उपर कहे ताप्रकार दैन्यतें विप्रयोग प्रकट होय तब भगवद्धर्म सिद्ध होय सो बुद्धि कोनप्रकार स्थिर रहे सो आगें कहतहें—

मूलं—बुद्धिनाशककालोऽयं सर्वेषां समुपागतः।
अतो हि सर्वथा गोप्यं बुद्धिरत्नं सुबुद्धिभिः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—सबनकी बुद्धिको नाश करिवेवारो काल यह आयो हे तासों बुद्धिवारेनकों अपने बुद्धिरूप रत्न सर्वथा छुपाय राखनों ॥ १ ॥ टीका—यह वर्त्तमान कलिकालमें सबकी बुद्धिको नाश भयो हे काहेतें जो यह कलियुगमें अनेक धर्म भये हे तासों विचारे जो यह धर्म न भयो तो कहा बिगरतहे ओर धर्म लेउंगो एसें बुद्धि धर्मतें भ्रष्ट होय-गई तातें जा बुद्धितें सुधर्म होतहे वा तो कालने हरि लीनी हे ताकरि सुंदर धर्मको (स्वरूप नांही समुझि सके तासों) नाश भयो, कुबुद्धितें विपरीत आचरण करन लागे तातें कहतहे जो तुम सावधान रहियो यह काल सर्वबुद्धि हरनकों आयो हे तातें सुबुद्धि जो वैष्णव हे सो अपनी बुद्धिरूप रत्नकों बैठीमें धरि यत्नसों राखियो काहूसों न जताईयो काहेतें जो रत्न यत्न विना रहे तो चोर लेजाय तेसें बुद्धि-रूप रत्न यत्नकरि राखेंगे तिनहीको रहेगो ॥ १ ॥

मूलं—सत्संगकृष्णस्मरणशरणागतिसाधनैः ।
तदभावे कृतिः सर्वा यतो वैयर्थ्यमेति हि ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सत्संग, श्रीकृष्णको स्मरण, ओर शरणागतिरूप साधन-करि बुद्धिकी रक्षा करनी जो ऐसें रक्षा न करे तो सर्व कृति व्यर्थ होयजायगी ॥ २ ॥ टीका—अब श्रीहरिरायजी बुद्धिरक्षणको उपाय कहतहें । सदा पुष्टिमार्गीय वैष्णवके सत्संगमें रहे ओर अपने मनमें ध्यान करी श्रीकृष्णके स्वरूपको स्मरण करे ओर श्रीकृष्णके शरणकी भावना सदा मनमें राखे। श्रीकृष्णाश्रयमें अष्टाक्षर कहेहें सो शरणकी भावना करे काहेतें जो भाव विना क्रिया करे सो सब व्यर्थ हे जेसें राखमें होमे ताको कहा फल ? तेमेंही भाव विना जो करे सो सब व्यर्थ हे ॥ २ ॥

मूलं-अत एवोक्तमाचार्यैः स्वकीयकरुणात्मभिः ।
बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु ॥ ३ ॥

शब्दार्थः-तासोंही स्वकीय जनकी उपर दयालु श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें जो बुद्धिके प्रेरक श्रीकृष्णके चरणकमल प्रसन्न होउ ॥ ३ ॥ टीका-तहां कोई कहे जो यह बुद्धिरत्नके जतनको प्रकार तुमही कहतहो के कहूं सुने हे ? तहां कहतहे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीमुखतें कहतहें जो "बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु" बुद्धिके प्रेरक श्रीकृष्णके चरणारविंदकी प्रसन्नतातें सुंदर बुद्धि होतहे तातें मन, वचन, कर्म करि श्रीकृष्णके शरण जो कोई रहेगो तिनकी सुंदर बुद्धि होयगी ओरकी नांही ॥ ३ ॥

मूलं-उपकारोऽपि गायत्र्या ध्यानहेतुरयं मतः ।
गीतायां हरिणाऽप्युक्तमर्जुनं प्रति मोदतः ॥ ४ ॥
'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते' ।
बुद्धिस्थैर्यं हृदिस्थैर्यं हरेरिति न संशयः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णके पादपद्मकी प्रसन्नताकी प्रार्थनारूप यह उपकारहू गायत्रीके ध्यानको कारणरूप हे, गीताजीमें श्रीकृष्णनें अर्जुन प्रति आनंदसों कह्यो हे ॥ ४ ॥ 'जो यह बुद्धियोग में देतहों जाकरि यह मोकों प्राप्त होयहे' बुद्धिकी स्थिरता होय तब हृदयमें हरिकी स्थिरता होय यामें संशय नांही ॥ ५ ॥ टीका-गायत्री ब्राह्मणके बालककों देतहें ताके तृतीयपादमें बुद्धिके प्रेरणरूप अर्थ हे सो भगवान् सुंदर बुद्धि करे यह इनको उपकार हे। काहेतें जो गायत्रीके उपदेशतें वेदके कर्मकी योग्यता होय तेसेंही बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णकी

१ उपक्रमोऽपि गायत्र्या एसो पाठ काहू पुस्तक में हे ताके अनुसार अर्थ-बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णके पादपद्मकी प्रसन्नताकी प्रार्थनाको प्रारंभ हे सोहू गायत्रीके ध्यानको कारण हे.

कृपातें वैष्णवकी बुद्धि निर्मल होय सोहू प्रभुको उपकार हे। काहेतें जो बुद्धि निर्मल होय तो श्रीठाकुरजीको ध्यान होय सो गीताजीमें श्रीभगवान् अर्जुन प्रति कहेहें ॥ ४ ॥ जो दूसरे अध्यायमें बुद्धि-स्थिरको प्रकार कहेहें ताप्रकार बुद्धि स्थिर होय तो भगवान् हृदयमें स्थिर होय ओर बुद्धिकी स्थिरता जाय तो हरि हृदयतें जात रहे निश्चय यामें संशय नांही । तातें गीताजीमें एक सगरो अध्याय बुद्धियोगको भगवान् कहेहें काहेतें जो सुंदर बुद्धि होय तबही सगरे धर्म, जप, तप, दान, व्रत. मर्यादामार्गके साधन, कर्ममार्गके साधन, ज्ञानमार्गके साधन, योगमार्गके साधन, पुष्टिमार्गके साधन, सब बने, सुंदर बुद्धि विना कछु कार्य सिद्ध न होय ॥ ५ ॥

मूलं–तन्नाश एव गीतायां सर्वनाशो निरूपितः । अतो बुद्धिः सुसंरक्ष्या भावभावनकारणम् ॥६॥

शब्दार्थः–बुद्धिको नाश होय तो सबनको नाश गीताजीमें निरूपण कीयो हे, तासों सर्वभावकी उत्पत्तिके कारणरूप बुद्धिकी आछी रीतिसों रक्षा करनी ॥६॥ टीका–बुद्धि जाभांति नाश होय ओर बुद्धिनाशतें आत्माको नाश होय सो भगवान् गीताजीमें द्वितीय अध्यायमें कहेहें "ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥१॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृति-विभ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥२॥" या वचनतें भगवान् कहतहें, हे अर्जुन ! जीव विषयमें प्रवृत्त होतहे सो विषयके ध्यानतें दुःसंग (संसारिको संग) होतहे तब अनेक भांतिके विषयकी कामना प्रकट होय तामें कछु बिगरे अथवा विघ्न आवे तब क्रोध होय क्रोधतें मोह होय मोहकरि स्मृतिविभ्रम होय जब अज्ञान होय अज्ञानतें लौकिक संसारिकों अपने जाने तिनके पालनार्थ

खोटी क्रिया करे याभांति स्मृतिके भ्रमतें बुद्धिको नाश होय, बुद्धिके नाशतें आत्माको नाश होय, बुद्धि हे सो भगवद्भावके भावनमें कारण हे तातें बुद्धिकी रक्षा करे सो प्रकार आगे श्लोकमें कहतहें ॥ ६ ॥

मूलं-प्रसादभक्षणैर्नित्यं सेवनाकरणैरपि ।
सत्संगेन सदा कृष्णकथाश्रवणकीर्त्तनैः ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-महाप्रसादके भक्षणकरि, नित्य भगवत्सेवा करि, सत्संग ओर सदा श्रीकृष्णकी कथाके श्रवण कीर्तन करि बुद्धिकी रक्षा करनी ॥७॥ टीका-उपर कहे जो बुद्धिकी रक्षा करे तो सर्वकार्य सिद्ध होय सो बुद्धिकी रक्षा कोन भांति करनी ? सो कहतहें- असमर्पित वस्तुमें अपनो मन चलायमान न करे, सदा महाप्रसाद भक्षण करे ओर श्रीकृष्णकी सेवा नित्य करे ओर भगवदीयको सत्संग करे दुःसंगको त्याग करे ओर श्रीकृष्णकी कथाको श्रवण करे श्रीकृष्णकी लीला तथा नामको कीर्त्तन करे तो बुद्धि निर्मल रहे तब प्रभु हृदयमें पधारे ॥७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकोनत्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्।२९।

शिक्षापत्र ३०.

अब त्रिंशत्तम शिक्षापत्रमें जेसें कर्मफलसिद्धिमें देशादि पद साधन हे तेसें पुष्टिमार्गीय फलसिद्धिमेंहू देशादि पद साधन हे ओर तिनको साधन सत्संग हे यह निरूपण हे। उपर बुद्धिकी रक्षाको प्रकार कहे परंतु कालदोषहू बडो हे सो न लागे तब बुद्धि सुंदर रहे सो प्रकार कहतहें—

मूलं-स्मर्त्तव्यः सर्वदा कृष्णो विस्मर्त्तव्यं जगत् पुनः ।
प्रपंचस्मरणे कृष्णस्मृतिर्नैव भवेदिति ॥ १ ॥

प्रयतेत ततो जीवस्तदभावाय सर्वथा ।
कृष्णार्थताभावनेन गृहादेर्विस्मृतिर्भवेत् ॥ २ ॥

शब्दार्थः–सर्वदा श्रीकृष्ण स्मरण करिवेयोग्य हे ओर जगत विस्मरण करिवेयोग्य हे प्रपंचको स्मरण होय तहांताँई श्रीकृष्णकी स्मृति नांही होय तासों ॥ १ ॥ प्रपंचकी विस्मृतिके अर्थ जीव सर्वथा यत्न करे तातें श्रीकृष्णके अर्थ सर्व क्रियाकी भावना करिकें गृहादिककी विस्मृति होय ॥ २ ॥ टीका–सदासर्वदा श्रीकृष्णहीको स्मरण कर्त्तव्य हे सो अष्टमस्कंधमें शुकदेवजी कहेहें " ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् । स्मरंति स्मारयंति ये हरेर्नाम कलौ युगे " (जो कलियुगमें हरिको नाम स्मरण करेहें ओर स्मरण करावेहें सो हे राजन् ! मनुष्यनमें भाग्यसहित ओर कृतार्थ निश्चय हें) यह वचनतें या कालमें श्रीकृष्णको स्मरण करे सो वडभागी हे ओर यह जगतमें संसारकी विस्मृति कर्त्तव्य हे काहेतें जो जहांताँई जगतमें देहसंबंधी अनेक पदार्थ कुटुंब, घर इत्यादिकमें मन लागीरह्यो हे तहांताँई श्रीकृष्णके चरणमें न लगे तातें जगतकी विस्मृति रासे ओर प्रपंचको यह जाने जो सर्वके श्रीकृष्णही कारण हे तातें प्रपंच देखि श्रीकृष्णको माहात्म्य विचारे जो प्रपंचके कर्त्ता ओर संहारकर्त्ता प्रभुही हे याभांति प्रपंचके कारण श्रीकृष्णहीको स्मरण कर्त्तव्य हे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णमें भाव होय यह प्रयत्न सर्वथा करे ओर श्रीकृष्णके चरणारविंदमें भावनाके अर्थ गृहादिककी अहंता ममताकी विस्मृति करे एसो यत्न करे, श्रीकृष्णमें भाववृद्धि करे ताको ग्रहण करे ओर या भावमें बाधक होय ताको त्याग करे सगरी क्रिया श्रीकृष्णहीके अर्थ करे ताकरि गृहादिककी विस्मृति होय ॥ २ ॥

मूलं–अथवा बाधकत्वेन त्यागभावनया पुनः ।
अखण्डाद्वैतभावेन कामाद्यावेशतो हरौ ॥ ३ ॥

प्रापंचिकपदार्थेषु लीलासृष्टित्वभावनात्।

शब्दार्थः–अथवा (गृहादिकनमें) बाधकपनेतें त्यागकी भावना करी फिर अखंड (शुद्ध) अद्वैतकी भावना करिकें, हरिमें कामादिकके आवेशतें, ॥ ३ ॥ ओर प्रपंचके सगरे पदार्थनमें लीलासृष्टिपनेकी भावनातें गृहादिककी विस्मृति होय ॥ टीका ॥ श्रीकृष्णकी सेवामें स्त्रीपुत्रादिक तथा देश बाधक होय तो ताको त्याग करिवेकी मनमें भावना करे ओर श्रीकृष्णकों अखंड अद्वैत [सब ठोर सर्वोपर श्रीकृष्णही बिराजतहें याभांति] जानि सब ठोर श्रीकृष्णहीकी भावना करे ओर कामादिकको आवेश प्रभुमें करे जेसें लौकिक संसारी कामादिकको आवेश गृह कुटुंबादिकनमें करी तामें अष्टप्रहर मचत रहेहें तेसेंही वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवामें मच्यो रहे, जो अब यह बागा चहियें, यह सामग्री यह उत्सव आवतहे यामें यह चहियें, याभांति मन श्रीकृष्णहीमें लगावे ॥ ३ ॥ यह प्रपंचके पदार्थमें लीलासृष्टिकी भावना करे तामें मुख्य विचार यह हे जो श्रीकृष्णकी सेवामें जो पदार्थ विनियोग होय सो स्वरूपात्मक जाने जो श्रीकृष्णही लीलासंबंधी हे ओर जो पदार्थ सेवामें उपयुक्त न होय सो माया-संबंधी आसुरी हे याभांति विचार मनमें राखे ॥

मूलं–कृष्णसन्निहितो देशः कालः सत्संगहेतुकः ॥ ४ ॥
द्रव्यं सर्वस्वमेवात्र कर्ताऽभिमतिवर्जितः ।
मंत्राः श्रीकृष्णनामानि गुणलीलासमन्विताः॥५॥

---

१ यह सर्व जगत् भगवद्रूप हे एसो भाव होय सो शुद्धाद्वैत भाव जाननो.

२ श्रीभागवतमें कह्यो हे जो काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य ओर सख्य सदा प्रभुमें राखत हे सो तन्मयताकों प्राप्त होत हे.

३ यह जगत् प्रभुको क्रीडाभांड हे तासों सगरे पदार्थ लीलासंबंधी हे.

कर्माणि कृष्णसेवैव सर्वसाधनसंग्रहः ।
एतच्छट्कस्य भक्तौ हि सत्संगः साधनं मतम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–जहां श्रीकृष्ण विराजत होय सो देश १, सत्संगको कारणरूप सो काल २. ॥ ४ ॥ अपनो सर्वस्व सोही द्रव्य ३, जहां कर्त्ता अभिमानरहित ४, श्रीकृष्णके नाम सो गुणलीलायुक्त मंत्र ५, ॥ ५ ॥ सर्वसाधनके संग्रहरूप श्रीकृष्णकी सेवा सोही कर्म ६, भक्तिमार्गमें (देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र, ओर कर्म) यह षट् पदार्थके साधनरूप सत्संग हे ॥ ६ ॥ टीका–जहां श्रीकृष्ण बिराजतहे सो उत्तमतें उत्तम देश जाननो, ओर भगवदीयको संग होय सोही काल परम उत्तम जाननो । सो प्रथमस्कंधमें शौनक कहेहैं " तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः " (भगवानके संगी भक्तके संगके एक लव बराबरी न स्वर्गकों के नही मोक्षकों तुलना करतहें तहां मनुष्यनकी आशिष जो राज्यादिक सो कहांतें इनकी बराबरीमें होय ?)या वाक्यतें स्वर्ग तथा मोक्षपर्यंत सुखहू सत्संगके समान नांहिहे । तातें सत्संग होय सो काल उत्तम जाननो ॥ ४ ॥ ओर द्रव्यादिकमें सगरो पदार्थ घर आदि सब आय गयो सो सर्वस्व जाननो ओर मेंही सर्व वस्तुको कर्त्ता हूं यह अभिमानकरि रहित होय, द्रव्यमें ममत्व ओर सब कार्यमें अपनेकों कर्त्ता जाने यह दोउ बाधक हे तातें ममत्व अहंकार छोडे ओर सगरे मंत्रमें श्रीकृष्णको नाम हे सोही सर्वोपरि महामंत्र जाने (जेसें " श्रीकृष्णः शरणं मम " ओर प्रभुके अनेक गुण हे अनेक लीला हे ओरनके गुणगानतें श्रीकृष्णहीको गुणगान मुख्य हे तिनकी भावना करे सो महामंत्र हे । सो अष्टमस्कंधमें शुक्राचार्य कहेहे " मंत्रतस्तंत्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः । सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्त्तनं तव "

(मंत्रसों, तंत्रसों, देश, काल ओर द्रव्यसों जो अपूर्ण रह्यो होय सो सर्व तुह्मारो नामको कीर्त्तन पूर्ण करतहे) याभांति श्रीकृष्णको नाम लियो सो सबमंत्र करीचूक्यो सो श्रीगुसाँईजी कहेहे " हरे त्वन्नामनिर्व्यक्तिं याऽऽह श्रुतिरहं सदा । गृणामि यद्यदा नाथ ! तत्तथैवास्तु नान्यथा "(हे हरे ! आपके नामको अर्थ जो वेद कहतहे इनकों ही में जासों सदा उच्चारुंहूं तासों हे नाथ ! सो तेसेंही होउ अन्यथा मति होउ, श्रीकृष्णको नाम सर्ववेदश्रुतिको सार हे सो श्रीकृष्णकी कृपाहीतें लियो जाय अन्यथा नांही, तातें मंत्रही श्रीकृष्णको नाम हे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णकी सेवा हे सोही उत्तमोत्तम कर्म हे जहां श्रीकृष्णकी सेवा करी तहां सर्व साधन करीचूक्यो सो अष्टमस्कंधमें ब्रह्मा कहेहे "यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् । एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि (जेसें वृक्षकी जडमें जल सींचे तो सब डार पात हरे होय तेसेंही श्रीकृष्णकी सेवातें सर्वलोक संतुष्ट होय) तातें सगरे कर्ममें मुख्य सर्व साधनके संग्रहरूप श्रीकृष्णकी सेवाही हे यह षट् पदार्थ हृदयमें धरे तो सप्तम धर्मी श्रीकृष्ण सदा हृदयमें रहे कवहू बाहिर न जाय श्रीकृष्ण, श्रीजी, सातो स्वरूप, वल्लभकुल जहां बिराजे सो सर्वोपरि उत्तम देश जाने १, जा घडी सत्संग होय सोही सुंदर काल जाने २, द्रव्यादिक प्रभुमें विनियोग होय सोही उत्तम जाने ३, कर्त्ताको अभिमान त्याग करे ४, श्रीकृष्णको नाम सर्वोपरि जाने श्रीकृष्णकी लीला सोई सर्वोपरि जाने श्रीकृष्णकी लीला सोही सर्वोपरि गुण जाने

---

१ हरिको अर्थ सर्वदुःखहर्त्ता हे सो श्रुति कहेहे तासों में नाम लियोकरुंहूं सो तेसोही नामको अर्थ होय अर्थात् सर्व दुःख दूरी करो. २ वृक्षके मूलमें जल नांही सींचे ओर डारपातमें वोहोत जल सींचे तो व्यर्थ श्रम होय । काहेतें जो डारपातकोंहू प्राप्त न होय उलटो बिगार होय तेसें प्रभुकों छोडि ओरनको आराधन करे सो कछु फलरूप न होय ओरहू फल न मिले.

५, समस्तकर्ममें श्रीकृष्णकी सेवा सोई सर्वोपरि कर्म जाने ६, यह षट् पदार्थ सर्वोपरि हे सो जब मिले तब पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग होय येही साधन हे ओर दूसरो साधन नांही तातें सत्संग भयो तब सर्व साधन करीचूक्यो ॥ ६ ॥

मूलं–कृष्णसान्निध्यदेशे तु यतस्तिष्ठंति साधवः ।
कालः प्रसंगहेतुस्तु मिलितस्तेरुदेति हि ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–जासों श्रीकृष्णकी सन्निधिके देशमें साधु पुरुष रहतहे तासों सत्पुरुषनके मिलिवेतें सत्संगके कारणरूप काल उदित होतहे ॥ ७ ॥ टीका–पुष्टिमार्गीय भगवदीय श्रीकृष्णके सान्निध्यदेशमें रहतहें जहां श्रीकृष्ण बिराजतहैं तहां भगवदीयहू दर्शनसेवार्थ रहतहे तहां कालको सामर्थ्य नांही चलतहे तातें जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी, सातो सरूप, श्रीवल्लभकुलको मंदिर होय तहां भगवदीय मिले तब सर्वकार्य सिद्ध होय, उपर देशकी तथा कालकी उत्तमता कही सोय होय ॥७॥

मूलं–सर्वस्वस्योपयोगोऽपि सिद्ध्येत्सद्बुद्धिदातृभिः ।
अभिमाननिवृत्तिस्तु तदाश्रयवतामिह ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–सुंदर बुद्धिके देवेवारे भगवदीयनतें सर्वस्वको उपयोगहू सिद्ध होय तातें द्रव्यकी उत्तमता भई ओर इनके आश्रयवारेनकों अभिमानकी निवृत्ति ईहां होय सो कर्त्ताकी उत्तमता भई ॥ ८ ॥ टीका–एसे प्रभु ओर भगवदीय जहां बिराजतहे तहां सर्व पदार्थको उपयोग सिद्ध होतहे सर्व तादृशीयनके संगतें सुंदर बुद्धि होतहे प्रभुको आश्रय सिद्ध होय तब अज्ञानकरि अभिमान भयो हे सो निवृत्त होतहे तथा भगवदीयको आश्रय करे तो सब सिद्ध होय ॥ ८ ॥

मूलं–कृष्णनामस्वरूपादिज्ञानं तु तत एव हि ।
भगवत्सेवनं वापि पुरुषार्थस्तदेव हि ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्णके नाम तथा स्वरूपादिकको ज्ञानहू तासोंही होय यह मंत्र सिद्ध भयो ओर पुरुषार्थरूप श्रीकृष्णकी सेवाहू तबही होय यह उत्तम कर्म सिद्ध भयो एसें भक्तिमार्गमें देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मंत्र, कर्म, यह षट् पदार्थकी सिद्धिके उपाय तीन श्लोकसों कहे ॥ ९ ॥ टीका–श्रीकृष्णके नामको ओर श्रीकृष्णके स्वरूपको ज्ञान होय तब श्रीकृष्णकी सेवाकों परमपुरुषार्थरूप फलरूप सर्वोपरि जाने सो जब प्रभु कृपा करे तबही जान्यो जाय ताहीतें सिद्धांतमुक्तावलिमें कहतहें " कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता " श्रीकृष्णकी सेवा सदा करे फलरूप जानि मन लगायकें करे तब श्रीकृष्ण प्रसन्न होय अपने स्वरूपानंदको अनुभव करावे तब मानसी सिद्ध होय तातें परम पुरुषार्थरूप जानि भगवत्सेवा करनी ॥ ९ ॥

मूलं–यदा तथाविधाः संतो दृश्यंते सेवनोद्यताः ।
अतःसत्संगएवास्मिन्मार्गेसर्वस्यसाधनम् ।१०।

शब्दार्थः–जब तेसें सत्पुरुष सेवनमें तत्पर देखिवेमें आवे तब उपर लिखे षट् पदार्थ सिद्ध होय तासों यह पुष्टिमार्गमें तो सत्संगही सर्वको साधन हे ॥ १० ॥ टीका–उपर कहे सो सब श्रीकृष्णकी सेवामें उद्यत (तत्पर) एसें भगवदीय मिले तब सर्व सिद्ध होय प्रभु कृपा करे. अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमारे यह पुष्टिमार्गमें तो सत्संगही सर्वोपरि निश्चय साधन हे ताहीतें नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें, " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " (सर्वथा निवेदन तो तादृशीय जनसों मिलिकें स्मर्त्तव्य हे) तातें भगवदीयको संग करनो ॥ १० ॥

मूलं-तदभावे सर्वथैव न किंचिदिह सिद्ध्यति ।
तस्मात्प्रयत्नः कर्त्तव्यः सत्सगाय सुबुद्धिभिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः-सत्संगको अभाव होय तो सर्वथा यह मार्गमें कछु सिद्ध न होय तासों सुंदरबुद्धिवारेनकू सत्संगके अर्थ प्रयत्न कर्त्तव्य है ॥ ११ ॥ टीका-उपर कहे एसे भगवदीयको भावसहित संग भयेतें सर्व सिद्ध होय एसे तदीयके संग विना किंचितहू सिद्ध नांही होय तातें सर्वथा प्रयत्नकरिकें भगवदीयको सत्संग कर्त्तव्य हे। सत्संग करे सोही वैष्णव सुबुद्धि हे सो एकादशस्कंधमें भगवान् कहेहें " न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ! । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् " (मोकों योग वश नांही करतहे न सांख्य, धर्म, हे उद्धव ! न स्वाध्याय, तप, दान, न कूपारामादिक, न दक्षिणा, ॥ १ ॥ व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम, यम, यह कोउ वश्य नांही करतहे जेसो सर्वसंगकी निवृत्ति करिवेवारो सत्संग मोकों वश्य करतहे) याभांति अनेक साधनकरि भगवान् नांही वश्य होतहें जेसें सत्संगकरि वश्य होत हे तातें सत्संगको यत्न सर्वथा पुष्टिमार्गीयकों कर्त्तव्य हे ॥ ११ ॥

मूलं-अत एवोक्तमाचार्यैर्हरिस्थाने तदीयकैः ।
" अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति " ॥ १२ ॥

शब्दार्थः-तासोंही श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीग्रंथमें कहेहें-हरिके स्थानमें भगवदीयनके संग समीपमें अथवा दूरमें जेसें चित्त दोषयुक्त न होय तेसें रहेनो ॥ १२ ॥ टीका-हमारे श्रीआचार्यजी महाप्रभु भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः । अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति " तासों हरिस्थानमें भगवद्धर्मपर तदीयनकी साथ समीपमें अथवा दूरमें चित्त दोषयुक्त न

होय तेसें रहेनो यह वाक्यसों हरिस्थान जहां श्रीठाकुरजी बिराजत होय तहां तदीय भगवदीयसों मिलिकें सेवा करे जामें चित्तमें कोई दोष न होय याभांति रहे, बोहोत निकटमें चित्तको दोष होय तो नेक दूरी रहे जामें दर्शन सेवा नित्य बने चित्तमें दोष न होय याभांति भगवदीयसों मिलिके हरिस्थानमें रहे ॥ १२ ॥

मूलं-चित्तदोषे कथं सेवा चेतस्तत्प्रवणं भवेत् । अतो विचारः कर्त्तव्यः सर्वथैकत्रवासकृत् ॥ १३॥

शब्दार्थः-चित्तमें दोष होय तव तत्प्रवणचित्तरूप सेवा केसें होय तासों सर्वथा एकस्थलमें (हरिस्थानमें भगवदीय होय तहां) वास होय एसो विचार कर्त्तव्य हे ॥ १३ ॥ टीका-जब चित्तमें अनेक भांतिके दोष उत्पन्न होय तब सेवा काहेकी सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी सिद्धांतमुक्तावलिमें कहेहें " चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनुवित्तजा " (प्रभुमें एकाग्र चित्त होय सोसेवा मानसी ताकी सिद्धिके अर्थ तनुजा तथा वित्तजा सेवा हे) तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायकें करे तव मानसी सिद्ध होय, जेसें नदीको प्रवाह रात्रिदिन धारा अहर्निश एकरस चलतहे तेसेंही वैष्णवको चित्त अहर्निश एकरस भगवत्सेवामें लाग्यो रहे तब मानसी सेवा सिद्ध होय, तनुजा वित्तजा करतमें जब चित्त दुष्ट होय तब आगें मानसी फलरूप कहांतें सिद्ध होयगी ? तातें श्रीआचार्यजीके वचनामृतको विचार करे ॥ १३ ॥

मूलं-बुद्धया विचार्य मत्प्रोक्तं निधाय हृदि सर्वथा । स्वार्थसंपत्तये कार्यो वासएकत्र तत्परैः ॥ १४॥

शब्दार्थः-मेनें कह्यो सो बुद्धितें विचारिकें सर्वथा हृदयमें स्थापन करी स्वार्थकी प्राप्तिके अर्थमें तत्पर (भगवदीय) के संग एकत्र वास

करनो ॥ १४ ॥ टीका–एकांतमें बेठिकें अपनी बुद्धितें विचार करे तामें विचार न होय तो भगवदीयकें संग विचार करे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " बाधसंभावनायां तु नैकांते वास इष्यते। हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः " (बाधकी संभावना होय तो एकांतमें वास नांही करनो हरि तो सवनतें रक्षा करेंगे संशय नांही) यह वाक्यसों श्रीमहाप्रभुजीके वचनामृतकों विचार हृदयमें सर्वथाही कर्तव्य हे। तहां कोई कहे जो अनेक सुखदुःख आवे तहां कोन प्रकार करे ? तहां श्रीमहाप्रभुजी कहेहें जो हरि-भगवान् सर्वथा अपने भक्तनकी रक्षा करेंगे तातें यह चिंता सर्वथा न करे, एकांतमें बेठिकें अपनी सुंदरबुद्धितें अपने चित्तमें विचार नित्य करे, सेवादर्शनके समय सेवादर्शन करे ओर अनोसरमें एकांतमें भगवदीयसों मिलिकें विप्रयोगसो लीलासंबंधी विचार करे या भांति वैष्णव रहे तो सगरे कार्य सिद्ध होय ॥ १४ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीका- समेतं समाप्तम् ॥ ३० ॥

शिक्षापत्र ३१.

अब एकत्रिंशत् शिक्षापत्रमें साक्षात् तथा परंपरासों वरण दोय प्रकारको हे तामें लीलास्थ भक्तनमें साक्षात् ओर आधुनिक भक्तनमें (श्रीआचार्यजीद्वारा) परंपरा वरण हे। लीलास्थ भक्तनमेंहू श्रुतिरूपामें साक्षात् ओर अग्निकुमार (ऋषिरूपा) में परंपरा [श्रीमर्यादापुरुषोत्तम-

द्वारा] वरण हे सो आत्मीयपनेसों ओर दासपनेसों दोय प्रकारको हे तामें अवतारदशामें आत्मीयपनेसों ओर अनवतारदशामें दासपनेसों वरण हे, दासपनेमें मर्यादा ओर पुष्टि दोय भेद हे तामें मर्यादारीतिसों वरणमें साधननिष्ठातें फल हे ओर पुष्टिमें अनुग्रहतें फल हे. पुष्टिमें मर्यादापुष्टि ओर पुष्टिपुष्टि यह दोय भेद हे। अपनें तो श्रीआचार्यजीके अनुग्रहतें मर्यादासहित पुष्टिमें अंगीकृत भये हें तासों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी आज्ञारूप मर्यादा हे सो अपनकों हितकारिणी हे अपने प्रभु पुष्टिपुरुषोत्तम हे सो यह लोक ओर परलोक संबंधी सगरी (भक्तनकी) चिंता करतहें तासों निश्चिंत रहेनो, यह मार्गमें श्रीभगवानकी आर्तिकरि सेवा, गुणगान, कथाश्रवणादिक कीयेतें मुख्यफल प्राप्त होय ओर आर्ति विना न्यून फल होय तासों आर्ति सदा राखनी सो आर्ति केसें सिद्ध होय? ताके लिये साधन बताये हे यह निरूपण हे। उपर कहे जो हरिस्थानमें भगवदीयके संग स्थित होय सेवा करे ओर एकांतमें बेठिके चित्तमें विचार करे तहां अपने मनमें साधनकी भावना न करे यह मार्ग निःसाधन फलात्मक हे सो आगें कहतहें-

मूलं-निःसाधनफले मार्गे बलं नैवोपयुज्यते।
साधनानामतो नायमात्मेत्येषोदिता श्रुतिः॥१॥

शब्दार्थः-निःसाधनके फलरूप यह मार्गमें साधनको बल उपयोगि नांहिहे तासों श्रुतिमें कह्यो हे जो यह आत्मा प्रवचन आदितें प्राप्त नांही होत हे, जिनको प्रभु वरण करतहें तिनतें लभ्य हे॥ १॥

टीका-यह पुष्टिमार्ग साधनसाध्य नांही हे कृपासाध्य हे अपनो बलकरि कोटानकोटि साधन करे ताकरि सिद्धि नांहिहे तासों श्रुतिमें साधनको निषेध कहेहें "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य इ०" यह परमात्मा प्रवचनसों, बुद्धिसों, ओर बहुत सुनेतें प्राप्त नहीं होयहे, किंतु परमात्मा जाको

वरण करेहे सो प्राप्त करसकेहे यातें प्रभुके वरण विना ओर साधनके वलतें प्रभुप्राप्ति यह मार्गमें नांहीहे ॥ १ ॥

मूलं–किंतु सर्वस्य मूलं हि हरेर्वरणमुच्यते ।
यथैव वृणुते कृष्णस्तथा तिष्ठति वै जनः ॥ २ ॥

शब्दार्थः–किंतु हरिको वरण हे सो सर्वको मूल कह्यो हे श्रीकृष्ण जेसो वरण करतहैं तेसो जन रहतहे ॥ २ ॥ टीका–पुष्टिमार्गमें यह सिद्धांत हे जो सर्वको मूल पुष्टिमार्गको फल सो हरिके वरणतें होतहे जीवके साधनसाध्य नांही हे जेसो जा जीवको भगवान् वरण करे तेसो वह जीव पुष्टिमार्गमें स्थित होतहे तातें जीवके साधनसाध्य नांही हे तामें भगवान् दोय प्रकारको वरण करतहैं सो आगें कहतहैं ॥ २ ॥

मूलं–वरणं तु द्विधा साक्षात्पारंपर्यविभेदतः ।
लीलास्थितेषु वै साक्षादन्येष्वस्ति परंपरा ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–साक्षात् ओर परंपरा यह भेदसों दोय प्रकारको वरण हे । लीलास्थित भक्तनमें साक्षात् वरण हे ओर अन्यमें परंपरा हे ॥ ३ ॥ टीका–वरण दोय प्रकारको हे एक साक्षात् एक परंपरा, यह दोय भांतिके भेद हे, श्रीकृष्णकी लीलास्थित सृष्टिमें साक्षात् हे अन्यमें परंपरा हे ॥ ३ ॥

मूलं–आचार्यद्वारकं तत्र वरणं न हरेः स्वतः ।
लीलास्थेष्वपि भक्तेषु द्वतेद्वैविध्यमीक्ष्यते ॥ ४ ॥
साक्षाच्छ्रुतिषु हरिणा वरणं वह्निसूनुषु ।
परंपराप्रकारेण मर्यादापुरुषोत्तमात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–श्रीआचार्यजीद्वारा हरिको वरण हे सो स्वतः नांहीहे परंपरासों हे, लीलास्थित भक्तनमेंहू वरणके दोयप्रकार देखिवेमें आवतहे

॥ ४ ॥ श्रुतिरूपामें हरिनें साक्षात् वरण कीयो हे ओर अग्निकुमार [ऋषिरूपा] में परंपराकरि मर्यादापुरुषोत्तम (श्रीरामचंद्रजी) द्वारा वरण हे ॥ ५ ॥ टीका–श्रीआचार्यजीद्वारा जा जीवको वरण हे सो स्वतः नांहिहे,श्रीकृष्णकी लीलासृष्टिके भक्तनको वरणहू दोयप्रकारको हे साक्षातहू हे ओर परंपराहू हे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णावतारमें श्रुतिरूपाको वरण हे सो साक्षात् भगवान् आपुने कीयो हे ओर अग्निसूनु जो सोरह हजार अग्निकुमार तिनको वरण परंपरा मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजीद्वारा हे याभांति लीलासृष्टिमेंहू साक्षात् ओर परंपरा वरण हे ॥ ५ ॥

मूलं-अन्यथाऽप्यत्र भेदोऽस्ति दासतात्मीयतादिभिः ।
आत्मीयत्वेनावतारे दासत्वेनान्यदा वृतिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–दूसरी रीतिसोंही वरणमें दासता ओर आत्मीयतासों भेद हे । अवतारदशामें आत्मीयतासों वरण हे ओर अनवतारदशामें दासतासों वरण हे ॥ ६ ॥ टीका–साक्षात् ओर परंपरा यह दोय भेद बिना वरणके दूसरे दोय भेद हे एक आत्मीय ओर एक दासभाव. अवतारदशामें भगवानको संबंधी होय तब वरण होय सो आत्मीय ओर अवतारदशामें दासभाव होय ॥ ६ ॥

मूलं–दासत्वेऽप्यस्ति भेदो हि मर्यादापुष्टिभेदतः ।
अतो न जीवस्वातंत्र्यं दासत्वाद्धि निसर्गतः॥७॥

शब्दार्थः–दासपनेमेंहू मर्यादा तथा पुष्टि यह भेदसों दोय भेद हे तासों स्वभावतेंही जीवकों दासत्व हे तातें स्वतंत्रता नांहीहे ॥ ७ ॥ टीका–दासभावमें दोय रीति हे एक मर्यादा ओर एक पुष्टि यह दोय भेद हे दासत्वधर्म जीवमें स्वभावतें हे तातें जीव स्वतंत्र नांहीहे दासत्वधर्मतें

१-श्रुतिनकों साक्षात्श्रीकृष्णसों वर प्राप्त भयो हे सो कथा बृहद्वामनपुराणमें प्रसिद्ध हे. २ अग्निकुमारनकों श्रीरामचंद्रजीसों वर प्राप्त भयो हे सो कथा रामायणमें प्रसिद्ध हे.

प्रभुको संबंधी होतहे तातें दासत्वधर्म सबतें अधिक हे ॥ ७ ॥

मूलं–यथा कृतिस्तथा सर्वं कृष्णस्तस्य करोति हि।
मर्यादायां वृतो तस्य भवेत् साधननिष्ठता ॥ ८॥
पुष्टावनुग्रहे दृष्टिस्तयैव सकलं पुनः।
वयं त्वनुग्रहाचार्यैः पुष्टो मर्यादया सह ॥ ९ ॥
अंगीकृतिसमर्यादैः सर्वेऽप्यंगीकृताः स्वतः।
अतस्तदुक्तमर्यादास्थितिर्हि हितकारिणी ॥ १० ॥

शब्दार्थः–जा जीवको जेसो वरण हे तेसो सर्व श्रीकृष्ण करतहे जाको मर्यादामें वरण हे ताको साधनमें निष्ठा होतहे ॥ ८ ॥ पुष्टिमें जाको वरण हे ताकों अनुग्रहमें दृष्टि होतहे ता दृष्टिकरि सर्व होतहे अपनें तो अंगीकारमें मर्यादासहित पुष्टि श्रीआचार्यजी श्रीमहाप्रभुजीनें पुष्टिमें मर्यादासहित आपतें सर्वहू अंगीकृत (कीये) हें तासों इनके वचनाश्रृतकी मर्यादामें स्थिति हे सो (अपनकों) हित करिवेवारी हे ॥ ९ ॥ १० ॥ टीका–जेसी जाकी वृत्ति (वरण) हे ताही भांति श्रीकृष्ण फल देतहें सो पुष्टिप्रवाहमर्यादामें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः। वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः " यह वचनतें मनतें प्रकटी सो प्रवाही सृष्टि तिनकों फल यह संसार, वचनतें प्रकटी सो मर्यादासृष्टि वेदमार्गमें कर्ममार्गीय भई तिनकों फल सत्यलोक, [मोक्ष] ओर भगवानके शरीरतें प्रकटी सो पुष्टिपुष्टि भगवत्सेवामें लगी तिनकों स्वरूपानंदको अनुभवरूप फल देतहे। जा जीवको वरण भगवान् मर्यादामें कीयो हे ता जीवकी निष्ठा साधनमें होतहे वह जीव यह विचारे जो फलानो साधन करूं तो फल मिले ॥ ८ ॥ पुष्टिमें जा जीवको वरण भगवान् कीयेहे सो जीव प्रभुको अनुग्रह देखतहे (चाहतहे) सर्व कर्म करे भगवद्धर्महू करे परंतु मनमें

साधनको बल न ल्यावे निःसाधन होय यह जाने जो प्रभु कृपा करेंगे तबही मेरो कार्य होयगो या भांति सब ठोर सर्वकार्यमें प्रभुको अनुग्रहही देखे अपने तो अनुग्रहरूप श्रीआचार्यजीने पुष्टिमें मर्यादासहित अंगीकृत कीयेहे सो आगें कहतहें ॥ ९ ॥ श्रीगुसाँईजी सर्वोत्तममें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके नाम कहेहें " अंगीकृतौ समर्यादः " (अंगीकारमें मर्यादासहित) यह वाक्यतें पुष्टिमार्गीय समस्त जीवनको अंगीकार आपने स्वतः मर्यादासों कीयो हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी जो उक्ति हे ता प्रमाण स्थिति करे तामें हित हे ॥ १० ॥

मूलं–पुष्टिप्रभुत्वादस्माकं लौकिकी पारलौकिकी। सर्वा चिंता हरेरेव निश्चिन्तत्वं विभाव्यताम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–अपनी यह लोकसंबंधी तथा परलोकसंबंधी सगरी चिंता पुष्टिप्रभुपनेतें हरिकोंही हे तासों निश्चिंतपनो विचारनो ॥ ११ ॥ टीका–हमारे प्रभु पुष्ट हे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकी लौकिक वैदिक चिंता हरेंगे यह मनमें निश्चय जानि निश्चिंतताकी भावना राखे चिंता भगवद्भावमें बाधक हे ॥ ११ ॥

मूलं–अत एवोक्तमाचार्यैर्निजेच्छातः करिष्यति। नोपेक्षते निजानार्त्तबंधुः श्रीगोकुलेश्वरः ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–तासोंही श्रीआचार्य महाप्रभुजीनें नवरत्नग्रंथमें कह्यो हे जो अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छातें प्रभु करेंगे तासों दिनबंधु श्रीगोकुलेश्वर अपने भक्तनकी उपेक्षा नांही करतहें ॥ १२ ॥ टीका–उपर कहे ताभांति निश्चित होय प्रभुकी इच्छा जानें सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति " प्रभु श्रीकृष्ण केसे हें सर्वके आत्मा हें ओर सर्वके ईश्वर सर्वोपरि हे सर्वके अंतकरणकी जानतहें अपनी निज इच्छातें विना-

मांगे सर्व सिद्ध करेंगे आर्त्तके वंधु (दीनबंधु) श्रीगोकुलेश्वर (श्रीकृष्ण) अपने जनकी उपेक्षा न करेंगे तहां कोई कहे जो प्रभु स्वतंत्र हें कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ हें सो जव इनकी विपरीत इच्छा होय तव प्रार्थना करे के न करे तहां कहतहें ॥ १२ ॥

मूलं-हरीच्छा विपरीताऽपि दासदुःखावलोकनात् ।
अनुकंपानिधानत्वाद्धरेर्विपरिवर्त्तते ॥ १३ ॥

शब्दार्थः-हरिकी इच्छा विपरीत होय तोहू दासके दुःखको देखिवेतें तथा हरि कृपानिधान हे तातें विपरीत होतहे अर्थात् विपरीत इच्छा होय सो अनुकूल होतहे ॥ १३ ॥ टीका-हरिकी इच्छा विपरीत देखिवेमें आवे सो अज्ञानकरि विपरीत देखतहे जेसें नारदजीकों व्याहकी इच्छा भई तव भगवान् न करनदिये तव नारदजी वोहोत दुःख पाये तव भगवाननें कृपाकरि समझाय दुःख दूरी कीयो तेसें जीव लौकिक चाहना राखे सो भगवान् न करनदे तव अज्ञानकरि दुःख माने अथवा प्रभुकी विपरीत (दुःख देवेकी) इच्छा होय तोहू दुःख सहन करे, जेसें प्रह्लादकों हिरण्यकशिपुने वोहोत दुःख दीयो सो प्रह्लाद प्रभुकी इच्छा मानी सहे पाछें प्रभु दैत्यकों मारि दुःख दूरी कीयो तेसेंही प्रभु विपरीत ईच्छा परीक्षार्थ करे तो सहन करे तव प्रभु सर्वके आत्मा हे सो विना कहे आपुहीतें जानतहें सो दासको दुःख देखिकें आप हृदयमें दयायुक्त हें सो जाभांति दासको मनोरथ हे ताभांति प्रभु आपु प्रवृत्त होतहें जाभांति दासको सुख होयगो सोई आप करेंगे ॥ १३ ॥

मूलं-आर्त्तिमात्रमतः स्थाप्यं प्रार्थना न विधीयताम् ।
कृपालुरेव भविता निजार्त्तजनशर्म्मदः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः–तासों आर्तिमात्र राखनी प्रार्थना नांही करनी अपने आर्त्तजनकों सुख देवेवारे प्रभु कृपालुही होयंगे ॥ १४ ॥ टीका–यह पुष्टिमार्गमें आर्तिमात्र कर्तव्य हे जो मोसों प्रभुकी सेवा टहल नांही बनत मनुष्यजन्म सगरो योंही बीति गयो या भांति आर्ति करे ओर लौकिक अलौकिक कछु फलकी प्रार्थना न करे काहेतें जो श्रीकृष्ण तो परम कृपालु हें तातें अपने जनकी आर्ति देखिकें कृपा करेंहें सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " क्रियमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः" यह वचनतें विरह आर्तिरूप क्लेशसंयुक्त अपने जनकों देखिकें प्रभु कृपायुक्त होतहें सो सर्वप्राणिमात्रके हृदयमें सदा आनंदरूप भगवान् हें सो प्रकट होय अपने दासकों सुख देतहें तातें आर्ति यह पुष्टिमार्गमें मुख्य हे सो आर्ति कोनप्रकार करे सो आगें कहतहें ॥ १४ ॥

मूलं–आर्त्यैव क्रियते यत्तु सेवागुणकथादिकम् ।
तदेवास्मत्प्रभूक्तेऽस्मिन् मार्गे प्रविशति ध्रुवम् ॥१५॥
अन्यथा क्रियमाणं तु कृष्णसायुज्यसाधकम् ।
न मुख्यफलसंबंधस्ततो भवति निश्चितम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–आर्त्तितेंही जो सेवागुणकथादिक होतहे सोही अपने प्रभुने कह्यो यह पुष्टिमार्गमें निश्चय प्रविष्ट होतहे ॥ १५ ॥ अन्यथा कीयो सो तो श्रीकृष्णके सायुज्य साधिवेवारो हे तासों मुख्यफलको संबंध नांही होतहे यह निश्चय हे ॥ १६ ॥ टीका–आर्तिकरि भगवत्सेवा करे, वाणीतें गुणगान करे, संयोगमें संयोगके पद, अनोसरमें विप्रयोगके पद गान करे, श्रवणतें श्रीसुबोधिनी आदि कथा सुने, मनकरिकें श्रीकृष्णकी लीलाको स्मरण करे, याभांति पुष्टिमार्गमें वैष्णव

स्थित रहे ताकों यह पुष्टिमार्गको फल निश्चय होय तहां कोई कहे जो वेदशास्त्रमें अनेक साधन कहेहें ताकरि फल कहेहें ओर तुम साधनतें फल नांही कहे प्रभुकी कृपातें कहे सो कहा? तहां कहतहे ॥ १५ ॥ यह पुष्टिमार्गकी क्रियाको भाव न जानि केवल साधन जानि सेवा करे तो श्रीकृष्णकी सायुज्यरूप मुक्ति होय अनेक साधन कीयेतें फल मुक्ति होय तातें यह पुष्टिमार्गको मुख्य फलसंबंध कबहू न होय यह निश्चय जाननो ॥ १६ ॥

मूलं–तदार्तिप्राप्तिरेतेषां तद्रूपाचार्यसेवनात्।
तत्कृपातस्तदुदितवचोवृंदविचारणात् ॥ १७ ॥
निवेदनानुसंधानात् सदा सत्संगसंभवात्।
अन्यथा न भवेदेवं स्वकृतानंतसाधनैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः–उपर कही आर्त्तिकी प्राप्ति विप्रयोग अग्निरूप श्रीआचार्यजीके सेवनतें, इनकी कृपातें, इनके वचनामृतके समूहके विचारतें, ॥ १७ ॥ निवेदनके अनुसंधानतें, ओर सदा सत्संग होय तब होय अन्यथा अपनें कीये अनंत साधनकरि नांही होय ॥ १८ ॥

टीका–विप्रयोगात्मक यह पुष्टिमार्गीय आर्त्तिकी प्राप्तिके अर्थ विप्रयोगाग्निरूप श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलकी (अत्यंत प्रीतिसों) सेवा करियें जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके वचनामृत सुबोधिनीजी निबंध आदि छोटे वडे ग्रंथको विचार अहर्निश करियें तब श्रीआचार्यजीकी कृपातें आर्त्ति होय ॥ १७ ॥ निवेदनको अनुसंधान अष्टप्रहर राखे सदा पुष्टिमार्गीय भगवदीयके संग नित्य नियमपूर्वक निवेदनको विचार करे तब आर्त्ति होय ताहीतें नवरत्नमें श्रीआचार्यजी कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " (तादृशीय वैष्णवनके संग सर्वथा निवदनको स्मरण कर्त्तव्य हे) ताकरि आर्त्ति

होय ओर प्रकार कोटानकोटि साधन करे परंतु आर्ति सिद्ध न होय जब आर्ति न भई तब फलकी आशा काहेकों करे ? ॥ १८ ॥

मूलं—ये भावं वर्द्धयंत्येव दृढं वचनवर्षणैः ।
संगोऽपि तेषां कर्त्तव्यो नान्येषामिति निश्चयः ॥१९॥

शब्दार्थः—जो भगवदीय वचनकी वृष्टि करिकें दृढ भावकी वृद्धि करे इनको संगहू करनो ओरनको संग न करनो यह निश्चय हे ॥ १९ ॥ टीका—उपर कहे ता प्रकार भावकी वृद्धि करे श्रीआचार्यजीके श्रीसुबोधिनीजी निबंधादिक छोटेबडे ग्रंथ हे तिनहीकों मन लगायकें सुनावे वचनकी वर्षा करे तिनको संग करे लौकिक वैदिकमें मन न लगावे, आपुही ग्रंथको पाठ करे तो आर्ति सिद्ध होय यह निश्चय हे ॥ १९ ॥

मूलं—तद्दुर्लभत्वे बाधिर्यं मूकत्वं वा वरं मतम् ।
वाचः प्रभूणां वदने दुर्जनानां भवंति न ॥ २० ॥

शब्दार्थः—एसे भगवदीय दुर्लभ होय तब बधिरपनो ओर मूकपनो उत्तम हे काहेतें जो दुर्जनके मुखमें प्रभुके गुणगानकी वाणी नांही होय ॥ २० ॥ टीका—उपर कहे एसे भगवदीयनको संग होनो तो या कालमें बोहोत दुर्लभ हे तातें ओर साधन न बने तो मूक होय रहे तथा बहेरो होय रहे लौकिकमें न काहूकी सुने न काहूकों कछु कहे यह या कालमें श्रेष्ठ मत हे अपने प्रभुके मुखतें निकसे एसे वचनामृत दुर्जनके मुखतें होय नांही तातें बाके मुखकी वाणी सुनिवेमें फल नांही तातें दुष्टजनको संगहू न करे उनकी वार्णाहू न सुने दुर्जन (बहिर्मुख) भगवद्वार्त्ता भगवत्कथा करे सो भगवदीय अन्यमार्गीय मुखतें सर्वथा न सुने उह कोन भांति बाधक हे सो कहतहें ॥ २० ॥

मूलं–म्लेच्छानामिव गायत्री ततः श्रवणतः किमु।
तत्सधर्मास्तत्र वर्णा अनुभावतिरोहिताः ॥ २१ ॥

शब्दार्थः–जेसें म्लेच्छके मुखमें गायत्री होय इनके श्रवणतें कहा फल होय काहेतें जो इनके मुखकी गायत्रीमें अनुभाव (दैवी प्रभाव) रहित उन म्लेच्छके बरोबर अक्षर होतजातहें ॥ २१ ॥ टीका–जेसें म्लेच्छके मुखतें गायत्री सुनेतें कछु फल नांहीं होतहे उलटो बाधक हे काहेतें जो उह आसुरको दुष्ट धर्म हे वा दुष्टके संगतें गायत्रीके वर्ण जो अक्षर हे तामें आध्यात्मिक ओर आधिदैविक दोउको तिरोधान होयजाय केवल आधिभौतिक रहे तेसेंही अवैष्णवके मुखतें सुनिकें कथा वार्त्ता फलरूप न होय उलटो बाधक होय जेसें गंगाजल सुंदर हे परंतु नीचज्ञाति (चमार चांडालादिक) के पात्रमें होय तो उह जलके संगतें प्रायश्चित्त करनों पडे जो छुवे तो न्हानो पडे याभांति पात्रभेद हे ॥ २१ ॥

मूलं–अतः फलं न श्रवणाद्दोषः प्रत्युत जायते।
सावधानतमैः स्थेयमीदृक्श्रवणकीर्त्तनात्॥२२॥

शब्दार्थः–तासों (अवैष्णवके मुखतें) कथावार्त्तादिक श्रवणतें फल नांहीहे उलटो दोष होतहे तातें एसेंके मुखतें श्रवण ओर कीर्त्तनतें चोहोत सावधान होयकें रहनो ॥ २२ ॥ टीका–एसो दुष्ट बहिर्मुख अन्यमार्गीय होय ताके मुखतें भगवद्धर्म सुनेतें कछु फल न होय प्रत्युत दोष होयवेसुं प्रायश्चित करनो पडे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णव सब तुम सावधान रहियो जों पुष्टिमार्गमें स्थित होय मार्गके अनुसार क्रिया करत होय याभांति सुंदर पात्र देखिकें ताकें मुखतें श्रवण कीर्त्तन करे तो भक्तिमार्गमें प्रवेश होय यह पुष्टिमार्ग महादुर्लभ हे अब पुष्टिमार्गीय भगवदीयके लक्षण कहतहें ॥ २२ ॥

मूलं–निरपेक्षाः कृष्णजना निजाचार्यपदाश्रिताः।
श्रीभागवततत्त्वज्ञा दुर्लभा एव भूतले ॥ २३ ॥
अतः शरणमात्रं हि कर्त्तव्यमखिलं ततः।
यदुक्तं तातचरणैरिति वाक्याद्भविष्यति ॥ २४ ॥

शब्दार्थः–निरपेक्ष, अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयवारे ओर श्रीभागवतके तत्त्वकों जानिवेवारे एसे जन भूतलमें दुर्लभ हीहे ॥२३॥ तासों शरणमात्रही कर्त्तव्य हे तातें [श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें जो तातचरण श्रीमहाप्रभुजीने कह्यो हे जो श्रीकृष्ण मेरे आश्रयस्थान हें ताकरि हम निश्चित हें) यह वाक्यसों सर्व होयगो ॥ २४ ॥

टीका–पुष्टिमार्गीय भगवदीय केसो होय जाकों कछु अपेक्षा नांही होय हृदयमें पूर्णकाम होय लौकिक वैदिक कछुहू चाहना नहोय चतुष्टय मुक्तिपर्यंत चाहना न होय एसो निरपेक्ष होय ओर एक श्रीकृष्णको दास होय अन्यदेव तथा प्रभुके अन्य अवतार तिन सबनमेंतें एक श्रीकृष्णमें अनन्य भाव होय ओर अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलको आश्रय मनमें दृढ होय ओर श्रीभागवतको तत्त्व जो श्रीसुबोधिनीजी निबंध ताको ज्ञान होय एसे भगवदीय मिले तिनहीको संग कर्त्तव्य हे या कालमें एसे भगवदीय मिलने परम दुर्लभ हें तातें एसे भगवदीय न मिले तो अन्यको संग मति करियो ॥२३॥ जो एसे भगवदीय न मिले तो शरणमंत्र अष्टाक्षर महामंत्र (श्रीकृष्णः शरणं मम) याको जप करे शरणकी भावना करे ताहीकरि सकल कार्य सिद्ध होयगो सो शरणमंत्रहू श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आवे तब सिद्ध होय सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "यदुक्तं तातचरणैः 'श्रीकृष्णः शरणं मम'। तत एवास्ति नैश्चिंत्यमैहिके पारलौकिके" श्रीगुसाँईजी कहतहें जो हमारे तातचरण श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें उक्त नाममंत्र प्रकट

कीयो ताकरि यह लोक ओर परलोकमें सर्वकार्यमें हम निश्चिंत हे। इत्यादि वचनकों विचारि श्रीमहाप्रभुजीके शरण होय अष्टाक्षरकी भावना करे तो निश्चय सगरे कार्य होय ॥ २४ ॥

मूलं-तथा विधेयं कृपया यथा गोवर्द्धनेश्वरः।
दर्शयत्यचिरादेव निजं रूपं तदाश्रितैः ॥ २५ ॥

शब्दार्थः-इनके आश्रित भक्तनकों तेसें कर्तव्य हे जेसें श्रीगोवर्द्धननाथजी कृपाकरिकें शीघ्रही दर्शन देय ॥ २५ ॥ टीका-यह सगरो भगवद्धर्म उपर कहे सो कव होय ? जव श्रीगोवर्द्धननाथजी कृपा करे तव होय अपने आश्रित जानि अपने निजपर प्रसन्न होयकें स्वरूपको दान करे तवही सर्वकार्य सिद्ध होय सो यह मार्ग साधनसाध्य नांहीहे कृपासाध्य हे जेसें गिरिराजके संबंधतें पुलिंदीपर कृपा करी तेसें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके संबंधतें श्रीजी कृपा करे तव सर्व सिद्ध होय ॥ २५ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकत्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३१ ॥

शिक्षापत्र ३२.

अव द्वात्रिंश शिक्षापत्रमें कामादिदोषविशिष्टके हृदयमें भगवान् कवहू प्रवेश नांही करतहें ओर दीनतादियुक्तके हृदयमें क्षणमात्रमें प्रभु प्रवेश करतहें सो निरूपण हे। उपर कहे जो श्रीजीकी कृपा होय तव

सर्वकार्य सिद्ध होय सो पंचपर्वा अविद्याको नाश होय विद्या सिद्ध होय तब श्रीकृष्ण भगवान् हृदयमें विराजे सो अविद्या पंचश्लोककरि कहतहें ओर विद्याहू पंचश्लोककरि कहतहें एसें यह शिक्षापत्रमें दशश्लोक हे. अब प्रथम अविद्याको प्रकार कहतहें काहेतें जो अविद्या जाय तब विद्या हृदयमें आवे जेसें श्रीकृष्णावतारमें श्रीकृष्णनें भक्तनकी अविद्या दूरी करी तब हृदयमें निष्प्रपंच विद्या स्थित भई सो श्रीसुबोधिनीजीमें वर्णन हे ताके अनुसार श्रीहरिरायजी वर्णन करतहें–

मूलं–कामाविष्टे क्रोधयुते संसारासक्तिसंयुते। लोभाभिभूते सततं धनार्जनपरायणे ॥ १ ॥

शब्दार्थः–कामकरि आविष्ट, क्रोधयुक्त, संसारमें आसक्तिसंयुक्त, लोभकरि व्याप्त, निरंतर धनसंचय करिवेमें तत्पर, एसे हृदयमें कबहू हरि प्रवेश नांही करतहें एसें पंचश्लोकमें अन्वय हे ॥ १ ॥ टीका–अविद्याके इतने दोष जाके हृदयमें होय ताके हृदयमें भगवान् कबहू स्थित न होय कामादिक विषयमें आवेश होय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी संन्यासनिर्णयमें कहेहें " विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः " (विषयकरि व्याप्त देहवारेनके हृदयमें सर्वथा हरिको आवेश नांहीहोयहे) इत्यादि वचननतें कामकूं दुष्ट जाननों कामावेश न होय ओर हृदयमें क्रोध भर्यो रहे सो तो चांडालको स्वरूप हे, जहां चांडालरूप क्रोध हृदयमें होय तहां भगवान् केसें हृदयमें आवे ? तातें क्रोध बाधक हे यह लौकिकसंसारमें देहसंबंधि कुटुंब, घर इनहीके भरणपोषणमें अष्टप्रहर आसक्त हे तिनके हृदयमें भगवान् नांही आवे ओर लोभकरि भरे हे, द्रव्यादिकके लिये विश्वासघात चोरि करतहे, द्रव्यहीकों सर्वस्वपदार्थ जान्यो हे, अष्टप्रहर कोडि जोरिवेमें मन हे, देहसंबंधीमें लोभ हे, एसेंके हृदयमें भगवान्

न रहें, ओर धनके उपायमें परायण हे अपनो धर्म [वैष्णवता] धनके लिये जतावतहे धनके लिये अनेक वार्त्ता करे अष्टप्रहर धनहीमें मन राखे तिनके हृदयमें भगवान् न रहे ॥ १ ॥

मूलं–दयाविरहिते रूक्षे नित्यं संतोषवर्जिते ।
शोकाकुले भयक्रांते विषयध्यानतत्परे ॥ २ ॥

शब्दार्थः–दयाकरिकें रहित, स्नेहरहित, नित्य संतोष जामें नांहीहे, शोककरि आकुल, भयकरि आक्रांत ओर विषयके ध्यानमें तत्पर एसे हृदयमें प्रभु न पधारें ॥ २ ॥ टीका–दयाकरि रहित हे अनेक जीवनके हिंसक हे काहूकों दुःख देखिकें प्रसन्न रहतहे रंचक दया मनमें नांही हे तिनके हृदयमें प्रभु न रहें, स्नेहकरि जे रहित हे भगवदीय वैष्णवमें जिनको रंचकहू स्नेह नांहीहे कितनी भगवद्वार्त्ता सुने परंतु रंचकहू भगवद्रस हृदयमें द्रवीभूत न होय एसे रूखेके हृदयमें भगवान् न रहें, नित्य संतोषकरिकें रहित हे, अष्टप्रहर हाय हाय यह कार्य न भयो आजु तो कछु न कमायो अब केसें काम चलेगो ? या भांति सदा संतोषकरि रहित हे तिनके हृदयमें भगवान् स्थित न होय, सदा शोककरि व्याकुल रहे, स्त्रीपुत्रादिकके शोक अथवा गृहादिकमें शोक जो केसें निर्वाह होयगो ? याभांति बालपनेतें वृद्धपर्यंत शोकहीकरि व्याकुल रहे, सदा भयकरि हृदयमें कंपायमान रहे जो राजडर, कालडर, चोरादिकको डर, ज्ञातिसंबंधी देहसंबंधीको डर, इत्यादिक लोकिक भयको हृदयमें आवेश रहे ताके हृदयमें भगवान् कबहू न रहें, विषयादिकके साधनमें तत्पर रहे देहसों विषय नांही सिद्ध होय तब मनमें अनेक विचार करे, कोउ मोकों वैष्णव जाने तो आछो खानपान होय, आछो कपडा पहरिवेको मिले एसो विचार करे परस्त्रीके मिलवेको विचार करे वह प्राप्त न होय तो दुःख पावे एसें

विषयके ध्यानमें तत्पर रहे ताके हृदयमें भगवान् न रहें ॥ २ ॥

मूलं-अहंकारयुते क्रूरे दुष्टपक्षैकपोषके ।
ज्ञानमार्गस्थिते सर्वसाम्यचिंतनभाविते ॥ ३ ॥

शब्दार्थः-अहंकारयुक्त, क्रूर, दुष्टके पक्षकोंही मुख्य पोषण करे, ज्ञानमार्गमें रहे, ओर सर्वदेवसमान प्रभुकों जानि एसो चिंतन करे तिनके हृदयमें भगवान् न पधारें ॥ ३ ॥ टीका-अहंकारयुक्त रहे जो मों समान दूसरो कोउ नांहीहे में बहुत समुझतहों मेरेमें बडी वैष्णवता हे में सेवास्मरण बहुत करतहों में अनेक मनोरथ करतहों में सगरे कुटुंबको पालन करतहों मेरे सगरे आज्ञाकारी हे इत्यादि मनमें अहंकार राखे ताके हृदयमें भगवान् न रहे, क्रूर हृदय होय परायो बुरोही विचारे मनमें येही विचार रहे जो मेरो दाव परेगो तो दुःख देहूंगो याभांति क्रूर दृष्टि रहे टेडो रहे वांकोही बोल्यो करे एसे क्रूरके हृदयमें भगवान् न रहे, कोई दुष्ट कार्य (चोरी, अन्याय, काहूको बुरो) करे ताको पक्षपात करे ताके हृदयमें भगवान् न रहें. ज्ञानमार्गमें स्थित होय तामें स्वामिसेवकभाव नांहीहे सर्वगुण युक्त भगवानके स्वरूपको ज्ञान नांहीहे भगवानकों निराकार जाननहे ताके हृदयमें भगवान् न रहे, भगवानकों ब्रह्मा, महादेव, गणेश, इंद्र, इत्यादिक देवतासमान चिंतन करे तासों सबनको समान आश्रय करे सबनसों फलकी चाहना करे याभांति अन्याश्रय करे ताके हृदयमें भगवान् न रहे ॥ ३ ॥

मूलं-लौकिके सन्मुखे कृष्णजनवैमुख्यसंयुते ।
कृष्णलीलादोषदृष्टौ तथा कर्मजडेऽपि च ॥ ४ ॥

शब्दार्थः-लौकिकमें सन्मुख, श्रीकृष्णके जन (वैष्णव) सों विमुखतायुक्त, श्रीकृष्णकी लीलामें दोषदृष्टि होय तथा कर्ममें जडकी-

सीनाँई आसक्त होय ताके हृदयमें भगवान् न रहें ॥ ४ ॥ टीका–लौकिककार्यमें सन्मुख रहे अष्टप्रहर मिथ्याक्रिया, मिथ्याध्यान, मिथ्याभाषण, एसें लौकिकमें मग्न रहे ताके हृदयमें भगवान् न रहे, श्रीकृष्णके जन भगवदीयनतें विमुख रहे भगवदीयकी निंदा करे भगवदीयकों दुःख देय एसेंके हृदयमें भगवान् न रहें, श्रीकृष्णकी लीला आनंदमय निर्दोष हे जेसें भगवान् श्रीकृष्ण आप निर्दोष आनंदमय हें तेसी लीला हे तामें दोषदृष्टि जो प्रभु कामादिदोषकरि परस्त्रीके वश्य हें याभांति दोषदृष्टिवारेके हृदयमें भगवान् न रहे, ओर कर्मजड जो कर्ममार्गमें तत्पर प्रभुकी सेवा छोडि कर्महीकों मुख्य जानि श्राद्धादिक संध्यादिकमें तत्पर रहे भगवद्धर्ममें प्रीति नांही एसेके हृदयमें भगवान् न रहे ॥ ४ ॥

मूलं–आचार्यविमुखे नित्यमसद्वादविभूषिते। एतादृशे तु हृदये हरिर्नाविशते कचित्॥ ५॥

शब्दार्थः–श्रीआचार्यजीतें विमुख ओर नित्य खोटे वादकरि भूषित एसे हृदयमें कबहू हरि नांही प्रवेश करतहें ॥ ५ ॥ टीका–पुष्टिमार्गके सर्वोपरि श्रीआचार्यजी श्रीवल्लभाचार्यजी हें तिनके चरणकमलतें विमुख एसेंके हृदयमें श्रीकृष्ण न रहे, सुंदर भगवत्कथा भगवद्वार्त्ता इत्यादिकके विदूषक हे खोटे वाद करे लौकिक वार्त्तामें प्रसन्न होय एसेके हृदयमें भगवान् न रहें, यह उपर द्वाविंश अविद्याके दोष वरणे हें सो जाके हृदयमें रहे ताके हृदयमें श्रीकृष्ण कबहू न आवे भगवदावेश कबहू न होय तातें वैष्णवकों यह द्वाविंश दोषतें रहित रहेनो यह दोषतें डरपत रहेनो अब जा गुणतें वैष्णवके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजे सो कहतहें ॥ ५ ॥

मूलं-दीने शुद्धे निष्प्रपंचे लीलाचिंतनतत्परे।
स्वाचार्यशरणे नित्यं सर्वकामविवर्जिते ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-दीन, शुद्ध, प्रपंचरहित, श्रीकृष्णकी लीलाके चिंतनमें तत्पर, स्वाचार्यके दृढ आश्रययुक्त, ओर नित्य सर्वकामकरि वर्जित एसे हृदयमें भगवान् तत्क्षण प्रवेश करतहें ॥ ६ ॥ टीका-दीन होय कोउ कछु कहे निंदा करे तोहू सहि लेय सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " आचार्यचरणैरुक्तं दैन्यं त्वत्तोषसाधनम् " (श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीसुबोधिनीजीमें कहेहें जो प्रभु प्रसन्न करिवेको साधन एक देन्यही हे) तातें दीन होय ताके हृदयमें भगवान् बिराजे, ओर शुद्ध-हृदय होय मनमें कपट छल न होय शुद्धभावतें प्रभुको भजन स्मरण करे ताके हृदयमें भगवान् बिराजे, लौकिक प्रपंचादिकतें रहित होय काहू देहसंबंधीमें मन न लगावे एक प्रभुमें मन लगावे कछु प्रपंचमें आसक्ति न करे ताके हृदयमें प्रभु बिराजे, श्रीकृष्णकी लीला आनंद-रूप बाललीला, दानलीला, रासलीला, इत्यादि अनेक लीला हे तिनके चिंतनमें तत्पर रहे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः" भगवानके गुण चित्तमें प्रविष्ट होय तब हृदयमें अनेक दोष मुर दैत्यरूप हे तिन सब अपने वेरीको नाम सुनि निवृत्त होय तातें लीलामें जिनको चित्त तत्पर रहे तिनके हृदयमें प्रभु बिराजतहें, अपने पुष्टिमार्गके आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणको आश्रय अहर्निश चित्तमें रहे सो श्रीसर्वोत्तमजीमें नाम हें "अशेषभक्तसंप्रार्थ्यचरणाब्जरजोधनः" याभांति श्रीआचार्यके चरण-कमलकी रज अपनो सर्वस्व धन जिननें जान्यो हे तिनको श्रीकृष्णाध-रामृतास्वादसिद्धि हे तिनके हृदयमें श्रीकृष्ण बिराजें, ओर लौकिक वैदिक देहसंबंधी सर्वकामकरि वर्जित हे प्रभु विना कहूं मनकी आसक्ति नांहीहे एसे अनन्य वैष्णवके हृदयमें प्रभु बिराजतहे. ॥ ६ ॥

मूलं–व्रजस्त्रीचरणांभोजरेणुप्राप्त्यभिलाषुके ।
गुणगानपरे कृष्णनामार्थपरिभावुके ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–अपने व्रजभक्तनके चरणारविंदके रजकी प्राप्तिमें इच्छायुक्त, गुणगानमें तत्पर, (श्रीकृष्ण) यह नामको अर्थ (फलात्मक) हे ताके यथार्थ भावयुक्त एसे हृदयमें प्रभु क्षणमें पधारे ॥ ७ ॥ टीका–व्रजभक्तनके चरणकमलकी रेणुकी प्राप्तिमें निशदिन अभिलाषा रहे जो मोकों व्रजभक्तनके चरणकमलकी रज कब प्राप्त होयगी येही मनोरथ मनमें रहे जेसें उद्धवजी भ्रमरगीतके अध्यायमें कहेहें " आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥ वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् " (यह व्रजभक्तनके चरणारविंदकी रजको सेवन करिवेवारे जो श्रीवृंदावनमें गुल्म, लता ओर औषधि (तामस, राजस, ओर सात्विक (हे तामें में कछु होउं जो व्रजभक्त काहूतें त्याग न होय एसे अपने जन [संबंधी वर्ग] ओर वेदमार्गकों छोडिकें श्रुतिनकें खोजिवेयोग्य श्रीकृष्णकी पदवीकों भजत भये (सो आप श्रुतिरूपा हे तासोंही भजतहे) ॥ श्रीनंदरायजीके व्रजकी स्त्रीयनके चरणारविंदकी रजकों में वारंवार वंदन करतहों जिनको भगवत्कथाको उद्गीत (परवश्यतासों भयो एसो गान) तीनलोककों पवित्र करतहे) इत्यादिक वचनके भाव विचारे ताके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजे,श्रीकृष्णकी लीलासंबंधी गुणगान करे सो द्वादशस्कंधमें शुकदेवजी कहेहें " कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः । कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधः परं व्रजेत् " [हे राजन्

१ व्रजभक्तनके चरणकमलकी रजकी अभिलाषा लिखि सो संन्यासनिर्णयमें पुष्टिमार्गके गुरु कौंडिन्यरूपि ओर व्रजभक्त हें एसें लिख्यो हे याही अभिप्रायसों हे

दोषके निधिरूप कलियुगको एक बडो गुण हे जो श्रीकृष्णके कीर्त्तनसोंही मुक्तबंध होयके परपुरुष (श्रीकृष्ण) कों प्राप्त होय] इत्यादि वचनतें गुणगान करे ताके हृदयमें प्रभु बिराजे, कीर्त्तन न आवे तो श्रीकृष्ण यह नामकों अर्थ विचारिकें अनुभव करे सो षष्ठस्कंध श्रीभागवतमें कहेहें " अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्। संकीर्त्तितमघं पुंसां दहेदेधो यथाऽनलः ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः। अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत " (विष्णुदूत यमदूतकों कहतहें जो अज्ञानतें अथवा ज्ञानतें उत्तमश्लोक [भगवान्] को नाम आछी रीतिसों [आर्त्तियुक्त होयकें] जो लियो सो अग्नि काष्ठकों दहे तेसें पुरुषके पापकों दहतहे। यमराजा अपने दूतनकों कहतहे जो हे पुत्र ! हरिके नामके उच्चारको माहात्म्य देखो जाकरिकेंही अजामिलहू मृत्युके पाशतें मुक्त भयो) ओर अष्टमस्कंधमें कहेहें " ते सद्भाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप ! निश्चितम्। स्मरंति स्मारयंतीह हरेर्नाम कलौ युगे " (हे राजन् ! जो यह कलियुगमें हरिके नामको आप स्मरण करतहे ओर दूसरेकों स्मरण करावतहे सो मनुष्यनमें सुंदर भाग्यवारे ओर कृतार्थ (पूर्ण) निश्चय हे) इत्यादि वचनतें श्रीकृष्णके नामके अनुभवतें ही भाग्यवान् हृदयमें बिराजतहें ॥ ७ ॥

मूलं–अनन्येऽनन्यसेवैकनिष्ठातत्परतां गते ।
भगवद्धर्मनिरते विरक्ते गुणसंगिनि ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–अनन्यभावयुक्त, अनन्य भक्तकी सेवाकी मुख्य निष्ठामें तत्परताकों प्राप्त भये, भगवद्धर्ममें प्रीतियुक्त, विरक्त ओर भगवद्गुणके संगयुक्त (एसे हृदयमें प्रभु पधारे) ॥ ८ ॥ टीका–एक श्रीकृष्णहीमें अनन्य भाव होय, श्रीकृष्णहीकी सेवा करे, श्रीकृष्णको

स्मरण, श्रीकृष्णहीकी कथाको श्रवण, श्रीकृष्णकोही गुणगान, मन वचन कर्मकरि पुष्टिमार्गके धर्ममें अनन्य होय सो हारितस्मृतिमें कहेहे " अनन्यशरणा ये तु तथैवानन्यसाधनाः। अनन्यभोगभोगा ये ते तु सर्वेऽधिकारिणः ॥ नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत्। नान्यप्रसादमश्नीयान्न नान्यदायतनं व्रजेत् " (अनन्य आश्रयवारे, तैसेंही अनन्य साधन करिवेवारे ओर अन्यदेवको प्रसाद नांही लेयवेवारे एसे भक्त [भक्तिमार्गमें] अधिकारी हे ॥ अन्यदेवकों नमस्कार न करे, अन्यदेवको नांही देखे, अन्यको प्रसाद नांही ले, अन्यदेवके स्थानमें नांही जाय) एसे अनन्य होय ताके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजें, तथा अनन्य पुष्टिमार्गीय जे वैष्णव हे तिनमें पूर्ण निष्ठाकरि उन भगवदीयनको संग करे उनकी सेवा करे सो भगवदीय गायेहें " एक भरोसो व्रजभक्तनको दूजो नंदकिशोरको " ओर भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः (तासों भगवत्परायण भगवदीयनके संग हरिस्थानमें (भगवन्मंदिरमें अथवा मंदिरकी पास) रहेनो प्रभुके स्थानमें तदीयके संग तत्पर रहे ताके हृदयमें प्रभु विराजें ओर भगवद्धर्ममें रति होय यह पुष्टिमार्गके धर्ममें प्रीति होय ओर साधनादिमें मन न लगावे सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्साक्षिणो भवताऽखिलाः। सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया " याभांति गुरुकी आज्ञाप्रमाण पुष्टिमार्गमें स्थित होय सेवा करे ओर प्रभुकी ईच्छातें गुरुकी आज्ञाको बाध होय तामें तथा संसारादिकमें साक्षिवत् रहे जेसें जलमें कमल रहे याभांति भगवद्धर्ममें रति होय ताके हृदयमें प्रभु विराजें, ओर लौकिकतें विरक्त होय सर्व प्रभुकों समर्पण करिदेय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी

सिद्धांतरहस्यमें कहेहें " तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् " याभांति जो वैष्णव पहिलेंही सर्वकार्यमें भगवानकों सर्ववस्तु समर्पि विरक्त होयरहे ताके हृदयमें प्रभु विराजें, ओर भगवानके गुणको संग करे, इनके गुणको गान करे, इनको स्मरण करे तिनके हृदयमें प्रभु विराजें ॥ ८ ॥

मूलं–कृष्णार्तिभावसंयुक्ते सरसेऽन्यरसातिगे।
अचंचले कृष्णलीलाचंचले दर्शनाकुले ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्णकी आर्ति तथा भाव करिकें युक्त, भक्तिके रसरहित, अन्यधर्मके रसकों उलंघित, भगवद्धर्ममें स्थिर, श्रीकृष्णकी लीलाकरि चंचल (विकल जेसो) ओर श्रीकृष्णके दर्शनमें आकुल एसे हृदयमें प्रभु क्षणमें पधारें ॥९॥ टीका–श्रीकृष्णमें आर्ति भयेतें प्रभु कृपा करे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः " यह वचनतें भगवान् भक्तनकों आर्तिक्लेशयुक्त देखिकें कृपायुक्त होय सर्वके आनंददाता हृदयतें बाहिर प्रकट होय दर्शन देय अपनो अनुभव करावें तातें आर्ति तो यह पुष्टिमार्गको फल हे जहां आर्ति तहां प्रभु पधारें, श्रीकृष्णमें भाव निवेदनतें होय जेसें लौकिकमें स्त्रीको व्याह होय तब पतिमें भाव होय जो यह मेरो पति हे तेसेंही श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन भयो तब श्रीकृष्णमें भाव होय श्रीकृष्णहीको सर्वस्व जाने यह भाव होय तब भगवान् हृदयमें पधारें, भगवत्स्वरूपरसमें सरस होय ओर अन्यमार्गीय रस तथा विषयादिक रसकरि रहित होय एक पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णाधरामृतास्वादरसकों चाहे एसे वैष्णवके हृदयमें प्रभु पधारें, अचल [गंभीरबुद्धि] होय, अन्य मार्गीयके संगतें, दुष्टके संगतें,

विषयादिकके संगतें, बुद्धि चलायमान न होय एसे पुष्टिमार्गमें दृढ होय तार्के हृदयमें प्रभु पधारें, ओर श्रीकृष्णकी नानाप्रकारकी लीलारसमें अति चंचल (क्षणक्षणमें लीलारसमें मग्न) होय सो सिद्धांतमुक्तावलिमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " चेतस्तत्प्रवणं सेवा " यह मानसी सेवा जो चित्त एकाग्र [नदीके प्रवाहकी नांई] अहर्निश प्रभुकी लीलामें रहे याभांति जाको चित्त प्रभुकी लीलामें चंचल होय ताके हृदयमें प्रभु पधारे, ओर श्रीकृष्णके दर्शनके लिये मन वारंवार व्याकुल होय सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें जनकराजा कहेहें " दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् " (जीवको क्षणभंगुर मनुष्यदेह दुर्लभ हे तामेंहु भगवानके प्रिय [भक्त] को दर्शन दुर्लभ जानुहुं) एसें मनुष्यके देहको दुर्लभ ओर क्षणभंगुर जानि तामेंहू भगवद्भक्तको दर्शन दुर्लभ जानि भगवानके दर्शनमें व्याकुल होय सो भाव कुंभनदासजीको हे जो एक दर्शनके अंतरायमें गाये " किते दिन व्हेजु गये विनुदेखे" एसी आर्त्ति दर्शनमें होय ताके हृदयमें प्रभु पधारे ॥ ९ ॥

मूलं-मनोरथशताक्रांते सर्वौदासीन्यसंयुते ।
एतादृशे तु हृदये हरिराविशते क्षणात् ॥ १० ॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्णकी सेवामें अनेक मनोरथयुक्त ओर लौकिक-वैदिकमें औदासीन्ययुक्त (लौकिकवैदिकमें आसक्तिरहित) एसे हृदयमें तो क्षणमें प्रभु पधारे ॥ १० ॥ टीका-जेसें व्रजभक्त श्रीठाकुरजीको सुखदानार्थ नानाप्रकारके मनोरथ करते वागा, वस्त्र, आभूषण, सामग्री [तन-मन-धनसों] प्रभुको समर्पते सर्वात्मभाव प्रभुमें हतो तेसें ही पुष्टिमार्गमें श्रीवल्लभकुल श्रीकृष्णको सर्वस्व विनियोग करावतहें तातें

वैष्णवकों तन, मन, धन करि प्रभुहीकी सेवामें अनेक मनोरथ होय जो द्रव्यादिक न होय तो मनहीतें (मानसी सेवामें) नानाप्रकारके मनोरथ करे ताके हृदयमें प्रभु विराजे, ओर लौकिक वैदिक देहसंबंधी कार्यमें सब ठोर अपने मनकों उदास राखे लौकिकमें साक्षिवत् रहे, संसारके सुखदुःखतें मन उदासीन रहे तो प्रभु हृदयमें रहें अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह द्वात्रिंश गुण विद्यारूप जा वैष्णवके हृदयमें आवे ताके हृदयमें श्रीकृष्ण पधारें स्वरूपानंदको अनुभव करावें जेसें व्रजभक्तनकी पंचपर्वा अविद्या दूरी भई विद्या सिद्ध भई तब श्रीकृष्ण हृदयमें बिराजे तेसें वैष्णव द्वात्रिंश दोष छोडि द्वात्रिंश गुणकों धारण करे तो श्रीकृष्ण निश्चय ताही क्षण हृदयमें पधारें ॥ १० ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वात्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥३२॥

शिक्षापत्र ३३.

अब त्रयस्त्रिंशत्तम शिक्षापत्रमें यह मार्गमें सर्वको कारण भगवदिच्छाही हे सोही प्रतिकूल होय ताको नाश हरिमें दैन्यतें होय काहेतें जो दीनजन उपर हरि अपनी इच्छा अनुकूल करतहे जब इच्छा अनुकूल भई तब दासकों कहा दुर्लभ हे? तातें लोकमेंहू दीनके उपर सबनकों दया होतहे यह जानिके दैन्य राखनों सोही साधन हे अभिमान ओर मद दैन्यके विरोधी हे ताको त्याग करनों यह न बने तो अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको दृढ आश्रय राखनो

ओर इनके निबंध, श्रीसुबोधिनी, ओर षोडशग्रंथको अवलोकन करनो तथा दुःसंगतें दूरी रहेनो ताकरिकें सगरे दोष निवृत्त होय यह निरूपण हे। ऊपर विद्या अविद्याके प्रकार कहे सो व्रजभक्तनकों हू प्रभुनेही अविद्याकी निवृत्ति करी विद्या सिद्ध कीये तब भये, भक्तनको सामर्थ्य नांहीहे प्रभुही सामर्थ्य दियो तब रासपंचाध्यायीमें सगरे प्रतिबंधकों तोडिकें प्रभु पास आये अनुभव भयो तेसेंही इहां पुष्टिमार्गमें जब प्रभु कृपा करे तवही फल होय सो आगें कहतहे–

मूलं–अस्मिन् मार्गे प्रभोरिच्छामात्रं सर्वत्र कारणम्।
सैव चावरणं यावत् प्रतिकूला फले निजे॥ १॥

शब्दार्थः–यह पुष्टिमार्गमें सर्वकार्यमें मात्र प्रभुकी इच्छा कारण हे सोही जवताँई अपने फलमें प्रतिकूल होय सो आवरण हे॥ १॥

टीका–हमारे श्रीवल्लभाचार्यजीके पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णकी इच्छाही सर्वकार्यमें कारण हे सो इच्छा जवताँई प्रतिकूल हे अपनो फल देयवेमें विलंबकी इच्छा हे तवताँई आवरण हे तातें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोउ वर्ण होय तथा हीनजाति म्लेच्छ, चांडाल, मलाद, इत्यादिक होय सर्व धर्मकरि रहित होय तिनकों फल देवेकी इच्छा होय तो एसेहू यह पुष्टिमार्गमें शरण आवे ओर फलकों निश्चय पावे ओर जाकों फल देवेमें प्रतिकूल इच्छा हे सो यह पुष्टिमार्गके धर्मकरि रहित होय तिनकों फल नांही होय तातें प्रभुकी इच्छाही मुख्य हे सो वार्तामें प्रसिद्ध हे जो अलीखां ओर अलीखांकी बेटी भगवानकी इच्छातें चाचा हरिवंशजी द्वारा श्रीगुसाँईजीकी शरण आये तातें या मार्गमें श्रीकृष्णकी इच्छा परम कारण हे॥ १॥

मूलं–तदावरणनाशस्तु दैन्यादेव हरौ कृतात्।
स दीनेषु निजामिच्छामनुकूलां करोति हि॥ २॥

शब्दार्थः—यह आवरणको नाश हरिमें दैन्य कीयेतेंही होय काहेतें जो वह भगवान् दीनमें अपनी इच्छा (प्रतिकूल होय तोहू फिर) अनुकूल करतहें ॥ २ ॥ टीका—हरिसों जब दीनता होय तब आवरणको नाश होय भगवानको संबंधी भयो तासों भगवत्सेवामें अंगीकार भयो दीनताकरि दासभावहू भयो तब प्रभुकी इच्छा आपुहीतें अनुकूल होय जो अब तो यह जीव मेरोही भयो तासों छोड्यो न जाय जब प्रभु अनुकूल भये तब सब सिद्ध होय सो आगें कहतहें ॥ २ ॥

मूलं—तदानुकूल्ये दासानां किं फलं दुर्लभं मतम् ।
कृपा च जायते दीने लोकसिद्धनिदर्शनात् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—भगवानकी इच्छा अनुकूल भई तब दासनकों कहा फल दुर्लभ हे ? (कछुहू नांही) काहेतें जो दीनपें कृपा होयहे एसें लोकमें दिखेहे (तासों दीन होय तो प्रभुकी कृपा होय) ॥ ३ ॥ टीका—जब प्रभुकी इच्छा अनुकूल भई तब सगरो फल सिद्ध भयो यामें संदेह नांहीहे तातें श्रीकृष्णकी कृपाको कारण एक दैन्य हे सो लौकिकमें कहूं प्रसिद्ध देखियतहे जो केसोहू वैरी होय केसोहू काम बिगाडे परंतु आयकें शरण पडे जो में तो तुह्मारो हों अब चाहोसो करो तब उह पर कृपाहीं करे मार्यो न जाय तेसें अनेक जन्मतें जीव भूल्यो हे सो श्रीआचार्यजीद्वारा प्रभुको सर्व समर्पणकरिकें दीन होय रहे जो में श्रीकृष्णको दास हूं तब प्रभु प्रसन्न होय कृपाही करे तातें दीन होय एक श्रीकृष्णकीही शरणभावना राखे सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें पिंगलाको वाक्य हे " संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् । ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः" (संसाररूप कूपमें गिर्यो ओर विषयकरिकें मूंद गयेहे नेत्र जिनके एसे ओर कालरूप सर्पने निगल्ये एसे आत्माकों ओर

१ ब्रजवासिनके लिखे पुस्तकमें आवरणको अर्थ नांही लिख्यो हे वर्ण (ब्राह्मणादिक) लिखे हे सो अर्थ मूलसों विरुद्ध हे.

अन्य कोन रक्षा करिवेमें समर्थ हे ?) ओर पुरूरवानें कह्यो हे "पुंश्चल्यापहृतं चित्तं कोऽन्यो मोचयितुं क्षमः । आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोक्षजम्" (पुंश्चली [व्यभिचारिणी] स्त्रीने हरिलिये एसे चित्तकों आत्माराम [योगी] के ईश्वर अधोक्षज भगवान् विना ओर अन्य कोन छुडायवेमें समर्थ हे ?) ओर व्यासजी कहेहें "घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते । वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः" (सर्वधर्मकरि रहित घोर कलियुग प्राप्त भयो तामें भगवत्परायण मनुष्य कृतार्थ हे संशय नांही) याभांति पिंगला पुरूरवादि ओर द्रौपदी, गजेंद्र जो आर्तिकरी शरण आये तिन सबनको उद्धार प्रभु कीये तातें एक प्रभुके आश्रयतें ओर दैन्यतेंही प्रभुकी कृपा होतहे ॥ ३ ॥

मूलं–अतो दैन्यं हि मार्गेऽस्मिन् परमं साधनं मतम् ।
अभिमानो मदश्चापि सततं तद्विरोधिनौ ॥ ४ ॥
तौ विज्ञाय प्रयत्नेन परित्याज्यौ फलार्थिभिः ।
दौष्ट्यं समस्तेंद्रियाणां साधनैरेव नाशयेत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–तासों यह पुष्टिमार्गमें दैन्यही परमसाधन मान्यो हे अभिमान ओर मद यह दोनोहू निरंतर दैन्यके विरोधी हे ॥ ४ ॥ इनकूं जानिकें पुष्टिमार्गीय फलके अर्थवारेकें यत्नकरिकें त्याग करिवेयोग्य हे ओर समग्र इंद्रियनकी दुष्टताकों साधनकरिकेंही नाश करे ॥ ५ ॥

टीका–पुष्टिमार्गमें परम साधन एक दैन्य हे दैन्यभावनाकरणार्थ सर्व समर्पण हे तातें जाकों दीनता सिद्ध भई तिनकों यह पुष्टिमार्गको फल सिद्धही भयो तातें विज्ञप्तिमें श्रीगुसांईजी कहेहें " यादृशी तादृशी नाथ ! त्वत्पादाब्जैककिंकरी । त्वद्वक्त्रं कथमप्याशु कुरु दृग्गोचरं मम " (जेसी तेसी तुह्मारे चरणकमलकी किंकरी (दासी) हों तातें अपनी जानि कृपा करी मेरे नेत्रकों आपके मुखको वेगिही दर्शन करावो) ओर

श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें " दैन्यं त्वत्तोषसाधनम् " याभांति दैन्य सर्वोपरि साधन हे अभिमान ओर मद यह दोउ पुष्टिमार्गके फलमें विरोधी हे ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें " अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात्." स्वामीके आधीन हूं एसी भावनातें अभिमान सगरो छोडनो) जो स्वतंत्र होय सोई अभिमान करे दासकों नांही कर्त्तव्य हे स्वामिकी आज्ञा मांगि सगरो कार्य कर्त्तव्य हे सो अभिमानतें दासपनो जातरहे तातें अभिमान बडो बाधक हे तैसेंही मदहू बाधक हे पुष्टिमार्गके फलमें विरोधी हे ॥ ४ ॥ लौकिक सुखतें सगरे अलौकिक साधनको नाश होतहे तासों इंद्रिय दुष्ट होतहे तिनकों अलौकिकमें लगावे तब दुष्टता मिटे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " संसारावेशदुष्टानामिंद्रियाणां हिताय वै । कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् " (संसारके आवेशकरि दुष्ट सब इंद्रियनके हितके लिये अपने स्वामी श्रीकृष्णकी सर्ववस्तु हे सो उनमें लगावे) तासों इंद्रियनकी दुष्टता निवृत्त होय सगरी इंद्रियनकी आसक्ति लौकिकमें होय सो दुष्टता जानियें प्रभुमें आसक्तिसों वह दुष्टता मिटे ॥ ५ ॥

मूलं-अथवाश्रयमात्रेण नाशयिष्यति मत्प्रभुः ।
निजाचार्याश्रितानां तु दोषा वह्निस्वरूपतः ॥ ६ ॥
संबंधमात्रतो भस्मीभवंति क्षणमात्रतः ।

शब्दार्थः-उपर कहे जो इंद्रियनकी दुष्टता साधनकरि निवृत्त करे परंतु तेसें न होयसके तो अपने स्वामीको आश्रय दृढ करनो ता आश्रयमात्रतें अपने स्वामी सर्वदोषकों नाश करेंगे कहेतें जो अपने

१ इंद्रियनको धर्म हे सो छुडायो न छुटे तासों सब इंद्रियनकी लौकिकमेंतें आसक्ति छुडाय भगवानमें आसक्ति करावनी.

श्रीआचार्यजीके दृढ आश्रयवारेनके दोष तो अग्निस्वरूपसों (श्रीआचार्यजी अग्निरूप हे तासों) संबंधमात्रतें क्षणमात्रमें भस्म होय जात हे ॥ ६ ॥ टीका–दृढ आश्रय राखनो अन्याश्रयतें फलको नाश होय सो दामोदरदास संभरवारेकी वार्तामें प्रसिद्ध हे जो वाकी स्त्रीने रंचकहू अन्याश्रय कीयो तातें पुत्र म्लेच्छ भयो एसो बाधक हे सो श्रीगुसाँईजी कहेहें " अहं कुरंगीदृग्भंगिसंगिनांगीकृतास्मि यत् । अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते " अन्यसंबंधको गंधहू होयतो गरो कटे प्रभुसों अन्याश्रय सह्यो न जाय श्रीनंदरायजी अंबिकापूजनकों गये तहां सुदर्शन सर्प नंदरायजीकों निगलगयो फिर प्रभुकी शरण जाय प्रार्थना करी तब छूटे तातें अन्याश्रय महाबाधक हे तातें श्रीआचार्यजीके आश्रितनकूं अग्निके संबंधतें काष्ठकी नांई अग्निरूप श्रीआचार्यजीके संबंधतें सगरे दोष एकक्षणमें भस्म होयजाय ॥ ६ ॥

मूलं–अतःस्वाचार्यमात्रैकशरणैस्तत्पराश्रितैः ॥ ७ ॥
तद्ग्रंथार्थावबोधार्थविहितातिप्रयत्नकैः ।
दुःसंगवर्जितैः संगसंप्राप्त्याशायुतैरपि ॥ ८ ॥
स्थैर्यं सेवापरैरन्याश्रयत्यागविचक्षणैः ।
कामलोभादिदोषैकपरित्यागेच्छुभिः सदा ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–तासों अपने श्रीआचार्यजीकेही आश्रयवारे, इनके परायण भगवदीयके आश्रित ॥ ७ ॥ इनके ग्रंथ (श्रीसुबोधिनीजी, निबंध आदि) के अर्थ जानिवेके लिये प्रयत्न करिवेवारे, दुःसंगतें रहित, सत्संगकी प्राप्तिकी आशायुक्त ॥ ८ ॥ सेवामें चतुर, अन्याश्रयके त्यागमें चतुर, कामलोभादि मुख्यदोषके त्यागकी इच्छावारे, एसें होय सदा रहेनो ॥ ९ ॥ टीका–श्रीआचार्यजीके चरणकमलको दृढ आश्रय करे श्रीआचार्यजीके चरणकमलके आश्रित भगवदीय होय तिनको आश्रय

करे ॥ ७ ॥ पुष्टिमार्गीय ग्रंथ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी, श्रीगुसाँईजी आदिके श्रीसुबोधिनीजी, निबंध, विद्वन्मंडन, टिप्पणीजी श्रीसर्वोत्तमजी आदि ग्रंथ हे इनके भावको बोध भयेतें आश्रय सिद्ध होय सो सर्वोत्तमस्तोत्रमें श्रीगुसाँईजी कहेहें " कृष्णाधरामृतास्वादासिद्धिरत्र न संशयः " (श्रीकृष्णके अधरामृतको पान निश्चय करतहें यामें संशय नांही) तातें सर्वोत्तमादि सगरे ग्रंथको पाठ अवश्य कर्तव्य हे ताकरि सर्व सुबोध होय दैन्य होय ओर आश्रय सिद्ध होय, अब दुःसंगको त्याग करनो सत्संगकी आसक्तिको यत्न करनों तातें श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनक कहेहें " तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः " (भगवानके संगि भक्तनके लवमात्रके संगतुल्य न स्वर्गको न मोक्षको हम तुलना करेहें तो मनुष्यनको सुख तो कहा) याभांति सत्संगतुल्य ओर सुख नांहीहे तातें सत्संग करे तो सर्व सिद्ध होय ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णकी सेवामें स्थित रहे क्यों जो यह पुष्टिमार्गमें परमफलरूप भगवत्सेवाही हे, सेवासमान ओर कुछ नांही हे सो श्रीभागवतनवमस्कंधमें श्रीभगवान् दुर्वासा प्रति कहेहें " मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम् " [मेरी सेवातें साक्षात्कार भये एसे सालोक्यादि चतुर्विध मोक्षकोंहू मेरे भक्त नांही इच्छत हें काहेतें जो सेवाकरि पूर्ण हे तो कालकरि जिनको नाश होय ताकी इच्छा नांही राखे वामें कहा कहेनो ?] एसें भगवदीय सेवामें पूर्ण हे जो चतुर्विध मुक्तिपर्यंत नांही चाहतहें याभांति श्रीकृष्णकी सेवामें स्थित होय, ओर अन्याश्रय न करे देवता आदिको (द्रव्यादिकके लिये) रंचकहू आश्रय होय तो फलको नाश होय तातें अन्याश्रय छोडिवेमें विचक्षण रहेनो ओर कामादि विषयको तथा लोभको त्याग करे काहेतें जो कामादिविषयमें तत्पर

रहिवेतें श्रीठाकुरजीको आवेश हृदयमें न होय हृदयमेंतें पधारे ओर लोभकरि संसारासक्ति होय पापपुण्यको विचार न रहे केवल अपने स्वार्थकेही वश्य होय एसे लोभी तथा कामीके हृदयमें प्रभु न आवे तातें काम तथा लोभको सदा त्याग करे तब फलरूप दैन्य सिद्ध होय ॥ ९ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रयस्त्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥३३॥

शिक्षापत्र ३४.

अब चतुस्त्रिंश शिक्षापत्रमें श्रीकृष्ण सदा सेव्य हैं येही फल हृ तामें मुखारविंदकी भक्तितें प्रभु आपतेंही प्राप्त होय ओर चरणारविंदकी भक्तितें धर्मद्वारा धर्मविशिष्ट प्रभु प्राप्त होय चरणात्मक भक्तितें सायुज्यफल होय ओर मुखारविंदकी भक्तितें श्रीभगवानके अधरामृतसेवनरूप फल होय याभांति पुष्टिभक्तिकी अवस्था ओर साधनको निरूपण तथा सर्वात्मभावको निरूपण हे जेसें मंत्रशास्त्रमें मंत्रके बीज विना कछु कार्य सिद्ध न होय तेसें यह पुष्टिमार्गमें दैन्य विना कछु सिद्ध न होय पुष्टिमार्गकी प्राप्ति तो श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदकी कृपातें होय तासों इनकोही आश्रय करनो यह निरूपण हे। उपर ग्रंथके बोधतें, सत्संगतें ओर सेवातें दैन्य सिद्ध होय एसो निरूपण कीयो सो सेवाके दोय प्रकार हे एक मुखारविंदकी भक्ति सो

१ चरणारविंदकी भक्ति करनी सो दासको धर्म हे तासों यह धर्मरूपभक्ति हे.

सर्वोपरि हे ओर एक चरणकमलकी भक्ति हे सो दोउ भक्तिको प्रकार कहतहें:-

मूलं-श्रीकृष्णः सर्वदा सेव्यः फलं प्राप्यं स्वतस्तु सः
मुखारविंदभक्त्यैव साक्षात्सेवैकरूपया ॥ १ ॥

शब्दार्थः-साक्षात् सेवारूप मुखारविंदकी भक्ति हे तातेंही स्वतः (आपतें) प्राप्य फल यह श्रीकृष्ण हे सो सर्वदा सेव्य हे ॥ १ ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह पुष्टिमार्गमें तो सदा सर्वदा श्रीकृष्णही सेव्य हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी चतुःश्लोकी ग्रंथमें कहेहें "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः। स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन" (सर्वदा सर्वभावकरि व्रजके अधिपति श्रीकृष्णहीकी सेवा कर्त्तव्य हे हमारो यह धर्म हे ओर नांही) ओर हमारे पुष्टिमार्गमें जो कोई स्थित हे तिनकोहू येही धर्म हे श्रीकृष्णकी सेवाही कर्त्तव्य हे ओर कोई कालमें दूसरो साधन नांही कर्त्तव्य हे ताहीकरिकें पुष्टिमार्गके फलकी प्राप्ति स्वतः [आपुहीतें] सिद्ध होय काहेतें जो मुखारविंदकी भक्ति हे सो साक्षात् स्वरूपसेवातें सिद्ध होतहे जामें दर्शन, स्पर्श, सर्वांगसुखको अनुभव हे तातें स्वरूपसेवामें साक्षात्कार हे यह मुखारविंदभक्ति कही सो सर्वोपरि हे ॥ १ ॥

मूलं-चरणात्मकभक्त्या तु धर्मसेवात्मरूपया।
धर्मद्वारा तद्विशिष्टः प्रभुः प्राप्यो न संशयः ॥२॥

शब्दार्थः-धर्मसेवास्वरूप चरणात्मक भक्तिकरि धर्मविशिष्ट प्रभु प्राप्त होय यामें संशय नांही ॥२॥ टीका-चरणात्मक भक्ति धर्मसेवारूप हे जेसें आगें ब्रह्मा, शिव, नारद, सनकादिक, सब करीआये हें ताही-भांति मर्यादासंयुक्त धर्मवत् करनी यह धर्मद्वारा भक्ति हे ताकरि प्रभुकी

प्राप्ति हे यामें संशय नांही तहां कोई संदेह करे जो उपर मुखारविंदकी भक्ति कही फिर धर्मसेवात्मक चरणारविंदकी भक्ति कही दोऊतें प्रभुकी प्राप्ति बताये तब दोउ एकही भई तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी प्रगट होय मुखारविंदकी भक्तिमें अधिकता कहा बताये ? या प्रकार कोई संदेह करे तहां आगें कहतहें ॥ २ ॥

मूलं-तत्र सायुज्यसंबंधो न लोभामृतसेवनम्।
मुखारविंदभक्तौ तु साक्षात् तत्सेवनं मतम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः-चरणारविंदकी भक्तिमें सायुज्य संबंध हे लोभात्मक अधरामृत (भगवत्प्रसाद) को सेवन नांही ओर मुखारविंदकी भक्तिमें तो साक्षात् इनको सेवन हे ॥ ३ ॥ टीका-मुखारविंदकी भक्ति (पुष्टिभक्ति) में ओर चरणारविंदकी भक्ति (मर्यादाभक्ति) में फलमें बहुत भेद हे सो कहतहें, चरणात्मक मर्यादाभक्तिकरिकें सायुज्यमुक्तिकी प्राप्ति हे तामें लोभामृतको सेवन नांहीहे ओर मुखारविंदकी भक्ति हे सो तो प्रभुकी साक्षात्सेवारूप हे तहां साक्षात् प्रभुके स्वरूपानंदको अनुभव हे तातें मुखारविंदरूपपुष्टिभक्ति सर्वोपरि हे ओर धर्मरूप चरणात्मक मर्यादाभक्ति हे एसें दोऊमें वडो तारतम्य हे तातें न्यारी न्यारी कही हे ॥३॥

मूलं-एतादृक्फलिका भक्तिर्भवेत्केवलपुष्टितः ।
तत्रापि मुखरूपास्मदाचार्यानुग्रहात् पुनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः-लोभात्मक अधरामृतके सेवनरूप फल सिद्ध करिवेवारी भक्ति केवल पुष्टितें होय तामेंहू फिर [श्रीकृष्णके] मुखारविंदरूप अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके अनुग्रहतें होय ॥ ४ ॥ टीका-जामें अधरामृतकी प्राप्ति हे एसी भक्ति तो मुखारविंदरूप पुष्टिभक्ति हे सो मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी हे तातें मुखारविंदकी भक्ति हमारे श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके अनुग्रहतें सिद्ध होय काहेतें जो मुखारविं-

दकी भक्ति श्रीस्वामिनीजीकी हे सो श्रीस्वामिनीजीके विप्रयोगभावात्मक पुष्टिभक्ति श्रीवल्लभाचार्यजीनेंही प्रकट करी हे तातें श्रीआचार्यजी जब अनुग्रहकरि यह मुखारविंदकी भक्तिको दान करे तब सिद्ध होय ॥ ४ ॥

मूलं-अत एतद्भक्तिमद्भिः श्रीमदाचार्यसंश्रयः।
प्रथमं सर्वथा कार्यस्तत एवाखिलं भवेत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-तासों यह (मुखारविंदकी) भक्तिवारेनको प्रथम श्रीमदाचार्यजीको आश्रय सर्वथा कर्त्तव्य हे ताकरिकेही समग्र सिद्ध होय ॥ ५ ॥ टीका-एसी यह मुखारविंदकी भक्तिको साधन एक श्रीआचार्यजीको आश्रयही हे तातें प्रथम सर्वथा येही कार्य कर्त्तव्य हे जो श्रीआचार्यजीके शरण आय नामनिवेदनकरि पाछें अपने मनमें दृढ श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करे एसे वैष्णवकों अखिल कार्य सिद्ध होय यामें संशय नांही तातें मुखारविंदकी भक्तिमें एक श्रीआचार्यजीको आश्रयही साधन हे ओर कोई नांही ॥ ५ ॥

मूलं-अतः परं तु तद्भक्तेरवस्थासाधनादिकम्।
निरूप्यते स्वतोषाय तत्कृपातो हृदि स्थितम् ॥६॥

शब्दार्थः-उपर जो दोयभक्तिको निरूपण कीयो तापाछें यह भक्तिकी अवस्था ओर साधनादिक इनकी कृपातें हृदयमें स्थित हे सो अपने तथा अपने भगवदीयनके संतोषके लिये निरूपण करतहों ॥ ६ ॥ टीका-उपर चरणात्मक भक्ति तथा मुखारविंदरूप भक्तिको निरूपण कीयो तामें पुष्टिभक्तिमें केवल श्रीआचार्यजीको आश्रय बतायो तापाछें इनके साधनादिक कर्त्तव्य हे सो अपने मनमें संतोषार्थ तथा अपनें तदीय (पुष्टिमार्गीय) के संतोषार्थ जो हमकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी दान दिये हें ओर इनकी कृपातें जो हृदयमें स्थिर रह्यो हे सो निरूपण करतहों ॥ ६ ॥

मूलं—यथा मर्यादया भक्तौ ब्रह्मभावस्तु साधनम् ।
तथा सर्वात्मभावोऽत्र साधनत्वेन बुद्ध्यताम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—जेसें मर्यादाभक्तिमें ब्रह्मभाव हे सो साधन हे तेसें यह पुष्टिमार्गीय भक्तिमें सर्वात्मभाव हे सो साधनपनेतें जाननों ॥ ७ ॥ टीका—जेसें मर्यादाभक्तिमें ब्रह्मभाव हे सोही साधन हे सगरो ब्रह्मांड ब्रह्ममय हे अपनकोंहू ब्रह्म मानतहें यह ब्रह्म सबठोर हे याभांति ब्रह्मभाव (अक्षरब्रह्मको ज्ञान) मर्यादाभक्तिको साधन हे तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें सर्वात्मभाव हे सोही साधन हे जेसें व्रजभक्तनकों सर्वात्मभाव हे तेसो सर्वात्मभाव इहां साधन हे यह बुद्धिमें निश्चय जाननों ॥ ७ ॥

मूलं—वस्तुतस्तु फलं चैव फलं स्यात्तत्प्रवेशतः ।
तत्स्वरूपं तु सर्वेषां देहांतःकरणात्मनाम् ॥ ८ ॥
येन भावेन भगवत्यात्मभावो हि जायते ।
यस्माद्भावात्स्वदेहादि सकलं स्यात्तदर्थकम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—वस्तुतें तो यह सर्वात्मभाव फलरूपही हे काहेतें जो सर्वात्मभावको भितर प्रवेश होय तब फल सिद्ध होय ताको स्वरूप तो देह, अंतःकरण, आत्मा, सर्वके जो भावकरि भगवानमें आत्मभाव निश्चय होय जा भावसों अपने देहादिक समग्र भगवदर्थ होय ॥८॥९॥ टीका—मर्यादामार्गमें जेसें वस्तुतासों अक्षरब्रह्मरूप फल हे जामें प्रवेश होय फिर मायाके गुणमें न आवे तेसें पुष्टिमार्गीयकों प्रभुकी लीलारूप फलमें प्रवेश हे तहां स्वरूपात्मक रसको अनुभव हे नेत्रतें दर्शन, अंतःकरणसों प्रभुकी लीलाको अनुभव, सर्व इंद्रिय मन प्राण सर्वकी प्रभुमें तत्परता, जेसें ब्रह्मसंबंधके गद्यार्थमें कहेहें याप्रकार मुख्यफलको

१ 'फलस्वान्तः प्रवेशतः' एसो पाठ काहू पुस्तकमें हे ताके अनुसार अर्थ—फलके अंतः—प्रवेशतें वस्तुतासों सर्वात्मभावही फलरूप होय.

अनुभव पुष्टिमार्गीय भक्तनको होय या प्रकार मर्यादा ओर पुष्टिके न्यारे न्यारे फल कहे तामें पुष्टिभक्ति सर्वोपरि हे ॥ ८॥ उपर कहे ताभांति भाव जो भगवानमें बढे सो उपाय करते रहेनो सो प्रभुमें भाव भयो कब जानियें ? जब देहादि, इंद्रिय, मन, सब प्रभुके अर्थ लगे, तन, मन, धन तीन्यो प्रभुमें लगे तब देहादिक सबनकी क्रिया भगवदर्थ होय सो तनुजा वित्तजा दोउ प्रकारकी सेवातें सिद्ध होय ॥ ९ ॥

मूलं-न देहाद्यर्थसिद्ध्यर्थं भगवानप्यपेक्षते ।
यतो देहादिरक्षापि प्रभुलीलोपयोगतः ॥ १० ॥
न स्वार्थबुद्ध्या स्वार्थोऽपि भगवानेव यत्र हि ।
येन भावेनानिमित्ता प्रीतिर्भवति वै हरौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थः-देहादिक अर्थकी सिद्धिके लिये भगवानकी अपेक्षा नांही राखे हें जासों देहादिककी रक्षाहू प्रभुकी लीलामें उपयुक्त होयवेकूं हे स्वार्थबुद्धितें नांहिहें जहां स्वार्थहू भगवानही हें जा भावकरिके निश्चय निष्कारण प्रीति होयहें ॥ १० ॥ ११ ॥ टीका-यह भगवत्सेवाहू देहादिककी सिद्धिके अर्थ तथा देहसंबंधि कुटुंब, द्रव्यादिककी कामनाके अर्थ न करे अपनो भोगसुख कछुहू न विचारे केवल भगवानकीही अपेक्षा राखे जो प्रभु कोनप्रकार सुख पावेंगे ? मति कछु अपराधतें प्रभुकों दुःख होय, याभांति प्रभुको सुख विचारे तथा भगवानके दर्शनकी, स्वरूपानंदके अनुभवकी अपेक्षा राखे, देहादिकको भोगसुख न विचारे महाप्रसाद ले तामेंहू यह भाव राखे जो प्रभुकी सेवामें सामर्थ्य होय इंद्रियादिक शिथिल न होय जाय जेसें श्रीगुसांईजी परदेश पधारते तब विप्रयोगकरि कृश होते ओर तब परदेशतें श्रीजीद्वार पधारते तब बहुत प्रीतिसहित सुंदर महाप्रसाद लेते सो यह भावतें जो श्रीगोवर्द्धननाथजी हमकों कृश देखेंगे तो उनके मनमें दुःख होयगो सो

आछो नांहीं प्रभु हमकों देखि सुख पावे तो आछो तासों आछीभांति रहेनों याही भावतें व्रजभक्तनर्नेद्र अपने देहकी रक्षा करी हे तामें अपनो सुख नांही विचारचो हे या भांति देहादिककी रक्षा प्रभुसेवार्थ विचारिकें करे ॥ १० ॥ कछु लौकिक वैदिक फल सिद्ध होयगो तथा प्रभुकी सेवातें कृतार्थ होइंगो यह स्वार्थबुद्धितें भगवत्सेवा न करे काहेतें जो भगवान् विनाविचारेही निजेच्छातें सर्वकार्य सिद्ध करेंगे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति " [प्रभु सर्वके ईश्वर हें सर्वके आत्मा हें [तासों सर्व जानत हें सो] अपने इच्छाहीतें दासके सकल मनोरथ सिद्ध करेंगे] तातें प्रभुकी सेवामें अपनी स्वार्थबुद्धि न करे ओर गोणभावतें क्रियावतहू न करे भावसंयुक्त प्रीतिसों करे काहेतें जो भगवानकों एकप्रीतिहीतें धरे सो प्रिय लागतहें जेसें पद्मनाभदासजीके छोला प्रीतिहीतें अरोगे तातें सेवा प्रीतिसों करे ॥ ११ ॥

मूलं—न फलकांक्षणं यत्र लौकिकानां यथा धने।
तदभावे यथा लोका दुःखेनासंस्त्यजंति हि ॥१२॥

शब्दार्थः—जहां फलकी इच्छा नांहीहे जेसें लौकिकनकों धनमें प्रीति हे सो धनको नाश होय तो जेसें दुःखकरिकें प्राणकों छोडतहें तेसें प्रभुकी सेवामें प्रीति राखे ओर सेवाके अभावमें प्राणत्यागसमान दुःख होय ॥ १२ ॥ टीका—प्रभुकी सेवाकरि कछुहू फलकी आकांक्षा न करे काहेतें जो फलकी कामना राखे तो पुष्टिमार्गीय मुख्यफलको नाश होय तासों कामना भावमें बाधक हे यह जानि फलकांक्षा न करे लौकिकमें धन मुख्य हे धनके लिये सुखदुःख सहतहे प्राणत्याग करतहे एसी धनमें प्रीति हे तेसी ही सेवामें राखे ॥ १२ ॥

मूलं-सर्वत्यागस्तु सहजो यत्र लौकिकवेदयोः।
नैरपेक्ष्यं स भावस्तु सर्वभावो निगद्यते ॥ १३ ॥

शब्दार्थः-जामें लौकिकवैदिकको सर्वत्याग सहज होय और निरपेक्षता होय सो भाव तो सर्वभाव कह्यो जाय ॥ १३ ॥ टीका-श्रीभगवानमें सहज प्रीति करी सर्वत्याग सहजहीमें करी लौकिक वैदिक कछु न चाहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी चतुःश्लोकीमें कहेहें "यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि। ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि" (जो सर्वात्मभावतें श्रीगोकुलाधीश हृदयमें धारण कीये तातें [अधिक] दूसरो लौकिक तथा वैदिक करिकेंहू कहाहे सो कहो?) याभांति सर्वके आत्मा श्रीकृष्ण हे तिनहीकों हृदयमें धारण करे सेवा करे ओर लौकिक वैदिक कछु न चाहे निरपेक्ष होय रहे सर्वात्मभावकरि एक प्रभुहीमें मन राखें ॥ १३ ॥

मूलं-तथात्र दैन्यमेवैकं मार्गे न श्रवणादिकम्।
दैन्येनैव च संतुष्टः प्रादुर्भूतः फलं ददौ ॥ १४ ॥

शब्दार्थः-[जेसें सर्वात्मभाव राखनो] तेसें यह मार्गमें दैन्यही एक [मुख्य] हे श्रवणादिक (साधनबल) मुख्य नांहिहे दैन्यकरिकेंही [व्रजभक्तनकों] प्रसन्न भये प्रभु प्रकट होय फलदिये ॥ १४ ॥ टीका-यह पुष्टिमार्गमें एक दैन्यही साधन हे तासों अभिमान मिटे तब दोष निवृत्त होय जहां दैन्य सिद्ध भयो तहां श्रीठाकुरजी प्रकट होय दर्शन देय जेसें रासपंचाध्यायीमें व्रजभक्तन गुणगान करि निःसाधन भये दीन होय रुदन कीये तब प्रभु तत्काल पधारे तातें जहांतांई श्रवणादिक साधनको बल मनमें होय तहांतांई दैन्य न आवे जब साधनको बल मिटे तब दैन्य आवे तब प्रभु संतुष्ट होय प्रकट होय स्वरूपानंदको अनुभव करावे ॥ १४ ॥

मूलं–तदेवात्र हि संसेव्यं येन दैन्यं प्रसिद्ध्यति ।
यद्दैन्यनाशकं तद्धि विरोधि सकलं मतम् ॥१५॥

शब्दार्थः–जातें दैन्यसिद्धि होय हे तासों यह मार्ग आछी रीतिसोंही ग्रहण करिवेंयोग्य हे ओर जो दैन्यकों नाश करिवेवारो हे सो सब विरोधी जाननों ॥ १५ ॥ टीका–दैन्य विना फलसिद्धि न होय जा साधनतें दैन्य होय सोही करे दैन्यको नाश करे सो सर्व पुष्टिमार्गमें विरोधी जाननो केसोहू साधन होय परंतु दैन्यको नाश करे एसो होय सो सर्वथा नांही करनो यह कहिकें यह जताये जो पुष्टिमार्ग विना अन्यमार्गकी जितनी क्रिया साधन हे सो सब पुष्टिमार्गके फलतें विरोधी हे यह निश्चय मनमें जानि अन्यमार्गकी क्रिया नांही कर्त्तव्य हे ॥ १५ ॥

मूलं–एतन्मार्गांगीकृतो हि हरिर्दैन्यं विवर्द्धयेत् ।
मदादिजनकंदुष्टंनाशयत्यपि(नाशयित्वापि)लौकिकम्

शब्दार्थः–यह मार्गमें अंगीकार होय तो हरि निश्चय दैन्यवृद्धि करेहें मदादिककी उत्पत्ति करिवेवारो दुष्ट जो लौकिक हे तिनकोहू नाश करतहे अथवा मदादिकको उत्पन्न करनहार जो दुष्ट लौकिक तिनकों नाशकरिकेंहू यह मार्गको अंगीकार होय तो हरि निश्चय दैन्यवृद्धि करतहे॥१६॥ टीका–एतन्मार्गीय जो भक्त यह पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजी द्वारा शरण आये हें तिन भक्तनकों दैन्य वढावत हें ओर मद [अभिमान] अपने मनसों होय सो दुष्ट लौकिक वढायवेवारो हे फलमें प्रतिबंधक हे ताको नाशही करतहे सो रासपंचाध्यायीमें प्रसिद्ध हे जो भगवान् वेणुनाद करी व्रजभक्तनकों बुलाय रास कीये तब व्रजभक्तनको मद भयो तब भगवान् अंतर्धान भये पाछें जब अत्यंत दैन्य भयो तब प्रकटे तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें भगवान् दैन्य सिद्ध करतहें मदको नाश करतहें अपने जनको दैन्य बढावतहे मदकों दूरी करतहें

जहांजहां लौकिकमें आसक्ति हे सो सब ठोरतें छुडाय दैन्य सिद्ध करत हे पाछें कृपा करतहें ॥ १६ ॥

मूलं-स्वांगीकृतेर्हि निर्वाहः प्रभुणैव विधीयते ।
जीवाः स्वभावदुष्टा हि प्रचलेयुः कथं तथा ॥ १७ ॥
अतो दंडप्रदानेन पितेवाचरति प्रभुः ।
दंडोऽप्यनुग्रहत्वेन मंतव्यस्तु तदाश्रितैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः-जिनको प्रभुने अंगीकार कीयो हे तिनको निर्वाह प्रभुहीतें होतहे जीव स्वभावतें दुष्ट हें सो तेसें केसें चले॥१७॥तासों पिताकी नाँई दंडप्रदान करिकें प्रभु हित करेहें तातें इनके आश्रयवारेनकों दंड होय तोहू अनुग्रहरूप माननों ॥ १८॥ टीका-अपनें अंगीकृत जीवनको निर्वाह प्रभु आपुही करेहें परंतु जीव यह नांही जानतहें काहेतें जो स्वभावकरि दुष्ट हें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी बालबोधमें लिखे हें "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" (जीव स्वभावतें दुष्ट हें) श्रीठाकुरजी अपनें अंगीकृत जीवनकों निर्वाह आगेतें करत आये हें, करतहें ओर करेंगे जीवकों तो एक क्षणमें दुःसंग लगे तो नाश करी देई मन एक क्षणमें ओरको ओर होयजाय सो प्रभु निर्वाह करे तब होय ॥ १७ ॥ जेसें अज्ञानी बालककी रक्षा मातापिता करतहें अग्निजलादिकतें बचावतहें तेसें अंगीकृत भक्तनतें भूल परे तो (जामें अपनो अनिष्ट होय सो जीव नांही जानत परंतु प्रभु दंड देतहे जो फिर वह काम न करे जेसें श्रीनंदरायजी अंबिकापूजनकों गये तेसेंही जीवस्वभावतें कछू अपराध बने तो) प्रभु दंड देतहें तासों दुःखमें भगवदीय अपनें मनमें अनुग्रह माने प्रभुको आश्रय न छोडे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " दंडः स्वकीयतां मत्वेत्येवं चेदिष्टमेव नः । अस्मासु स्वीयतां

मत्वा यत्र कुत्र यदा कदा" (आप अपने मानिकें दंडदेय एसें होय तो हमकों प्रियहीहे काहेतें जो जहांतहां जबतब आप हमकों अपने मानिके दंड देयंगे) श्रीगुसाँईजी कहतहें जो हमकों अपने जानि दंड दे तामें हम सुखी हें जहांतहां जब चूक परे सुखेन दंड देय इत्यादिक वचनतें प्रभु पिताकी नाँई अपने जनकों दंड देय तब दुःख होय ताकूं अनुग्रह जानि श्रीमहाप्रभुजीको आश्रय न छोडे ॥ १८ ॥

मूलं–दंडदानं स्वकीयेषु परकीयेष्वुपेक्षणम् ।
आर्त्तिरेवात्र सततं भाव्या कृष्णपरोक्षतः ॥१९॥

शब्दार्थः–प्रभु अपने जनकूं दंड देतहें ओर परकीय (ओरनके आश्रित) जीव होय तापें उपेक्षा करतहें (जेसें लौकिकमेंहू अपनो होय ताकी रक्षा करतहें ओर परायो होय ताकी उपेक्षा करतहें) तातें इहां श्रीकृष्ण परोक्ष हें तासों निरंतर आर्त्तिही कर्त्तव्य हे ॥ १९ ॥
टीका–जाकों प्रभु अपनो करतहे तिनकोंही दंड देतहे ओर जो संसारासक्त प्रवाही सृष्टि है तिनकी उपेक्षा करतहें दंड नांही देतहे लौकिक देयकें लौकिकमेंही आसक्ति करावतहें रासपंचाध्यायीमें आर्त्तिके लिये प्रभु अंतर्धान भये तेसें इहां पुष्टिमार्गमें टेरा प्रभुमें आर्त्ति बढायवेके अर्थ हे तहां स्वरूपानंदको अनुभव नांही करावतहें आर्त्ति देखे तो करावें तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों आर्त्ति अवश्य करनी ॥ १९ ॥

मूलं–अत्र भक्तार्त्तिदृष्ट्यैव मुदितो हि हरिर्भवेत् ।
संगो भाववतामेव भाववृद्धिर्यतो भवेत् ॥ २० ॥

१ जहांताई सानुभाव न होय वहांताई परोक्षही जाननें तथा अनोंसरमेंहू परोक्ष जाननें.

शब्दार्थः–यह पुष्टिमार्गमें प्रभु भक्तनकी आर्तियुक्त दृष्टिकरिकेंही प्रसन्न होय हें तासों भाववारे भगवदीयनकोंही संग करनो जासों भावकी वृद्धि होय ॥ २० ॥ टीका–ज्योंज्यों भक्त आर्तिक्लेश करतहें त्योंत्यों भगवान् उह भक्तकों देखिकें प्रसन्न होतहें तातें सत्संग भगवदीयको होय तो वेगिही भावकी वृद्धि होय तातें सत्संगको यत्न करनों ॥ २० ॥

मूलं–व्याघ्रस्याग्रे यथा देही तथा दुःसंगतो विभेत्।
दुःसंग एव भावस्य नाशकः सर्वथा मतः ॥२१॥

शब्दार्थः–जेसें वाघकी पास देही भय पावतहे तेसें दुःसंगतें भय पावे काहेतें जो दुःसंगही सर्वथा भावको नाश करिवेवारो मान्यो हे ॥ २१ ॥ टीका–जेसें वाघके आगें शरीरको नाशही होय तेसेंही दुःसंग भगवद्भावको नाशक हे तातें जेसें वाघसों डरपिकें चले तेसें अपने भगवद्भावहुकी रक्षा करे तव भाव रहे ॥ २१ ॥

मूलं–दुःसंगतश्च्युताः सर्वे श्रुता हि भरतादयः।
दुःसंगादन्नजदोषाभ्यामभूद्भीष्मो बहिर्मुखः ॥२२॥

शब्दार्थः–दुःसंगतेंही भरतादिक गिरे हें सो अपने सुने हें दुःसंग ओर अन्नदोषतें भीष्म वहिर्मुख भये (अर्थात् श्रीठाकुरजीके संग लडिवेकों तत्पर भये) ॥ २२ ॥ टीका–अनेक जीव दुःसंगकरिके भगवद्धर्मतें गिरे हें सो श्रीभागवतमें वर्णन हे जो भरतकों मृगके दुःसंगतें तीन जन्मको अंतराय भयो ओर भीष्मपितामह वडे भगवदीय हते सो दुर्योधन दुष्टको अन्न खायो ता दोषतें श्रीभगवानके संग लडिवेकूं ठाडे भये तातें यह दुःसंगदोषतें जीव निश्चय श्रीभगवानतें वहिर्मुख होयजाय तातें एसे भगवदीय गिरे हें तो आधुनिक जीवनकी कितनीक बात हे ? ॥ २२ ॥

मूलं–लौकिकाभिनिवेशात्तु मनोनिष्कासनं सदा।
अलौकिकस्तु तद्भावस्तेनापि च विनश्यति॥२३॥

शब्दार्थः–लौकिक आवेशसों तो सदा मनकूं निकासनों अलौकिक भाव तो लौकिकावेशतेंहू मिटिजात हे ॥ २३ ॥ टीका–जहां जहां लौकिकमें मन लागिरह्यो हे सो सगरो दुःसंग जाननों तातें लौकिकाभिनिवेश जहां जहां होय ओर जाके संगतें होय सो सर्व त्याग करनों जहां जा वस्तुमें लौकिकाभिनिवेश होय तहां भगवद्भाव जात रहे तातें सब लौकिकतें भगवद्भावकी रक्षा क्षणक्षणमें कीयो करे तब भाव रहे ॥ २३ ॥

मूलं–वैराग्यपरितोषौ च हृदि भाव्यौ निरंतरम्।
तदभ्यासात्तु मनसः कदाचिन्निर्गतिस्ततः॥२४॥

शब्दार्थः–वैराग्य ओर संतोष निरंतर हृदयमें राखे इनके अभ्यासतें तो लौकिकाभिनिवेशतें कोय दिन मन निकसेगो ॥ २४ ॥ टीका–दुःसंगदोषके नाशके अर्थ वैराग्य ओर संतोष यह दोय निरंतर हृदयमें धारण करने सर्व लौकिक विषय देहसंबंधि पदार्थमें वैराग्य राखे ओर सहजमें जो आय प्राप्त होय ताहीमें मनकों संतोष करी रहे यह अभ्यास जब राखे तब दुःसंगतें बचे ॥ २४ ॥

मूलं–कामाभावाय वैराग्यं चिंत्यं चेतसि सर्वथा।
परितोषस्त्वलोभाय भक्तौ तावेव बाधकौ॥२५॥

शब्दार्थः–कामके अभावके अर्थ चित्तमें निश्चय वैराग्यको चिंतन करनो ओर संतोष तो लोभके अभावके अर्थ राखनो काहेतें जो भक्तिमें यह दोयही बाधक हे ॥ २५ ॥ टीका–मनमें दृढ वैराग्य होय तो ताकरिकें कामादिक विषयको अभाव (नाश) होतहे ओर संतोषतें

लोभको नाश होतहे यह दोय दोष भक्तिमार्गमें भगवद्भावके बाधक हे तातें काम ओर लोभके त्यागार्थ वैराग्य ओर संतोष राखनो ॥२५॥

मूलं–कामेनेंद्रियवैमुख्यं लोभे पाखंडसंभवः।
क्रोधस्तु मध्यपातित्वान्महाबाधक ईष्यते॥२६॥

शब्दार्थः–कामकरिकें इंद्रियनकी विमुखता होय लोभमें पाखंडको संभव होय [अर्थात् जाकूं लोभ होय सो द्रव्यादिकके लिये अनेक पाखंड करे] ओर क्रोध तो (काम, क्रोध, लोभ, यह तीन) बीच रहिवेवारो हे तासों महाबाधक हें ॥ २६ ॥ टीका–काम प्रकट भयेतें विषयादिक कीयेतें सगरी इंद्रिय श्रीभगवानतें तथा भगवद्धर्मतें बहिर्मुख होयजाय इंद्रियनको विषयावेश होतहे ओर लोभ हृदयमें होय तो ताकरि पाखंड प्रकट होतहे सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "स्वयं च विषयाक्रांतः पाषण्डी स्यात्तु कालतः" (आप विषयाक्रांत ओर पाखंडी कालतें होय) इत्यादि वचनतें काम ओर लोभ बाधक हे तामें मध्यपाती क्रोध हे कामादिक न मिले तब क्रोध होय तेसेंही लोभको अर्थ सिद्ध न होय तब क्रोध उपजे तातें क्रोध प्रकट होयवेको कारण काम ओर लोभ हे क्रोधकरि पीछें मोह होय इत्यादिक दोष प्रकट होय तब अष्ट प्रहर लौकिकावेश, लौकिकको ध्यान, हृदयमें रहे तातें दैन्यको नाश होय ॥ २६ ॥

मूलं–यतो मार्गीयसर्वस्वदैन्यभावविनाशकः।
दैन्यं सर्वेषु कार्येषु कृष्णसेवाकथादिषु ॥ २७ ॥
बीजं यथा मंत्रशास्त्रे तद्युक्तमखिलं भवेत्।
तदभावे न सेवादि सकलं पुष्टिसाधकम्॥ २८॥

शब्दार्थः–जासों [क्रोध] पुष्टिमार्गके सर्वस्वरूप दैन्यको नाश करिवेवारो हे (तासों महाबाधक हे एसें पूर्वश्लोकमें संबंध हे) श्रीकृष्णकी

सेवा ओर कथादिक सर्वकार्यमें दैन्य बीज हे जेसें मंत्रशास्त्रमें बीजयुक्त मंत्र फल देयवेवारो होयहें तेसें यह पुष्टिमार्गमें सेवादिक सब दैन्ययुक्त होय तो फल देयवेवारे होयहे दैन्यको अभाव होय तो सेवादिक सब पुष्टि (भगवदनुग्रह) कों सिद्ध करिवेवारे होय नहीं ॥ २७ ॥ २८ ॥ टीका–यह पुष्टिमार्गको सर्वस्व दैन्यभाव हे ताको नाशक क्रोधं हे तातें वाको त्याग निश्चय करनो ओर सर्वकार्यविषे दैन्य राखनो सो दैन्यको उपाय कहतहें-श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजा सेवा प्रीतिकरिकें करनी ओर श्रीकृष्णकी कथा (श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रंथ) सुन्यो करे यह सेवाकथाको नियम नित्य प्रति राखे तो हृदयमें दैन्य रहे ॥ २७ ॥ जेसें मंत्रको मूल बीज हे, मंत्रशास्त्रमें कहेहें जो बीजसहित मंत्रतें अखिलसिद्धि होय तेसेंही सेवामें दैन्यभाव हे सो पुष्टिमार्गको साधन हे दैन्यभावसहित सेवा करे तो पुष्टिमार्गको अखिल फल सिद्ध होय ॥ २८ ॥

मूलं–तस्माद्रक्षेत्प्रयत्नेन दैन्यं भक्तियुतो नरः ।
दैन्येन गोपिकाः सिद्धाः कौंडिन्योऽपि परोक्षतः॥२९॥

शब्दार्थः–तासों भक्तियुक्त नर (जीव) प्रयत्नकरिकें दैन्यकों राखे काहेतें जो गोपीजनहू दैन्यकरिकें सिद्ध भये हें ओर कौंडिन्य-ऋषिहू परोक्षसों सिद्ध भये हे ॥ २९ ॥ टीका–वैष्णव यत्नकरिकें अपने दैन्यकी रक्षा करे यह पुष्टिमार्गीय भगवदीयको उचित हे तहां दृष्टांत कहतहें जो दैन्यकरि गोपीजनकों सिद्धि भई प्रभु मिले ओर दैन्यकरि कौंडिन्य ब्राह्मण अनंत ! अनंत ! रटत रहे तासों इनकों सिद्धि भई तासों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी संन्यासनिर्णयग्रंथमें कहेहें " कौंडिन्यो

१ श्रीभगवद्गीताजीमें, काम, क्रोध, ओर लोभ यह तीन नरकके द्वार गिने हें तामें क्रोध बीचमें गिन्यो हे.

गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्। भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते " (कौंडिन्यऋषि ओर गोपीजन भक्तिमार्गके गुरु हें ओर साधन विनर्ने कीयो सोही हे भावनातें भाव सिद्ध होयहें ओर साधन नांहीहे) तातें पुष्टिमार्गके गुरु गोपीजन ओर मर्यादामार्गके गुरु कौंडिन्य ब्राह्मण हें इनके प्रकारसों भाव विचारि दैन्यही भक्तिके भावमें कारण हे एसें जाननों ॥ २९ ॥

मूलं–फलमत्र हरेर्भावो विरहात्मा सदा मतः।
रसात्मकत्वात्तद्रूपे सर्वलीलासमन्वितः ॥ ३० ॥
स्वरूपे तस्य सततं साक्षात्कारो विशेषतः।
युगपत् सर्वलीलानामनुभूतिः प्रजायते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः–विरहात्मक रूपमें रसात्मकपनो हे तासों सर्वलीलासहित जो प्रभुको सदा विरहात्मक भाव सो इहां फलरूप मान्यो हे ॥ ३० ॥ यह (विरहात्मक) भावके स्वरूपमें निरंतर विशेष साक्षात्कार होयहे काहेतें जो एककालावच्छिन्न सर्वलीलाको अनुभव होयहे "साक्षात्कारे" एसो पाठ होय तो यह (विरहात्मक) भावके साक्षात्कार स्वरूपमें निरंतर विशेषसों एककालावच्छिन्न सर्वलीलाको अनुभव होय हे ॥ ३१ ॥

टीका–यह पुष्टिमार्गमें हरिमें भाव रहे सोही फलरूप हे तातें विरहात्मक मन होय आवे काहेतें जो संयोगके अनुभवमें अंतःकरणगामी प्रभु नांहिहे बाहिरकी सब इंद्रियसों देहको विनियोग हे ओर विप्रयोगमें अंतःकरणमें सब सिद्ध होतहे तातें विप्रयोग भाव हृदयमें राखे यह पुष्टिमार्गमें येही सिद्धि हे काहेतें जो संयोगमें तो जहांलों दर्शन होय तहांलोंही सुख हे ओर विप्रयोगमें रसात्मक पुरुषोत्तमको सर्वलीला संयुक्त अनुभव सर्वठोर होतहे तातें विप्रयोग भाव सर्वोपरि हे जामें सर्वठोर प्रभुको साक्षात्कार हे सो आगें कहतहें ॥ ३० ॥ विप्रयोगमें

लीलाके भावमें मग्न होय सो सब ठौर साक्षात् लीलासहित स्वरूपको निरंतर दर्शन होतहे संयोगतें अधिक विप्रयोगमें सुख हे तातें युगपत् जो एक कालमें सर्व लीलाको अनुभव करे मनहीकरि व्रजभक्तनको भाव विचारे प्रभु गोचारनको पधारते तव व्रजभक्त विप्रयोगकी भावना करते सो विचारे ओर पाछें संध्यासमय प्रभु वनतें पधारते तव व्रजभक्त जो भाव करते सो भाव विचारे याभांति विप्रयोगमें दोउ लीलाके भावको अनुभव होयहे ॥ ३१ ॥

मूलं–एवं विज्ञाय मनसा पुष्टिमार्गं विभावयेत् ।
प्राप्तिः श्रीवल्लभाचार्यचरणाब्जप्रसादतः ॥ ३२ ॥
अतः स एव सततं सर्वभावेन सर्वथा ।
सुधिभिः कृष्णरसिकैः शरणीक्रियतां सदा ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः–एसें जानिकें मनतें पुष्टिमार्गकी भावना करे तो श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणारविंदके प्रसादतें (फलकी) प्राप्ति होय ("प्राप्त" एसो पाठ होय तो एसें मनतें, जानिकें श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणारविंदके प्रसादतें प्राप्त भयो जो पुष्टिमार्ग ताकी भावना करे)॥ ३२ ॥ तासों निरंतर सर्वभावकरिकें निश्चय श्रीकृष्णके रसकुं जानिवेवारे अथवा श्रीकृष्णही जो रस तामें मग्न जो बुद्धिमान् हे तिनकों सदा श्रीवल्लभाचार्यजीही शरण (आश्रयस्थान) हे ॥ ३३ ॥ टीका– उपर विप्रयोग आतिको प्रकार कह्यो ताको अनुभव जा भांति होय सो कहतहें जो पुष्टिमार्गीय वैष्णव अपने मनमें भावना करे काहूसों कहे नांही याभांति भावना करतकरत श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलके प्रसादतें पुष्टिमार्गके फलकी प्राप्ति निश्चय होय सो सर्वोत्तममें नाम श्रीगुसाँईजी कहेहें "अशेषभक्तसंप्रार्थ्यचरणाब्जरजोधनः" (समग्र भक्तनकों आछीभांतिसों सेविवेयोग्य हे चरणारविंदके

रजरूप धन जिनके) याभांतिं पुष्टिमार्गीय भगवद्भक्त श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलकी रजकों अपनो [सर्वस्व] धन जानेंहें तिनकों श्रीकृष्णाधरामृतफलकी सिद्धि होतहे तातें श्रीआचार्यजीके चरणकमलके प्रसादतें पुष्टिमार्गीय भगवदीयकों फल होय ॥ ३२ ॥ उपर कहे ताप्रकार निरंतर सर्वभावकरि सर्वथा श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय राखे ओर विप्रयोगकी भावना निरंतर सर्व भावकरि सर्वथा कर्त्तव्य हे अपने मनसों कपट छलको त्याग करी हृदयमें श्रीकृष्णचंद्रके शरण होय तथा शुद्ध भगवदीय श्रीकृष्णरसमें रसिक होय तथा श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलके शरण होय दैन्यभावकरि निःसाधन होय रहे तिनकों पुष्टिमार्गीय फलकी प्राप्ति निश्चय होय ॥ ३३ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुस्त्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३४ ॥

शिक्षापत्र ३५.

अब पंचत्रिंशत् शिक्षापत्रमें भगवदीयनकों विजातीयनको संग ओर सजातीयनको असंग होय सो महादुःखकारक हे सो दोउ मोकूं प्राप्त हे जो श्रीभगवानको द्वेष करिवेवारो हे सो तक्षकतुल्य हे जेसें ब्राह्मणके पुत्रने भेज्यो एसो तक्षक नाग महाभगवदीय परीक्षितकूं डस्यो तेसें भगवद्द्वेषी दुष्ट कर्म करिवेवारो दुर्वचनतें भगवदीयनकूं दुःख देतहे तामें भगवद्द्वेषी जो दुष्टकर्म करिवेवारो हे सो आधिभौतिक

अनधिकारी हे सो आछी क्रिया और वचनकरि साध्य हे ज्ञानशून्य (अज्ञानी) तथा विपरीत ज्ञानवान् हे सो आध्यात्मिक अनधिकारी हे सोहू यथार्थ तत्त्वबोधतें शुद्ध होतहे ओर प्रीतिरहित जो महादुष्ट हे सो कोउ उपायसों साध्य न होय जेसें जन्मतें नपुंसक होय सो काहू औषधनसों पुरुष न होय तेसें जामें प्रीति नांहीहे सो आसुरी जाननों वाके संगतें आसुरावेश होय तातें भक्तिमार्गमें रहिवेवारो उनको त्याग करे यह निरूपण हे। उपर विप्रयोगभाव सर्वोपरि कहे ताको साधनहू कृपा हे परंतु दुःसंगादि अनेक प्रतिबंध हे तिनतें बचे तव सिद्ध होय तासों जो दोष पुष्टिमार्गमें बाधक हे सो कहतहें.

मूलं-तदीयानां महद्दुःखं विजातीयेन संगमः।
संभाषणं सजातीयैरसंगो भाषणं च न।
तदेतदुभयं जातं ममेवाद्य स्वभाग्यतः॥ १॥

शब्दार्थः-बहिर्मुखसों संग तथा भाषण ओर भगवदीयको संग नांही तथा भाषणहू नांही यह भगवदीयनकुं बडो दुःख हे सो दोउ अपने भाग्यतें मोकूं अब प्राप्त भये हे॥ १॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों एक यह बडो दुःख हे जो विजातीय (अन्यमार्गीय) को संग होय सो ओरकी में कहा कहों? मोकों विजातीयको संग भयो हे तातें मेरे मनमें महादुःख हे जेसें व्रजभक्तनकों श्रीकृष्णकी कथावार्त्तामें प्रतिबंध करिवेवारे संग दुःखदायी हे सगरे भक्त मिले तब सुखतें मिलिकें लीलावार्ता करी परम आनंद पावे तहां कोउ लौकिक जन आवे तब यह वार्त्ता रहिजाय ओर दुःख होय तेसेंही पुष्टिमार्गीय वैष्णव परस्पर भगवद्वार्त्ता करत होय तहां एकहू अन्यमार्गीय तथा बहिर्मुख आवे ताकरि दुःख होय सो मोकोंतो दशोदिशातें

विजातीयको संग भयो हे ताकरि में बहुत दुःखी हों संभाषण तो सजातीय वैष्णवसों चहिये सो तो प्राप्त नांहीहे अन्यमार्गीयके संग अष्ट प्रहर संभाषण करनो परतहे यह मोकों परमदुःख हे सो दुःख दूरी नांही करिसकतहों यह दोय मेरे भाग्यमें आय प्राप्त भयेहें एक तो भगवदीयको संग चहियें सो तो मिलत नांही ओर दूसरे अन्यमार्गीय (विजातीय) को संग न चहियें सो अष्टप्रहर रहतहे यह दोय मोकों प्राप्त हे सो पुष्टिमार्गमें विरोधी हे सो दोय मेरे भाग्यतें आय प्राप्त भयेहें ॥ १ ॥

मूलं-दुःखांतरं तु ज्ञानेन भक्त्या वापि निवर्त्तते।
लौकिकं विषयप्राप्त्या न हि दुःसंगजं कचित् ॥२॥

शब्दार्थः-दूसरो दुःख होय सो तो ज्ञानकरिकें अथवा भक्तिकरिकें निवृत्त होतहे लौकिक (शब्दादिक विषय नांही मिलवेतें भयो एसो) दुःख विषयकी प्राप्ति होय तातें निवृत्त होतहे परंतु दुःसंगतें उत्पन्न भयो दुःख कोउ वखत निवृत्त नांही होतहे ॥ २ ॥ टीका-दूसरो दुःख तो ज्ञान अथवा भक्तितें निवृत्त होतहे लौकिक विषयादिककी प्राप्तिको दुःख होय सो विषय मिलेतें निवृत्त होतहे परंतु ताही दुःखतें दुःसंग-दुःख हे सो बडो हे जो काहूतें निवृत्त नांही होतहे सो श्रीभागवतमें कह्यो जो विषयतें विषयिको संग हे सो महाबाधक हे काहेतें जो उनके संगतें अष्टप्रहर विषयमें ध्यान रहे विषयावेश होय तासों एसे विषयके संगी बहिर्मुखको संग मोकों भयो हे ताकरि महादुःख हे ॥ २ ॥

मूलं-दुष्टानां दुर्वचोबाणैर्भिन्नं मर्मणि मद्वपुः।
न कापि लभते स्वास्थ्यं समाहितमपि स्वतः॥३॥

शब्दार्थः-दुष्टजनके दुर्वचनरूप बाणकरिकें मर्ममें भिद्यो एसो मेरो शरीर आपतें समाहित भयो हे तोहू कहूं स्वस्थताकों नांही प्राप्त होतहे

॥ ३ ॥ टीका–दुष्टके दुर्वचनरूपी बाण मेरे शरीरके मर्मकों वेधतहें ताकरिकें बडी पीडा होत हे एसो दुःसंग मोकों मिल्यो हे जो रंचक मेरे मनमें धीरज नांही होतहे तातें आपतें धीरज नांही रहतहे॥३॥

मूलं–इदानीं तु जनाः प्रायो दुःसंगपदवीं गताः ।
शुद्धं मनः कलुषितुं क्षणेनातिविचक्षणाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–बोहोतकरिकें अब तो मनुष्य दुःसंगकी पदवीकों प्राप्त भये हे सो शुद्ध मनकों एकक्षण (संग) तें मलीन करिवेमें अतिविचक्षण (चतुर) हे ॥ ४ ॥ टीका–अपनो हित नांहीदिसतहे हित तो भगवदीयके संगतें होय ओर अष्टप्रहर दुःसंगतें अहित होय सो मोकों अष्टप्रहर दुःसंग हे तातें मोकों अपनो हित नांही दीसतहे सो श्रीभागवतमें कह्यो हे ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी तथा श्रीगुसाँईजी कहेहें जो दुःसंगतें वैष्णवजन निश्चय दुःख पावे सो दुःसंग मोकों आय मिल्यो हे तासों दुःख पावतहों तहां कोई कहे जो तुम दुःख क्यों पावतहो ? अज्ञानी होय सो दुःसंगतें दुःख पावे तुम तो अनेक शास्त्र जानतहो तातें दुःसंग तुह्मारो कहा करे ? याभांति कोई कहे तहां कहतहें जो शुद्ध मन सुंदर बुद्धि होय ताहूको चित्त दुष्ट पापीके संगतें एकक्षणमें भ्रष्ट होयजाय एसो दुःसंग बाधक हे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " अहं कुरंगीदृग्भंगिसंगिनांगीकृतोऽस्मि यत् । अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बाधते (जासों में व्रजभक्तनके संगी जो श्रीकृष्ण तिनको अंगीकृत हों तासों अन्याश्रयको गंध हे सोहू ग्रीवाकों बाध करतहे) याभांति रंचकहू अन्यसंबंध होय तो गरो कटे सो चोराशी वैष्णवकी वार्तामें प्रसिद्ध हे जो संभारवारे दामोदरदासकी स्त्रीनें रंचक अन्याश्रय कीयो तो पुत्र म्लेच्छ भयो तातें दुष्टके संगतें बुद्धि भ्रष्ट होतहे सो दुःसंग मोकों मिल्यो हे तासों में दुःख पावतहों तहां कोई कहे जो

एसे दुःसंगको वेगिही त्याग करिदेउ तब सुंदर बुद्धि रहेगी याभांति कहे तहां कहतहें ॥ ४ ॥

मूलं-गृहस्थितस्य व्यावृत्तियुतस्य न हि तादृशाम् ।
संगो वारयितुं शक्यो व्यावृत्तेर्विनिरोधतः ।
अव्यावृत्तौ न विश्वासदार्ढ्यं येन तथा कृतिः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-गृहस्थाश्रममें रह्यो एसे पुरुषको जो व्यावृत्तियुक्त (लौकिकजन) को संग व्यावृत्ति मिटिजाय तासों नांही मिटिसकतहे ओर अव्यावृत्तिमें विश्वासकी दृढता नांहीहे जासुं एसी कृति होत हे ॥ ५ ॥ टीका-गृहस्थके व्यावृत्ति विना केसें चले परदेशमें संग मनुष्य चहियें इनको त्याग करें तो पाछें मनुष्य विना तो न चले जो राखियें सो इनहूतें अधिक बहिर्मुख आवे तातें गृहस्थ हें सो व्यावृत्तिके लिये राख्यो चाहियें जब अव्यावृत्ति होय तब दुःसंग छूटे तहां कोई कहे जो तुम बडे हो सर्वसामर्थ्ययुक्त हो व्यावृत्ति छोडि देउ तब दुःसंग छुटि जायगो याभांति कहे तहां कहतहें जो खोटे मनुष्यको त्याग करी अपने घरमें बेठे रहे तो कहां दुःसंग आवे परंतु व्यावृत्ति चाहियें तासों दुःसंग न छूटे तब मनुष्य चहियें जहां परदेशमें जईयें तहां नित्य नूतन मनुष्यको मिलाप होय तिनको समाधान कीयो चाहियें तब दुःसंग केसें छुटें ? तातें दुःसंग छोडिवेमें व्यावृत्ति विरोधी हे व्यावृत्ति न करनी अव्यावृत्त रहेनों सो तो सर्वोपरि उत्तम हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः " (अव्यावृत्त होयकें पूजाकरिकें श्रवणादिकतें श्रीकृष्णकों भजे) याभांति अव्यावृत्त होय तब दृढ विश्वास (धीरज) चहियें सो धीरज छुटिजातहे जो व्यावृत्ति विना गृहस्थाश्रमको केसें निर्वाह होय ? यह दृढ विश्वास विना अव्यावृत्त न भयो जाय तातें कहा करियें ? ॥ ५ ॥

मूलं–भगवद्द्वेषितां यातः स तु तक्षक एव हि।
यथा विप्रार्भकवचःप्रेरितः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ६ ॥
अदशत्स समागत्य महाभक्तं परीक्षितम्।
तथा दुर्जनवाक्यैकप्रेरितो ह्यतितामसः ॥ ७ ॥
अवज्ञया दुर्वचनैरधिक्षेपेण मामयम्।
दुष्कर्मा भौतिको दुष्टः स साध्यः सत्क्रियोक्तिभिः॥८॥

शब्दार्थः–श्रीभगवानके द्वेषिपनेकों प्राप्त भयो सो तो तक्षकही है जेसें ब्राह्मणके बालक (शृंगीऋषि) ने भेज्यो ओर क्रोधकरिकें मूर्छित (ज्ञानरहित) भयो एसो तक्षक आयके महाभक्त परीक्षित् राजाकों डस्यो तेसें दुर्जनके वचनतेंही भेज्यो एसो अति तमोगुणी यह दुष्टकर्म करिवेवारो निंदा, दुर्वचन, ओर तिरस्कार करिकें मोकूं डसतहे सो दुष्ट जाननों वह आछी क्रिया ओर वचनकरिकें साध्य हे ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ टीका–उपर व्याघ्रतिमें दुःसंगदोष होय सो कहे अब कालदोष कहतहें भगवद्द्वेषी जो हे तातें धर्मकी रक्षा करे यह काल भगवद्धर्ममें महाबाधक हे जेसें ब्राह्मणके बालकनें क्रोधकरिकें परीक्षित् राजाकों शाप दियो यह कार्य कालदोषतें भयो ॥ ६ ॥ राजा परीक्षित् सद्भक्त भगवद्धर्ममें चतुर जिनकी रक्षा श्रीभगवाननें गर्भमें कीनी हे तिनकों कलिकालके दोषतें दुर्बुद्धि उत्पन्न भई सो "ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्! मत्सरो मन्युरेव च" (हे शौनक! (शमीक ऋषिने आदरसन्मान न कीये तें) यह ब्राह्मण प्रति मत्सर (इनकी एसी बडाई कहा? जो में राजा आयो हूं ताको कछु सन्मान न कीयो एसी दोषबुद्धि) तथा क्रोध भयो) तव दुर्बुद्धि भई तातें मृतसर्प लेयकें शमीक ऋषिके कंठमें डारिदियो यह वात इनके पुत्र शृंगीऋषिनें सुनी तब क्रोधकरिकें

(तक्षक सर्प सातवे दिन खायगो एसो) शाप दियो यह सर्वकार्य कालदोषतें भयो नांही तो महाभक्त परीक्षितकों एसी दुर्बुद्धि क्यों आई ? ओर बालकनें एसो शाप क्यों दियो ? परंतु सब कालदोषतें भयो तेसेंही दुर्जनके वचन सर्परूपही हे सो तामसके आवेशमें अन्यथा बोले सो कालदोष जाननों ॥ ७ ॥ अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह कलिकालमें जीव दुष्ट भये हें तामें तीन प्रकारके दुष्ट हें आधिभौतिक १, आध्यात्मिक २, ओर आधिदैविक ३, तामें आधिभौतिक ओर आध्यात्मिक तो काहू समय भगवद्धर्ममें आवे परंतु आधिदैविक दुष्ट तो कबहू भगवद्धर्ममें न आवे एसे आधिदैविक दुष्टको कबहू संग न करियें सो तीन्यो दुष्ट केसें जाने जाय ताके लिये तीन्योंके न्यारे न्यारे लक्षण कहतहें अनेक दुर्वचन कहे, अज्ञानकरि अवज्ञा करे, दुर्वचनसों अपने मनको विक्षेप करे, ओरके मनको विक्षेप करे ओर शरीरतें दुष्ट कर्म करे, पापाचरण करे सो भौतिक दुष्ट जाननो, एसे दुष्टकों आछे भगवदीयको जब संग होय तब भगवत्सेवादिक सब करे, कठिन बोलिवोहू छुटिजाय, मनको विक्षेपहू छुटिजाय, भगवदीयके संगतें भौतिक दुष्टकों भक्ति वेगि होय ॥ ८ ॥

मूलं–आध्यात्मिको ज्ञानशून्यो ह्यन्यथाज्ञानवानपि।
कष्टसाध्यः कदाचित्स तत्त्वबोधेन शुद्धयति ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–ज्ञानशून्य ओर अन्यथा [विपरीत] ज्ञानयुक्त आध्यात्मिक दुष्ट जाननों सोहू कष्टसाध्य हे सो कोउ दिन तत्त्वबोधकरिकें

१ गर्भमें परीक्षित् राजाकी प्रभुनें रक्षा कीनी ओर अब क्यों नांही कीनी ? एसी शंका होय ताको समाधान यह हे जो परीक्षितद्वारा कितनोक कार्य करावनो हतो सो करायो फिर श्रीभागवतप्रवृत्ति लोकमें करावनी हती तासूं शापके निमित्ततें श्रीगंगाजीके तटपें बेठायो तब शुकदेवजी आय श्रीभागवतकी कथा कही ओर ब्रह्मास्त्र शांत कीयो हतो ताकी सत्यताहू ब्राह्मणद्वारा शाप दिवाय राखी.

शुद्ध होतहे ॥ ९ ॥ टीका–आध्यात्मिक दुष्ट ज्ञानकरिके शून्य होय सगरो कार्य अज्ञानतें करे वाको जब कोई ज्ञानवान् बडो भगवदीय मिले वोहोत दिनलों सत्संग होय, वोहोत कष्टकरि सत्प्राणी भगवदीय अनेक भांति समुझायके बोध करे, तब आध्यात्मिक दुष्ट बहुत दिनमें शुद्ध होय ॥ ९ ॥

मूलं–प्रीतिशून्यो महादुष्टः स न साध्यः कथंचन।
यथा नपुंसको नैव ह्योषधैः पुरुषो भवेत् ॥ १० ॥
यथा त्रिदोषग्रस्तो न कथंचिदपि जीवति ।
प्रीतिशून्यो नीरसश्च न तथा श्रवणादिभिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–प्रीतिकरि शून्य हे सो महादुष्ट कोई उपायसों साध्य नांही जेसें नपुंसक होय सो औषधनतें पुरुष नांही होय जेसें त्रिदोषग्रस्त होय सो कोई रीतिसूं जीवे नांही तेसें प्रीतिशून्य नीरस श्रवणादिकते सिद्ध नांही होय॥ १०॥ ११॥ टीका–प्रीतिकरिके शून्य हे सो महादुष्ट आधिदैविक दुष्ट असाध्य जाननो कोटिकल्पलों सत्संग होय परंतु केसेहू ज्ञान वाके हृदयमें न लगे केवल प्रवाही आसुरीको मन श्रीभगवान्में ओर भगवद्धर्ममें कबहू न लगे ताको लौकिक दृष्टांत कहतहे जेसें नपुंसक होय वाको कोटि औषध देई परंतु कोई प्रकार वह पुरुष न होय वामें पुरुषार्थ न होय तेसेंही आधिदैविक महादुष्टकों भगवत्संबंधि ज्ञान न लगे ॥ १० ॥ जेसें त्रि(कफ, वात, पित्त)दोषग्रस्यो रोगी न जीवे ताकों कछुहू औषध न लगे तेसें प्रीतिशून्य नीरस (भक्तिरसरहित) महादुष्ट हे सो कितनीहू भगवत्कथाको श्रवण करे परंतु रंचक हृदयमें भगवान्में मन न होय सो प्रवाही आसुरी जीवकी नांई जाननो सो पुष्टिप्रवाहमर्यादाग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " चर्षणी शब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु । क्षणात्सर्वत्वमायांति

रुचिस्तेषां न कुत्रचित्" [चर्षणी जीव सर्वमार्गमें क्षणमें आवे परंतु इनके कहूंहू रुचि न लगे] ऐसें प्रवाही आसुरी जीवकी नांई जन्मजन्ममें संसारासक्तिमें पर्यो रहे याकों भगवत्प्राप्ति न होय सो कृष्णदासजी गाये हैं " गुणप्रताप देखियत अपने चख अश्मसार ज्यों भेदे न तोय" जेसें अश्मसार(काले पत्थर)कों लेकें हजार वर्षलों जलमें डारि राखे परंतु जल उह पत्थरकों न भेदे जब निकारे तब सुकिजाय तेसें प्रीतिशून्य आधिदैविक महादुष्ट यह पुष्टिमार्गको प्रताप देखिके गुणहू सुने परंतु कबहू भगवद्धर्मको हृदयमें रंचकहू लेश न आवे एसें प्रीतिशून्य नीरस (भक्तिरसकरि रहित) बहिर्मुख हे ॥ ११ ॥

मूलं-प्रायः स आसुरो जीवो यस्मिन् प्रीतेरसंभवः ।
तादृशैर्नित्यसंगेन भवेदासुरभाववान् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः-जामें प्रीतिको असंभव होय सो बोहोतकरिकें आसुर जीव जाननो एसें आसुर जीवनकें साथ नित्य संगतें आसुर भाववारे होय ॥ १२ ॥ टीका-उपर कहे एसे प्रीतिशून्य महा दुष्ट होय ताकों आसुर जीव जाननों उह जीवमें प्रीतिकी संभावनाहू नांहीहे तातें एसेको संग छोडनो, भगवदीयके संग विना नित्य आसुरभाव होतहे जब नित्य तादृशीयको संग होय तब यह आसुरभाव निवृत्त होय सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें श्रीकृष्ण उद्धव प्रति कहेहें " न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधानाः खगा मृगाः । गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः " [मोकों योग वश नांही करतहे, सांख्य वश नांही करतहे, हे उद्धव ! धर्म,

दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, छंद, तीर्थ, नियम, यम, कोउ वश नांही करत हे जेसो सर्वसंगकों मिटायवेवारो सत्संग मोकों वश करत हे तेसो कोउ वश नांहीकरतहे सत्संगतें यातुधान, दैत्य, खग, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, वृत्रासुर प्रह्लादादिक वोहोत मेरे चरणारविंदकों प्राप्त भये हें) इत्यादिक वचनतें सत्संग सबतें वडो हे तातें तादृशीयके संग विना नित्य दुःसंगतें आसुरभाव होतहे ॥ १२ ॥

मूलं—दुष्कर्मा कर्मदुष्टः स्यात् ज्ञानदुष्टोऽन्यथादृशिः।
प्रीतिशून्यो भक्तिदुष्टस्तत्तन्मार्गगतस्त्यजेत् ॥१३॥

शब्दार्थः—दुष्ट कर्मवारो कर्मदुष्ट होय, विपरीत दृष्टिवारो ज्ञानदुष्ट होय, ओर प्रीतिशून्य भक्तिदुष्ट होय, तासों भक्तिमार्गमें रहिवेवारो इनकों तजे. अथवा जो जो मार्गमें एसे तीन दुष्ट होय सो सो मार्गमें रहिवेवारो इनकों तजे ॥ १३ ॥ टीका—अब श्रीहरिरायजी कहतहें दुष्कर्मा होय सो कर्मदुष्ट भौतिक दुष्ट जाननो ओर अन्यथा (विपरीत) ज्ञानवान् ज्ञानदुष्ट आध्यात्मिक दुष्ट जाननों सो सत्संग भयेतें भगवद्धर्ममें आवे ओर जो प्रीतिशून्य आधिदैविक दुष्ट हे सो आसुरी जाननो एसेको तो यह भक्तिमार्गीय सर्वथा त्याग करें तब भगवद्धर्म रहे यह निश्चय हे एसे आसुरके रंचकहू संबंधतें बुद्धिको नाश होय जाय, अन्याश्रय होय सो पुष्टिमार्गमें महाबाधक हे ॥ १३ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचत्रिंशत्तमं
शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-
टीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३५ ॥

शिक्षापत्र ३६.

अब षट्त्रिंश शिक्षापत्रमें भक्तिमार्गीय वैष्णवनकों चिंता नांही कर्त्तव्य हे जेसें बुहारी काढिकें शुद्ध घर कीयो होय तामें गृहपति रहे तेसेंही चिंतादिक करिकें रहित चित्तमें प्रभु पधारे, जो चित्तमें चिंतादिक होय तो प्रभुको आवेश न होय तासों नवरत्नग्रंथमेंहू श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी चिंता नांही करनी एसे निरूपण कीये हें. धर्ममार्गके विचारमेंहू कलियुगमें कर्त्ता लिप्त होतहे संसर्गको इतनो बाध नांही हे यद्यपि अवैष्णवनके संग नांही रहनो एसें श्रीआचार्यजीकी आज्ञा हे तोहू लोकको संकोच राखनो ओर इनकी निवृत्तिमें यत्न राखनो अपने मनको मोह करे एसी चिंता नांही करनी वह चिंतातें आयुष्य व्यर्थ जातरहे भगवच्चरणारविंदमें चित्त स्थापन करनो यह शरीर संबंधीकी अहंताममता छोडनी प्रतिबंधकी निवृत्तिके अर्थ हरिकी शरणभावना राखनी हरिही सर्वसिद्ध करेंगे अपनकों तो श्रीआचार्यजीकी आज्ञा प्रमाण निवेदनको अनुसंधान मात्र करनो यह निरूपण हे उपर कहे जो एसे दुःसंगको छोडे तब भगवद्धर्म रहे तेसेंही लौकिक चिंताहू छोडे तब प्रभु हृदयमें पधारे सो चिंता निवृत्तिको प्रकार अब कहतहे—

मूलं—नैव चिंता प्रकर्त्तव्या लौकिकी भक्तिमार्गगैः ।
चित्ते चिंतातुरे कृष्णः कथमाविशते गुणैः ॥ १ ॥

यथा गृहे गृहपतिः शुद्धे संमार्जनादिभिः ।
स्वस्थस्तिष्ठत्यन्यथा तु परावर्त्तेत सर्वथा ॥ २ ॥

शब्दार्थः—भक्तिमार्गीय वैष्णवनकों लौकिकी चिंता नांही कर्त्तव्य हे काहेतें जेसें गृहको मालिक गृह लिंपिके झाडिकें शुद्ध राख्यो होय

तामें स्वस्थ होयकें रहे नहीं तो सर्वथा पाछो फिरे तेसें चिंतातुर चित्तमें सकलगुणकरिकें पूर्ण प्रभु केसें प्रवेश करे ? ॥ १ ॥ २ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी सगरे पुष्टिमार्गीयकों शिक्षा करतहें जो हे सगरे पुष्टिमार्गीय वैष्णव ! तुमको लौकिक चिंता नांही कर्त्तव्य हे काहेतें जो जाको चित्त चिंताकरिकें व्याकुल होय ताके हृदयमें सकल गुणयुक्त प्रभु केसें आय वसें ? चिंता सकल दोषनकी माता हे जहां चिंता आई तहाँ सकल दोष आये अब हृदयमें दोष आये तब सकलगुणयुक्त प्रभु कोन प्रकार आवे ? ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्नग्रंथमें कहेहें " चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि " (निवेदितात्म जीवनकों कोई समयहू कछु चिंता नांही कर्त्तव्य हे) अपनों सगरो पदार्थ भगवानकों निवेदन कीयो पाछें चिंता क्यों करतहे ? सर्वथा चिंता न करे सर्वकरणसमर्थ भगवान् धनी माथेपें हें तातें चिंता कछुहू नांही कर्त्तव्य हे ॥ १ ॥ अब लौकिक दृष्टांत कहतहें जेसें लौकिकमें गृहको धनी गृहकों शुद्ध करी संमार्जन करी सगरो कूडा बाहिर निकारि आछो शुद्ध गृह करी तामें रहतहे तेसें श्रीकृष्ण जा वैष्णवको हृदयरूप घर शुद्ध देखतहें चिंताको दोष जाके हृदयमें नांहीहे उह वैष्णवके हृदयमें प्रभु पधारेहें काहेतें जो चिंता लौकिक हे सो श्रीकृष्णके चरणकी विस्मारक हे चिंता भई तब लौकिकावेश हृदयमें भर्यो रहे तब हृदयमें प्रभु केसें पधारे ? तातें श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन कीये पाछें सगरी चिंता, काम, क्रोध, मद, मत्सर, यह हृदयमें कूडा (मेल) हे तिनकों निकासिकें अपनो हृदय शुद्ध करी शांत चित्त करी एक श्रीकृष्णहीको आश्रय करी रहे तब प्रभु वह वैष्णवको हृदय शुद्ध देखिकें प्रसन्न होय वामें पधारे, कृपाकरिकें अपने स्वरूपानंदको अनुभव करावे ॥ २ ॥

मूलं–उक्तं च प्रभुभिस्तस्मान्नवरत्ने कृपालुभिः ।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिंता का स्वस्य सोऽपिचेत्॥३॥

शब्दार्थः–तासों कृपालु श्रीमहाप्रभुजीनें नवरत्नग्रंथमें कह्यो है जो (पुत्र स्त्री आदिके लिये द्रव्यादिकको विनियोग होय तब) यह हू अपनो हे तो अन्यविनियोग निमित्तहू चिंता कहाहे ? ॥ ३ ॥ टीका–तहां कोई कहे जो अन्यविनियोग होतहे यह प्रभुकी सेवा टहल न बने तब तो चिंता करनी तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमारे श्रीवल्लभाचार्यजी परमकृपालु हैं सो नवरत्नग्रंथमें निरूपण कीयें हें जो अपनतें अन्यविनियोग होय तबहू कछु चिंता न करनी काहेतें जो येहू अपनो हे तातें चिंता छोडि एक प्रभुको दृढ आश्रय हृदयमें राखनो ॥३॥

मूलं–धर्ममार्गविचारेऽपि कलौ कर्त्तैव लिप्यते ।
न संसर्गकृतो दोषस्तथा कलियुगे भवेत् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–धर्ममार्गके विचारमेंहू कलियुगमें कर्त्ताही लिप्त होयहे (औरयुगमें जेसो संसर्गको दोष हे तेसो) कलियुगमें संसर्गको दोष नहीं हे ॥ ४ ॥ टीका–धर्ममार्गकी रीति विचारे तो धर्मशास्त्रमें येही सब ठोर कहेहें जो कलियुगमें दोष करे सोही लिप्त होय संसर्गको दोष कलियुगमें सर्वथा न लगे तातें संबंधीको दोष अपनकों न लगे एसी मर्यादा हे तासों संबंधी भक्तिकी रीति छोडि अन्याश्रय करे तोहू वाको समजायके अन्याश्रय छुडावे, अपन चिंता न करे वे न माने तो एसें जानें जो इननें कीयो हे सो येही भुक्तेंगे मोकों कहा बाधक हे ? एसें विचारि आपु अपने धर्ममें सावधान रहे ॥ ४ ॥

मूलं–युगांतरे तथैवायं पंचमत्वेन गण्यते ।
यद्यप्युक्तं निजाचार्यैः स्थेयं नावैष्णवैः सह ॥ ५ ॥

१ अपने श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन कीयो हे तव पुत्र स्त्री गृह आदि सबको निवेदन भयो हे तातें वेहू प्रभुको भये हे तासों इनके लिये विनियोग होय तामें चिंता कहा ?

तथापि लोकसंकोचः कर्त्तव्यस्त्वग्रदर्शनैः ।
मनः स्थाप्यं तन्निवृत्तौ समये तन्निवर्त्तनम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–तेसेंही दूसरे युगमें यह (कलियुग) पंचमपनेतें गिन्यो जातहे यद्यपि अपने श्रीआचार्यजीने कह्यो हे जो अवैष्णवनके संग नांहीं रहनो ॥५॥६॥ टीका–तोहू आगें केसे करिवेमें आछो होय एसो विचार करिवेवारेनकों लोकसंकोच करनो ओर इनकी निवृत्तिमें मन स्थापन करनो सो समय आवे जब निवृत्त करनो॥६॥टीका–युगांतर जो सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग, यह चारो युग आवतहें तामें अब यह वर्त्तमान कलियुग हे सो पंचम हे उत्तमतें उत्तम हे यह चारोयुगमें नांहीहे काहेतें जो या युगमें श्रीवल्लभाचार्यजी पूर्णपुरुषोत्तमको प्राकट्य हे सो श्रीगुसाँईजी सप्तश्लोकीमें कहेहें " मायावादकरींद्रदर्पदलनेनास्येंदुराजोद्गतश्रीमद्भागवताख्यदुर्लभसुधावर्षेण वेदोक्तिभिः । राधावल्लभसेवया तदुचितप्रेम्णोपदेशैरपि श्रीमद्वल्लभनामधेयसदृशो भावी न भूतोऽस्त्यपि"(मायावादरूप मदोन्मत्त हस्तीके गर्वको तोडिवेतें श्रीठाकुरजीके मुखचंद्रराजतें प्रकट भयो एसो जो श्रीमद्भागवतनामको दुर्लभसुधा [अमृत] कों वर्ष (वृष्टि) ताकरिकें, वेदके बचनतें श्रीराधावल्लभ (श्रीकृष्ण) की सेवाकरिकें, ओर वह सेवामें योग्य एसें प्रेमसहित उपदेशनतेंहू श्रीवल्लभाचार्यजी बराबरि [कोउ] नांहीं होयगो, नांहीं

१ चंद्र तो एक हे ताको राजा केसें संभवे ? एसी संकर होय ताके समाधान वह हें जो श्रीठाकुरजीकी वाणीरूप श्रुतिरूपा भक्त अनेक हें सो चंद्ररूप हें तिनके (भावात्मक) आप हें तासों चंद्रराज कहेहें. २ युगलगीतमें इंद्र, शिव ओर ब्रह्मा, इनकोंहू यह रसको तत्त्वज्ञान नांहींहे एसे निरूपण हे तहां दुर्लभताको स्पष्ट वर्णन हे. ३ वृष्टितें जेसें बीज उत्पन्न होयहे तेसेंही यह सुधाकी वृष्टि कर्णद्वारा हृदयमें प्रवेश करे तब भावरूप अंकुर उत्पन्न होय. ४ वेद (श्रुति) प्रतिपादन करतहे सो " अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः " यह श्लोकमें व्रजभक्तननें निरूपण कीयो हे यह बचनके अनुसार प्रभुकी सेवा प्रकट करी हे.

भयो हे, ओरहेहू नांही) ओर क्यांहींमें कहेहें " एसी भई न हे है कबहूं जेसी अब निधि आई " या भावतें एसो मनमें जाननो जो एसो कलियुग कबहू नांही भयो ओर न आगें होयगो तातें अब देवी सृष्टिके जीवके उद्धारार्थ श्रीआचार्यजी महाप्रभु पधारिकें पुष्टिमार्ग प्रकट कीयो हे तातें यह युग ओर युगतें न्यारोही हे एसें जाननो ओर अपने श्रीआचार्यजी कहेहें जो अवैष्णवनके संग न रहनो ॥ ५॥ तोहू अबतांइ लोकसंबंधि संकोच आयपडे बोहोत दुःख होतजाने तबतांइ उनहींमें स्थित होय इनके दोष अर्थ बोहोत क्लेश न करे परंतु अपने मनकों स्वाधीन राखे समय आवे तब उनकों छोडि देई अपने पुष्टिमार्गकी रीतिसों सेवास्मरणमें मनकों लगावे ॥ ६ ॥

मूलं–तत्कालं तत्प्रयत्ने तु रोगस्येवोद्भवो भवेत् ।
अतः कार्यं शनैरेव प्रतिबंधनिवर्त्तनम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–जेसें रोग उत्पन्न भयो तब (वाको शोधनकरिकें मूलतें निकारिवेमें विलंब होय सो न करे ओर) तत्काल उनकों दबायवेको प्रयत्न करे तो वा समय तो दब जाय परंतु फिर वह रोग उत्पन्न होय तेसें जो प्रतिबंध आवे ताकों तत्काल निवृत्त करिवेको यत्न करे तो फिर वह प्रतिबंध आय नडे तासों धीरेधीरेही प्रतिबंधको निवर्त्तन करनो ॥ ७॥ टीका–कुटुंब लौकिकादिकको संकोच जेसो आय पडे तो वा समय उनहींमें मिलिकें रहे ओर इनके त्यागकी भावना राखे सो क्रमसों वाकों छोडे काहेतें जो तत्काल छोडिवेमें रोगकीसी नाँइ फेर उत्पन्न होय तासों शनैः (धीरेतें) निवृत्त करनी या भांति वैष्णवको रहनो ॥७॥

१ नांही भयो एसे क्यों ? व्रजभक्त तो सर्वोपरि हे एसी शंका होय ताको समाधान यह हे जो व्रजभक्तनकोहू (गोवर्द्धनधारणलीलामें अपनी रक्षा करिवेकी प्रार्थना करि सो) लौकिकावेशतें प्रेममें न्यूनता भई हे नांही तो वा समय प्रभुकी रक्षा करिवेको उपाय करते एसो प्रेमको स्वरूप आपने निरूपण कीयो हे तासों नांही भयो एसें कह्यो ओर व्रजभक्त गुरु कोटिमेंहू हें.

मूलं–वृथा चिंता न कर्त्तव्या स्वमनोमोहकारणम् ।
यथा सच्छिद्रकलशाज्जलं स्रवति सर्वशः ॥ ८ ॥
तथायुः सततं याति ज्ञायते न गृहस्थितैः ।
एवं हि गच्छत्यायुष्ये क्षणं नैव विलंबयेत् ॥ ९ ॥
भगवच्चरणे चेतः स्थापनेऽतिविचक्षणः ।

शब्दार्थः–अपने मनके मोहके कारणरूप वृथा चिंता न करनी काहेतें जो जेसें छिद्रयुक्त कलशसों चारों ओरतें जल स्रवतहे तेसें आयुष्य चल्यो जातहे सो गृहस्थाश्रमीकों जानिवेमें नांही आवतहे एसें आयुष्य चल्यो जातहे तामें श्रीभगवानके चरणारविंदमें चित्त स्थापन करिवेमें अतिचतुर एसो वैष्णव क्षणमात्र विलंब नांही करे ॥ ८ ॥ ९ ॥

टीका–वृथा चिंता सर्वथाही नांही कर्त्तव्य हे काहेतें मनको मोह होय मोहको कारण एक वृथा चिंताही हे यह निश्चयही जाननो ताको दृष्टांत कहतहें जेसें कलशके पेंदेमें छिद्र भयेतें सगरो जल कलशतें बाहिर वहिजातहें तेसेंही वृथा चिंतामें मनको मोह उपजतहे भगवद्धर्म नांही बनिआवत आपु परम उत्तम यह मनुष्यदेह हे ताको सगरो आयुष्य वीतिजातहे सो एकादशस्कंधमें राजा जनकनें कह्यो हे " दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् " (या वचनसों यह मनुष्यदेह हे सो महादुर्लभ हे ओर क्षणमें भंग होय एसो हे तामेंहू वैकुंठ (श्रीभगवान) के प्रिय भक्तको दर्शन दुर्लभ हे एसें में मानतहों) सो यह देह पायकें प्रभुको आश्रय करे तो उनको फल सिद्ध होय परंतु जीव वृथा चिंता करिकें मोह करिकें संसारमें जातहें ॥ ८ ॥ उपर कहे तामांति यह मनुष्यदेहको आयुष्य क्षणक्षणमें छीजतहे यह विचार निरंतर करी जाने जो यह गृहस्थाश्रममें मोकों तो सगरे बहिर्मुख दुःसंगी मिलेहें यह भगवद्धर्ममें सदा वाधही करेंगे याभांति

प्रतिबंध होय तो तिनको तत्काल त्याग करे एकक्षणहू विलंब न करे काहेतें जो देह छूटनको प्रमाण नांहीहे सो श्रीभागवतसप्तमस्कंधमें प्रह्लादजी, बालकसों कहेहें " कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह । दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् " (या वचनसों प्रह्लादजी कहतहें जो हे बालक ! यह भगवद्धर्मको कुमारअवस्थाहीतें आचरन कर्त्तव्य हे काहेतें जो मनुष्यदेह महादुर्लभ हे ताको निश्चय नांहीहे जो कव नाश होयगो ! क्षणमें नाश होय जाय तासों कुमार-अवस्थातें भगवद्धर्म कर्त्तव्य हे) यह विचारिकें प्रतिबंधरूप गृहकुटुंबको तत्कालही त्याग कर्तव्य हे एकक्षणहू विलंब न करे कहूं दुःसंगतें मन फिरजाय तो संसारासक्ति होयजाय तातें ताही क्षण उनको शीघ्रही त्याग करे ॥ ९ ॥ उपर कहे एसे प्रतिबंधको छोडिकें श्रीभगवान् श्रीकृष्णके चरणारविंदमें अपने मनकों विचक्षण होयकें स्थापन करे श्रीभगवानके चरणारविंदकों स्मरण ज्ञानी तथा मर्यादामार्गीय भक्तहू करतहे तातें विचक्षण होयकें करे एसें कह्यो ताको अभिप्राय यह हे जो पुष्टिमार्गकी रीतिसों नित्य श्रीकृष्णकी सेवादिक करी सर्व इंद्रिय, देह, मन, सब श्रीभगवानके चरणारविंदमें लगावें ।

मूलं–शरीरं प्राकृतं तद्धि ह्यनित्यं सर्वथा मतम् ॥ १० ॥
तत्संबंधोऽप्यविद्यातस्ततोऽहंममतात्मकः ।
संसारस्तत्कृतः सर्वसंबंधोऽपि मृषा मतः ॥११॥
तत्संबंधकृतं दुःखं नहि मंतव्यमुत्तमैः ।
प्रतिबंधनिवृत्त्यथ हरिं शरणमाव्रजेत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः–शरीर प्राकृत हे सोहू सर्वथा अनित्य मान्यो हे ॥ १० ॥ इनको संबंधहू अविद्यासों हे तासों अहंताममतात्मक संसार हे तिननें

कीयो एसो सर्व संबंधहू खोटो मान्यो हे ॥ ११ ॥ तातें वा संबंधनें कीयो एसो दुःख उत्तम वैष्णवकों नांही माननो ओर प्रतिबंधकी निवृत्तिके लिये हरिकों शरण करे ॥ १२ ॥ टीका–हरिके चरणारविंदमें मन कव लगे? जब अपने शरीरकों प्राकृत जानें यह देहके पोषणमें मन न होय तब तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायके करे. तातें शरीरको प्राकृत जाने ओर जीवकों सदा नित्य प्रभुको दास जाने या देहको एक दिन नाश होयगो एसें जानें ॥ १० ॥ जीव ओर देहको संबंध काहू कालमें नांहिहे जीव तो अनादिकालतें कोटान कोटिवार चोराशी लक्ष योनि भुगत्यो हे तहां काहू शरीरसों संबंध नांहिहे काहेतें जो यह देह प्राकृत पंचतत्त्वकरिकें बन्यो हे ओर पंचतत्त्वहू प्राकृत हे तो कारण प्राकृत होय ताको कार्यहू प्राकृत होय ओर जीव सदा एकरस अखंड हे ताकों अग्नि न जरावें, शस्त्र न छेद करे, एसो नित्य हे परंतु अविद्या जो लगी हे ताकरिकें अपनो शरीर जानतहे सो जीवकों अहंताममता लगी हे याभांति सगरो संसार अहंताममताकरि बंध्यो हे सो यह लौकिक संबंध सगरो झूठो हे परंतु अज्ञानकरि अहंताममतात्मक अविद्याके वश होय अपनों मान्यो हे ॥ ११ ॥ तातें यह लौकिक संबंध मिथ्या हे इनमें मन न लगावे उत्तम भगवदीय हे सो यह लौकिक संबंधकों उत्तम नांही जानतहे अहंताममतारूप प्रतिबंधकी निवृत्त्यर्थ हरिकी शरण जातहें जहां जहां अहंता ममता हे सो सब प्रभुकों समर्पण करी हरिकों शरण करिलेतहें तब यह प्रतिबंध दूरी होतहे सो नवमस्कंधमें भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहें "ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् । हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे" (जो भक्त, स्त्री, गृह, पुत्र, स्नेहिवर्ग, प्राण, द्रव्य, यह लोककों छोडिकें मोकों शरण आये हें इनकों छोडिवेकों में केसें उत्साह करूं?)

१ सब भगवानकों अर्पण करे तब अपनी अहंता ममता छूटि जाय.

ओर एकादशस्कंधमें कहेहें " कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुद्धयात्मना वानुसृतस्वभावात् । करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् " [कायातें, वाणीतें, मनतें, इंद्रियनतें, अथवा बुद्धितें, आत्मातें अथवा इनकों लागिरहे एसे स्वभावतें जो जो में करतहों सो सर्व पर एसे नारायणके लिये (अर्थात् पूर्णपुरुषोत्तमके लिये करतहे) एसें प्रभुकों सर्व अर्पण करे। फेरि दशमस्कंधमें कह्यो हे " इष्टं दत्तं जपस्तप्तं व्रतं यच्चात्मनः प्रियम् । दारान् गृहान् सुतान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम्" जो इष्ट कीयो, दान दीयो, जप कीयो, तप कीयो, व्रत कीयो ओर अपनकों प्रिय हे, स्त्री, गृह, पुत्र, प्राण, जो हे सो पर [प्रभु] कों निवेदन करनों] इत्यादिक वचनके अनुसार पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजी द्वारा प्रभुकों समर्पण करे, एक प्रभुहीको आश्रय करे ॥ १२ ॥

मूलं–भक्तदुःखासहिष्णुस्तं तदैव हि निवर्त्तयेत् । अशक्ये हरिरेवास्तीत्येवमेव प्रभोर्वचः॥ १३॥

शब्दार्थः–[जब प्रभुको आश्रय करे तब] भक्तके दुःखकों सहन नांही करिसके एसे प्रभु वाही समय वा प्रतिबंधकों निश्चय निवृत्त करें काहेतें जो अपनसों कछु न बने तहां हरिही रक्षक हे एसोही श्रीमहाप्रभुजीको वचनामृत हे ॥ १३ ॥ टीका–उपर कहे जो प्रतिबंधकी निवृत्तिके अर्थ सर्व पदार्थ स्त्रीपुत्रादिक प्रभुमें निवेदन करे हरिके शरण जाय परंतु तामें सगरे कुटुंबी दुःख देय, ज्ञातिको दुःख होय तथा अकेलो होय, रोगादि दुःख होय, द्रव्यादिककी हानि होय, नेत्रादिक अंगको भंग होय, तथा राजादि दंड देय, तथा खानपानादिकको संकोच होय, ओर अकेलो होय सो सहायता कोन करे ? याभांति संदेह होय तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह भगवद्भक्त सब छोडिकें हरिके शरण जाय तहां कोई दुःख आवे ताकों सहे तब श्रीठाकुरजी

भक्तको दुःख नांही सहिसकतहें तातें भक्तनकों दुःख पावत देखेंगे तब तत्कालही दुःख निवृत्त करेंगे सो विवेकधैर्याश्रयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् " तथा " अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः " (अपनतें न होय-सके तामें हरिही (रक्षक) हें काहेतें जो आश्रयतें सर्व सिद्ध होय) तेसें (अशक्यमें तथा सुशक्यमें सर्वथा हरि शरण हें) याभांति हरिकी शरणभावना दृढ राखे तो प्रभु सर्व ओरते रक्षाही करे प्रह्लादजीनें हरिकी शरणभावना राखी ओर दुःख सह्यो तो भगवान् प्रतिबंध दूरी कीये भक्तकी रक्षा करी तातें सर्व छोडिकें हरिशरणकी भावना दृढ राखे सो गीताजीमें भगवान् अर्जुन प्रति कहेहें " सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " (सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरण आ में तोकूं सर्वपापतें छोडाउंगो शोक मति करे) याभांति भगवानके शरण जाय प्रभुको आश्रय करे ताकी प्रभु रक्षा करे ओर भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें (" बाधसंभावनायां तु नैकांते वास इष्यते । हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ") बाधकी संभावना होय (जो एकांतमें रहिवेमें कछु बाधक आवे एसी शंका होय) तो एकांतमें वास नांही योग्य हे (गृहमें रहिवेमें बाधक आयवेकी शंका होय तहां कहतहें हरि सर्व ओरतें रक्षा करेंगे संशय नांही) तातें सर्व प्रकार हरिकोही आश्रय करे ॥ १३ ॥

मूलं–यावच्छक्ति प्रकर्त्तव्यो ह्युपायस्तन्निवर्त्तने ।
प्रतिकूले च तत्त्यागपर्यंतं विहितं पुनः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः–प्रतिबंधकी निवृत्ति निमित्त अपनी शक्तिप्रमाण उपाय करनो ओर [स्त्रीपुत्रादिक] प्रतिकूल होय तो इनको त्याग करनो

एसें श्रीआचार्यजी निबंधमें कहेहें " उदासीने स्वयं कुर्यात्प्रतिकूले गृहं त्यजेत् " [स्त्रीपुत्रादिक उदासीन रहेते होय तो आपु सेवादिक सब करे ओर प्रतिकूल होय (अर्थात् सेवामें विरुद्ध पडे) तो गृहकों छोडे] ॥ १४॥ टीका–याभांति वैष्णव प्रतिबंधकी निवृत्तिपूर्वक हरिशरणके उपायमें रहें प्रतिबंधके त्यागमें मन राखे जो कोई कुटुंबी, स्त्री, पुत्र, माता, पितादि प्रतिकूल होय तो तिनको त्याग करे जो अनुकूल न होय तो अकेलो सेवा करे पाछें उनको महाप्रसाद ओर प्रसादि वस्त्र दे पोषण करे, जो केवल प्रतिबंधरूप होय भगवद्धर्ममें द्वेष राखे तो उनको त्याग करे काहेतें जो भगवान् आत्मसंबंधी जन्मजन्मके प्रभु हें ओर यह देहसंबंधी स्त्रीपुत्रादिक हे उनकों जहांलों देह हे तहांलों संबंध हे देहको मरण भयो तब स्त्रीपुत्रादिककों संबंध निवृत्त भयो ताहीतें देहसंबंधीके लिये आत्मसंबंध न छोडनो ॥ १४ ॥

मूलं–सर्वथा स्वस्य चाशक्तौ हरिरेव हि रक्षकः । स्वकीयचिंतां कुरुते कर्त्ता स च करिष्यति ॥१५॥

शब्दार्थः–अपनी सर्वथा अशक्तिमें हरिही रक्षक हें सो अपने भक्तनकी चिंता करतहें सो करेंगे ॥ १५ ॥ टीका–जो सर्वथा जीव अशक्त होय तो ताके रक्षक हरि [सर्वदुःखहर्त्ता] ही हें सो अपने निजभक्तनकी चिंता आगेतें करत आये हें अब करतहें ओर आगें करेंगे तीन्यो कालमें कबहू भक्तनकों नांही भूलतहें सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " अन्यथा मातरो बालान्न स्तन्यैः पुपुषुः कचित् " माता अपने बालक पुत्रकों स्तन अतिप्रीतिसों न प्यावे एसो माता कबहू न करे क्षणक्षणमें बालककी रक्षाही करतहें तेसेंही भगवान् भक्तनकी चिंता कबहू न करें एसें न होय जाभांति भक्तनको हित होय सोही सर्व करतहें यह निश्चय जाननों ॥ १५ ॥

मूलं-स्वयं किमर्थं कर्त्तव्या पितरीव शिरःस्थिते।
न त्यक्ष्यति कृपापूर्णः सेवकं सर्वदा श्रितम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थः-पिताकीनाँई श्रीठाकुरजी अपनी उपर बिराजेहें सो, अपनें क्यों चिंता करनी ? काहेतें जो कृपाकरिकें पूर्ण एसें प्रभु आश्रित सेवकनकों नांही छोडेंगे ॥१६॥ टीका-पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों चिंता क्यों करनी? काहेतें जो श्रीआचार्यजी तथा श्रीकृष्ण धनी माथे-पर बिराजेहें तिनकों काहेकी चिंता हे ? जेसें या लौकिकमें बालकके माथे पिता नेक्यो होय वा बालकको कहा चिंता हे ? यह लौकिक हे ओर श्रीकृष्ण तो ईश्वरके ईश्वर हें सर्वसामर्थ्ययुक्त हें एसे प्रभु [पुष्टिमार्गमें] वैष्णवनके माथे बिराजतहें जिनकी कृपादृष्टि सदा एकरस भक्तनपर हे एसो वैष्णव कोई अर्थकी चिंता न करे एक प्रभुको ही दृढ आश्रय करे ॥ १६ ॥

मूलं-आचार्यशरणं तस्य चिंतालेशोऽपि नैव हि ।
तस्माच्छ्रीवल्लभाचार्यचरणाब्जद्वयाश्रितैः ॥१७॥
न कापि चिंता कर्त्तव्या कृष्णसेवां विना पुनः ।
निवेदनानुसंधानचिंतामात्रं विधीयताम् ॥१८॥

शब्दार्थः-जिनकों दृढ श्रीआचार्यजीको शरण सिद्ध भयो हे तिनकों चिंताको लेशहू नांहिहे तासों श्रीआचार्यजीके दोय चरणार-विंदको जो आश्रित हें ॥ १७ ॥ तिनकों श्रीकृष्णकी सेवा विना काहू चिंता न करनी केवल निवेदनके अनुसंधानकी मात्र चिंता करनी ॥ १८ ॥ टीका-जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके शरण हे नाममंत्र (अष्टाक्षर महामंत्र) पायो हे तिनकों चिंताको लेशहू नांही कर्त्तव्य हे सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें " यदुक्तं तातचरणैः 'श्रीकृष्णःशरणं मम'

तत एवास्ति नैश्चिंत्यमैहिके पारलौकिके" जो तातचरण (श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीने) "श्रीकृष्णः शरणं मम" कह्यो हे तासोंही यह लोकके तथा परलोकके फलादिकमें निश्चिंतता हे) इत्यादि वचनकरि पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ १७ ॥ उपर कहे जो चिंता कोई प्रकारकी नांही कर्त्तव्य हे तहां कोई कहे जो चिंता कछू नांही करनी एसे कह्यो तव जीव भगवद्धर्मकी चिंताहू न करेगो ओर भगवद्धर्महू न करेंगो क्यों जो प्रथम जीवनकों भगवद्धर्ममें मनहू नांहिहे ओर तुम चिंताहू नांहीकरन कहे तासों भगवद्धर्म नांही करे उनकी कहा गति ? याभांति संदेह होय तहां कहत हे जो श्रीकृष्णकी सेवाकी चिंता तो अवश्य कर्त्तव्य हे ओर लौकिक वैदिक फलकी तथा अपने उद्धारकी चिंता नांही कर्त्तव्य हे श्रीकृष्णकी सेवा विना तो यह पुष्टिमार्ग सर्वोपरि हे ताके फलकी प्राप्ति न होय तासों यह चिंता अवश्य कर्त्तव्य हे तातें श्रीकृष्णकी सेवा करे निवेदनको अनुसंधान अहर्निश राखे जो में कितने कालमों प्रभुको भूल्यो हतो, अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें संबंध भयो हे, में दास हों, मोकों अब कहा कर्त्तव्य हे ? में सर्व समर्पन कीये हे, यामें अपनी सत्ता सर्वथा नांही हे, सर्व प्रभुको हे, या भांति निवेदनको अनुसंधान राखे ॥ १८ ॥

मूलं–लोके स्वास्थ्यं तथा वेद इति श्रीमत्प्रभोर्वचः ।
स्मृत्वा शीघ्रं हृदिस्था सा निवर्त्त्या सेवनार्थिभिः॥१९॥

शब्दार्थः–श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नमें कहेहें जो "हरि लोकमें तथा वेदमें स्वस्थता न करेंगे" यह वाक्यको स्मरणकरिकें, प्रभुकी सेवाके अर्थवारे वैष्णवनकों हृदयमें रही एसी जो चिंता सो शीघ्र निवृत्तकरनी ॥१९॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमारे प्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु

न करिष्यति " [श्रीकृष्ण अपने जनकों लौकिकवैदिकमें स्थित न करे जो अज्ञानकरि कोई लौकिक वैदिकमें स्थित होय तो प्रभु वह कार्य सिद्ध न करे तब वेष्णव तत्काल या विषय चिंता छोडिकें प्रभुको गुण माने जो यामें कछु मेरो अनिष्ट होयगो तासों प्रभु सिद्ध नांही कीये परंतु मनमें चिंता न करे यह मेरो बिगर्यो अब में कहा करूं ? ऐसें चिंता न करे जो प्रभुको गुणही माने शीघ्रही प्रभुको चिंतन करे जो मेरे उपर प्रभु प्रसन्नहीं हैं जेसें संतदासजी श्रीआचार्यजीके सेवक हते सो प्रथम वहुत संपन्न हते सो सब द्रव्य गयो फिर २० टकाकी पुंजीतें अढाई पईसामें निर्वाह करी प्रसन्न रहेते पाछें नारायणदासनें १०० मोहोर पठाई सो न राखि प्रभुकी इच्छाके अनुसार चले याभांति वैष्णव प्रभुको गुणही माने ॥ १९ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं षट्त्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३६ ॥

शिक्षापत्र ३७.

अब सप्तत्रिंश शिक्षापत्रमें अहर्निश अपनी निःसाधनताकी भावना करनी यह निरूपण हे । उपर कहे ताप्रमाण चिंता न करनी ओर जब निःसाधन होय तब फलप्राप्ति होय सो निःसाधनताकी भावनाको प्रकार निरूपण करतहें—

मूलं—न शुद्धभावो नैवास्ति सर्वभावो न दीनता ।
नाज्ञापरत्वं विश्वासो न चास्ति परमादरः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—शुद्ध भाव नांहीहे, सर्वात्मभाव नांहीहे, दीनता नांहीहे श्रीआचार्यजीमें तत्परता नांहीहे, यह पुष्टिमार्गमें विश्वास नांहीहे, ओर प्रभुमें आदर नांहीहे. (एसे साधनरहित में हूं सो प्रभु कहा करेंगे? एसी भावना करे) ॥ १ ॥ टीका—अब श्रीहरिरायजी कहतहैं याभांति निःसाधन जीव होय तो प्रभु निश्चय फलदान करे सो मेरेमें निःसाधनता नांहीहे प्रथम तो शुद्ध भाव होय तब प्रभु कृपा करे सो शुद्ध भाव नांहीहे मनमें कपट, छल, ईर्ष्या, इत्यादिक भरिरह्यो हे तातें श्रीकृष्णमें शुद्ध भाव नांहीहे ॥ १ ॥ ओर सर्वभावहू प्रभुमें नांहीहे जो महाप्रभुजी चतुःश्लोकीमें कहेहैं "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः" (सर्वदा सर्वभावकरि व्रजके अधिप [श्रीकृष्ण] भजन करिवेयोग्य हे एसे व्रजके अधिपति [श्रीकृष्ण] हे तिनको भजन [सेवा] सदाही सर्वभावकरिकें कर्त्तव्य हे सो मोसों नांही बनत. देहसों करतहों तो इंद्रिय मन नांही लगत. मनमें विचार होतहे परंतु देहतें नांही बनतहे, मन, वचन, कर्म, सर्वभावसूं नांही होतहे ॥ २ ॥ भलो ओर कछु न बने तो दीनता करे तातें प्रभु प्रसन्न होय सो श्रीगुसांईजी विज्ञप्तिमें कहेहैं "आचार्यचरणैरुक्तं दैन्यं तत्तोषसाधनम्" (हमारे आचार्यजी महाप्रभुजी श्रीसुबोधिनीजी आदिमें कहेहैं जो प्रभु प्रसन्न करिवेको साधन एक दैन्यही हे] सो दैन्य मेरेमें नांहीहे ॥ ३ ॥ ओर जाप्रकार श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी आज्ञा शास्त्रमें हे सो बने तोहू प्रभु प्रसन्न होय सो पुष्टिमार्गकी रीति हे ता अनुसार आज्ञापालनहू मोमें नांहीहे ॥ ४ ॥ ओर या पुष्टिमार्गमें चातकपक्षिकी नांई विश्वास राखे सो सर्वोपर हे विश्वास विना कछु सिद्धि नांहीहे सो मोमें विश्वासहू नांहीहे ॥ ५ ॥ ओर प्रभुमें आदर नांहीहे आदर (परमप्रीति) होय तो प्रभु विना ओरठोर मन न लगे सो प्रभुमें आदरहू नांहीहे ॥ ६ ॥ १ ॥

मूलं—न सत्संगो नैव सेवा न निवेदनसंस्मृतिः ।
नाश्रयो न विवेको हि धैर्यं न शरणस्थितिः ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सत्संग नांहीहे, सेवा नांहीहे, निवेदनकी सुंदर स्मृति नांहिहे, आश्रय नांहिहे, विवेक नांहिहे, धैर्य तथा शरणमें स्थिति (दृढ आश्रय) नांहिहे ॥ २ ॥ टीका—ओर साधन न होय परंतु सत्संग होय तो ताकरि पुष्टिमार्गके फलको अनुभव होय सो मोकों पुष्टिमार्गको सत्संगहू नांहिहे ॥ ७ ॥ सत्संगतें अष्टप्रहर भगवत्सेवामें मन लागे तो फलरूप मानसी सेवा सिद्ध होय सो मेरेमें तो तनुजा वित्तजाहू नांही बनतहे तहां मानसी तो परम दुर्लभ हे. यह मार्गमें तो सेवाही मुख्य हे जेसें ब्राह्मण गायत्री न पढे तो महत्व जाय तेसेंही वैष्णव सेवा न करे तो वैष्णवता जाय सो मेरेमें सेवाहू नांहिहे ॥ ८ ॥ ओर निवेदनको अनुसंधान यह पुष्टिमार्गमें सर्वथा चहिये सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " (निवेदन तो तादृशीय भगवदीयजनके संग निश्चय स्मरणकरिवेयोग्य हे) सो मोकों न तादृशीयको संग हे ओर न निवेदनकी स्मृति हे ॥ ९ ॥ एक प्रभुको आश्रय मनमें राखे यह परम साधन हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें " अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् " (अशक्यमें हरिही सर्व हे तासों सर्व आश्रयतें सिद्ध होय) याभांति एक श्रीकृष्णहूको आश्रय नांहिहे ॥ १० ॥ विवेक चहियें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें कहेहें " विवेकस्तु हरिः सर्वनिजेच्छातः करिष्यति " [हरि[१] (भगवान्) अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छासूं

१ महाभारतमें कह्यो हे " हराम्यघं हि स्मर्तॄणां (हरामि दुःखं स्मर्तॄणां) हविर्भागान् क्रतुष्वहम् । वर्णोऽपि मे हरिश्चैवस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः " (स्मरणकरिवेवारेको पाप ओर दुःख में हरूंहूं, यज्ञनमें हविष्यके भाग लेउंहूं ओर रंगहू हर्यो मोकों प्रिय हे तासों में हरि कहाउंहूं, तासों हरिनामकोही यह माहात्म्य हे जो भक्तनके दुःख निवृत्त करेंगे यह समझनों सो विवेकको मूल हे.

सर्व करेंगे यह समझनो सो विवेक] मनमें विचार होय जो प्रभुही सर्व करतहें जीवको कीयो कछु नांही होत हे यह विवेक वैष्णवको चहियें सो नांही हे ॥ ११ ॥ वैष्णवकों दुःखसुखमें धैर्य चाहियें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें " त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा । तक्रवद्देहवद्भाव्यं जडवद्गोपभार्यवत् " (मृत्युसमान संकट आयजाय अथवा मृत्यु होयजाय तहांताँई सर्व ओरतें सदा आध्यात्मिकादिक त्रिविध (तीन प्रकारके) दुःखकों सहन करनो सो धैर्य, तक्र (छाछ) की नाँई, जडभरतकी नाँई, ओर व्रजभक्तनकी नाँई, अथवा गोपकी स्त्रीकी वार्त्ता श्रीगोकुलोत्सवजीकृत टीकामें हे वा गोपस्त्रीकी नाँई देहवारेकों भावना कर्त्तव्य हे अथवा देहकी नाँई भावना कर्त्तव्य हे] याभांति आध्यात्मिकादि तीनो प्रकारके दुःखकों वैष्णव सहन करे तब धैर्य देखि प्रभु प्रसन्न होय, प्रह्लादजीकी नाँई टेक चहियें सो मेरेमें धैर्यह नांही हे ॥ १२ ॥ ओर हरिके शरणमें स्थिति होय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें " ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ।

---

१ छाछ मथनको सहन करतहे तब मक्खन [साररूप] निकसतहे फेर छाछमें ममत्व नांही रहतहे तेसें देह विद्यमान होय तवताँई कार्य करिलेनो ओर देह तथा देहसंबंधीमें ममत्व नांही राखनो. २ जडभरतकों भद्रकालीकी पास मारिवेकों लेगये तोहू सहे तब इनके तेजसों भद्रकालीकी मूर्ति भिन्न होयके भीतरसों देवी निकसी सो जडभरतकों मारिवेवारेनकों मारडारे. ३ व्रजभक्तननें लौकिक वैदिक तजे तामें दुःख आये सो सहे. ४ " हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजंगदष्टं देशांतरे विधिवशाद्गणिकाऽस्मि जाता । पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम् " (राजाकों मारिकें पति पास गई तहां पतिकों सर्प डस्यो देखिके देशांतरमें गई तहां प्रारब्धयोगसूं वेश्या भई तहां पुत्रके संग पतिकीनाँई समागम भयो तासों चितामें गिरी वहांतें इहां अब गोपकी स्त्री भई सो छाछको शोक कहा करूं ?) ५ देहमें अहंता ममतासों बंधन होतहे,ओर जब यह छुटे ओर इनसंबंधी दुःख सहे तब उत्तम फल मिले.

दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥ भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते । अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वार्थे शरणं हरिः ॥ " (यहलोकमें, परलोकमें, सर्वथा हरि शरण हैं. दुःखकी हानिमें तथा पापमें, भयमें, कामादिक पूर्ण न होय तामें, भक्त द्रोह करे अथवा भक्तको द्रोह होयजाय तामें, भक्तिके अभावमें, भक्त अतिक्रम करे अथवा भक्तनको अतिक्रम होयजाय तामें, अशक्यमें तथा सुशक्यमें, सर्व अर्थमें हरि शरण हैं) याभांति शरणभावना राखे तो श्रीकृष्णाश्रयमें कहेहें " शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् " (शरणमें रहिवेवारे जीवनके उद्धारनिमित्त अथवा उद्धार करिवेवारे श्रीकृष्णकों मैं विज्ञप्ति करूंहूं) तातें श्रीकृष्णके शरण जाय रहे तो प्रभु उद्धार करे सो श्रीगीताजीमें भगवान् अर्जुन प्रति कहेहें " सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " (सर्व-धर्मको छोडिकें मोकों मुख्य जानि शरण हो में तोकों सर्वपापनतें छुडाउँगो शोक मति करे) याभांति प्रभुके शरण होय तो प्रभु कृपा करे सो में शरणमेंहू स्थित नांहीहों ॥ १३ ॥ २ ॥

मूलं-न माहात्म्यपरिस्फूर्तिः स्नेहस्तु न हि कुत्रचित्। आसक्तिव्यसनादीनां कथाऽपि खलु दुर्लभा॥३॥

शब्दार्थः-माहात्म्यकी चायोंओरतें स्फूर्ति नांहीहे, काहूस्थलमें स्नेह नांहीहे. आसक्ति ओर व्यसनादिककी तो कथाहू निश्चय दुर्लभ हे. ॥ ३ ॥ टीका-श्रीकृष्णके माहात्म्यकी स्फूर्ति हृदयमें होय तोहू प्रीति होय जो प्रभुके प्रमेयबलतें गाय, गोपी, एसे निःसाधनको फलसिद्धि भई हे, अजामिलको पुत्रभावके नामतें तार्यो हे, अविद्यारूप पूतनाकों एकक्षणमें मारि भक्तनकी अविद्या दूरी कीनी हे. या पुष्टिमार्गमें स्त्रीशूद्रादिकनको उद्धार श्रीमहाप्रभुजी कीये हे, रंचक कृपादृष्टितें भक्तन-

को सर्वकार्य सिद्ध होतहे सो मोकों कहा डर हे ? या भांति माहात्म्यकीहू स्फूर्ति नांहीहे. ॥ १४॥ चित्तमें स्नेह होय यह प्रभु प्रसन्न करिवेको बडो साधन हे काहेतें जो प्रथम प्रभुमें स्नेह होय पाछें आसक्ति होय, व्यसन होय तब अनुभव होय सो श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रेमहू नांहीहे तो आसक्ति व्यसनादिककी तो कथा कहनकों दुर्लभ हे, सो प्रेम, आसक्ति, व्यसन, कब होय सो त्रिविधनामावलीमें कहेहें " बाललीलानामपाठात् श्रीकृष्णे प्रेम जायते । आसक्तिः प्रौढलीलाया नामपाठाद्भविष्यति ॥ व्यसनं कृष्णचरणे राजलीलाभिधानतः । तस्मान्नामत्रयं जाप्यं भक्तिप्राप्तीच्छुभिः सदा " [बाललीलाके नामके पाठतें श्रीकृष्णमें प्रेम होयहे, प्रौढलीलाके नामके पाठतें आसक्ति होयगी, राजलीलाके नामसों श्रीकृष्णके चरणारविंदमें व्यसन होय तासों भक्तिकी प्राप्तिकी इच्छावारेनकों सदा तीन्यो नाम जपकरिवेयोग्य हें.] तासों तीन्यो नामके पाठ मन लगायके करे तब निश्चय पुष्टिभक्ति सिद्ध होय, ओर भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " ततः प्रेम तथासक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् " [तासों प्रेम तथा आसक्ति, ओर व्यसन जब होय सो शास्त्रमें बीज कह्यो हे] सो मोमें स्नेहहु नांहीहे, ॥१५॥ ताकरिकें श्रीकृष्णके चरणमें आसक्ति नांहीहे, ॥१६॥ ओर व्यसनादिककी कथाहू दुर्लभ हे ॥ १७ ॥ ३ ॥

मूलं-भक्तिमार्गप्रवेशो न धर्ममार्गे न च स्थितिः । देशादिशुद्धभावो न कालदोषान्न वैदिकम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः-भक्तिमार्गमें प्रवेश नांहीहे, ओर धर्ममार्गमें स्थिति नांही, देशादि शुद्धभाव नांही, कालदोषते वैदिक नांही. ॥ ४ ॥
टीका-यह पुष्टिमार्ग सर्वोपर हे तामें मेरो प्रवेशहू नांहीहे काहेतें जो श्रीवल्लभाचार्यजीके भक्तिमार्गमें ब्रह्मादिक शिवादिकको प्रवेश नांहीहे सो गोपालदास वल्लभाख्यानमें गायेहें " एवो मार्ग श्रीवल्ल-

भवरनो ज्यां नहि प्रवेश विधि हरनो " एसो शुद्धमार्ग तामें प्रवेश होय एसो एकहू साधन मोमें नांहीहे तातें यह अपने मनमें जानतहों जो यह सर्वोपरि भक्तिमार्गमें दोषरूपको प्रवेश नांहीहे ॥ १८ ॥ ओर लोकधर्ममेंहू स्थिति नांही हे तातें यह अपने मनमें जानतहों जो यह अलौकिक भक्तिमार्ग हे तामें स्थिति न भई तो लौकिकमें तो स्थिति होय सो में लौकिक गृहादिकमेंहू स्थित नांहीहों ॥ १९ ॥ देशादि शुद्धताको आश्रय नांही, कितनेक जीव शुद्धदेश [तीर्थ] को सेवन करतहें, काशी, प्रयाग, व्रजदेशको आश्रय करत हें सो एसे देशको आश्रय नांहीहे ॥ २० ॥ वैदिक धर्म कालदोषतें सिद्ध नांहीहे, कर्ममार्गतेंहू स्वर्गादिक फल शास्त्रमें कहेहें सो कालदोषतें वैदिक धर्म सिद्ध नांहीहे सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वात् " (अब कलिदोषकी प्रबलतासों एसें स्थिति हे) ओर श्रीकृष्णाश्रयमें कहेहें " नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु । पाखंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम " (सर्वकर्म ओर व्रतादिक नानाप्रकारके वादकरिकें नष्ट भये ओर पाखंडकोही मुख्य प्रयत्न जामें हे तामें श्रीकृष्णही मेरी गति हें) याभांति कलिकाल पायकें मर्यादामार्गके साधन सब नष्ट भये तासों में वैदिककार्यमेंहू नांहीहों ॥ २१ ॥ ४ ॥

मूलं-न च व्यावृत्तिराहित्यं व्यावृत्तो न हरौ मनः।
न त्यागश्चापि सेवार्थं स्वतंत्रस्य तु का कथा ॥ ५॥

शब्दार्थः-व्यावृत्तिरहितपनो नांहीहे, व्यावृत्तिमेंहू हरिमें मन नांहीहे, ओर सेवाके लिये त्यागहू नांहीहे, तो मनको अपने वश करिकें स्वतंत्र होयवेकी तो वार्त्ता कहा? ॥ ५ ॥ टीका-में अव्यावृत्तहू नांहीहों सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " अव्या-

वृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः " (अव्यावृत्त होयकें पूजा (सेवा) ओर श्रवणादिककरिकें श्रीकृष्णकों भजे) याभांति अव्यावृत्त होय भगवद्धर्म [सेवा] करे कथा सुने सो अव्यावृत्तहू नांही ॥ २२ ॥ व्यावृत्ति करतमेंहू हरिमें चित्त चहियें सोहू श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा " [व्यावृत्तियुक्तहू स्थापे ओर सदा हरिमें चित्तकों श्रवणादिकमें यत्न करे] याप्रकार व्यावृत्ति करतमेंहू भगवानमें मन नांहीहे जेसें संतदासजी कोडी वेचतें काहूतें बोलतें नांही, ॥ २३ ॥ ओर भगवत्सेवार्थ देह, इंद्रिय, मनतें लौकिक वैदिकको त्याग नांहीहे, जो त्याग न होय तो सेवा न बने सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी सेवाफलमें कहेहें " उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः " [उद्वेग, प्रतिबंध[1] ओर भोग[2] यह बाधक हे] जो बाधक हे ताको त्याग करनो सोहू सेवाफलमें कहेहें " बाधकानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथा परम् " [बाधकनको परित्याग करनो भोगमेंहू लौकिकको त्याग करनो] उद्वेग, प्रतिबंध, भोग, [विषयार्थ आछो खानपान] ताको त्यागहू सेवार्थ नांहीहे ॥ २४ ॥ स्वतंत्र नांहीहों देह इंद्रियनके वश्य हों काहेतें जो विषयादिक भोगको त्याग नांहीहे ताकों स्वतंत्रकी कथा कहा ? या भांति मन सब ठौरतें (लौकिक वैदिकतें) स्वतंत्र होय प्रभुशरण नांहीहे ॥ २५ ॥ ५ ॥

मूलं–न कृष्णविरहस्फूर्तिः संयमो न च वाग्दृशोः ।
नौदासीन्यमभक्तेषु नानासक्तिर्गृहादिषु ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्णके विरहकी स्फूर्ति नांही, वाणी ओर मनको

१ प्रतिबंध दोय प्रकारको हे साधारण ओर भगवत्कृत, तामें साधारण प्रतिबंधको त्याग अपनतें होयसके सो करनो.

२ भोग दोय प्रकारको हे लौकिक ओर अलौकिक, तामें लौकिक भोगको त्याग करनो ओर अलौकिक तो मुख्य फलरूप हे.

संयम [निरोध] नांही, अभक्तनमें उदासीनता नांही, गृहादिकनमें अनासक्ति नांही॥ ६॥ टीका–श्रीकृष्णके विरहकी स्फूर्तिहू नांहीहे काहेतें जो श्रीकृष्णके विरहकी स्फूर्ति सर्व वैदिक लौकिक कार्यकी विस्मारक हे सो काहेतें विरहतें दैन्य होय जेसें रासपंचाध्यायीमें प्रभु अंतर्धान भये तब मुख्यभक्तनको विरह भयो तब दैन्यतें कह्यो" हा नाथ !रमण ! प्रेष्ठ ! कासि कासि महाभुज ! । दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्॥" [हा नाथ ! रमण ! प्रिय ! कहांहो ? कहांहो ? हे बडे भुजावारे ! हे सखे ! आपकी दासी में हों तिनकों सन्निधि बताओ अर्थात् दर्शन देओ] तथा सब व्रजभक्त रुदन करने लागे एसो दैन्य भयो तब प्रभु प्रकटे तातें यह पुष्टिमार्गमें केवल विप्रयोगही फलरूप हे, एसे फलरूप विप्रयोगकी स्फूर्तिहू नांहीहे ॥ २६ ॥ ओर वाणीको तथा नेत्रनको संयमहू नांहीहे सो श्रीभागवतमें कहेहें "बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये । जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत ! न चोपगायत्युरुगायगाथाः" [जो नेत्र भगवानके चिह्नकों नांही दर्शन करतहे सो नेत्र मोरकी चंद्रिकावत् (अर्थात् कछु आपकों उपयोगके नांही) ओर जो जिह्वा उरुगाय (बोहोतने गाये एसे भगवान्) की कथाको गान नांही करतहे सो जिह्वा दुष्ट दादुरकी नांई (व्यर्थ) रटिवेवारी हे] यह दोय महा बाधक हे काहेतें जो वाणीको निरोध न होय तो मुखरता दोष होय ओर नेत्रनसों दोष देखनों यामें हृदय दोषरूप होतहे तातें वाणी ओर नेत्रको अवश्य निग्रह चाहियें सो नांहीहे ॥ २७ ॥ ओर भगवानके जो भक्त नांही तिनमें उदासीनता चहियें तथा भगवदीयमें स्नेह चहियें काहेतें जो इनके संगतें यह पुष्टिमार्गको फल सिद्ध होतहे यह निश्चय सिद्धांत हे सो भगवदीयसों स्नेह नांही ओर अभक्तमें उदासीनता नांहीहे तासों यह मार्गमें आवेश केसे होयगो ?

॥ २८ ॥ ओर गृहादिक कार्यमें मनकरि आसक्त होय यह महा बाधक हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी ठोरठोर दूषण कहेहें ओर श्रीभागवतमेंहू सबठोर प्रसिद्ध हे जो गृहादिक लौकिक कार्यमें आसक्त हे तिनको भगवानके धर्म दुर्लभ हे तासों गृहादिकनमें अनासक्ति चहियें (अर्थात् आसक्ति न चहियें) सो नांहीहे में गृहादिकनमें आसक्त हों ॥ २९ ॥ ६ ॥

मूलं–नाहंकारादिराहित्यं न स्वधर्मपरिग्रहः ।
नान्यधर्मनिवृत्तिश्च किं करिष्यति मत्प्रभुः ॥ ७ ॥
मयि दोषनिधाने तु सर्वसद्गुणवर्जिते ।
निःसाधनत्वमेवं हि स्वस्य नित्यं विभावयेत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः–अहंकारादिकनसों रहितपनों नांही, अपने धर्म जो भक्तिमार्ग ताको सब ओरतें ग्रहण नांही ओर अन्यधर्मकी निवृत्ति नांही, उपर कहे सगरे दोषको निधान (भंडार) रूप ओर सर्व सद्गुणकरि वर्जित में हों तापें मेरे प्रभु (स्वामी श्रीकृष्ण) कहा करेंगे ? एसे नित्य अपनी निःसाधनताकी भावना करनी ॥ ७ ॥ ८ ॥ टीका–अहंकार भक्तिमार्गमें बाधक हे सो विवेकधैर्याश्रयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात्." [स्वामीके आधीनताकी भावनासों अहंकार आछी रीतसों छोडनो] स्वतंत्र होय सो अहंकार करे दासको धर्म नांही तासों दास होयके अहंकार करे तो दासधर्म जात रहे तातें दासकों तो अपने स्वामी श्रीकृष्णके अधीनत्वकी भावना कर्त्तव्य हे सो में अहंकारकरि रहित नांही हों ॥ ३० ॥ ओर पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों अपने धर्मको परिग्रह चहियें दृढता चहियें, जेसें छीतस्वामीसों बीरबलने कही जे तुम पदमें श्रीगुसाँईजीको श्रीठाकुरजीको रूपकरिके गावतहो सो देशाधिपति पूछेगो तो कहा

जबाब देहोगे इतनो सुनतही छीतस्वामी कहे जो मेरे भाये तो तुमही म्लेच्छ हो जा आजुपाछें तेरो मुख न देखूंगो एसें कहिकें वरसोंदीहू छोडि चले आये, याभांति अपने स्वधर्मकी रक्षा करे. काम, क्रोध, मद, मत्सर तासों रक्षा करे सो में तो कोई प्रकार स्वधर्मको परिग्रह नांही करतहों॥३१॥ओर यह पुष्टिमार्गतें अन्य धर्म जितने हें सो सगरे पुष्टिमार्गीय वैष्णवको बाधक हे सो में अन्य धर्मतें निवृत्त नांहीहों॥३२॥ऐसें बत्तीस दोष संयुक्त में हों सो हे मेरे स्वामी श्रीकृष्ण! तुम मेरे स्वामी हो सो कहा करोगे? त्याग करोगे के अंगीकार करोगे? सो मोकों नांही जानि परतहें ॥७॥ अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो उपर दोष कहे सो बत्तीसही हे एसें मति जानियो में दोषको निधान हों अपार दोष हे गिनत गिनत जिनको पार न होय इतने दोष हें ओर सुंदर गुणकरि रहित हों एकहू गुण मोमें नांहीहे सो प्रभु कहा करेंगे? याभांति निःसाधनताकी भावना नित्यही कर्त्तव्य हे काहेतें जो निःसाधन होय तापर दया करी तिनके हृदयमें प्रभु पधारि अनुभव करावें ॥८॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तत्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३७॥

शिक्षापत्र ३८.

अष्टत्रिंशत शिक्षापत्रमें व्यापिवैकुंठमें भगवान् पूर्णानंद हें ओर रमावैकुंठमें विभूतिरूप हे, जेसें व्यूहरचनामें स्थित पुरुष कोइकों प्राप्त नांही होयहें तेसें व्यूहमध्यमें स्थित पुरुषोत्तम अभक्तनकों गम्य नांहीहें.

भावात्मक प्रभु तो सदाही रसात्मक लीला करेहैं अन्यकार्य नांहीकरेहैं, ओर भूभारहरणादिक तो अंशको कार्य हे. धर्मिमात्र अपनी मर्यादा[1] रहित व्रजमें हे, ओर सर्वधर्मविशिष्ट मर्यादासहित मथुराजीमें हे. परमानंदरूप बाललीलादि भेदसों उच्छृंखललीला व्रजमें करी सो सर्वलीलामें रसरूपपनों गूढभावसों वर्णित हे एसें मूललीलायुक्त मूलरूप श्रीकृष्णमें निरंतर चित्त स्थापन करनों सोही अपने मार्गकी सेवा हे इनकी सिद्धिके लिये तनुजा, वित्तजा, सेवा करनी, ओर तादृशीय भक्तनके संग निवेदनको अनुसंधान करनों, यह पुष्टिमार्गप्रवर्त्तक श्रीआचार्यजीमें सुदृढ स्नेह राखनों, ओर इनके मार्गमें दृढ विश्वास राखनों तासों सर्व सिद्ध होयगो. उपर कहे जो अपने दोषकी भावनाकरि निःसाधन होयरहे दैन्य करे तो आगें उह वैष्णवकों कहा कर्त्तव्य हे ? सो वर्णन हे, तामें यह व्रजमें भावात्मक रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सदा भक्तनके संग लीला करतहैं एसें श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं तिनको अनुभव होय तब सर्व फल सिद्ध भयो यह निरूपण हे.

मूलं—कृष्णे रसात्मके नित्यं गोपिकामंडलस्थिते।
यमुनापुलिनांतस्थवृंदावनविराजिते ॥ १ ॥
नित्यगानरसाविष्टे विशिष्टेऽक्षरतः क्षरात्।
भावैकगम्ये सर्वत्र प्रसिद्धे पुरुषोत्तमे ॥ २ ॥
यस्यावतारः पुरुष आद्यो ब्रह्मांडविग्रहः।
तस्यांशा एव ये भूमौ मत्स्याद्या इति बुध्यताम्॥३॥

शब्दार्थः—श्रीकृष्ण केसें हैं ! रसात्मक, नित्य गोपिकानके मंडलमें विराजित, श्रीयमुनाजीके पुलिनके समीपमें श्रीवृंदावनमें विराजित

[1] व्रजमें बाललीलामें सब भक्तनको कह्यो करतहैं तहां आप पूर्णपुरुषोत्तम हैं मर्यादा नांही राखी हे सो आगे निरूपण हे.

॥ १ ॥ नित्य गानरसमें आविष्ट, क्षर और अक्षरतें श्रेष्ठ, (भक्तनकों) भावगम्य, सर्वत्र प्रसिद्ध, पुरुषोत्तम स्वरूप हें ॥ २ ॥ जिनको आद्य अवतार ब्रह्मांडस्वरूप पुरुष हे (जिनकों विराट्पुरुष कहतहें) भूमिपें मत्स्यादिक अवतार हें सो उह पुरुषकेही अंश हें एसें " उपर दोय श्लोकसों निरूपण कीये ऐसें" श्रीकृष्णमें बुद्धि राखनी ॥ ३ ॥ टीका– यह श्रीवल्लभाचार्यजीके पुष्टिमार्गमें रसात्मक श्रीकृष्ण सेव्य हें सो कोन प्रकार व्रजमें विराजतहें सो कहतहें जो गोपीजन (व्रजभक्त) के मंडलमें स्थित हें श्रीकृष्ण रसात्मक हें सो याभांति नित्य श्रीस्वामिनीजीके संग रासादि लीला करतहें सो लीला कोनसी ठोर करतहें सो कहतहें श्रीयमुनाजीके पुलिनके मध्य श्रीवृंदावनमें बिराजतहें. " कृष्णो रसात्मको नित्यं गोपिकामंडले स्थितः । यमुनापुलिनांतस्थवृंदावनविराजितः ॥ १ ॥ नित्यगानरसाविष्टो विशिष्टोऽक्षरतः क्षरात् । भावैकगम्यैः सर्वत्र प्रसिद्धः पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥ " ऐसें दोय श्लोकमें पाठभेद हे ताके अनुसार अर्थः–श्रीकृष्ण रसात्मक हें, नित्य गोपिकानके मंडलमें बिराजित हें, श्रीयमुनाजीके पुलिन (तट) के समीप श्रीवृंदावनमें शोभित हें ॥ १ ॥ नित्यगानरसकरि आविष्ट हें, क्षर तथा अक्षरतें श्रेष्ठ हें, (भक्तनके) भावकरिकेंही गम्य हें और सर्वत्र प्रसिद्ध श्रीपुरुषोत्तम हें ! जेसें श्रीकृष्ण रसात्मक हें तेसें श्रीयमुनाजी रसात्मक हें तेसेंही श्रीयमुनाजीके पुलिन रसात्मक हें, पुलिनके मध्य श्रीवृंदावनहू रसात्मक हें, तहां भक्तनसहित श्रीकृष्ण विराजेहें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीयमुनाष्टकमें कहतहें ' तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पांबुना सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् " [तटमें रहे एसे नवीन वनके प्रकट सुगंधयुक्त पुष्पके मकरंदसूं सुरं और असुरेंनें पूजित एसें

१ शुद्धभाववारे सो सुर. २ मानादिक करिवेवारे सो असुर.

स्मरपिता (श्रीकृष्ण) के शोभाकों धारण करिवेवारी (श्रीयमुनाजीकों) नमन करुंहूं] या भांति श्रीयमुनाजीके तटमध्य श्रीवृंदावनमें प्रभु विराजिकें दोय प्रकारकी लीला करतहें, प्रथम स्थलक्रीडा करे तामें श्रम भयेतें जलक्रीडा करे याभांति सदा सर्वदा विराजतहे यह स्मरण कर्त्तव्य हे " स्मर्त्तव्यो गोपिकावृंदे क्रीडन् वृंदावने स्थितः " श्रीवृंदावनमें स्थित, श्रीगोपीजनके वृंदमें क्रीडा करिवेवारे श्रीकृष्ण स्मरण करिवेयोग्य हें ॥ १ ॥ श्रीवृंदावनमें श्रीयमुनाजीके तीर नित्य गान रासादिलीला व्रजभक्तनके संग अत्यंत रसाविष्ट होय करतहें. यह नित्यलीलाके दोय प्रकार हे एक अवतारलीला ओर एक मूललीला तामें अवतारलीलामें प्रमाण, प्रमेय, साधन, फल यह क्रम हे सो श्रीभागवतदशमस्कंधमें निरूपण कीये हें जो प्रथम श्रीठाकुरजीके प्राकट्य पेहिलें शास्त्रमें कहेहें तेसी तपस्या प्रमाणरीतिसों करी तब प्रभु प्रकट होय प्रमेयबल जताय वरदान दिये सो सब बात श्रीवसुदेवजी देवकीजीके इहां व्यूहरूप प्रकट होय जताये सो श्रीनंदरायजी श्रीयशोदाजीके इहां विप्रयोगात्मक भावरूप प्रकटे तहां जन्ममहोत्सवतें प्रमाणलीलाके क्रमसों मांखनचोरी, रींगणलीला, इत्यादिक अनेक लीला करी सुख दियें तहां प्रमेयबल प्रकट करी अनेकलीला वेणुगीत-पर्यंत करी पाछें प्रभु मिलवेकी कामनासों कुमारिकानें कात्यायनीअर्चन कीयो तहांतें लेकें श्रीगोवर्धनोत्सव तथा व्यापिवेकुंठ अक्षरधामके दर्शन कराये तहांताँई साधन जताये पाछें रासपंचाध्यायीतें युगल-गीतपर्यंत फल जताये यह अवतारदशामें यह क्रम कहे ओर मूललीलामें सदा नित्यलीला हे सो क्षर जो देहादि तत्त्व ओर अक्षर जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म इन दोउनतें श्रीपुरुषोत्तम श्रेष्ठ हें सो

१ स्मर जो स्मरण सो आकाशतें बडो हे एसे सामवेदमें कह्यो हे सो स्मरण प्रभुकी इच्छाके अनुसार होय तासों स्मरणके पिता प्रभु कहे.

गीताजीमें कहेहें "यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः" (जासों में क्षरतें अतीत हों ओर अक्षरतेंहू उत्तम हों तासों लोकमें तथा वेदमें पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हों) एसें श्रीकृष्ण अर्जुन प्रति कहेहें जो भावकरि जाने जातहें साधनबलतें जानें नांही जात ॥ २ ॥ एसें रसात्मक पुरुषोत्तमको एक अवतार विराट् स्वरूप हे जाकों श्रीभागवत गीताजीमें पुरुष कहतहें, यह ब्रह्मांड इनको विग्रह (श्रीअंग) हे, अपार मस्तक, अपार भुजा, अपार चरण तथा आकाश मस्तक, पाताल चरण, वृक्षादिक रोमावलि, यह समस्त ब्रह्मांडको मूल प्रभुको आद्य अवतार हे जो अर्जुनकों सब दिखाये तब युद्ध कीयो. एसे विराट्स्वरूपके अंशावतार मत्स्यकूर्मादि हें सो जितनों कार्य होय तितनों करिकें माहात्म्य जतावे तितनो कार्यकरणार्थ यह अवतार हे. जेसें समुद्रमथनसमय मंदराचल डूबन लाग्यो तब कच्छप-रूप होयके धारण कीयो, ओर श्रीवामनजी १, श्रीनृसिंहजी २, श्रीराम-चंद्रजी ३, ओर चतुर्व्यूहसंयुक्त वसुदेवदेवकीजीके इहां प्रकटे ४, यह चारो अवतार भक्तोद्धारक हे तातें इनकी चारों जयंतीकों भक्तजन मानत हे ओर अवतारनकों नांही। धर्मशास्त्रमर्यादामें हू यह चारों जयंतीकी आवश्यकता हे या प्रकार पृथ्वीपर अनेक अवतार ले लीला करी प्रभु भक्तनके अर्थ अपनो माहात्म्य प्रकट करतहें ॥ ३ ॥

मूलं–अक्षरं धाम वैकुंठं व्यापिवैकुंठसंज्ञकम् ।
ब्रह्मानंदस्तत्र लक्ष्मीः पूर्णानंदो हरिः स्वयम् ॥४॥
रमावैकुंठवासी तु विभूतिर्यस्य वैष्णवी ।
रमा तु पालिका तत्र शक्तिरित्यवगम्यताम् ॥५॥

शब्दार्थः–व्यापिवैकुंठ हे नाम जिनको एसो अक्षरधाम वैकुंठ हे तहां ब्रह्मानंद हे सो लक्ष्मी हे ओर पूर्णानंद आप हरि हें ॥ ४ ॥ ओर रमा-[1]

[1] जो रमा (लक्ष्मी) की प्रार्थनासों वैकुंठलोक कीयो सो रमावैकुंठ.

वैंकुंठवासी विष्णु हे सो (पूर्णानंद हरिकी) विभूति हे जिनकी वैष्णवी रमा[लक्ष्मी]शक्ति हे सो वैकुंठमें पालन करिवेवारी हे एसें जाननों॥५॥

टीका—अक्षरधाम हे सो व्यापिवैकुंठ हे भीतर प्रभु विराजतहें सो लोका-लोकपर्वततें परे जहां अर्जुनकों लेजाय दर्शन कराये सो सबनको मूल हे इनकी व्यापिवैकुंठ संज्ञा (नाम) हे सो व्यापिवैकुंठ सबमें व्यापक हे ताकी भीतर प्रभु विराजतहे, जेसें भूमिपर पुष्टिमार्गकी रीतिसों प्रभु बिराजें लीलाको अनुभव होय सो व्यापिवैकुंठ सबमें हे तोहू न्यारो अनुभव होतहे तामें प्रभुके दर्शन-[भीतर] होतहे तेसेंही अक्षर सबमें व्यापक हे ओर सबतें न्यारो हे ताकी भीतर(भक्तनकों) प्रभुको अनुभव होतहे. जेसें ॐकार सबतें न्यारो हे ओर सब वेदको मूल हे तथा सबमें रह्यो हे तेसें व्यापिवैकुंठ हे. ताहीतें ज्ञानीकी दृष्टि व्यापि वैकुंठताँई पोहोंचतहे सो सबठोर व्यापक मानतहें तातें इनकों दासभाव छुटिजातहे ओर भक्तनकूं सबठोर व्यापक हे तिनको तथा न्यारो हे तिनकोहू अनुभव हे तासूं व्यापककों जानिके न्यारो अनुभव होय तहां मानतहें अपनकों दास जानतहें. एसें अक्षरधाम वैकुंठमें ब्रह्मानंदरूप लक्ष्मी हे तातें अक्षरब्रह्मके उपासनावारे ब्रह्मानंदरूप लक्ष्मी-जीमें मुक्त होतहें इनकों पूर्णानंद हरिको पृथक् अनुभव नांही होतहे इनकों ब्रह्मानंदही मोक्ष हे ॥ ४ ॥ ओर एक रमावैकुंठ हे जहां सनका-दिकनें जयविजयकों शाप दियो यह वैकुंठ अक्षरधामकी विभूति हे तहांके वासी विष्णु हे सो पूर्णानंदहरिकी विभूति हे तहांकी लक्ष्मी पालिका शक्ति हे पुरुषोत्तमकी द्वादश शक्ति हे तामें यह पालिका शक्ति हे याप्रकार जहां जेसें प्रभु बिराजतहें तहां तेसेंही लक्ष्मी विरा-जतहे श्रीकृष्णावतार सबको मूलभूत हे सो प्रकार आगें कहतहें।॥५॥

१ श्री, पुष्टि, गिर, कांति, तुष्टि, कीर्ति, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, माया, यह द्वादश शक्ति जाननी.

मूलं–मूलभूतस्यावतारे मूर्तिर्व्यूहोऽभिधीयते ।
प्रद्युम्नो वासुदेवश्चानिरुद्धोऽनंत एव च ॥ ६ ॥
व्यूहं विरच्य यस्तत्र स्थाप्यते प्राप्यते न सः ।
तथैतैरावृतः कृष्णो नावतारेऽवगम्यते ॥ ७ ॥

शब्दार्थः–मूलभूत (श्रीकृष्ण) के अवतारमें अथवा अवतारस्वरूप मूर्तिव्यूह कहियतहे प्रद्युम्न, वासुदेव, अनिरुद्ध, ओर संकर्षण ॥ ६ ॥ यह व्यूहकों रचिकें जो इनमें स्थापन कर्यो जातहे सो नांही प्राप्तहोयहैं तेसें यह व्यूहकरिकें आवृत्त श्रीकृष्ण अवतारमें नांही गम्य होतहैं ॥ ७ ॥ टीका–अब वसुदेवदेवकीजीके इहां प्रकट हैं सो कहतहें सर्व अवतारनको मूलभूत यह हे सो मूर्त्ति तो एक हे ओर चतुर्व्यूह प्रकट भये हैं तासों चतुर्भुज प्रकटे हैं सो व्यूहके नाम कहतहें–प्रद्युम्न, वासुदेव, अनिरुद्ध, ओर संकर्षण, तामें श्लोकमें चकार हे तासों यह जाननों जो श्वेतकेश ओर श्यामकेश इनही सहित षट्प्रकारको स्वरूप प्रकट भये सो दुष्टनके नाशकरणार्थ, मोक्षदानार्थ, वंशवृद्धचर्थ, ओर भक्तनकी रक्षाकरणार्थ इत्यादिक अनेक कारण हे. इन चारों व्यूहनके भीतर पुरुषोत्तम हें तिनकों जन्म (अवतार) नांही सो श्रीभागवतमें कहेहें "जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् । स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्" [जिनके निवासरूप तथा जन हे निवासको स्थानक जिनको, देवकीजिके इहां हे जन्मको वाद (नामकथन) मात्र जिनको, यदुकुलके सब बडे यादव हैं सभा जिनकी, अपने श्रीहस्तन-

१ व्यूहके भीतर आप विराजतहें. २ संकर्षणरूप. ३ वासुदेवरूप. ४ प्रद्युम्नरूप. ५ अनिरुद्धरूप. यह चारों व्यूहके चार कार्य मुख्य ओर अनेक हे.

सों अधर्मको नाश करिवेवारे, स्थावर जंगमके दुःखको मिटायवेवारे, व्रज तथा पुरकी स्त्रीयनकों हास्ययुक्त मुखारविंदतें कामदेवकों बढायवेवारे श्रीकृष्ण सबतें अधिक विराजे हें] इत्यादिक वचनसों देवकीजीके उदरतें जन्म कथनमात्र हे जेसें पूर्वदिशातें चंद्र सूर्य प्रकटे या प्रकार जांननों ॥ ६ ॥ या प्रकार चतुर्व्यूहकों रचिकें आपु श्रीकृष्ण भीतर स्थापित विराजत हें. तहां कोई कहे जो एसें श्रीकृष्णसहित चतुर्व्यूह हें तब चतुर्व्यूहको पूजन करियें इतनें श्रीकृष्णको भयो या प्रकार कोई संदेह करें तहां कहतहें जो यद्यपि व्यूहकरिकें आवृत्त श्रीकृष्ण हें तोहू इन चार्यो व्यूह अवतारनकी उपासना पूजनतें श्रीकृष्ण अवगाहे न जाय काहेतें जो पूर्णपुरुषोत्तम सबेमें हे ओर सबतें न्यारें हें तातें व्यूह हे सो पुरुषोत्तमके आज्ञाकारी हें जितनी प्रभुकी आज्ञा हे तितनों कार्य करिकें फेरि अपने धाममें पधारेंगे ओर श्रीकृष्ण तो नित्य लीलाविनोद करतहें तातें व्यूहकी उपासनाकरि स्वर्गलोक तथा सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य यह चार प्रकारकी मुक्ति मिले मुख्यफल भक्तिरसकी प्राप्ति नांही. तातें सर्वोपरि श्रीकृष्णही हे तिनहीकी न्यारी भक्ति करे मिलिभक्तिमें फलकों न्यूनता प्राप्त होतहे या प्रकार जीव सत्संग विना श्रीकृष्णके माहात्म्यकों जानत नांही सो कहतहे ॥ ७ ॥

मूलं–अत एव जना भ्रांताः प्राकृतं तं वदंति हि ।
अंशकार्यं मूलरूपे कल्पयंत्यज्ञतां गताः ॥ ८ ॥

१ श्रीवृंदावनके वृक्ष जो स्थावर हते तिनकोहू वेणुद्वारा सुधासंबंध भयो तब जडत्वको दुःख मिट्यो. २ ग्राम्य ओर नगरकी स्त्रीको समान अनुभव न होय परंतु इहां तो ग्राम्यको विशेष अनुभव भयो. ३ पूर्वदिशाते चंद्र तथा सूर्य प्रकटतहे ताम दिशाको कछु संबंध नांही, मार्ग हे तेसेही श्रीदेवकीजीतें प्रभुको प्राकट्य हे.

शब्दार्थः–तासोंही मनुष्य भ्रांत होयगये हें सो श्रीकृष्णकों प्राकृत कहतहें अज्ञताकों प्राप्त भये एसे जीव अंशको कार्य फलरूपमें कल्पतहें ॥ ८ ॥ टीका–अंश जो चतुर्व्यूह हे सो अनेक लीला जगतमें करतहें मथुरातें भाजिकें फेरि कहूं सोच करतहें काहूकी टहल करतहें मिलिकें अनेक प्रकारके विचार करतहें यह लीला देखिकें कितनेक जीव जो अज्ञानी हे सो मूढ मोहके वसतें प्राकृतकी नाँई श्रीकृष्णकों जानत हे अवतारदशामें कोईएक भगवदीय प्रभुकों जानत हते ओर कोई न जानते सो अब कलिके जीवकी कहाहें ? काहेतें जो अंशावतारके लीलाको कार्य देखी सब कोई यह कहतो जो श्रीकृष्णनें यह कार्य कीयो एसें अज्ञानसों मिथ्या कल्पना करी मूलरूप श्रीकृष्णको नाम कहतहें ताहीतें सबनको नाश भयो एक उद्धवजी भक्त हते सो शापतें छुटे तातें श्रीकृष्णकी भक्ति होनी अति दुर्लभ हे श्रीकृष्णकों केवल आनंदमय रसात्मकलीलाकर्ता जाने ओरठोर जेसो कार्य तेसी व्यूहकी लीला जाने यह भाव दृढ रहे तब श्रीकृष्णमें भाव उपजे सो श्रीकृष्ण केसे हें सो आगें वर्णन करतहें ॥ ८ ॥

मूलं–कृष्णस्तु केवलं लीलां करोति रसरूपिणीम् ।
भूभारहरणं चक्रे कलाभ्यामेवं सर्वथा ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्ण तो केवल रसरूप लीला ही करतहें ओर भूभारहरण सर्वथा कलाकरिकेंही कीयो हे ॥ ९ ॥ टीका–श्रीकृष्ण तो सदा सर्वदा व्रजभक्तनके संग रसरूप लीला करतहें सो कहिवेमें नांहीं आवतहे जो निजजन श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके अंतरंग भक्त हें तिनकों मनमें अनुभव करिवेयोग्य हें तातें (मानादि विहारादि)

१ 'कलाभ्यां' यह द्विवचनतें श्रीवसुदेवजीके यहां रामकृष्ण दोय केवल स्वरूप प्रकट भये हें सो जानने.

रसरूप लीला करेंहें याभांति श्रीकृष्ण तो सदा सर्वदा श्रीवृंदावनमें विराजतहें ओर पृथ्वीपर दैत्य, राक्षसके पाप होतहें सो भूभारहरणार्थ श्रीकृष्ण कलावतार धरिकें दुष्टनकों मारि देवतानकी रक्षा करतहें याभांति व्रजमें नित्य एकरस लीला हे कलाकरि सृष्टिहूको कार्य करतहें ॥ ९ ॥

मूलं–परमानंददानं तु स्वरूपेणोति निश्चयः ।
व्रजस्थ एव सततं पुरस्थो वा कृपापरः ॥ १० ॥
तत्रापि रूपभेदेन क्रीडति स्म तथा रसः ।
धर्मिमात्रं स्वमर्यादारहितं केवलं व्रजे ॥ ११ ॥

शब्दार्थः–व्रजमें विराजतहे सो निरंतर परमानंदको दान करतहे ओर मथुराजीमें विराजतहें सो कृपायुक्त होय तब फलस्वरूपकरिकें परमानंदको दान करतहें यह निश्चय हे ॥ १० ॥ तामेंहु रसरूप प्रभु रूपभेदकरिकें क्रीडा करतहें अपनी मर्यादारहित केवल धर्मिमात्ररूप व्रजमें हे ॥ ११ ॥ टीका–परमानंदको दान तो सदा व्रजमें लीलाकर्त्ता श्रीकृष्णहीतें होय ओर मधुपुरी तथा द्वारिकामें स्थित स्वरूपनकी कृपा बहोत होय तब कहूं परमानंदको दान होय, नांही तो उन स्वरूपतें मोक्षको फल होय काहेतें जो व्रजमें स्थित हें सो निरंतर आनंदरूप लीला करतहें ओर पुरीमें स्थित हें सो व्यूहसहित हें तातें जो जीव मथुरास्थ श्रीकृष्णको आश्रय करतहें तिनकों सदा आनंद नांहीहे उन पुरीके स्वरूपद्वारा तेसो फल हे यह स्वरूप मर्यादासहित हे तासों मर्यादामार्गीय रसदान करतहें सो श्रीभगवान् गीताजीमें अर्जुन प्रति कहेहें "ये यथा मां प्रपद्यंते ताँस्तथैव भजाम्यहम्" (जीव जा भावसों जा स्वरूपको आश्रय करे तिनकों तेसो फल सिद्ध होय प्रभुहू ताही भावसों ता जीवको भजतहें) तेसोही फल प्राप्त होतहें ॥ १० ॥ याभांति श्रीकृष्ण अनेक स्वरूप धरि जगतमें ठोरठोर क्रीडा करतहें जहां जेसो

स्थल हे तहां तेसोही स्वरूप हे तहां तेसोही रस हे व्रजमें केवल मर्यादारहित धर्मिरूप लोकवेदातीत रसात्मक स्वरूप सदा विहार करतहें ॥ ११ ॥

मूलं-सर्वधर्मविशिष्टं तु समर्यादं पुरे मतम्।
उच्छ्रंखला तु या लीला केवलेन व्रजे कृता ॥ १२ ॥
परमानंदरूपा सा बाललीलादिभेदतः ।
सर्वत्र रसलीलात्वं गूढभावेन वर्णितम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थः-सर्वधर्मयुक्त मर्यादासहित स्वरूप तो मथुपुरी तथा श्रीद्वारकामें मान्यो हे ओर जो उच्छृंखल (मर्यादारहित) लीला हे सो केवल (रसात्मक) स्वरूप करिकें व्रजमें करी हे ॥ १२ ॥ सो बाललीलादिकके भेदसों परम आनंदरूप हे सर्वत्र गूढभाव करिकें रसलीलापनों वर्णन कीयो हे ॥ १३ ॥ टीका-सर्वधर्मसहित मर्यादायुक्त स्वरूप श्रीमथुराजी तथा द्वारिकामें बिराजतहें ओर उच्छलितरसरूप पुष्टिपुरुषोत्तम व्रजमें [उच्छृंखल लीलायुक्त] हें तातें मथुपुरी द्वारकाके स्वरूपमें तथा व्रजके स्वरूपमें भेद हे तेसो फलमेंहू भेद हे तासों व्रजस्थ स्वरूपकी भावना कर्तव्य हे ॥ १२ ॥ व्रजमें श्रीयशोदोत्संग-लालित श्रीकृष्ण परमानंदरूप हे, बाललीला, पोगंडलीला, किशोर-लीला, यह सगरी लीला सब ठोर रसरूपही हे सो श्रीगुसाँईजी गूढभावसों ग्रंथमें वर्णन कीये हें ता भावसों सगरी लीला जाननी. सो यह गूढभाव वर्णनमें न आवे अंतरंग भक्तनको मनमें अनुभव करिवेयोग्य हे एसो रसात्मक स्वरूप व्रजमें बिराजतहे ॥ १३ ॥

मूलं-कामरूपतया कृष्णे वयो न हि नियामकम्।
एतादृशे मूलरूपे मूललीलासमन्विते ॥ १४ ॥

चित्तं निरंतरं स्थाप्यं सैव सेवा स्वमार्गगा ।
तत्सिद्ध्यर्थं शरीरेण वित्तेनापि विधीयताम् ॥१५॥

शब्दार्थः—श्रीकृष्णमें कामरूपपनेतें अवस्था नियामक नांहीहे. एसे मूललीलायुक्त मूलरूपमें चित्त निरंतर स्थापन करनों सोही अपनें मार्गकी सेवा हे ताकी सिद्धिके अर्थ शरीरतें ओर धनतेंहु (सेवा) करनी ॥ १४ ॥ १५ ॥ टीका—व्रजमें श्रीकृष्ण कोटिकामरूप व्रजभक्तनकों सुखदानार्थ प्रकटे हें तासों "साक्षान्मन्मथमन्मथः" एसे रासपंचाध्यायीमें कामदेवके कामदेव कहेहें तहां अवस्थाको नियम नांहीहे जन्मतेंही आनंद रसदान कीये सो श्रीभागवतमें कहेहें "जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् । स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्" (मनुष्यनके निवासरूप, श्रीदेवकीजीतें जन्मको हे वादमात्र जिनको, (अर्थात् श्रीदेवकीजीतें जन्म लियो हे यह कथनमात्र हे) उत्तम यादव जिनके सभारूप हे, अपने हस्तनसों अधर्मको मिटायवेवारे, स्थावर जंगमके दुःखको निवृत्त करिवेवारे, हास्ययुक्त मुखारविंदसो व्रजके तथा मथुपुरी द्वारिकाके स्त्रीयनकों कामदेवकी वृद्धि करिवेवारे प्रभु सर्वतें अधिकतासों विराजतहें) याभांति व्रजकी वनिताकों कामकी वृद्धि करतहें ओर श्रीगुसाँईजी पलनामें कहेहें "मानिनीमानहरणं" श्रीयशोदाजीके आगें पलनामें झुलतहें ओर श्रीस्वामिनीको मानहू मनावतहें [मान हरतहें] याभांति बाललीलाहीमें एककालावच्छिन्न समस्तलीला करतहें यह विरुद्धधर्माश्रय स्वरूप व्रजमें हें एसें मूलरूप श्रीकृष्ण मूललीलासहित व्रजमें हें जेसें मूलरूप श्रीकृष्ण सदा एकरस व्रजमें लीला करतहें तेसेंही मूलरूप लीलाहू सदा एकरस हे यह कहिके यह जताये जो जेसें श्रीकृष्ण नित्य हें तेसें श्रीकृष्णकी लीलाहू

नित्य हे ॥ १४ ॥ उपर कहे एसे श्रीकृष्ण सर्वके मूलरूप रसात्मक हैं इनको निरंतर अपने चित्तमें स्थापन करनें सोही रसात्मक सेवा अपने मार्गमें हे तातें चित्तमें निरंतर एसो प्रभुको लीलासहित अनुभव करे सो मानसी सेवा जाननी. ताकी सिद्धिके अर्थ शरीरसों तथा वित्तसों सेवा नित्य नियमपूर्वक कर्त्तव्य हे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी सिद्धांतमुक्तावलिमें कहेहैं " कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता । चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा " (श्रीकृष्णकी सेवा सदा करनी सो मानसी उत्तम मानी हे चित्त प्रभुमें लीन करनो सो सेवा जाननी ताकी सिद्धिके अर्थ तनुजा वित्तजा करनी) यह वचनसों श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजा सेवा नित्य नियमपूर्वक करे तब मानसी सिद्ध होय यह पुष्टिमार्गकी रीति हे ॥ १५ ॥

मूलं–निवेदनानुसंधानं विधेयं तादृशैः सह ।
सत्संग एव कर्त्तव्यो विश्वासः स्थाप्यतां दृढः॥१६॥

शब्दार्थः–निवेदनको अनुसंधान तादृशीय भगवदीयनके संग करनो, सत्संगही करनो, दृढ विश्वास स्थापन करनो ॥१६॥ टीका–एसें श्रीकृष्णमें भाव प्रकट होय ताके अर्थ पुष्टिमार्गीय तादृशीय वैष्णवसों मिलिके निवेदनको अनुसंधान करे तातें सत्संगह नित्यनियमसों करे ओर भगवदीयनके वचनको अपने मनमें चातकपक्षिवत् दृढ विश्वास राखे तब एसे (श्रीकृष्णके स्वरूपानंदको) अनुभव होय।१६।

मूलं–कृष्णः कृपापराधीनो दीनानामनुपेक्षकः ।
स्वकीयानामनन्यभावात्करिष्यत्यवनं स्वतः ॥१७॥

शब्दार्थः–श्रीकृष्ण कृपातें पराधीन हैं सो दीनजनकी उपेक्षा नांही करतहें सो अपने जननके अनन्यभावतें स्वतः (आपुतेंही) रक्षा करेंगे ॥१७॥ टीका–श्रीकृष्ण केसे हें जो कृपाकरिकें अपने दासके आधी-

न हें सो भगवदीय गाये हें " भक्तविरहकातर करुणामय डोलत पाछें लागे " एसे श्रीकृष्ण प्रसिद्ध हें, अर्जुनको रथ हांक्यो, पांडवनके आज्ञाकारी भये, ओर व्रजभक्तनसों तो एकक्षणहू जूदे नांही रहत हें. याभांति श्रीकृष्ण कृपाकरिकें अपनें भक्तनके आधीन हें, तातें यह पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजीद्वारा शरण होय निःसाधन होय दैन्यकरि रहे एसे भक्तनकी उपेक्षा कबहू श्रीकृष्ण नांही करत हें. ओर जेसें संसारासक्त जीव लौकिक वैदिकमें महादुःख पावतहें तिनकी उपेक्षा प्रभु कीयेहें (काहेतें जो संसारमें सुख ओर दुःख दोय फल हे सो पुण्यको फल सुख ओर पापको फल दुःख हे सो लोकमें तिनहीकी अपेक्षा राखतहें तातें इनकों लौकिक फल देतहें) तेसें अपने स्वकीय (निजभक्तन) को अन्यथाभाव कोई कालमें कबहू श्रीकृष्ण नांही करतहें सदा भावकी रक्षाही करत आये हें, रक्षा करतहें ओर रक्षा करेंगे. ओरद्वारा कबहू रक्षा न करावेंगे स्वतः (आपु) भक्तनकी रक्षा करतहें एसे कृपालु श्रीकृष्ण हें ॥ १७ ॥

मूलं–धर्ममार्गप्रवृत्तिस्तु चित्तशुद्ध्या यथा हरौ ।
मतिः स्यान्नैव पाखंडे तदर्थं सर्वथेष्यते ॥ १८ ॥

शब्दार्थः–धर्ममार्गकी प्रवृत्ति तो चित्तशुद्धितें जेसें हरिमें मति होय पाखंडमें (मति) नांही होय ताके अर्थ सर्वथा हे ॥ १८ ॥
टीका–धर्ममार्गमें प्रवृत्त भयेतें चित्तशुद्धि होतहे तातें हरिमें शुद्ध मति [भाव] होतहे पाखंडमें मति न होय ताके अर्थ सर्वथा धर्ममार्गमें प्रवृत्ति हे ॥ १८ ॥

मूलं–मार्गप्रवर्त्तकाचार्यचरणेषु निरंतरम् ।
विश्वासः सुदृढः कार्यस्ततः सर्वं फलिष्यति ।
विशेषो गोवर्द्धनदासपत्राज्ज्ञेयःकिमधिकम् ॥१९॥

शब्दार्थः—यह पुष्टिमार्गके प्रवर्त्तक श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें अतिदृढ विश्वास करनों तातें सब फलरूप होयंगे विशेष गोवर्द्धनदासके पत्रतें जानियो वढती कहा लिखें. ॥ १९ ॥ टीका—पुष्टिमार्गके प्रवर्त्तक श्रीवल्लभाचार्यजी हैं तिनके दोयचरणकमलको दृढ आश्रय करनों जा वैष्णवको मनमें दृढ आश्रय होयगो तिनको सगरो फल निश्चय सिद्ध होयगो यामें संदेह नांहीहे तातें सर्वोपरि सिद्धांत यह हे जो श्रीआचार्यजीके चरणकमलको दृढ विश्वास करनों. विशेष समाचार गोवर्द्धनदासके पत्रतें जानियो ॥ १९ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमष्टत्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्॥ ३८ ॥

शिक्षापत्र ३९.

एकोनचत्वारिंशत् शिक्षापत्रमें, सत्संगकरि निरंतर प्रभुमें चित्त स्थापन करनों, प्रथम जो नाम निवेदनके मंत्र सुने हैं तिनके अर्थको अनुसंधान करनों बुद्धि निश्चल करिकें भगवत्सेवा करनी, वैष्णवनको समाधान हे सोही भगवत्सेवा हे प्रभुमें प्रपत्ति बढे सोही करनों, प्रभु दुराराध्य हें सो सेवातेंही वश्य होयहें तासों भगवत्सेवा करिवेवारे जन भाग्यवान् हें यह निरूपण हें। ऊपर पुष्टिमार्गमें सेव्य श्रीकृष्ण रसात्मक स्वरूपको वर्णन कीयो तिनकी सेवा करनी, भगवदीयको संग करनों, सो प्रकार आगें कहतहें—

मूलं—सत्संगेन प्रभौ चित्तं स्थापनीयं निरंतरम् ।
पूर्वं श्रुतानामर्थानामनुसंधानमादरात् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—सत्संग करिकें निरंतर प्रभुमें चित्त स्थापन करनों ओर पहिलें सुने जो नाम निवेदनमंत्र तिनके अर्थको अनुसंधान आदरसों करनो ॥ १ ॥ टीका—अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो सत्संगकरि प्रभु जो श्रीकृष्ण तिनमें चित्त निरंतर स्थापन करें. सो नवरत्न ग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः" याभांति निवेदनको स्मरण तादृशीय भगवदीयके संग मिलिकें करे तब चित्तमें भगवान् निरंतर निश्चय स्थित होय सो एकादशस्कंधमें श्रीकृष्ण आप श्रीमुखसों उद्धवजीकों कहेहें "न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ! । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्" यह वचनसों भगवान् कहतहें जो में इतने साधनतें नांही बस होतहों, न योग तथा सांख्य, न धर्म, न स्वाध्याय, तप, त्याग, न इष्टापूर्त्त, न दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, छंद, तीर्थ, नियम, यम, इत्यादि अनेक साधन मोकों निरोध नांही करतहें जेसें सत्संग मोकों निरोध करतहे तातें सत्संग बडो पदार्थ हे तासों पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों सत्संग निरंतर कर्त्तव्य हे. ओर पूर्व जो श्रीवल्लभकुलद्वारा अष्टाक्षर नाममंत्र सुन्यो हे ताकों अर्थसहित अनुसंधान आदरपूर्वक करे जो श्रीकृष्णको नाम हे सो सगरे वेदशास्त्रको सार परम रसात्मक हे एसे श्रीकृष्णके में शरण हों यह नाम श्रीआचार्यजीद्वारा प्राप्त भयो हे. याभांति भावना करि नाममें परम आदर राखे अष्टप्रहर लियो करे ॥ १ ॥

मूलं-भगवत्सेवनं सम्यग्विधेयमिति निश्चयः ।
वैष्णवादिसमाधानं कृष्णसेवैव सर्वथा ॥ २ ॥

१ जो याके पेहेलें शिक्षापत्र पठाये हें इनके अर्थको अनुसंधान एसोहू अर्थ होयहे.

यतः प्रभौ प्रपत्तिर्हि वर्द्धते कार्यकारणात्।
सेवयैव हि संतुष्टः सुखसेव्यः प्रभुर्भवेत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–भगवानकी सेवा आछीभांतिसों करनी यह निश्चय राखनों वैष्णवादिकनको समाधान हे सो सर्वथा श्रीकृष्णकी सेवाही हे ॥ २ ॥ जासों (एसें श्रीकृष्णकी सेवा हे सो कारण हे ओर प्रपत्तिकी वृद्धि हे सो कार्य हे याभांति) कार्यकारणभावसों निश्चय प्रभुमें प्रपत्ति बढेहे तासों सेवासंतुष्ट प्रभु सुखसेव्य होय ॥ ३ ॥ टीका–सम्यक् प्रकार अत्यंत प्रीतिपूर्वक तथा जा प्रकार पुष्टिमार्गकी रीति हे ता प्रकार भगवत्सेवा करे यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनको निश्चय सेवाही स्वधर्म हे सो नवमस्कंधमें भगवान् कहेहें " मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्। नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम् " मेरी सेवातें साक्षात्कार भयो एसो भक्त सालोक्यादिक चार प्रकारकी मुक्तिकों नांही इच्छतहें काहेतें जो सेवातें पूर्ण हे सो कालमें डूबे एसे स्वर्गादिकके राज्यादिककी इच्छा केसें करे ?) ओर तृतीयस्कंधमें कहेहें " अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी। लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यः कं वा दयालुं शरणं व्रजेम " (दुष्ट पूतनानें जिनकों मारिवेके लिये कालकूट [स्तनमें] प्यायो सोहू धात्रीकी योग्य गतिकों प्राप्त भई इन प्रभुसों अन्य एसो कोन दयालु हे जिनके शरण जईयें ?) ओर अष्टमस्कंधमें ब्रह्माजी कहतहें " यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्। एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि [जेसें

---

१ व्रजभक्तनकी नांई शरणागति बढे सो प्रपत्ति बढी जाननी. २ प्रभुकी सेवा ओर वैष्णवनके समाधानतें शरणागतिकी वृद्धि होय तासों कार्यकारणभाव लिख्यो हे. ३ जो स्तनपान करायवेवारी होय ताको धात्री कहेहे. ४ अपनेकों दुःखदेयवेकूं आवे वाकूं सुखदे एसो कोन दयालु हे ?" " अर्थात् प्रभु एसे दयालु हें ओर कोउ नांही."

वृक्षके मूलमें जलको सेचन हे सो छोटिवडी सब डारनकों तृप्तिकारक हे तेसें विष्णुकों आराधन हे सो सब देवनकों तथा आत्माकोहू संतोषकारक हे] इत्यादि वचनको भाव विचारि भगवत्सेवा सर्वोपरि मुख्यधर्म जानि प्रीतिपूर्वक नित्य नियमसों करे ओर महाप्रसाद तथा तथा प्रसादी वस्त्रसों बने तितनो वैष्णवको समाधान करे जेसें प्रीतिपूर्वक भगवत्सेवा करे तेसेंही प्रीतिपूर्वक महाप्रसादी वस्तुनसों तादृशीय वैष्णवनको समाधान करे या प्रकार पुष्टिमार्गमें वैष्णव रहे तो प्रभु कृपा करे ॥ २ ॥ प्रभुकी प्राप्तिके अर्थ दीनतासों प्रार्थना करे तो प्रभुकों दया आवे तब कृपा करे, भक्तिकी वृद्धि होय, सो श्री गुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "यद्दैन्यं त्वत्कृपाहेतुर्न तदस्ति ममाण्वपि । तां कृपां कुरु राधेश ! यया तद्दैन्यमाप्नुयाम् ॥ प्रियसंगमराहित्याद्व्यर्थाः सर्वे मनोरथाः । निरपत्रपतासिद्ध्यै जीवामि सखि सांप्रतम् ॥ चित्तेन दुष्टो वचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः । ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः ॥ विज्ञप्तौ वाऽपराधे वा पाखंडे वा मदुक्तयः । पर्यवस्यंति कुत्रेति न जानेऽहं विमूढधीः ॥ बलिष्ठा अपि मद्दोषास्त्वत्कृपाग्रेऽतिदुर्बलाः तस्या ईश्वरधर्मत्वात् दोषाणां जीवधर्मतः ॥ त्वद्दर्शनविहीनस्य त्वदीयस्य तु जीवितम् । व्यर्थमेव यथा नाथ ! दुर्भगाया नवं वयः ॥६॥" [जा दैन्यतें आपकी कृपा होय सो दैन्य मोकों अणुमात्रहू नांहिहे तासों हे श्रीराधेश ! एसी कृपा करो जा कृपाकरि एसो दैन्य प्राप्त होय ॥ पतिके संगम विना सर्व मनोरथ व्यर्थ हे तासों हे सखि! निर्लज्जपनेकी सिद्धिके अर्थ अब में जीवितहों ॥ में चित्तमें दुष्ट हों, वचनतेंहू दुष्ट हों, शरीरतें दुष्ट हों, क्रियातें दुष्ट हों, ज्ञानतें दुष्ट हों, भजनतें दुष्ट हों (एसें सर्व प्रकारसों दुष्ट हों तासों)

१ जा दैन्यसों आपकी कृपा होवहे एसो दैन्य प्राप्त होय एसी कृपा करो.

मेरो अपराध केते प्रकारको विचारनों ॥ में जो विज्ञप्तिमें कहत हों सो मेरी उक्ति, विज्ञप्तिमें के अपराधमें के पाखंडमें कायमें पर्यवसान होयँगी सो मेरी बुद्धि मूढ होयगई हे तासों में नांही जानतहों ॥ २ ॥ मेरे दोष बोहोत बलवान हें तोहू आपकी कृपाके आगें अति दुर्बलहें काहेतें जो कृपा हे सो आप ईश्वर हें इनको धर्म हे ओर दोष हे सो हम जीव हें ताको धर्म हे सो ईश्वरधर्मके आगें जीवधर्म अतिदुर्बल हे ॥ आपके दर्शनरहित जो आपको जीव हे ताको जीवित हीनभाग्यवारी (विधवा) के नवीन अवस्थाकी नांई हे नाथ ! व्यर्थही हे ॥६॥] याभांति अनेकभावसों प्राप्तिके लिये दीनतासों प्रार्थना करे जो में महादुष्ट हों, आप मेरे प्रभु हो, श्री आचार्यजीद्वारा संबंध भयो हे सो मोपर कृपा करो याभांति दैन्यतें प्रभुकों दया आवे भावकी वृद्धि होय काहेतें जो भावकी वृद्धिको कारण एक दैन्यही हे तासों या भांति दीन होय श्रीकृष्णकी सेवा करे तब श्रीकृष्ण संतुष्ट होयजाय ता वैष्णवकों प्रभु सुखसेव्य हे कबहू सेवामें प्रतिबंध न करे कबहू रोगादिक बाधा न करे जन्मभरि प्रभुकी सेवा निर्विघ्नतासों होय सो श्रीगुसाँईजी कहेहें " सुखसेव्यो " एसे वैष्णवकों सुखसेव्यही हें ॥ ३ ॥

मूलं–दुराराध्यस्य सेवैव वशीकरणसाधनम् ।
कृष्णसेवां प्रकुर्वंतो भाग्यवंतो जना मताः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः–दुराराध्य प्रभु हें इनकों वश करिवेको साधन सेवाही हे तासों श्रीकृष्णकी जो सेवा करतहें सो जन भाग्यवान हें ॥ ४ ॥ टीका– श्रीकृष्ण अत्यंत दुराराध्य हें ब्रह्मादिक शिवादिक कोटानकोटि वर्षताँई अनेक साधन करतहें तब समाधिमें कबहू झांखि होतहे ओर जीवतो अनेक दोषकरि भर्यो हे तासों दुष्ट होयरह्यो हे तिनकों तो दुराराध्यही हें वडेवडे योगी अपनें हृदयमें कल्पना करतहें मुनिजन जन्मजन्ममें यत्न

करतहें तिनकों प्रभु दुराराध्य हें तो जीवकी कहा बातहें ? तोहू जो दैवी जीव श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आये हें ओर पुष्टिमार्गकी रीति अनुसार भगवत्सेवा करत हें दीन होय येही साधन करतहें उह भक्तनके बस होतहे तासों जो वैष्णव यह पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आय मार्गकी रीति अनुसार सेवा करतहें सो परमभाग्यवंत हें (बडभागी हें) उनहीको जन्म सफल हे सो सप्तमस्कंधमें प्रह्लादजी कहेहें " देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गंधर्व एव वा। भजन्मुकुंदचरणं स्वस्तिमान्स्याद्यथा वयम् [प्रह्लादजी असुरनके बालकनकों कहतहें जो देव, असुर वा मनुष्य, यक्ष अथवा गंधर्व जो मोक्षदेवेवारे भगवानके चरणारविंदकों भजतहे सो जेसे अपने असुर हे तेसे होय तोहू कल्याणयुक्त होयहेंओर षष्ठस्कंधमें पार्वतीजीको महादेवजी कहेहें "नारायणपराःसर्वे न कुतश्चन बिभ्यति। स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः"॥ (नारायणपरायण सर्व काहूसो नांही डरपतहे, स्वर्ग,मोक्ष ओर नरकमें हू तुल्य अर्थ देखिवेवारे हे]एसे अनन्य भगवद्भक्तसमान ओर कोई नांहीहे ॥४॥

मूलं–तस्माद्दृढं मनः कृत्वा कृष्ण एव हि सेव्यताम्।
अत्रत्यं वृत्तमखिलं वदिष्यति विशेषतः।
श्रीविठ्ठलप्रमोदासः श्यामदाससहस्थितः॥ ५॥
तत्रत्यवृत्तांतोऽखिलो विविच्य लेख्यः किमधिकम्॥

शब्दार्थः–तासों मन दृढ करिकें श्रीकृष्णही सेवनें इहांको सब वृत्तांत श्यामदासके संग रह्यो एसो श्रीविठ्ठलरायजीको दास विशेषसों कहेगो॥ ५॥ उहांको सब वृत्तांत विस्तारकरिकें लिखनों विशेष कहा लिखे॥ टीका–सर्वोपर श्रीकृष्णकी सेवा दृढ मन करिकें प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य हे सो श्रीभागवतसप्तमस्कंधमें प्रह्लादजी कहेहें

" न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडंबनम् " (न दान, न तप, न यज्ञ, न पवित्रता, न व्रत प्रभुकों प्रसन्न करेहें शुद्ध भक्तिकरि हरि प्रसन्न होयहें दूसरो तो सब विडंबन हे) ओर दशमस्कंधमें उद्धवजी कहेहें ॥ श्लोक ॥ " दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते " ॥ (दान, व्रत, तप, होम, जप, स्वाध्याय, नियम, ओर दूसरे जुदेजुदे प्रकारके कल्याणमार्गनतें श्रीकृष्णमें भक्ति सिद्ध होतहे) एकादशस्कंधमें श्रीकृष्ण कहेहें ॥ श्लोक ॥ " तत्सर्वं भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति " ॥ [जो योगादिक साधननतें प्राप्त होयहें सो सर्व मेरो भक्त स्वर्ग ओर मोक्षरूप मेरो धाम (व्यापि वैकुंठ) हे तिनकों जो कोय रीतसूं चाहे सो विनाही श्रम मेरे भक्तियोगतें पावतहें] यामांति श्रीकृष्णहीकी भक्ति सर्वोपर हे तातें निष्काम होय श्रीकृष्णकी सेवा मन लगायकें कर्त्तव्य ओर इहांके सब वृत्तांत विशेषकरि श्रीगोकुलनाथजीके पुत्र श्रीविठ्ठलरायजीको दास तथा श्यामदास कहेगो सो जानिकें उहांके जो समाचार होय सो अखिल विस्तारपूर्वक प्रतिउत्तर लिखोगे किमधिकम् ॥ ५ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकोनचत्वारिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३९ ॥

---

१ भगवद्भक्त मोक्षादिककीहू इच्छा न राखे परंतु कदाचित् इनकी इच्छा होय तो विनाही श्रम भगवद्भक्तितें मिले.

शिक्षापत्र ४०.

अब चत्वारिंशत्तम शिक्षापत्रमें सर्वसाधनरहित में भयो हों ऐसें जतायवेके लिये बोहोत दीनताके वाक्यमें ओर हमारे अधिकारीनें निंदित एक कार्य कीयो तातें मनमें बोहोत खेद भयो परंतु फिर शांति भई है (यह वृत्तांत, संग करनो सो विचारिकें करनो यह जतायवेके लिये लिख्यो हे) अब इनकी उपर मेरी कृपाहू पूर्ववत् हे तातें प्रेमजी उदास भयो हे सो तुह्मारे हू उहांसों इनकी उपर प्रशंसाके जुदेजुदे पत्र लिखने यह निरूपण हे। उपर कहे जो यह पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णकी सेवा सर्वोपर हे साधन फल येही कर्तव्य हे सो मोसों कच्छू हू नांहीं बनसकेहें यह निरूपण हे

मूलं-पत्रद्वारा प्रकरवै स्वदुःखविनिवेदनम्।
महत्तराख्ये चलिते दूरगेषु भवत्सु च॥ १॥
जानामि निजमार्गस्य धर्मं किंचित्कृपावलात्।
तदसिद्धिजहृत्क्लेशं को मे दूरीकरिष्यति॥२॥

शब्दार्थः—महत्तरनामको भगवदीय चल्यो ओर तुम दूर रहे तासों [जो मोकों दुःख भयो हे सो] अपने दुःखकों विशेष वतायवो पत्रद्वारा करतहों॥ १॥ कछुक (बडेनकी) कृपाके बलसों अपने मार्गके धर्मकों जानतहों सो मोकों यह धर्मकी असिद्धितें भयो जो हृदयको क्लेश ताकों कोन दूरीकरेगो॥२॥ टीका—अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो में अपनों दुःख तुमकों पत्रद्वारा निवेदन करतहों काहेतें जो तुम सर्वलायक हो मेरे प्रियभ्राता हो तातें दुःखसुख तुम विना ओर दूसरे कोनसों कहों? ओर तुम दूर हो जो पास हते तो

दुःखमें सहायही करते तेसें मोकों तुमारे संगतें दुःखही न होतो तातें यह पत्रद्वारा मेरो दुःख जानोंगे, महत्तर हे आख्या [नाम] जिनको एसे भगवदीय मेरे पासतें अपने कार्यार्थ चले सोहू मोकों छोडिकें दूरीगये ओर तुमहू इहांतें दूरी हो अब मिलनकी आशा मोकों नांहीहे तातें पत्रद्वारा अपनो दुःख लिखतहों सो वांचिके समाचार जानोगे ॥ १ ॥ श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसाँईजी कृपाके बलतें निजमार्ग [यह पुष्टिमार्ग] को धर्म कच्छु जानतहों सो [भगवदीय दूरी गये ओर दुःसंग बोहोत हे तासों] सिद्ध न भयो ताकरिकें मेरे हृदयमें अत्यंत दुःख [क्लेश] भयो हे सो कोन दूरी करेंगे सो मोकों जानि नांही परतहे काहेतें जो में सकलसाधनकरिकें रहित हों ओर अनेक दोषतें भयों हों तातें एसो मेरो दुःख कोन दूरी करेंगे ॥ २ ॥

मूलं–प्रायः पाखंडिमुख्योऽहं हरिणा हृदि चिंतितः। कृपालुरप्युपेक्षां मे कुरुते दीनवत्सलः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः–बोहोतकरिकें में पाखंडिनमें मुख्य हों एसें हरिनें हृदयमें विचार्यो हों काहेतें जो (हरि) कृपालु ओर दीनवत्सल हे तोहू मेरी उपेक्षा करतहें ॥ ३ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी दीनता होयवेके लक्षण अपने सेवक (पुष्टिमार्गीय वैष्णव) कों जतायवेके लिये आप निःसाधनपनो कहतहें जो में सगरे पाखंडीमें मुख्य हों सो अपने मुखसों में कहा कहों? हरिहू मोकों पाखंडी जानतहे काहेतें जो हरि तो सर्वदुःखहर्त्ता परमदयाल दीनवत्सल हे तोहू मेरी उपेक्षा कीनी हे तातें में जानतहों जो मोको महापाखंडी जानिके मेरी उपेक्षा कीनी हे सो अब में कहा करूं? याभांति दैन्य कर्त्तव्य हे सो विज्ञप्तिमें कहतहे " चित्तेन दुष्टो वचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः । ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः ॥ १ ॥ जानामि मंदभाग्योऽहं यदर्थे

गोकुलेश्वरः। भक्तक्लेशासहिष्णुत्वस्वभावं कुरुतेऽन्यथा।२। श्रीगुसाँईजी गोवर्द्धननाथजीसों कहतहें जो में चित्तकरिकें दुष्ट हों, वाणी करिकें दुष्ट हों, काया करिकें दुष्ट हों, क्रिया करिकें दुष्ट हों, ज्ञान करिकें दुष्ट हों, भजन करिकें दुष्ट हों, एसें मेरो अपराध कहांतांई विचारोगे?॥१॥ में जानतहों जो मंदभाग्यवारो हों काहेतें जो गोकुलेश्वर तुह्मारे नाम हे सो आगें गाय, गोप, गोपी, सगरे व्रजकी तुमनें रक्षा करी हे भक्तको क्लेश होय सो आप नांही सहीसको एसो परम दयाल तुह्मारो स्वभाव हे सो अब अन्यथा कीयो (कठोर भये भक्तकों क्लेश होय सो अब सहन लागे) सो तुम ईश्वर हो कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं, सर्व सामर्थ्ययुक्त हो तासों चाहो सो करो तुमकों कहा कहिये? में ही मंदभाग्यवारो हों जो मेरे लिये आपकों यह अपनो दयाल स्वभाव फेरी कठोर होनो पर्यो इतनो श्रम भयो अब भक्तनके क्लेश सहनलागे याभांति दैन्य ही पुष्टिमार्गमें साधन हे सो भगवदीय दैन्यकरि गाये हे " हों पतितनको राजा, हों पतितनको ईश, हों पतितनको टीको. हों पतितनको नायक." इत्यादिक दैन्यके वचनतें जीवकों स्वरूप प्रकट कीये सो जीव भगवानते न्यारे पडे तब दुष्ट भये ताहीते श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी बालबोधमें कहेहें " जीवाः स्वभावतो दुष्टाः " याभांति श्रीहरिरायजी श्रीगुसाँईजीके भाव अनुसार कहतहे जो में पाखंडीमें मुख्य हों एसे मोको प्रभु अपने चित्तमें चिंतन करिकें (यद्यपि श्रीकृष्ण दयाल हे दीनवत्सल हे तोहू) मेरी उपेक्षा कीये हे तहां कोई कहे जो प्रभु (श्रीकृष्ण) भक्तकी उपेक्षा नांही करतहे यह शास्त्र, पुराण, श्रीभागवत, गीता, इत्यादिकमें प्रसिद्ध हे तासों तुमने केसे जानि जो मेरी उपेक्षा कीये हे? याभांति कोई कहे तहां कहतहे॥ ३ ॥

मूलं—उपेक्षितश्चेद्धरिणा स्वजनैरप्युपेक्ष्यते।
अतः कं यामि शरणं वनस्थ इव विस्मृतः ॥ ४॥

शब्दार्थः–हरिनें उपेक्षा कीये तब स्वजन [वैष्णवन] नेंहू उपेक्षा कीये तासों वनमें (ओर अपने जननें) विस्मृत कीयो ओर आपु मार्गकों भूलि गयो एसो कोनके शरण जाऊं ? ॥४॥ टीका–श्रीकृष्ण उपेक्षा कीये एसें में यातें जान्यो जो मोकों पुष्टिमार्गीय तदीयनें छोडि दियो सो मेनें आगें वडेनके श्रीमुखद्वारा शास्त्रवार्त्ता सुनी हे जो भगवान् प्रसन्न भये कब जानियें ? जब भगवदीयको मिलाप होय. ओर भगवान् उदासीन भये कब जानियें ? जब भगवदीय छोडिजाय. सो भगवदीय छोडिगये तातें में जानतहों जो मेरी भगवान् उपेक्षा कीये हें. अब में कहा करूं ? किनकी शरण जाऊं ? यह मोकों हृदयमें बडी चिंता भई हे जो भगवान् ओर भगवदीय दोउ मेरी उपेक्षा कीये हें अब में किनकी शरण जाऊं ? जेसें कोउ गंभीर वनमें भूले परे तब कितकी ओर जाय ? कहूं गेल सूझे नांही तब बडी चिंता होय तेसेंही मोकों बहुत चिंता भई हे. तहां कोई कहे जो प्रभु उपेक्षा करि छोडि गये तो यह दोष प्रभुहीको तुम जानतहों सो यह भक्तिमार्गकी रीति कहां हे ? प्रभु तो निर्दोष हें तुम प्रभुको दोष क्यों ठहरावे ? या भांति कोई कहे तहां कहतहें ॥ ४ ॥

मूलं–प्रभोरपि न वै दोषो गुणलेशोऽपि नो मयि।
विस्मृत्य दोषनिचयं यं गृह्णीयाद्गुणग्रहः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः–निश्चय करिकें प्रभुकोहू दोष नांहीहे काहेतें जो (प्रभु ग्रहण करे एसो) मेरेमें गुणको लेशहू नांहीहे परंतु प्रभु जिनकों ग्रहण करेहें तिनके दोषके समूहकों विसरिकें गुणकोंही ग्रहण करेहें काहेतें जो आप गुणग्राही हें[१] ॥ ५ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो

१ लौकिकमेंहू जो गुणग्राही हें सो सामनेके दोषनकों नांही देखतहें केवल गुणकोंहि ग्रहण करत हें ओर जो दोषवान् हे सो अपने दोषको नांही जानतहें सामेवारेमेंही दोषारोपण करतहें.

प्रभुको दोष तो रंचकहू नांहीहे यह सगरो दोष मेरो हे जो मोमें गुणको लेशहू नांही हे ओर दोष नखतें शिखापर्यंत भरे हे सो अपने दोष में बिसरिगयो हों तासों मोकों महागुणवंत जानतहों यह अज्ञानता मेरेमेंही हे सो मेरोही दोष हे प्रभु तो सदा गुणसंयुक्त हें तासों दोषकों नांही देखतहें जिनको अंगीकार करतहें तिनको गुणही देखतहें मोकोंही अज्ञानकरि भ्रम होतहे ॥ ५ ॥

मूलं-यथा निःश्वासरहितं किं करोति सुभेजषम् ।
तथा विगतभावं मां कथासेवादिकं पुनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-जेसें श्वासरहित मनुष्यकों सुंदर ओषध कहा करतहे ? तेसें गयो हे भाव जिनको एसें मोकों फिर कथासेवादिक कहा करे ? ॥ ६ ॥ टीका-जेसें सुंदर भेषज (ओखद) पुरुपकों देय ओर वा पुरुपके श्वास तो नांहीहे तब वो सुंदर भेषजहू वृथा हे कच्छु अपनो पराक्रम न करे तेसेंही मेरेमें भावनाही हे तासों मोकों सेवाकथादिक भगवद्धर्म कहा करे ? जेसें पुरुपको प्राण (श्वास) विना सुंदर भेषज (ओखद) वृथा हे तेसेंही भाव विना सेवाकथादिक क्रियावत् हे तासों कहा फलसिद्धि हे कच्छुहू नांही तातें मोकों दुःख हे ॥ ६ ॥

मूलं-प्रायः कथैव नैषास्ति यतस्तिष्ठति नो हृदि ।
न वाऽनुभावं कुरुते निजं त्यागाभिधं मयि ॥७॥

शब्दार्थः-बोहोत करिकें यह कथाहू नांहीहे जासों हृदयमें स्थित नांही रहत हे, ओर संन्यासनिर्णयमें [विरहकरिकें] त्याग नामको जो अपनो अनुभव कह्यो हे सोहू नांही करतहे ॥ ७ ॥ टीका-

१ ब्रजवासिनके लिखे पुस्तकनमें भेषजको अर्थ वेप लिख्यो हे सो मूलसें विरुद्ध हे तासों इहां नांही लिख्यो हे. २ भाव विना सेवाफलग्रंथमें लिख्यो मुख्यफल न होय तासों कच्छुहू नांही लिख्यो हे परंतु गौण फल तो होय.

श्रीकृष्णकी कथा सेवादिकमें यह जीव नांही स्थित हे तब भाव हृदयमें कहांते स्थिर होय ? भगवदीयद्वारा श्रवण करे तब हृदयमें भाव सिद्ध होय सो श्रीभागवतमें द्वितीयस्कंधमें कहेहें " प्रविष्टः कर्णरंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् । धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् " (अपने भक्तनके कर्णके छिद्रतें भावरूप कमल प्रति प्रविष्ट श्रीकृष्ण " शरद् ऋतु जलको मल मिटावे तेसें हृदयको मल मिटायदेतहें) ओर शुकदेवजी कहेहें " तस्माद्गोविंदमाहात्म्यमानंदरससुंदरम् । शृणुयात्कीर्त्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः " (तासों आनंदरसकरि सुंदर श्रीगोविंदको माहात्म्य हे तिनकों जो नित्य श्रवण करे कीर्त्तन करे सो कृतार्थ हे तामें संशय नांही) इत्यादिक वचनमें कथाकीर्त्तनादिककी माहात्म्य लिख्यो हे एसी कथाके श्रवण विना हृदयमें भाव केसें स्थिर रहे ? ओर जहांताँई देहसंबंधी कार्यमेंतें मनको त्याग न होय तहांताँई श्रीकृष्णके स्वरूपको अनुभव कहांतें होय ? काहेतें जो मनकरिकें भाव सिद्ध होतहे सो मन तो लौकिक संसारादिकमें विषयमें आविष्ट भयो तब अनुभव कहांतें होय ? सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः " जाको देह विषयादिककी कामनाकरि भर्यो हे ताके हृदयमें भगवदावेश सर्वथा न होय सो मेरे मनमें तो कच्छु लौकिक वैदिकको त्याग नांहीहे ताकरि अनुभव नांही ॥ ७ ॥

मूलं-सेवा तु प्रतिबद्धा मे भोगोद्वेगादिबाधकैः ।
गेहवित्तादिकासक्त्या कथं सा मानसी भवेत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः-भोग ओर उद्वेगादिक प्रतिबंधकरिकें सेवा तो बंध होय गई हे तब गृहधनादिककी आसक्तिकरि मानसी सेवा केसें सिद्ध होय ? ॥ ८ ॥ टीका-तनुजा वित्तजा भगवत्सेवामें अनेक प्रतिबंध हें शरीर

इंद्रियनके विषयकी कामना उठे तब सेवा करतमें उद्वेग होय जो कब सेवा करिचूकों पीछें खानपान करूं याभांति प्रथम विषयादिकके भोगकी कामना होय तब मनमें उद्वेग होय सेवामें मन न लगे सो प्रभुकों बूरी लगे तब प्रतिबंध होय जामें सेवाही न बनिआवे तब गृहादिक कार्यवित्त (द्रव्यादिक) में आसक्त होय तब मानसी सेवा कहांते सिद्ध होयगी सो सेवाफलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः। (उद्वेग, प्रतिबंध, अथवा भोग बाधक होय) यह वचनतें सेवामें उद्वेग तथा देहसंबंधी खानपान (विषयभोग संसारासक्ति) ओर प्रतिबंध यह सेवामें बाधक हे जब उद्वेग भयो तब तनुजा वित्तजा सेवा न भई ओर लौकिक संसारासक्ति भई तब मानसी सेवा वाकों केसें सिद्ध होयगी? तनुजा वित्तजा सेवाहू सिद्ध नांहीहे तो मानसी तो परम दुर्लभ हे ॥ ८ ॥

मूलं–तातपादेषु यातेषु दुर्भगस्य परोक्षताम्। सत्सु सर्वेषु यातेषु दृशोर्दूरमहं स्थितः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः–तातपाद(श्रीकल्याणरायजी) दुर्भाग्यवारेकों परोक्षताकों प्राप्त भये ओर सब सत् पुरुष दूरिगयो दृष्टिकों एसें में रह्यो हों अथवा में दृष्टिकों दूरिरह्यो हों॥९॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेरी यह अवस्था हें तातें श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी, श्रीगोकुलनाथजी, तथा श्रीकल्याणरायजी ये हमारे पिताही समान हे श्रीआचार्यजी मार्गप्रकटकर्त्ता हें, श्रीगुसांईजी यह मार्गके प्रकाशकर्त्ता हें, श्रीगोकुलनाथजीद्वारा नामनिवेदन भयो हे सो मेरे गुरुचरण पिताही हें ओर श्री कल्याणरायजी हमारे तातचरण जगत्प्रसिद्ध हें, यह तातचरण मोकों परोक्ष हें में इनतें न्यारो पर्यो हों सो या समयमें या दुःखमें मेरी कोन

सहाय करेगो ? तातें में दुर्भागी हों ओर सत्पुरुष जो सर्वगुणयुक्त पुष्टिमार्गीय वैष्णव तिनह्नतें में दूरीपयों हों तातें यह जानतहों, जो दुर्भागी हों या दुःखमें मेरे पास सत्पुरुष कोई नांहीहे जो मेरो रंचकहू समाधान करे तातें में कहा करूं ? दुःख पावतहों ॥ ९ ॥

मूलं–श्रीभागवतचिंता तु न विना संगतेः सताम्। मनसोऽत्यंतविक्षेपान्न वा शरणभावनम् ॥ १० ॥

शब्दार्थः–सत्पुरुषकी संगति विना श्रीभागवतको विचार नांही होतहे मनके अत्यंत विक्षेपसों शरणकी भावना नांही होतहे ॥१०॥ टीका–कोई कहे जो तुम बडे ज्ञानवान हो सो सत्संग नांहीहे तो कहा भयो ? श्रीभागवतको अवलोकन करो ताही करिकें सकल चिंता क्लेश दूरी होयगो याभांति कोई कहे तहां कहतहें जो एकाग्र चित्त होय सत्पुरुषनको संग होय, तब श्रीभागवतकी खबरि पडे सो सत्संग नांहीहे ओर चिंताकरि हृदय दुःखित होय रह्यो हे तातें श्रीभागवतको भाव मोकों कहांतें दीसेंगो ? काहेतें जो तादृशीय भगवदीय सत्पुरुष होय, वे श्रीभागवतको भाव कृपाकरि कहे बतावे तब जान्योजाय ओर में तो अकेलो हों एसें व्यग्रचित्तसों श्रीभागवततें केसे संतोष होयगो ? तहां कोई कहे जो हरिके शरणकी भावना करो सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें " अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" (अशक्यमें तथा सुशक्यमें सर्वथा हरि शरणहे) तथा गीताजीमें भगवान् अर्जुन प्रति कहेहे " सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " [सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरण हो में तोकों सर्वपापनतें छुडाउंगो शोक मति करे] याभांति शरणकी भावनातें सगरो कार्य सिद्ध

होय याभांति कोई कहे तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेरे मनमें अत्यंत विक्षेप होय रह्यो हे ताकरिकें शरणकी भावना कहांतें होय?॥१०॥

मूलं–वार्त्तांतरकृतिप्रेम्णा नाष्टाक्षरमनोजपः ।
महावमत्या लोकानां प्रपत्त्या दैन्यनाशनम् ॥११॥

शब्दार्थः–(भगवद्वार्त्ता सिवाय) ओर वार्त्ता करिवेमें प्रेम हे ताकरि अष्टाक्षरमहामंत्रको मनकरि जप नांही होयहे ओर महत्त्वबुद्धिकरिकें लोकनकी प्रपत्तितें दैन्यको नाश होय हे ॥ ११ ॥ टीका–कोई कहे जो ओर न बने तो अष्टाक्षरमहामंत्रको जप करो ताहीतें सगरो कार्य सिद्ध होयगो सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम । वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः" (तासों " श्रीकृष्णः शरणं मम " एसें निरंतर बोलतेंही रहेनों इतनीही मेरी मति हे) तातें अष्टाक्षरको जपही करो याभांति कोई कहे तहां कहतहे जो लौकिकवार्त्तांतरमें जहांतहां प्रेम होलहे तातें अष्टाक्षर जप कहांतें होय? सो मेरो तो लौकिक वार्त्तांमें अत्यंत प्रेम हे ताकरि अष्टाक्षरजपहू नांही बनि आवतहे. तहां कोई कहे जो अष्टाक्षरको जप न बने तो प्रभुसों दैन्यभाव करो ताहीकरि प्रभु प्रसन्न होयंगे सो श्रीआचार्यजी कहेहें " दैन्यं त्वत्तोषसाधनम् " दैन्य होय तो भगवान् संतोष पावे याभांति कोई कहे तहां कहतहें जो लौकिकमें सब लोगनमें अपनी बडाई हे तामें यह अहंता ममताहू हे जो में बडोहों, बहुत समुझतहों, मेरेमें बहुत धर्म हे जाकरि दैन्यको नाशहे काहेतें जो लोगनमें बडाई हे यह महत्तामें उन्मत्त फूल्यो फिरतहों ताकरि दैन्यको नाश हे तातें में कहा करूं ? ॥ ११ ॥

१ सब लोक बडे जानिकें शरण आवतहें तातें अपने मनमेंहू बडाई आयजाय. जहां बडाई आई तहां दैन्यको नाश भयो या अभिप्रायसों एसें लिखे हे.

मूलं-निवेदनानुसंधानं सद्भिस्त्यक्तस्य मे कथम् ?।
केवलं शरणं सर्वत्यागाभावाच दुर्लभम् ॥१२॥

शब्दार्थः-सत्पुरुषनें जिनको त्याग कीयो हे एसो जो में तिनकों निवेदनको अनुसंधान कहांतें होय ? ओर सर्वत्याग नांहीहे तासों केवल शरणहू दुर्लभ हे ॥ १२ ॥ टीका-कोई कहे जो निवेदनको अनुसंधान राखो ताहीकरि सर्व सिद्ध होगयो याभांति कोई कहे तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो सत्पुरुष जो पुष्टिमार्गीय भक्त भगवदीय हें तिननें तो मोकों तजिदियो हे अब निवेदनको अनुसंधान केसें करूं ? काहेतें जो निवेदनको अनुसंधान भगवदीयसों मिलिकें कर्त्तव्य है सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः " (निवेदनको स्मरण सर्वथा तादृशीय जननसों मिलिकें करें) इत्यादि वचनकरि निवेदनको अनुसंधान भगवदीय विना अकेलें केसें होय ? तहां कोई कहे जो केवल प्रभु शरण करो जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी श्रीकृष्णाश्रयमें शरणमार्ग प्रकट करि शरण सिद्ध कीये हें सोही करो एसें कहे तहां कहतहें जो केवल शरण तो सब लौकिक वैदिकको मनमें त्याग होय तब सिद्ध होय सो मेरे मनमें तो लौकिक वैदिक कार्य लागिरह्यो हे सर्व त्यागको अभाव हे शरण कहांते होय ? तातें में कहा करूं, शरण परम दुर्लभ हे ॥१२॥

मूलं-चांचल्याच्चेतसः कुत्र दृढः कृष्णपदाश्रयः ।
विवेकधैर्ये तद्धेतू मूर्खाधीशस्य मे कथम् ॥१३॥

शब्दार्थः-चित्तकी चंचलतातें दृढ श्रीकृष्णके चरणारविंदको आश्रय कहां ? ओर आश्रयके कारणरूप विवेक तथा धैर्य हे सो मूर्खाधीश जो में हों तिनकों केसें होय ? ॥१३॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेरो चित लौकिक देहसंबंधी कार्यमें अतिचंचल

होय रह्यो हे ताकरिकें श्रीकृष्णके पदकमलमें दृढ आश्रय नांहीहे आश्रयकी कहा कहों विवेक ओर धैर्य आश्रयके साधन हे सोह में मूर्खनको राजाहूं तिनकों क्हांतें होय? विवेक, धैर्य ओर आश्रय तीन्यो चहियें सो विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रयः" (विवेक ओर धैर्य निरंतर राखनें तथा आश्रय राखनो) यह वचननसों विवेक धैर्यकी अष्टप्रहर रक्षा करे तब श्रीकृष्णको दृढ आश्रय होय सो अज्ञानीकों विवेक धैर्य क्हांतें सिद्ध होय? ताकरिकें आश्रयहू नांहीहे ॥ १३ ॥

मूलं–भावो यदनुभावेन भवेन्निष्कासितस्ततः ।
क ता व्रजभुवः कृष्णचरणांबुरुहांकिताः ॥१४॥

शब्दार्थः–जिनके अनुभावतें भाव होय ता (व्रजदेश) तें में निकासित हों अब श्रीकृष्णके चरणारविंदके चिह्न (ध्वज, वज्र, अंकुश, पद्म इत्यादिक) युक्त वह व्रजभूमि कहां? ॥ १४ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो कच्छु न बने तो व्रजलीलाकी भावना करे ताकरि अनुभव होय सो भावको अनुभव तो व्रजसंबंधी लीलासामग्री देखेतें होय तहांतें तो में निकासित हों बाहिर परदेशमें स्थित हों इहां कहा देखिकें भाव उत्पन्न होय? याभांति अपनमें निःसाधनकी भावना करत करत दैन्य भयो ता दैन्यकरि तीव्र विरह [विप्रयोग] प्रकट भयो सो देहानुसंधान भूलिगये व्रजकी लीला तन्मय होयकें कहतहें जो वह व्रजकी भूमि कहां हें? जहां श्रीकृष्ण सगरी लीला व्रजभक्तनके संग करी हे एसी व्रजभूमि कहां हे? जहां ठोर ठोर श्रीकृष्णके चरणारविंद हे जामें ध्वज, वज्र, अंकुश, स्वस्तिक, पद्म, अष्टकोण, यव, ऊर्ध्वरेखा, कलश, यह नव चिह्न दक्षिण चरणके तथा गोपद, जंबु, मत्स्य, धनुष्य, त्रिकोण, अर्धचंद्र, आकाश, यह सातो वामचरणके मिलिकें षोडश चिह्न हें एसे चिह्नयुक्त व्रजभूमि कहां हे? ॥ १४ ॥

मूलं–क शैलः कृष्णदासाख्यः पुलिंदीभावपोषकः।
क ते श्रीयमुनोद्देशा लीलारसवितारकाः॥ १५॥

शब्दार्थः–पुलिंदीकों भावपोषक कृष्णदास (हरिदास) हे नाम जिनको एसो शैल [श्रीगिरिराज] कहां ? लीलारसकों विस्तारिवेवारे श्रीयमुनाजीकरि उत्कृष्ट भये एसे वह देश कहां ? ॥ १५ ॥ टीका–कृष्णदास इनको नाम हे एसें शैल [श्रीगिरिराज] परम दयालु कहां हे ? जानें पुलिंदीसारिखीकों भावको स्थापन कीयो श्रीगिरिराजके संगतें पुलिंदीकों भाव उत्पन्न भयो एसें श्रीगिरिराजजी सर्वांगतें प्रभुकी सेवा करतहें सर्व ऋतुमें प्रभुकों सुख देतहें गाय सुख पावतहें एसें भावके पोषक श्रीगिरिराजजी कहां हे ? ओर श्रीयमुनाजी कहां हे ? कुमारिकानके मनोरथ पूर्णकर्त्ता श्रीयमुनाजी जहां बिराजत हें एसे देश कहां हें ? इनके आश्रयतें श्रीकृष्णकी लीलाको अनुभव होय सो कहां ? ॥ १५ ॥

मूलं–क ते वेणुरवा यैर्वा समाकृष्टा व्रजस्थिताः।
व्रजनाथकरांभोजप्रोंछिताः क गवां गणाः॥१६॥

शब्दार्थः–जिनने व्रजमें रहे एसें व्रजभक्तनको आकर्षण कीयो वह वेणुरव[1] कहां ? ओर श्रीकृष्णनें हस्तकमलकरि पोंछे एसें गायनके समूह कहां ?॥ १६ ॥ टीका–अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो श्रीकृष्णनें वेणुनादकरि समस्त स्थावर जंगमकों सुधादान कीये वह वेणुको रव कहां ? ओर व्रजके नाथ (श्रीकृष्ण) अपने करांवुजसों पोंछतहें, सगरी गायनकों सुख दई पालन करतहें एसी अनेक गायनके समूह कहां ? ॥ १६ ॥

[1] कूजन, गीत, ओर रव, तीन प्रकारको वेणुनाद हे सो वेणुगीतमें प्रसिद्ध हे तामें रवसों आकर्षण निरूपण कीयो हे.

मूलं–अनंतलीलाधारास्ते द्रुमाः क विपिनस्थिताः। वेणुनादपरा वृक्षभुजारूढाः क्व पक्षिणः ॥ १७॥

शब्दार्थः–अनंतलीलाके आधाररूप तथा अनंतलीलारूप मधुधाराकों स्रवतहें एसे श्रीवृंदावनमें रहे वृक्ष कहां? ओर यह वृक्षनकी शाखापें बेठे वेणुनाद सुनिवेमें तत्पर (मुनिरूप) पक्षि कहां? ॥१७॥
टीका–श्रीकृष्ण जहां भक्तनके संग अनंत लीला करतहें एसें श्रीवृंदावनके सुंदर द्रुम हें जामेंतें वेणुनाद सुनि मधुकी धारा स्रवतहे एसे वृक्ष कहां हे? ओर वेणुनादके रसके पानकरणमें परायण पक्षि वृक्षादिककी शाखा भुजारूप हे तापर आरूढ होय बेठे हें अपनो चंचल स्वभाव त्याग करी मुनिकी नाँई बेठे हे सो वेणुगीतमें व्रजभक्तन कहेहें "प्रायो बतांब! विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षणस्तदुदितं कलवेणुगीतम्। आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वंति मीलितदृशो विगतान्यवाचः" [श्रीयशोदाजीकों व्रजभक्त कहतहें जो हे अंब! यह वृंदावनमें पक्षि हें सो बोहोतकरिकें मुनि हे जो पक्षि रुचिर हे प्रवाल जिनके एसें वृक्षकी भुजारूप शाखानके उपर बेठिकें श्रीकृष्णमें हे दृष्टि जिनकी ओर इननें कह्यो एसो अव्यक्त मधुर जो वेणुगीत हे ताकों नेत्र मूंदि राखेहे ओर छोडि हे अन्यवार्ता जिननें एसें होयके सुने हें] यामांति व्रजभक्त गावतहें ताही भावमें श्रीहरिरायजी मग्न होय भावना करतहें ॥ १७॥

---

१ रुचिर प्रवाल हें तिनकों खायवेकी इच्छा नांही होतहे एसे वेणुनादश्रवणमें आसक्त हें. २ श्रीकृष्णने कह्यो एसो वेणुनाद हे ओर वेदद्रष्ट प्रश्नने कह्यो हे तासों वेदतुल्य वेणुनादको जानेहे काहेतें जो आप मुनि हे. ३ अन्यवार्त्ता छोडि हे एसे लिख्यो हे तासों वेणुनादको अनुकूलवार्त्ता करतहे एसे जाननो.

मूलं–व्रजस्त्रीचरणांभोजरेणवः क्व व्रजस्थिताः।
दधिनिर्मंथनोन्नादाः क्व ते श्रवणमंगलाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः–व्रजमें रहे ऐसे व्रजस्त्रीके चरणारविंदके रेणु कहां? ओर श्रवणमें मंगलरूप ऐसे वह दधिमंथनके अधिक नाद कहां? ॥ १८॥

टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो व्रजस्त्रीके चरणांभोजकी रेणु व्रजमें स्थित हे सो मोकों कहां? जेसें उद्धवजीनें भ्रमरगीतमें कह्यो हे "आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्" (व्रजभक्तनकी चरणरजकूं सेविवेवारे वृंदावनमें जो गुल्म, लता, ओर औषधी तामें कछुहू में होउ काहेतें जो व्रजभक्त दुस्त्यज एसे अपने संबंधिजन ओर वेदमार्गको छोडिकें श्रुतिनके[१] ढूंढवेयोग्य जो मोक्षदाता प्रभुकी पदवी तिनको भजे) या भावमें मग्न होय श्रीहरिरायजी व्रजभक्तनकी चरणरजकी विरहभावना करतहे ओर प्रातःकालमें दधिमंथनको शब्द सुनें सो परममंगलरूप हे सो दशमस्कंधमें कहेहें "गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थयन्। प्रदीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः॥ चलन्नितंबस्तनहारकुंडलत्विष्यत्कपोलारुणकुंकुमाननाः॥ १॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः॥दध्नश्च निर्मंथनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममंगलम् ॥ २॥ (गोपीजन (प्रातःकालमें) उठिकें, दीप करिकें, वास्तुके अर्चन करिकें, दधिमंथन करन लागे ओर रज्जु (नेत) सों खेंचातहें भुजमें कंकणकी माला जिनकी, ओर चलायमान जो नितंब, स्तन, हार, तथा कुंडल

१ व्रजभक्त श्रुतिरूपा हे तातें श्रुतिमें सब छोडिकें भगवानके शरण जाय यह अभिप्राय हे एसो जाननो.

तिनकी कांतियुक्त कपोलमें अरुण कुंकुमयुक्त हे मुख जिनके एसें ब्रजभक्त अत्यंत प्रकाशमान हें दीप जामें एसें मणिनतें वोहोत शोभायुक्त भये ॥ १ ॥ कमलनेत्र (श्रीकृष्ण) कों उच्चस्वरसों गातें एसें व्रजांगनाको शब्द, दधिके निर्मंथनके शब्दकरि मिश्रित [होयके] आकाशकों परसवेलग्यो जाकरि सब दिशाको अमंगल मिटिजातहे ॥ २ ॥) या भावमें मम होय श्रीहरिरायजी दधिमंथनके शब्दकी विरहभावना करतहें ॥ १८ ॥

मूलं-यमुनावालुकादेहसंबंधः क्व जलस्पृशिः । बहिर्मुखत्वसातत्ये तदीयत्वं च मे कुतः ॥ १९ ॥

शब्दार्थः-श्रीयमुनाजीकी वालुकासों देहको संबंध कहां ? श्रीयमुनाजीके जलको स्पर्श कहां ? ओर मोकों बहिर्मुखताको निरंतर भाव हे तब तदीयपनों कहांतें होय ? ॥ १९ ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यमुनाजीकी वालुका कहांहे ? तथा श्रमजलके संबंधवारो परम लीलारस अमृतमय श्रीयमुनाजीको जल कहां ? वह जल ओर वालुकाके रंचक संबंधतें अलौकिक देह सिद्ध होय सो जल ओर वालुकाको संबंध कहां ? सो श्रीगुसाँईजी श्रीयमुनाष्टपदीमें कहेहें " तव तटगतवालुकाः कदाहं सकलनिजांगगता मुदा करिष्ये " (आपके तटमें गई एसी वालुका आनंदसों सर्व अपने अंगमें प्राप्त में कब करूंगो ?) यह श्लोकके अनुसार श्रीहरिरायजी भावाविष्ट भये हें याभांति विप्रयोग भावसों व्रजकी लीलाको अनुभव करी फेरि दैन्य करतहें जो में निरंतर बहिर्मुखही हों ताहीतें मोकों तदीयत्व कहां ? तदीयत्व होय तो तदीयको संग होय तब भावकी वृद्धि होय सो तदीयत्व नांहीहे ॥ १९ ॥

मूलं-परमानंददूरस्थे चित्रं किं दुःखसंततौ ।
पोषकाभावतो नैव दृढः स्वाचार्यसंश्रयः॥२०॥

शब्दार्थः-परमानंद (श्रीठाकुरजी) सों दूरी रहिवेवारेमें दुःखकी परंपरा चले तामें आश्चर्य कहा ? भावके पोषण करिवेवारेके अभावसों अपने श्रीआचार्यजीको यथार्थ आश्रय दृढ नांही हे ॥ २० ॥ टीका-परमानंद श्रीगोवर्द्धननाथजी, सातो स्वरूप, श्रीविठ्ठलनाथजी, ओर अपने उपर विराजते होंय सो स्वरूप यह पुष्टिमार्गमें परमानंदरूप रसात्मक श्रीकृष्ण सेव्य हें एसें श्रीकृष्ण मोतें दूरी हें ताकरिकें मेरे चित्तमें निरंतर दुःख रहत हे एक तो मोमें भाव नांहीहे ओर दूसरो या भावको पोषणकर्त्ताहू कोउ नांहीहे याहीतें श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलको दृढ आश्रय मोमें नांही हे ताकरिकें में निरंतर दुःख पावतहों ॥ २० ॥

मूलं-विषयाभिनिवेशेन प्रेक्षा न विशति प्रभौ ।
जातोऽस्मि सांप्रतं सर्वसाधनाऽभाववानहम्॥२१॥

शब्दार्थः-विषयके अभिनिवेशकरि ज्ञानदृष्टि प्रभुमें नांही प्रवेश करतहें अब सर्वसाधनके अभाववारो में भयो हों॥ २१ ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो में विषयावेशकरि भयों हूं तासों मेरे हृदयमें प्रभु वास नांही करतहें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी संन्यासनिर्णय-ग्रंथमें कहेहें " विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः " (विषयकरि आक्रांत देहवारेनके हृदयमें सर्वथा हरिको आवेश न होय) या भांति विषयको आवेश देखिकें प्रभु हृदयमें नांही स्थित होतहें. ओर मोकों विषयके आवेशतें हरिके दर्शनकी इच्छा नांही होतहे तो प्रभु हृदयमें केसें आवेंगे ? या भांति सर्वसाधनके अभाववारो हूं तातें भाव कहांतें सिद्ध होय ? ॥ २१ ॥

मूलं–निःसाधनत्वं भावे तु विद्यमाने प्रयोजकम् ।
तदभावे केवलं मे दोषायैव न चान्यथा ॥ २२ ॥

शब्दार्थः–भाव विद्यमान होय तब तो निःसाधनपनों प्रयोजक हे परंतु भावको अभाव होय तब केवल दोषके लियेही मेरो निःसाधनपनों हे अन्यथा नांही ॥ २२ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो में भाव विना निःसाधन होय बेठ्यो हूं सगरे सत्कार्य, भगवद्धर्मह छोडि-दियो हे सो निःसाधनपनों अप्रयोजक हे तातें कच्छु कार्य सिद्ध नांही होय सो जगतमें प्रसिद्धही हे जो संसारी भगवद्धर्म नांही करतहे सो कहा निःसाधन हे? तेसेंही ओर संसारीकी नांई में लौकिकासक्तितें जो जगतमें कोउ प्रभुकी सेवा स्मरण सत्कर्म नांही करतहे तातें कहा निःसाधन हें? तासूं भगवानमें तद्रूप भाव भये विना सत्कार्य छोडि निःसाधन होय सो केवल दोषरूपही हे अन्यथा नांहीहे ॥ २२ ॥

मूलं–शरीरेणाऽप्यशक्तस्य क्रिया का वाऽत्र सेत्स्यति ।
यथांधो बधिरो मूको विहस्तः पंगुरुन्मनाः॥२३॥

शब्दार्थः–जेसें अंध होय, बधिर होय, मूक (गूंगो) होय, हाथ-विनाको होय, पंगु होय, बावरो होय तेसें शरीरकरिहू अशक्तहीतें इहां कोन क्रिया सिद्ध होयगी? ॥२३॥ टीका–शरीरमें सामर्थ्य न होय तो लौकिक अलौकिक कच्छु क्रिया न बने तेसें भाव विना सकल साधन जूठो हे ताको दृष्टांत कहत हे, जेसें अंध हे सो कोन प्रकार

१ हृदयमें भाव होय तो निःसाधनपनेतें दीनता होय जो में महा दुष्ट हूं मोमें कच्छु धर्म नांही सो मेरी कहा गति होयगी? एसी दीनता होय एसें निःसाधनपनों प्रयोजक हे. २ भाव नांही अरु साधन सब छोडिदिये तामें तो दोषही लगे यह अभिप्राय हे.

देखे ? बेहरो कहा सुनें ? गूंगो कहा बोले ? हस्तविना कहा किया करे ? पांवविना केसें चले ? ओर बावरो होय सो कहा कार्य करे ? तेसें जो भावरहित हे, लौकिकमें आसक्त हे, सो कोनप्रकार अत्यंत दुर्लभ भावकों पावे ? ओर भाव विना पुष्टिमार्गीय फल सिद्धि नांहीहे सो भगवदीय गायेंहें " भज सखि भावभाविक देव, कोटि साधन करो कोउ तउ न माने सेव ॥ १ ॥ धूमकेतु कुमार मांग्यो कोन मारग प्रीति । पुरुषतें त्रियभाव उपज्यो सबें उलटी रीति ॥ २ ॥ वसन भूषण पलटि पहरे भावसों संजोय । उलटि मुद्रा दई अंकन वरन सूधे होय ॥ ३ ॥ वेदविधिको नेम नांही प्रेमकी पहिचान । व्रजवधू वश किये मोहन सूर चतुर सुजान ॥ ४ ॥ " याप्रकार भावहीतें सब सिद्ध हे सो मोमें भावको लेशहू नांहीहे तातें कच्छू सिद्ध नांही । २३ ।

मूलं–अकामः कामविक्षिप्तो हरिणोपेक्षितोऽधुना ।
विमृशामि सदा स्वांते का गतिर्मे भविष्यति ॥२४॥

शब्दार्थः–भगवद्धर्मकी कामनाकरि रहित हों ओर लौकिक कामनाकरि विक्षिप्त हों अब हरिनें उपेक्षा कीयो हूं सो सदा अपने मनमें विचारूंहूं जो मेरी कहा गति होयगी ? ॥ २४ ॥ टीका–भगवत्कामना जो नानाप्रकारके सेवासंबंधी मनोरथ ताकरि रहित हों मेरो मन प्रभुसेवामें एकक्षणहू नांही लागतहे ओर लौकिक कामना विषयादिक तथा देहके भरणपोषणसंबंधी कामनाकरि ग्रसित हों ताकरि हरि जो श्रीकृष्ण सो मेरी उपेक्षा कीये हें मेरी सुध नांही लेतहें में महादोषको समुद्र हों यातें मेरो त्याग कीये हे "ओर एक दोष मेरेमें सर्वोपरि

१ ईर्ष्याभावको अभिप्राय मूलमें नांहीहे तोऊ बोहोत पुस्तकमें हे तासों लिख्यो हे ओर जितनो मूलतें अधिक दीखे हे तिनमें " " एसे चिन्ह कीये हैं.

भारी हे तातें प्रभु मोकों छोडे सो संतजन जो भगवदीय हें सो सदा ईर्षाभाव करिकें रहित हें जेसें विभीषणकों रावणनें पदसों प्रहार कीयो तोहू विभीषण विनति कीये भली वात कही, ओर कृष्णदासनें श्रीगुसाँईजीके दर्शन बंध कीये परंतु श्रीगुसाँईजी कृष्णदासको भलोही कीये या रीतिसों भगवदीय रहे तो प्रभु प्रसन्न होय. सो में भगवदीयकी ईर्षामें अष्टप्रहर तत्पर हों तातें मेरो त्याग प्रभु कीये हें" सो अब में कहां जाऊँ ? ओर कहा करूं ? अब मेरी कोन गति होनहारहे ? यह बडो दुःख हे ॥ २४ ॥

मूलं–विरक्तवेषिणास्माकमधिकारकृता पुनः ।
कृतं युवतिवश्येन कार्यमेकमनीदृशम् ॥ २५ ॥
कस्याश्चित्सूरतिग्रामे विधवायाश्च संगमात् ।
दुष्टेन स्थापितो गर्भः पातितश्च तदौषधात् ॥२६॥

शब्दार्थः–अपने अधिकारी विरक्तनें फिरि स्त्रीके वश्य होयकें इनकों योग्य नहीं एसो एक कार्य कीयो ॥ २५ ॥ सूरतगाममें कोउ विधवाके संगमतें दुष्टनें गर्भ स्थापन कीयो सो तेसें औषधतें गिरायो ॥ २६ ॥ टीका–भगवद्धर्मसंबंधी दुःख तो मेरे हृदयमें बोहोतहे ओर एक लौकिक दुःख आयके प्राप्त भयो हे सो कहतहों. विरक्त-

१ यह वृत्तांत लिखवेको कारण यह दीखेहे जो संग करनो सो बोहोत विचारिके करनों, उपरतें धर्म देखिके विनाविचारे सहसा भीतरको संबंध नांही राखनों. २ विरक्त होयकें स्त्रीके वश्य भयो तासूं "फिर" एसें लिख्यो. ३ विरक्त होयकें फिर स्त्रीके वश्य होनो सो योग्य नांही. ४ कोउ दुष्टनें गर्भ स्थापन कीयो ओर अधिकारीनें तो औषधादिककी सहायता करिकें गिरायो एसेंहू मूलश्लोकके अनुसार अर्थ होयहे ओर व्रजवासिनके लिखे पुस्तकमें तो अधिकारीनेही गर्भ राख्यो एसो लिख्यो हे तातें वह कार्य तथा गर्भपातको कार्य स्त्रीके वश्य होय कीयो सो अयोग्य कीयो एसे हू अभिप्राय दीखतहे.

वेषी हमारो अधिकारी जाकी जगतमें बहुत वडाई हे ओर में हू वाकों कृपापात्र जानिकें संग कीयो अपनें पास राख्यो. अधिकारी स्त्रीके वश्य भयो. यह कलियुगमें स्त्री मोहिनी हे काहूको धीरज, ज्ञान, विवेक राखत नांही तातें युवतीवश अधिकारी होतभयो सो अयोग्य कार्य कीयो अथवा विरक्त होयके अधिकार लियो सो अयोग्य कार्य कीयो ताकरिकें युवतीके वश भयो हृदयमें काम बढत भयो ॥ २५ ॥ याप्रकार युवतीके वश होय कोई कालमें समय पाय सूरतगाममें विधवाके संग संबंध करतभयो सो कोई या वातकों जानत नांही सो वह विधवा स्त्रीकों गर्भ रहि गयो ताकरिकें वह स्त्री ओर अधिकारी मनमें महादुःखी भये जो अब केसी होयगी ? पाछें दोउ मिलिकें अनेक ओषधिकरिकें गर्भ गिरावतभये सो यह बात सब ठौर प्रसिद्ध सबके जानिवेमें आई ॥ २६ ॥

मूलं–मरणं चोभयोर्मध्ये कस्यचित्स्यात्र संशयः ।
यत्नेन प्रेमजिन्नाम्ना मदापत्तिर्निवारिता ॥ २७ ॥

शब्दार्थः–दोयके मध्यमेंतें एकको मरण होतो यामें संशय नांही, यत्नकरिकें प्रेमजीनामके वैष्णवने मेरी आपत्ति निवृत्ति करी ॥ २७ ॥ टीका–औषध देकें गर्भ गिरायो सो मृतक होयकें गियों ताकरिकें राज्यमें हाकिमकों खबरि भई सो मृत्युसमान दुःख होतभयो यामें संशय नांही ओर कहांतांई लिखो. सो प्रेमजी वैष्णव मेरे संग हतो वानें अनेक यत्न करिकें आपत्ति (दुःख) निवृत्त कीये राजद्वार-कोहू समाधान कीयो सो जानेंगे ॥ २७ ॥

मूलं–विश्वासः कस्य कर्त्तव्य इति खिन्नं मनो मम ।
गृहकार्यं न चलति मनुष्याणामभावतः ॥ २८ ॥

शब्दार्थः–विश्वास कोनको करनों ? एसें मेरो चित्त खेदयुक्त होतहे ओर मनुष्यनके अभावसों गृहको कार्य न चले ॥ २८ ॥ टीका–एसी

वार्ता देखिकें अब विश्वास कोनको करियें ? लौकिक दुःखसंबंधके लिये गृहस्थको छोडिकें विरक्त प्रमाणिक वैष्णवकों संग लियो ताकी तो यह गति होतभई अब कोनकों अपने पास राखियें ? कोनको विश्वास करियें? सो मनुष्य मिलत नांही यह बडोही दुःख हे. परदेशमें जान्यों मनुष्य चाहियें सो मिले नांही ओर विश्वास काहूके उपर आवत नांही, विश्वास विना सुख नांही होत हे ॥ २८ ॥

मूलं–अंतः स्निग्धोऽपि कार्ये तु मद्दोषानुस्मृतेः सदा । प्रायशः प्रेमजिन्नामा वर्त्ततेऽसौ विरक्तवत् ॥२९॥

शब्दार्थः–भीतर स्नेहयुक्त हे तोउ कार्यमें तो मेरे दोषकी पीछें स्मृतिमें यह प्रेमजीनामको वैष्णव हे सो बोहोतकरिकें विरक्तकी नांई रहतहे ॥ २९ ॥ टीका–परमस्नेही मेरे एक इहां प्रेमजी हे जाको लौकिक कार्यमें अथवा अलौकिक कार्यमें कोई प्रकार इनके हमारी लौकिक वैदिक अनेक क्रिया देखिकें मनमें हमारे दोषकी रंचकहू विस्मृति नांही होतहे. सर्व ओरतें हमारेविषे दृढभाव राखतहे एसो भगवदीय मेरे संगमें एक प्रेमजीही हे सो केवल विरक्तकी नांई रहतहे जितनी बनतहे तितनी हमारी टहल करी लौकिकतें न्यारो रहतहे. हे गृहस्थ परंतु शास्त्रमें जेसें विरक्तके धर्म कहेहें तद्वत् विरक्त रहतहे इनके संगतें कछुक मन ठिकानेमें रहत हे ॥ २९ ॥

मूलं–चलितुं यतते तस्माल्लिख्या बहुसमाहितिः । क्षांतोऽपराधः सर्वोऽपि मृषा क्रोधवशस्ततः ॥ ३० ॥

शब्दार्थः–सर्व अपराध सहन कीयो तासूं मिथ्या क्रोधके वश भयो एसो प्रेमजी चलिवेको यत्न करतहें तातें बोहोत समाधान लिखनों

१ विरक्तको अपराध सहन कीयो सो प्रेमजीके मनमें एसें आई जो एसो अपराध क्यों सहन कीयो ? तातें मिथ्या क्रोधके वस भयो हे.

॥ ३० ॥ टीका–सो प्रेमजी अब मेरे पासतें चलिवेको विचार करतहे अब में कोनप्रकार निर्वाह करूंगो ? तातें कच्छुक समाधान लिखोगे. में अपनो दुःख तुमकूं लिखतहूं सो बोहोतकरिकें जानियो अपराध सह्यो हे तातें मृषा क्रोधके वस भयो हे सो तादृशीयको एसो क्रोध नांही चहियें काहेतें जो क्रोध हे सो भगवद्धर्ममें बडो बाधक हे, क्रोधतें भगवदावेश दूरी होय जात हे. ॥ ३० ॥

मूलं–इदानीं तु कृपापूर्ववदस्तीति भयोज्झितैः ।
भवद्भिः सर्वथा लेख्यं पत्रं सर्वैः पृथक् पृथक् ॥
(इदानीं तु कृता (कृपा) पूर्वंमनोवृत्तिस्तु सर्वथा ।
तस्माद्भयोज्झितैः सर्वैः पत्रं लेख्यं पृथक् पृथक्) ३१

शब्दार्थः–अब तो पूर्वकी नांई कृपा हे तासों भयरहित (होयकें) तुह्मारे सबने सर्वथा जुदेजुदे पत्र लिखने अथवा अब तो पूर्वकी मनोवृत्ति तथा कृपापूर्वक मनोवृत्ति सर्वथा कीनी हे तासों भयरहित सबें होयकें जुदेजुदे पत्र लिखनें ॥ ३१ ॥ टीका–अब तो पूर्व जेसी कृपा

१ कोई एसें कहेहे जो प्रेमजी आपकी पास अधिकारी हतो विनेनेही अयोग्य काम कीयो तासूं आपनें कछु ठपका दियों तातें क्रोध करिकें वह चलिवेको विचार करनलाग्यो तब आपके मनमें खेद होयवे लाग्यो जो प्रेमजी अधिकार करतहे ताकरिकें हम निश्चिंत होय निरोधमें मग्न रहतहे लौकिक आपत्ति (दुःख) इनके यत्नकरि निवृत्त होतहे सो चल्यो जायगो तो में लौकिक कार्यमें कोनप्रकार निर्वाह करूंगो ? तातें कोउ समाधान लिखे ओर वह रहिजाय तो आछो तासों आप एसें लिखतहें. परंतु यह अभिप्राय छोटे शिक्षापत्र तथा बडे शिक्षापत्रमें जो व्रजवासी लेखकनें लिख्यो हे तामें नांही दीसतहे. २ व्रजवासिनके लिखे पुस्तकमें मेरो अपराध क्षमा करियो ओर तुम क्रोधवस मति होइयो एसें लिख्यो हे सो मूलसों विरुद्ध हे तासों इहां नांही लिख्यो हे. ३ पूर्वकी नांई कृपा हे एसें लिख्यो हे सो श्लोक ३० के टीपण २ के अनुसार दीखेहे एसे कोउ कहतहें. ४ सूरतकी हकीकत भई ताकी पूर्व जेसी वृत्ति हती तेसी वृत्ति कीनी हे तासों पत्र आयवेसों वृत्ति स्थिर होयजायगी. ५ तुह्मारे कृपा राखनी एसें व्रजवासीके पुस्तकमें विस्तारसों लिख्यो हे सो मूलसों विरुद्ध हे तासों इहां नांही लिख्यो हे.

राखतहते तेसी हे तासों हमारे उपर स्नेह राखि भय छोडिकें पत्र लिखने काहेतें जो हम परदेशमें हें तातें मनुष्य पास चहियें सो जान्यो मनुष्य चल्योजाय फिर दूसरो राखनो पडे तातें याके चित्तको समाधान होय ताही भांति सब न्यारे न्यारे पत्र लिखियो ॥ ३१ ॥

मूलं–अतिप्रशंसया चित्तं यथा तस्य स्थिरं भवेत्।
मुखरोऽपि समीचीनो मुख्यदोषविवर्जितः॥३२॥

शब्दार्थः–जेसें इनको चित्त स्थिर होय तेसें अति प्रशंसा करिकें पत्र लिखनें काहेतें जो यह मुखर (बोहोत बोलिवेवारो) हे तोहू मुख्यदोष [अविश्वास तथा अन्याश्रय] तें १विशेषकरिकें वर्जित हे तासों आछो हे ॥ ३२ ॥ टीका–अति प्रशंसा करिकें इनको समाधान होय तेसें पत्र लिखियो जेसें इनको चित्त स्थिर होय. यह मुखरतादोषवारो हे तोहू मुख्यदोषें वार्मे नांहीहे तासों आछो हे ॥ ३२ ॥

मूलं–वैद्यकेन गृहेऽस्माकं विशेषपरितोषणात्।
भवत्संगात्कंदुकवत्पतितः पुनरुत्थितः ॥ ३३ ॥
विशेषः प्रेमजित्पत्राद्बोध्यः ॥

शब्दार्थः–तुह्मारे संगतें वैद्यक करिकें अपने घरमें विशेष संतोष हे तासों कंदुककी नाँई [गेंदकी नाई] गिन्यो फिर उठ्यो हे ॥ ३३ ॥ विशेष प्रेमजीके पत्रतें जाननों ॥(३३)॥ टीका–यह अपने घरमें वैद्य हे सगरे रोगके ओषध जानतहे तातें अपने घरके कामको हे यह वैद्यनें संतोष कीयो कंदुक जेसें गिरतहे फिर उंचो जातहें तेसें यह

१ विशेष करिकें वर्जितको अभिप्राय यह हें जो अविश्वास तथा अन्याश्रयको अंशहू नाहीहे. २ व्रजवासीनके लिखे पुस्तकमें विरक्त उहां आयो हे ताको समाधान करियो तुम इनकों कछु कहेंगे तो तुमकों मुखरता दोष होयगो एसें बोहोत लिख्यो हे सो मूलसों विरुद्ध हे तासों इहां नांहीं लिख्यो हे. ३ कलम २ प्रमाण लिखे पुस्तकमें याको दोष मनमें मति विचारियो याकों संतोष करियो एसें बोहोत विस्तारसों लिख्यो हे सो मूलसों विरुद्ध हे तासों इहां नांहीं लिख्यो हे.

विरक्त गियों फिर वैद्यककरि उज्यों सो तुह्मारे सत्संगको फल हे विशेष समाचार प्रेमजीके पत्रतें जानिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चत्वारिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ४० ॥

शिक्षापत्र ४१.

अब एकचत्वारिंश शिक्षापत्रमें भगवदीयनकों प्रभुकी सेवामें उपयोगिपनेतें लौकिक कार्य करनो, भगवानमें शुद्ध भाव स्थापन करनो, लौकिकमें आवश्यक होय तितनोही द्रव्यको विनियोग करनो, या मार्गमें सेवाही साधन हे ओर सेवाही फल हे, या जन्ममें जो तनुजा वित्तजा सेवा हे सो ऐहिक फल हे ओर अलौकिक देहतें जो सेवादिक करनों सो पारलौकिक फल हे, ताके लिये सत्संग करनों, प्रभुके दर्शनादिकके विषे आर्ति राखनी, तदीयनकी चिंता हरिही करतहें तोहू जो चिंता करे सो मूर्ख हे, तासों श्रीआचार्यजीके दासनकों मेनें जो शिक्षा लिखी हे तापें रहिकें प्रभुकी सेवा करनीं ताहीकरि निश्चय सर्व सिद्ध होतहे यह निरूपण हे। यह पत्रमें श्रीहरिरायजी सगरो पुष्टिमार्गीय सिद्धांत वर्णन करतहें सो समस्त पुष्टिमार्गीय भगवदीयनकों धारण करिवेयोग्य हे यह निरूपण हे ॥

मूलं—लौकिकं सकलं कार्यं प्रभुसेवोपयोजनात्।
परं सर्वत्र पूर्वं हि प्रभुश्चिंत्यो न लौकिकम् ॥ १ ॥
न रोचते हरेः स्वानां लौकिकासक्तियुङ्मनः।
तदोपेक्षावशात्तस्य न सिद्ध्यत्यपि लौकिकम् ॥२॥

शब्दार्थः–सब लौकिक प्रभुकी सेवामें उपयोगि सो करनों परंतु सब ठिकाने सब कार्यमें प्रथम प्रभुही चिंतन करिवेयोग्य हैं लौकिक चिंतन करिवेयोग्य नांही ॥ १ ॥ काहेतें जो हरिकों अपने जननको लौकिक आसक्तियुक्त मन रुचत नांही तब इनकी उपेक्षाके वसतें लौकिकहूसिद्ध नांही होतहें ॥ २ ॥ टीका–अब श्रीहरिरायजी पुष्टिमार्गीय धर्म कहतहें-जो भगवदीय हें सो जितनो लौकिक कार्य हे सो सब प्रभुकी सेवामें विनियोग करें यह सर्वोपरि मुख्य धर्म हे. घरहू भगवत्सेवार्थ, देहसंबंधी, कुटुंब, इंद्रिय, सबको व्यवहार भगवत्सेवार्थ, काहूमें स्नेह सो केवल भगवत्सेवार्थ, याभांति सब भगवत्सेवाके उपयोगसों कार्य करे, स्त्रीसंगहू कृष्णभक्त पुत्र होय या भावसों करे जेसें निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः " भगवद्भक्त पुत्रमें प्रीति राखे, भगवद्धर्ममें प्रतिबंधक होय ताको त्याग करे, अनुकूल होय ताको संग्रह करे, जहां जहां मनकी वृत्ति दोरे, जो जो सुने, देखे, सो सब प्रभुकी लीलाही जाने, क्रीडाभांड जाने, अपने प्रभुकोही चिंतन करे मनमें लौकिक न विचारे तब प्रभु प्रसन्न होय. तहां कोई संदेह करे जो लौकिक तो अत्यंत प्रबल ओर लौकिक कीयें विना चलतहू नांहीहे तातें लौकिक समय लौकिक करे ओर भगवत्सेवाके समय सेवा करे तो निर्वाह होय, प्रभु तो कृपालु हैं सो थोडोसो बनेसो बहुत मानेंगे तातें सकल लौकिक छोडिवेको कहा प्रयोजन हे ? या प्रकार कोई संदेह करे तहां कहतहें ॥ १ ॥ अपने स्वकीय भक्त हें सो लौकिक कार्य करे तो प्रभुकों न सुहाय तब प्रभु उपेक्षा करे उदासीन होयजाय, तब सेवामें मनको उद्वेग होय, अनेक कार्यमें मन दोरे तब प्रभु प्रतिबंध करे सो सेवाफलमें श्री-

१ सेवामें उद्वेगादि प्रतिबंधकी बात मूलमें नांहीहे तोहु बोहोत पुस्तकमें हे तासों लिखी हे.

आचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः । बाधकानां परित्यागो भोगेप्येकं तथाऽपरम् " ॥ यह सबनके मूल देहसंबंधी भोग हे, तातें खान, पान, विषय, इंद्रियनको सुख, न चाहे तवही भगवत्सेवा भलीभांतिसो बने, जो करे सो सेवार्थ करे भोगमें मन न राखे देहसंबंधी सुखदुःखमें मनकों राखे तो सेवामें उद्वेग होय पाछें प्रभु अप्रसन्न होय प्रतिबंध करे सो सेवाहू न बने ओर प्रभुकों छोडिकें लौकिकमें आसक्त होय कार्य करे सोहू कार्य सिद्ध न होय नानाप्रकारके दुःखकों पावे तातें मनकों लौकिकासक्त सर्वथा न करे प्रभुकी सेवाहीमें निरंतर मन करे ॥ २ ॥

मूलं-शुद्धभावः प्रभौ स्थाप्यो न चातुर्यं प्रयोजकम् । अंतर्यामी समस्तानां भावं जानाति मानसम् ॥३॥

शब्दार्थः-शुद्ध भाव प्रभुमें स्थापन करनों चहियें चतुराई कारणरूप नांही, समस्तजीवनके अंतर्यामी (प्रभु) मनमें रहे एसे भावकों जानतहे ॥ ३ ॥ टीका-प्रभुसंबंधी कार्यमें शुद्ध भावकों स्थापन करे सदा एकरस प्रीतिपूर्वक करे काहूको दिखावेके लिये न करे जब कोई वैष्णव आवे तादिनां अनेक चतुराईसों सुंदर शृंगार करे, जप, पाठ आछीआछी वार्त्ता करे, जा दिन कोई न होय तादिन साधारण करे यह सब चतुराई जाननी, तेसें न करे. जेसें श्रीगुसाँईजी आगरे पधारे तब एक वैष्णव पठायो. अपनें घर सेवा चतुराईसों करी तहां श्रीगुसाँईजी चित्रामनवत् कहे, तातें चतुराई हे सो सब अप्रयोजक [मिथ्या] हे. तामें कछु फलसिद्धि नांहिहे केवल प्रतिष्ठामात्र हे सो लोकप्रतिष्ठा भगवद्भावकी नाशक हे. प्रभु सर्वके हृदयकी जानतहें अंतर्यामी हे तहां मनको कपट कछुचलत नांहिहे सो विवेकधैर्याश्रयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव

च " यह वचनतें प्रभु सब ठोर सर्वसामर्थ्ययुक्त हें या भावसों जानिके करे तेसोही फल देय तातें लोभार्थ प्रतिष्ठार्थ कपटसंयुक्त कबहू न करे जितनी रीति बंधी हे तितनी पुष्टिमार्गकी मर्यादा रीतिसों करनी, लौकिक वैदिक कछु कामना मनमें न राखनी ॥ ३ ॥

मूलं-शुद्धभावे तदीयं तु लौकिकं साधयेत्स्वयम् ।
तत्साधितमविघ्नेन सर्वं सिद्ध्यति नान्यथा ॥४॥

शब्दार्थः-शुद्ध भाव होय तो ताको लौकिक तो आप (प्रभु) सिद्ध करतहैं. प्रभूनें सिद्ध कीयो सो विघ्न बिना सर्व सिद्ध होतहे अन्यथा नांही होतहे ॥ ४ ॥ टीका-कोउ कहे शुद्धभाव प्रभुमें राखि सर्व प्रभुको निवेदन करे पाछे लौकिक द्रव्यादिक बिना सेवा कोन प्रकार करे? यह संदेह होय तहां कहतहें जो वैष्णव शुद्ध भावतें प्रभुमें मन लगाय तत्पर होय ताको शुद्धभाव देखिके प्रभु लौकिक वैदिक सकल कार्य सिद्ध करतहें. सो संतदासकी वार्तामें प्रसिद्धही हे जो बीश टकाकी पूंजीमें प्रभु सर्वकार्य सिद्ध करते, पद्मनाभदासके छोलामें सकल पदार्थ सिद्ध करते, तातें शुद्धभावसों करे. तहां कोई कहे जो लौकिकवैदिकवारे लोक विघ्न करे तहां केसें करे ? एसो संदेह होय तहां कहतहें जो प्रभु अविघ्नतें सर्व सिद्ध करतहें सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत् । यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ॥ १ ॥ बाधसंभावनायां तु नैकांते वास इष्यते। हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः॥२॥" [सेवामें अथवा कथामें जाकों दृढ आसक्ति होय ताको यावज्जीवं (जीवे तहांलों) कद्दूंहू नाश नांही एसी मेरी मति हे ॥ १ ॥ एकांतमें रहिवेमें बाध होयवेकी संभावना होय तो एकांतमें वास नांही इच्छित होत हे. ओर घरमें रहिवेमें बाध आयवेकी शंका होय

तहां कहतहें जो हरि (भक्तनके दुःखकों हरिवेवारे) सर्व ओरतें रक्षा करेंगे संशय नांही॥२॥] प्रभुके कार्य सेवादिमें दृढ भाव होय सब ठोरतें अपनों मन खेंचि सेवामें अथवा कथामें लगावे एसे भक्तकी सर्व ओरतें प्रभु निश्चय रक्षा करें जेसें अंवरीषकों दुर्वासाके शापतें रक्षा कीये, तातें प्रभुके धर्ममें मन लगाय तत्पर होय तो प्रभु निर्विघ्नतासों सर्व सिद्ध करें अन्यथा न करें. ओर अन्यथा निर्विघ्नतासों कार्य सिद्ध न होय तातें यह लोक तथा परलोकमें एक प्रभुही साथी हें यह ज्ञान राखे ॥४॥

मूलं-आवश्यको हि कर्तव्यस्तदीयैर्लौकिकव्ययः ।
अनासक्तो लौकिकं तु वर्द्धते न च बाधते ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-तदीयनकों जितनों आवश्यक होय तितनोंही लौकिकमें व्यय करनों आसक्ति न होय तो लौकिक तो बढतहे बाध नांही करतहे ॥५॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो मुख्य तो यहही हे जो लौकिक न करे परंतु जो लौकिक न छूटे तो आवश्यक होय तितनोंही लौकिक करे वामें आसक्त न होय. मनकी आसक्तिही बाधक हे, आसक्ति विना कितनोंहू लौकिक वढे सो सर्वथा बाधक न होय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी निवंधमें कहेहें " गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत्यक्तुं न शक्यते । कृष्णार्थं तत्प्रयुंजीत कृष्णोऽनर्थस्य मोचकः " (सर्वात्मकरि गृह छोडिवे योग्य हे सो छोडिवेको समर्थ न होय तो वह गृह श्रीकृष्णके अर्थ लगावे. काहेतें जो श्रीकृष्ण अनर्थतें छुडायवेवारे हें) ओर भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें " अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं

१ देह, इंद्रिय, मन, सब इहतें न्यारे होयजाय सो सर्वात्मकरि त्याग जाननो. जामें घरमें रंचकहू संबंध किंवा प्रीति न रहे.

२ जहां अहंता ममता लगे सो संसार जाननो. सो घर श्रीकृष्णकों निवेदन करे तब अपनी अहंता ममता छूटे सो संसार छूट्यो जाननो.

पूजया श्रवणादिभिः । व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा ” (अव्यावृत्त होयकें पूजाकरि श्रवणादिकनतें श्रीकृष्णकों भजे, ओर व्यावृत्तहू हरिमें श्रवणादिकमें चित्तको सदा यत्न करे) यह वचनसों जो तीव्र वैराग्य होय तो सर्वत्यागपूर्वक प्रभुको भजन करे ओर त्याग होय न सके तो सगरो घर श्रीकृष्णकी सेवामें विनियोग करे. व्यावृत्तिरहित रहे सो तो उत्तम हे परंतु एसें न वने तो एसी व्यावृत्ति करे जामें निरंतर हरिमें चित्त रहे. या प्रकार रहे तो बाधक न होय नही तो बाध करे ॥ ५ ॥

मूलं–अन्यथा बृद्धमप्येतद्वाधते तदुपेक्षया ।
कृष्णसेवैकविषये मुख्यं चेतो निधीयताम् ॥
अन्यत्तदुपयोगित्वात्क्रियतां न तु मुख्यतः ॥६॥

शब्दार्थः–उपर कह्यो तेसें न करे तो गयो एसो लौकिकहू प्रभुकी उपेक्षातें बाध करे तासों श्रीकृष्णकी सेवारूप मुख्य विषयमें चित्तकों स्थापन करनों, ओर दूसरो सेवाके उपयोगिपनेतें करनों मुख्य-तासों न करनों ॥ ६ ॥ टीका–लौकिक वैदिकमें चित्त बहुतही बढे सो प्रभु तो अंतःकरणमें विराजतहें सो जब लौकिकमें आसक्ति देखें तब उपेक्षा करी उदासीन होयजाय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी संन्यास-निर्णयमें कहेहें “ विषयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः ” जब देहीको मन इंद्रियनको विषयमें आसक्त प्रभु देखे तब अपनों भगवद्भावरूप रसको आवेश वामेतें खेंचि लेय. ताकों केवल लौकिकासक्ति होय तब प्रभु उपेक्षा करी त्याग करिदेय तातें सर्वथा लौकिक विषयमें मन आसक्त न करे प्रभुकी सेवासंबंधी कार्य जानि प्रभुसंबंधी विषय धारण

१ लौकिक वैदिक छोडि श्रीकृष्णकों भजे सो अव्यावृत्त होयके भजन जाननों सो न बने तो निरंतर हरिमें चित्त राखनों ताकरि हरि सर्व दुःखहर्ता हें सो बाधक नांही होयवे दें यह जाननों.

करे जो फलाने उत्सवकों यह चहियें ताअर्थ यत्न करे फलानी सामग्री प्रभु आरोगें तो आछो, फलानो वागो, वस्त्र, आभूषण प्रभुमें विनियोग होय तो भली, जा प्रकार हरिविषयक राग होय सोई वार्त्ता मनमें धरे, ओर कथाहू एसी सुनें जो जाके सुनेंतें लौकिकमें वैराग्य दृढ होय ओर प्रभुके धर्ममें अनुराग दृढ होय. तातें कृष्णसेवार्थ चित्तमें विषयको आवेश होय येही सर्वोपरि मुख्य फल हे सकल पदार्थ प्रभुकोही जानें अपनी सत्ता कछू न जानें सेवार्थ प्रभुको प्रसादी दासधर्म जानि लेय अपनें शरीरको भोग न जानें यह उत्तम भगवदीयके लक्षण हे ॥ ६ ॥

मूलं-सेवैव साधनं सेवा फलमैहिकमत्र सा ।
सेवा लौकिकदेहेन संभवेत् पारलौकिकम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-सेवाही साधन हे ओर इहां सेवा होय सो ऐहिक फल हे तथा येही अलौकिकदेहकरि होय सो पारलौकिक फल हे ॥ ७ ॥ टीका-प्रभुकी सेवाही साधन ओर सेवाही फल हे येही पुष्टिमार्गीयकों सर्वोपरि कर्त्तव्य हे. मर्यादामार्गमें साधन न्यारो तथा फल न्यारो हे ओर पुष्टिमार्गमें साधन तथा फल एकही हे तातें श्रीहरिरायजी कहतहें जो प्रभुकी सेवा फलरूप सर्वोपरि जानिकें करे साधन न विचारे. काहेतें जो साधनरूप विचारे तो ज्ञानमार्गीय होयजाय. जेसें श्रीकपिलदेवजी माता प्रति ज्ञानकी भावना करी, नख शिखतें प्रभुमें मन लगाय, पाछें मन निकारि निर्गुणकी भावना करें सो न्यून फल हे. तातें सेवा साधनरूप जाने तो मोक्षफल होय तासों सदा फलरूप जानि सेवा करे सो सेवाफलकी भावना अहर्निश चित्तमें राखे येही फल पुष्टिमार्गमें हे सो इहां लौकिकदेहतें सेवा होय सो ऐहिक फल जाननों ओर अलौकिक देहतें सेवा होय सो पारलौकिक फल जाननों ॥ ७ ॥

१ व्रजवासीनके लिखे पुस्तकमें अन्यदेवके विनियोगकी तथा नृगराजाकी बात लिखी हे सो मूलसों विरुद्ध जानि इहां नांही लिखी हे.

मूलं–तदर्थमेव कर्त्तव्यः सत्संगो भाववर्द्धकः ।
अनिंधनो वह्निरिव भावः शाम्येत्तु लौकिकात् ॥८॥

शब्दार्थः–ताकेलियेही भावकों बढायवेवारो सत्संग करनों काहेतें जो ईंधन विना अग्नि जेसें शांत होयजाय तेसें लौकिकतें भाव शांत होय जाय ॥८॥ टीका–भगवदीयको सत्संग न भयो तब सेवाको भाव हृदयारूढ न होय तब सेवा क्रियावत् होयजाय तातें ब्रह्मसंबंधकरि पुष्टिमार्गीय भगवदीय सेवामें तत्पर होय सत्संग करे. सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः" या प्रकार ब्रह्मसंबंधकरि पुष्टिमार्गीय भगवदीयके संग निवेदनको स्मरण करे ओर अन्यमार्गीय आछो होय तोहू वाको संग न करे, उपर ३५ मे शिक्षापत्रके प्रारंभमें कहेहें " तदीयानां महद्दुःखं विजातीयेन संगमः । संभाषणं सजातीयैरसंगो भाषणं च न " विजातीयनको संग तथा इनही साथ संभाषण ओर सजातीयनको संग तथा इनके साथ भाषणहू नही येही तदीयनकों बडो दुःख हे. दोऊ एक मिले तो रस उपजे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " महतां कृपया यद्वत्कीर्त्तनं सुखदं सदा । न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् " (भगवदीयनके संग कीर्त्तनमें बडो सुख आवतहे जेसें घृतयुक्त भोजनके स्वाद जेसो स्वाद लगतहे ओर लौकिककी वार्त्तामें रूखे भोजनके स्वाद जेसो स्वाद लगतहे.) तदीयके मुखतें सुनें तो दिनदिन भावकी वृद्धि होय ओर लौकिकके मुखतें सुने तो पेट तो भरे परंतु रूखो भोजन जेसो होय, यह भाव विचारि पुष्टिमार्गीय भगवदीयसों मिलिकें सेवा स्मरण करे तो भावकी वृद्धि होय जेसें अग्निमें काष्ठादिक न लगावे तो अग्नि शीतल होयजाय तेसें भगवद्भाव अग्निरूप हे तामें सत्संगरूप इंधन न लगावे तो भावरूप अग्नि शांत होय जाय ओर जो

भगवदीयको संग होय तो सगरो भाव अग्निकी नाँई बढे, ओर लौकिकको संग होय तो जल अग्निकी नाँई भावको नाश करे तातें भगवदीयको संग कर्तव्य हे ॥ ८ ॥

मूलं–आर्तिरेव सदा स्थाप्या हरिसंदर्शनादिषु।
स्वास्थ्यं तु लौकिकेनैव ददाति करुणानिधिः॥९॥

शब्दार्थः–हरिके सुंदर दर्शनादिकमें आर्तिही सदा स्थापन करनी. करुणाके निधिरूप प्रभु लौकिकमें स्वस्थता नांही करेंगे ॥ ९ ॥

टीका–या पुष्टिमार्गमें आर्ति हे सोही सर्वोपरि फल हे, तातें प्रभुके दर्शनकी आर्ति राखनी ताकरि प्रभु कृपा करें सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें " क्रियमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ सर्वानंदमयस्यापि कृपानंदः सुदुर्लभः " जेसें काष्ठके भीतर अग्नि हे सो मथनतें बाहिर निकसे तेसेंही प्रभुके दर्शनार्थ क्लेश करे तो प्रभु बाहिर प्रकटें, सबके आनंददाता प्रभु सब ठोर हे सो अपनें जीवकी आर्ति देखि बाहिर प्रकट होय ओर सर्व आनंदमय प्रभु हें तोहू कृपानंद परम दुर्लभ हे भक्त-नही पर कृपा करतहें तातें हरिदर्शनकी आर्ति हृदयमें स्थापन करनी. लौकिकमें आर्ति न राखे काहेतें जो प्रभु लौकिकमें स्वस्थता करें तो जीव बहिर्मुख होय जाय तातें आप करुणानिधि हे सो लौकिकमें स्नेह छुडाय अपनेंमें लगावतहे. जब अपनेंमें चित्त लग्यो देखें तब प्रभु स्वरूपानंदको अनुभव करावे तातें सर्व छोडिके एक प्रभुमेंही स्नेह जोडे सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें उद्धवजी प्रति श्रीभगवान् कहेहें " त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु। मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् " (हे उद्धव ! तू तो सर्व स्वजनबंधुमें स्नेहको त्यागकरिकें मोमें संपूर्ण रीतिसुं मनकूं आवेशयुक्त करकें सब ठोर समदृष्टि राखिकें भूमिमें विचरे तो तोकों कच्छू भय नांही ॥ ९ ॥

मूलं-तदीयानां स्वतश्चिंतां कुरुते पितृवद्धरिः ।
पुनश्चिंतां प्रकुर्वाणां मूर्खा एव न संशयः ॥ १० ॥

शब्दार्थः-हरि (सबनके दुःखहर्त्ता प्रभु) तदीयनकी चिंता पिताकी नाँई आपतेंही करतहें फिर चिंता करिवेवारे मूर्खही हैं संशय नांही ॥ १० ॥ टीका-तदीयनकों अपनी चिंता तथा देहसंबंधी चिंता, यह लोक परलोकसंबंधी कछुह चिंता नांही कर्त्तव्य हे. काहेतें जो जेसें पिता पुत्रके पालनकी चिंता राखे तब पुत्रकों कछु भय नांही या प्रकार प्रभु अपने भक्तनकी चिंता करतहे. तोहू कोउ भक्त जो अज्ञान-करि चिंता करतहें सो सर्वथा मूर्ख हे यामें संशय नांही ॥ १० ॥

मूलं-तस्मादाचार्यदासैस्तु मच्छिक्षायां सदा स्थितैः ।
सेव्यः प्रभुस्ततो भद्रमखिलं भावि सर्वथा ॥ ११ ॥

शब्दार्थः-तासों श्रीआचार्यजीके शरण आय दास भये, ओर मेनें जो शिक्षा लिखी हे तामें सदा स्थित हे एसे वैष्णवनकों तो प्रभुही सेव्य हें तातें समग्र सर्वथा सिद्ध होयगें ॥ ११ ॥ टीका-श्रीआचार्यजी वल्लभाचार्यजीके जो दास हे सो निरंतर यह मेरी शिक्षा अपने हृदयमें धारण करे तिनहीके अर्थ इतनो यत्न कीयो हे जो अनेक धर्म हे सो अधिकारि भेदकरि न्यारे न्यारे वताए हें ओर भक्तिमार्गमेंहू पाठ, गुण-गान, वार्त्ता, श्रवण, तिन सबनमें मुख्य प्रभुकी सेवा हे तामें प्रभुको सन्मुखत्व हे सेवा विना मुख्य फलको अधिकार न होय, तातें यह मनमें जाननो जो कोई प्रभुकी सेवा करतहें तिनके सकल कल्याण होय, कार्य तथा पुष्टिमार्गको फल होनहार हे तिनके लिये यह सर्वोपर निश्चय सिद्धांत भयो. (अब श्रीगोपेश्वरजी कहतहे जो) धन्य हरिजीवनदास ! तिहारे हृदयमें श्रीहरिरायजी आय मेरो दुःख

दूरी कीयो ओर यह शिक्षापत्रकी टीका मेरी कृति मति जानियो मेरे हृदयमें प्रविष्ट होय श्रीहरिरायजी कीये हे. तातें श्रीहरिरायजीके हृदयमें श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसाँईजी निरंतर बिराजतहें तातें यह भाव प्रकट भयो हे सो तुम परम चतुर हो तातें यह रत्न अत्यंत गोप्य राखियो काहेतें जो जहां तहां दिखायवेयोग्य नांही हे ॥ ११ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकचत्वारिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ४१ ॥

भावस्वरूपनिरूपणम् ॥

अब मूलश्लोकके एक पुस्तकमें अडतीसमो शिक्षापत्र नवीनही ह जो काहू पुस्तकमें नांही. तासों शिक्षापत्रके भीतरको नांहीहे तथापि श्रीहरिरायजीकृत हे ओर इनके अभिप्राय पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों जानिवेयोग्य हे तातें वह मूलश्लोक तथा उनके अर्थ लिखतहें.

मूलं—रसात्मकतया सिद्धः परमात्मा श्रुताविति ।
संयोगविप्रयोगाभ्यां शृंगाररसतो हरिः ॥ १ ॥

अर्थः—श्रुतिमें रसात्मकताकरि परमात्मा (श्रीकृष्ण) सिद्ध हे तासों संयोग ओर विप्रयोग भेदतें शृंगार रसतें सरस हरि हे. काहेतें जो वदमें कहेहें जो आप रसरूप हें ओर ग्रहण करिकें आनंदयुक्त होयहें तातें आप आनंदघन हें सबरसमें शृंगाररस मुख्य हे सो शृंगार संयोगविप्रयोगभेदसों दोय प्रकारको हे वह दोय प्रकारके शृंगारकरि प्रभु सरस हें ॥ १ ॥

मूलं-धर्मधर्मिविभेदेन तावपि द्विविधौ मतौ ।
धर्मरूपस्तु संयोगो बहिःप्राकट्यपालितः ॥
परोक्ष आंतरो यस्तु स धर्मित्वेन संमतः ॥ २ ॥
वियोगोऽपि तथा यस्तु प्रभुप्राकट्यसाधकः ।
स्वतंत्रफलरूपो यः स्वरूपावेशतो हरेः ।
धर्मिरूपः स विज्ञेयो नाविर्भावप्रयोजनम् ॥ ३ ॥

अर्थः-संयोग ओर विप्रयोगहू धर्म ओर धर्मी या भेदकरि दोय प्रकारके हें तामें बाहिर प्रभुके प्राकट्यतें सिद्ध जो संयोग हे सो धर्मरूप हे ओर परोक्षमें [हृदयकी भीतर प्रभु पधारे तब] भीतरको संयोग हे सो धर्मिपनेतें मान्यो हे ॥ २ ॥ तेसें विप्रयोगहू जो प्रभुके प्राकट्यकों साधिवेवारो हे सो धर्मरूप हे [जेसें रासपंचाध्यायीमें ब्रजभक्तनको विरह भयो तब प्रभु प्रकटे] ओर हृदयमें प्रभुको आवेश होयजाय तासों जो विप्रयोग स्वतंत्र फलरूप हे सो धर्मिरूप जाननों (जेसें) ब्रजभक्तनको विरहदशामें हे सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें भगवान् उद्धव प्रति कहेहें "ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् । यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे " [मेरेमें स्नेहकरि बांधी हे बुद्धि जिनने एसे गोपीजन, अपने देहकों, परलोककों, तथा यह जगतकों नांही जानत हते. तहां दृष्टांत कहतहे जेसें मुनि समाधिमें कछु ओर अपनो नामरूप नांही जानतहे ओर समुद्रके जलमें नदी मिल गई फिर वह अपनो (जुदो) नाम के रूप नांही जानतहे तेसें गोपीजन ओर कछु नांही जानत हते] या प्रकार विप्रयोगमें भगवदावेश होयजाय सो विप्रयोग धर्मिरूप हे तामें आविर्भावको प्रयोजन नांही ॥ ३ ॥

मूलं-बहिःसंवेदनं वापि तदसंवेदनं तथा।
तयोरवस्थाद्वितयं भावेनैव न चान्यथा ॥ ४ ॥

अर्थः-अथवा जा विप्रयोगमें बाहिरको ज्ञान रहे (अर्थात् सर्व प्रपंचको ज्ञान रहे) सो धर्मरूप विप्रयोग है, ओर जामें यह ज्ञान न रहे (अर्थात् भगवन्मय चित्त होयजाय ओर कछु जाने नहीं) सो धर्मिरूप विप्रयोग है. यह दोय प्रकारके विप्रयोगकी दोय अवस्था भावकरिकेंही हे अन्यथा [भाव विना] नांहिहे ॥ ४ ॥

मूलं-वियोगात्मस्वरूपेण संयोगाभाववद्द्वयम्।
बहिःसंवेदनाभावे तत्र साक्षात्तथा क्रिया ॥ ५ ॥
तदासंवेदने विप्रयोगात्तुभव एव हि।
एवं सततं द्वावेव स्वतंत्रा भक्तिरुच्यते ॥ ६ ॥

अर्थः-विप्रयोगात्मक स्वरूप करिकें धर्म ओर धर्मिरूप दोय अवस्था संयोगके अभाववारी हे वामें संयोग नांही हे (तामें) जो बाहिरके प्रपंचको ज्ञान न रहे एसो भगवदावेश होय जाय तो यह विप्रयोगात्मक स्वरूपमें साक्षात् तेसी क्रिया हे. संयोगमें जितनो आनंद हे तथा जेसी क्रिया हे ताप्रमाण यह विप्रयोगमें हे ॥ ५ ॥ विप्रयोग होय तब बाहिरके प्रपंचको ज्ञान रहे तो केवल विप्रयोगकोही अनुभव होय भगवदावेशको अनुभव न होय एसें निरंतर दोय प्रकारको विप्रयोग हे सोही स्वतंत्र भक्ति कही हे ॥ ६ ॥

मूलं-भावरूपः स्वरूपात्मा निरुद्धः पूर्ण एव सः।
धर्मरूपवियोगेऽपि प्रविशंति गुणा हरेः ॥ ७ ॥
धर्मिरूपे तत्र कृष्णः कोशवत्प्रविशेत्पुनः।

यथा (भगवदाविष्टा मूर्तिः) भगवदावेशो
मूर्तिकोशे हरेस्तथा ॥ ८ ॥

अर्थः—विप्रयोगात्मक प्रभु भावरूप हे सो हृदयमें निरुद्ध भये सो पूर्णही हे ओर धर्मरूप विप्रयोगमें[१] हरिके गुण वामें प्रवेश करतहें॥७॥ ओर धर्मिरूप वह विप्रयोगमें मूर्तिकी नाँईं श्रीकृष्ण प्रवेश करतहे. जेसें मूर्तिरूपमें भगवदावेश होत हे अथवा भगवदावेशवारी मूर्ति रूपमें हे तेसें वामें हरिको आवेश होतहें ॥ ८ ॥

मूलं—तेषु भावद्वयं सिद्धं स्त्रीभावः सहजः पुरा ।
आविष्टभगवद्भावः पश्चाज्जातो विशेषतः ॥ ९ ॥
तेषु धर्मा अपि तथा दृश्यंते द्विविधा अपि ।
एवमेवास्मदाचार्यस्वरूपमवबुध्यताम् ॥ १० ॥

अर्थः—उपर धर्म धर्मिके भेद कहे ता भेदमें दोय भाव सिद्ध हे, पहिलें तो सहज भयो एसो स्त्रीभाव हे ओर पाछें आविष्ट भये एसे भगवानको भाव विशेषसों भयो हे ॥ ९ ॥ तामें एसे दोय प्रकारके धर्मद्व देखिवेमें आवतहें एसेंही अपनें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको स्वरूप जाननों ॥ १० ॥

मूलं—स्वामिनीभगवद्भावयुतं चापि विलक्षणम् ।
अत एवोभयं तत्तद्ग्रंथेषु विनिरूप्यते ।
प्रभुभिः स्वामिनीभावभगवद्भाववत्त्वतः ॥ ११ ॥

अर्थः—श्रीस्वामिनीभाव तथा भगवद्भाव उपर निरूपण कीये हें ता भावयुक्त श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको स्वरूप हे [अर्थात् धर्म ओर

१ धर्मरूप विप्रयोगमें हृदयमें प्रभुके गुणको आवेश होतहे ता गुणके अनुभवकरि विप्रयोगको अनुभव होतहे. मूर्तिमें जेसें प्रभुको आवेश होवहे तेसें धर्मिरूप विप्रयोगमें श्रीकृष्णको आवेश होतहे जेसें व्रजभक्तनकों विप्रयोगतें सर्वात्मभाव सिद्ध भयो.

वर्मिरूप विप्रयोग भावयुक्त हे) तोहू विलक्षण हे, तासोंही तो ता प्रंथमें श्रीगुसाँईजीनें श्रीस्वामिनीभाव तथा भगवद्भावयुक्तपनेतें दोय भावात्मक निरूपण कीये हें ॥ ११ ॥

मूलं–' सर्वलक्षणसंपन्न ' इति नाम विराजते।
तथा तत्रैव ' रासस्त्रीभावपूरितविग्रहः ' ॥ १२ ॥
वस्तुतः कृष्ण एवेति चोक्तं श्रीवल्लभाष्टके।
एवं विदित्वा तद्रूपं कर्त्तव्यः सर्वदाश्रयः ॥ १३ ॥

अर्थः–सर्वोत्तमजीमें " सर्वलक्षणसंपन्नः " (सर्वलक्षणकरियुक्त) यह नाम विराजतहे तेसें उहांही " रासस्त्रीभावपूरितविग्रहः " [रासस्त्री जो व्रजभक्त तिनके भावकरि पूरित श्रीअंग हे अर्थात् यह भावात्मक कही आपको श्रीअंग हे) यह नाम विराजतहें ॥ १२ ॥ ओर श्रीवल्लभाष्टकमें कहेहें " अज्ञानाद्यंधकारप्रशमनपटुताख्यापनाय त्रिलोक्यामग्नित्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्ण एव " (त्रिलोकीमें अज्ञानादिक जो अंधकार ताकी शांतिमें चातुर्य प्रसिद्ध करिवेके अर्थ आपको अग्नित्व कविनर्ने वर्णित हे परंतु सदा वस्तुतासों आप श्रीकृष्णही हो) एसे श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके स्वरूपकों जानिकें सर्वदा इनको आश्रय करनो ॥ १३ ॥

इति श्रीहरिरायजीविरचितं रसात्मकं भावस्वरूपनिरूपणं समाप्तम्।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

१ " सौंदर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं " यह श्लोकमें जो स्वरूप निरूपित हे वेही अभिप्राय इहां जाननों.